रामशरण जोशी

# कठघरे में

# कठघरे में

# कठघरे में

रामशरण जोशी

प्रयोगधर्मी पत्रकारों की छाँह

माया शर्मा

को

सादर

## आभार

**रा. श. जोशी :** *साक्षात्कारों को पुस्तक की शक्ल देने का श्रेय किसे देना चाहेंगे?*

**लेखक :** अरविन्द जैन को। वह पेशे से वकील है, लेकिन साहित्यकारों-पत्रकारों की दुनिया में ताक-झाँक करना उसकी आदत है। रद्दी के नसीब से बँधे ये साक्षात्कार उसकी नज़र से बच न सके। उसने उकसा दिया, मैंने कार्रवाई शुरू कर दी और मोहनजी ने दबोच लिया। अरविन्द-मोहन कारस्तानी का नतीजा आपके हाथों में है। वैसे अपनों के प्रति आभार व्यक्त करना, दूसरे शब्दों में खाली खानों को भरना है। तो भी ...

**रा. श. जोशी :** *उन पात्रों को कैसे भुला सकते हैं जिन्हें आपने साक्षात्कारों के लिए चुना है ?*

**लेखक :** ठीक मौके पर याद दिलाया। मैं इन साक्षात्कारों के लिए डॉ. शंकरदयाल शर्मा, श्रीपाद अमृत डाँगे, चौ. देवीलाल, चन्द्रशेखर, राजीव गाँधी, अर्जुन सिंह, प्रणव मुखर्जी, वी. सी. शुक्ल, सुन्दरलाल पटवा, शरद यादव, गोविंदाचार्य, संत भिंडराँवाले, न्यायाधीश पी. एन. भगवती, कृष्णा अय्यर, डा. ब्रह्मदेव शर्मा, श्रीलता स्वामीनाथन, आर. के. करंजिया, विष्णु प्रभाकर, डा. देवेन्द्र कौशिक आदि के प्रति आभारी हूँ। इन्होंने बेहिचक समय देकर साक्षात्कारों को साकार किया है।

**रा. श. जोशी :** *पत्र-पत्रिकाएँ अगर माध्यम न बनतीं, तो क्या ये साक्षात्कार और रिपोर्ताज पाठकों तक पहुँच सकते थे ?*

**लेखक :** कतई नहीं। इसके लिए मैं *दिनमान, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दुनिया, नई दुनिया विशेषांक* और *नवभारत टाइम्स* के प्रति आभारी हूँ; और अन्त में, अपने दोनों सहयोगियों–आनन्द दत्त एवं भगवानदास के प्रति भी।

# विषय-क्रम


प्रस्तावना 9

रूबरू : अवाम और प्रधानमंत्री 38

अर्जुनसिंह से साक्षात्कार

1. सत्ता-संघर्ष ही आखिरी क्षितिज नहीं 50
2. चुनौतियों से चुनौतियों तक 58
3. घेराबंदी 66
4. घेराबंदी से मुक्ति 71
5. एक नाविक विश्वास 79

ताऊ बोल्या : देवीलाल से साक्षात्कार 83

'परिवर्तन की शृंखला की एक कड़ी हूँ !': चंद्रशेखर 96

विद्याचरण शुक्ल से साक्षात्कार

1. ढीली पकड़ और निस्तेज संवाद के बीच 100
2. 'राजीव गाँधी तो सिर्फ हादसों की पैदाइश हैं !' 103

सुन्दरलाल पटवा से साक्षात्कार

1. मुझे कभी सपना नहीं आता 112
2. रथ के संग-संग 125

सत्ता पर खुरदुरे हाथों की दस्तकें : शरद यादव से साक्षात्कार 132

मोहम्मदपंथी हिन्दू और ईसापंथी हिन्दू : गोविंदाचार्य से साक्षात्कार 146

भय, आतंक और धर्मान्धता के बीच : भिंडराँवाले से साक्षात्कार 156

प्रणव मुखर्जी से साक्षात्कार :

1. तरक्की के लिए जोखिम जरूरी 162
2. वे खिलाड़ी हम प्यादे 171

'जन-संचार : शैतान भी और देवता भी' : हरिकिशनलाल भगत 179

आँखों में झूलते बेशुमार स्वप्न : अजित कुमार पांजा 185

2. उन्होंने कहा था-'हम थक रेह हैं!': डा. शंकरदयाल शर्मा 198
3. कौन कहता है नेहरू तानाशाह थे : आर. के. करंजिया 204
4. नेहरू तेलंगाना आंदोलन के खिलाफ़ नहीं थे : डाँगे 211

'तो पूरी तरह नंगा हो जाने दो!': डा. ब्रह्मदेव शर्मा से साक्षात्कार 215
आदिवासी कल्याण का सपना : सबका अपना-अपना 229
संवाद घंटाली की श्रीलता स्वामीनाथन से 235

'कानून को रहस्य न बनने दिया जाए' : न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती 240
'सामाजिक न्याय का सपना अधूरा है' : न्यायमूर्ति श्रीकृष्णा अय्यर 245
'वर्ना जनता चौरस्तों पर फैसला करेगी' : न्यायमूर्ति गोवर्धनलाल ओझा 249

येल्तसिन-पूँजीवाद के नए-नए मौलवी : डॉ. देवेंद्र कौशिक 255
'आत्मतर्पण आत्मपाखंड भी है' : विष्णु प्रभाकर 264

देखी ज़माने की यारी 275
जयचंदों और मीरजाफ़रों की दुनिया में एक पारदर्शी आदमी 287
राजनीतिक पक्षाघात से जूझते चरण सिंह 294
राजीव को गप्पियों के क्रमांक 299
बाँह पर ताबीज बाँधे कंप्यूटरवाले गए विदेश 303
कोई हारा कोई जीता, दिल्ली के दिल पर यह बीता 308
ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती का 797वाँ वार्षिक उर्स 313
रेत और हरियाली 317

उत्तर-त्रासदी : परिदृश्य एक–
सिखों का आत्ममंथन 327
'हम आतंकवादियों को मिटा देंगे!': संता सिंह 333
उत्तर-त्रासदी : परिदृश्य दो–
पंजाब 337
उत्तर-त्रासदी : परिदृश्य तीन–
सदमों में डूबा पंजाब 345
'अपने ही खेल खेल गए!' : संत लोंगोवाल 352
अपवित्रता और अस्वस्थता की संस्कृति 358
आम आँखों के सवाल 363
त्रासदियों का पटाक्षेप : आगाज एक नई सुबह की 371

असम आंदोलन : ताम्बूल के वनों में मौत की फसल 377

# प्रस्तावना

साक्षात्कार लेना मेरे लिए हमेशा एक रोमांचक अनुभव रहा है। जहाँ तक मुझे याद है, सक्रिय पत्रकारिता में कूदने के पश्चात मेरी पहली मुठभेड तत्कालीन युवा तुर्कनेता चद्रशेखर से हुई थी। इसके पश्चात मुठभेड़ो का सिलसिला चल पडा। एस एम जोशी, मोरारजी देसाई, कृष्णकांत, मोहन धारिया, चंद्रजीत यादव, गायत्री देवी, तारकेश्वरी सिन्हा, इंद्रकुमार गुजराल जैसे अनेक नाम मुठभेड़ों की फेहरिस्त में जुडते रहे। यह वक्त था का, जब भारतीय राजनीति में उथल-पुथल मची हुई थी। कांग्रेस के विभाजन का दौर था। बैंक-राष्ट्रीयकरण, पूर्वनरेशों के प्रिवीपर्सो की समाप्ति, गरीबी हटाओ जैसे नारों ने इंदिरा गाँधी को आसमान में उछाल रखा था।

ऐसे थ्रिल भरे वातावरण में मुठभेड़ यानी साक्षात्कार एक प्रभावशाली हथियार सिद्ध होता है, पत्रकार के लिए। तब से लेकर अब तक जब भी मुझे मौका मिला, मैंने इस हथियार का इस्तेमाल किया। लेकिन, इसे मैंने सिर्फ राजनीतिज्ञों तक ही सीमित नहीं रखा, दूसरे क्षेत्रों की विभूतियों के भी साक्षात्कार लिये। इस सबध में एक घटना का उल्लेख करना चाहूँगा। *दिनमान* के तत्कालीन संपादक स्व रघुवीर सहाय ने एक चुनौतीपूर्ण 'एसाइनमेंट' मुझे दिया। मुझसे कहा गया था कि मैं रोगग्रस्त शंभु महाराज का साक्षात्कार लूँ। वे तब ऑल इंडिया मैडीकल इंस्टीट्यूट में इलाज करा रहे थे। वे देश के प्रसिद्ध नर्तक थे और मेरे लिए यह क्षेत्र बिल्कुल अजनबी था। खैर! संपादक ने मेरी उलझन को भाँपकर मुझे कुछ गुर बतलाए; इसके बाद शंभु महाराज का साक्षात्कार लिया गया। ऐसे और

हूँ। साक्षात्कार का एक व्यापक फलक है, राजनीति उसका एक महत्वपूर्ण कोना अवश्य है, लेकिन वह सर्वस्व नहीं है। चूँकि राजनीतिज्ञो का सीधा सबंध सत्ता से रहता है, इसलिए उनके साथ होनेवाली मुठभेडे मीडिया की सबसे प्रिय 'कॅमोडिटी' जरूर बन जाती है। शायद यही वजह है कि औसत पत्रकार नेताओ के साक्षात्कार के लिए हमेशा प्रयासरत रहता है। इसका नतीजा यह निकलता है कि वह साक्षात्कार-जगत के अन्य पक्षो से वंचित रह जाता है, वह नेताओ के प्रश्न-उत्तर मे स्वय को कैद कर डालता है। फलत उसकी साक्षात्कार के क्षेत्र मे प्रयोगधर्मिता बुरी तरह से प्रभावित हो जाती है। यह अस्वस्थता की निशानी है।

वास्तव मे आज साक्षात्कार-विधा को राजनीतिज्ञो तक ही सीमित करके नही रखा जा सकता। जनसचार एव सूचनाओ के विस्फोट ने साक्षात्कार के क्षेत्र मे भी क्राति ला दी है, इसमे भी कई तरह के प्रयोग किये जा रहे है, प्रश्न-उत्तर के ढर्रे से इसे बाहर निकाला जा रहा है, इसमे नए-नए आयाम जुड रहे हैं। समाजशास्त्रीय क्षेत्रो मे तो साक्षात्कार एक स्वतत्र अनुशासन के रूप मे विकसित हो चुका है। एक समाजशास्त्री या नृतत्वशास्त्री के लिए जरूरी है कि वह क्षेत्र मे उतरने से पहले इटरव्यू की टैकनीक का ठीक तरह से अध्ययन कर ले। बाजार-सर्वेक्षको के लिए तो इस विधा मे पारगत होना नितात आवश्यक है। विस्तार मे जाने से पहले सुविधा की दृष्टि से, साक्षात्कार-जगत को मोटे रूप से निम्न श्रेणियो मे विभाजित किया जा सकता है

क पत्रकारिता एव साहित्यिक साक्षात्कार।
ख गैर-पत्रकारिता एव समाजशास्त्रीय साक्षात्कार।

साक्षात्कार की इन उपर्युक्त श्रेणियो को मै निजी अनुभव के आधार पर निम्न उप-श्रेणियो मे विभाजित करना चाहूँगा

## क . पत्रकारिता एवं साहित्यिक साक्षात्कार

### पत्रकारिता-साक्षात्कार

1. *राजनीतिक साक्षात्कार* इस श्रेणी के अतर्गत राजनीतिज्ञो के साक्षात्कार रखे जा सकते हैं। लेकिन राजनीतिज्ञो की भी कई श्रेणियाँ होती हैं अतिविशिष्ट राजनीतिज्ञ, विशिष्ट राजनीतिज्ञ और सामान्य राजनीतिकर्मी। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, पधानमत्री विदेशी अतिथि, राज्यपाल जैसे व्यक्तियो को अतिविशिष्ट व्यक्तियो की श्रेणी मे रखा जा सकता है। इनके साक्षात्कार सहज ढग से उपलब्ध नही हो पाते हैं। इनके साक्षात्कारो को एक घटना के रूप मे देखा जाता है।

राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और राज्यपालों के साक्षात्कार तो दुर्लभ ही माने जाते हैं। ये स्वयं को राजनीतिक विवादों से दूर रखते हैं, इसलिए पत्रकारों को औपचारिक साक्षात्कार देने में अत्यंत सावधानी एवं संकोच से काम लेते है। वैसे ये गैर-राजनीतिक विषयों पर खुलकर अपने विचार व्यक्त करने से हिचकते नहीं हैं। लेकिन, सब कुछ व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करता है। साक्षात्कारों के मामले मे स्व ज्ञानी जैल सिह को काफी उदार माना जाता था। डा. शंकरदयाल शर्मा भी औपचारिक साक्षात्कार के लिए चर्चित रहे हैं। सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि पत्रकार का सबधित अतिविशिष्ट व्यक्तियों से कैसा संबंध है। मिसाल के तौर पर, स्व पडित जवाहरलाल नेहरू का ब्लिट्ज के संपादक आर के करजिया के साथ आत्मीय सबध था। श्री करजिया उनसे आमतौर पर प्रतिमास एक साक्षात्कार लिया करते थे। उक्त साक्षात्कार से भारत के प्रधानमत्री के देश-विदेश की घटनाओ के प्रति ताजा दृष्टिकोण का पता चलता था। इंदिरा गॉधी ने भी कमोबेश यही परिपाटी जारी रखी। उन्होने विदेशी पत्रकारों को भी उदारता के साथ साक्षात्कार दिए। इस दृष्टि से राजीव गाँधी ने भी संकोच नही बरता। सक्षेप मे, महत्वपूर्ण अवसरो एव घटनाओ पर प्रधानमंत्री के साक्षात्कार उपलब्ध हो जाते है।

विशिष्ट राजनीतिक व्यक्तियो मे केद्रीय मत्रियो, विभिन्न प्रदेशो के मुख्यमंत्रियों और मत्रियो, लोकसभा अध्यक्ष, राज्यसभा के उपसभापति, विधानसभाध्यक्षों, प्रतिपक्षी नेताओ और सत्तारूढ एव विरोधी दलो के अध्यक्षो को सम्मिलित किया जा सकता है। इस श्रेणी के राजनीतिज्ञो से साक्षात्कार आमतौर पर सुलभ हो जाते है। लोकसभा-अध्यक्ष अवश्य सुलभ नही हो पाते है, क्योकि उनकी भूमिका राजनीतिक प्रतिबद्धताओ से ऊपर समझी जाती है, इसलिए अध्यक्ष से यह अपेक्षा रखी जाती है कि वह व्यावहारिक राजनीति से सबधित साक्षात्कार देने मे सावधानी से काम ले। सामान्यतया लोकसभा-अध्यक्ष अपने सदन के अनुभवों के संबंध में साक्षात्कार देते रहते है। यह मेरा निजी अनुभव भी रहा है। विधानसभाध्यक्षों की भी लगभग यही स्थिति मानी जाती है। लेकिन, लोकसभा-अध्यक्ष तथा राज्यसभा के सभापति एव उपसभापति की तुलना मे विधानसभाओं के अध्यक्ष अधिक उदार माने जाते है। वे साक्षात्कार देते रहते है, और विवादों से घिरे भी रहते हैं।

केद्रीय मत्रियो, मुख्यमंत्रियो और विभिन्न पार्टी-अध्यक्षो के सामने साक्षात्कार को लेकर कोई सवैधानिक या तकनीकी अडचन नहीं रहती है, इसलिए इनके साक्षात्कार सहज ढंग से उपलब्ध हो भी जाते है। बल्कि, मेरा अनुभव तो यह रहा है कि इस श्रेणी के नेताओं मे साक्षात्कार देने के लिए एक प्रच्छन्न व्यग्रता भी रहती है। यह सच है कि ये विशिष्ट राजनीतिज्ञ इस पहलू के प्रति सचेत

रहते हैं कि साक्षात्कार लेनेवाला पत्रकार किस स्तर का है, और किस पत्र-पत्रिका के लिए ले रहा है। यदि लेनेवाला व्यक्ति एक वरिष्ठ पत्रकार है और किसी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिका से सबद्ध है तो उसे किसी विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पडेगा। कई दफे तो मुझे ऐसे भी अनुभव हुए है जब मत्रियो ने स्वय पहल करके अपने साक्षात्कार दिए हैं। इस सबध मे एक घटना याद आती है।

1984 मे प्रधानमत्री बनने से पहले राजीव गॉधी काग्रेस के महासचिव हुआ करते थे और देश-विदेश के पत्रकार उनका साक्षात्कार लेने के लिए लालायित रहते थे। मैंने भी उनसे अपने अखबार के लिए साक्षात्कार देने का अनुरोध किया। लेकिन करीब डेढ-दो वर्ष बाद उन्होने मेरा अनुरोध स्वीकार किया और सिर्फ पद्रह मिनट का साक्षात्कार दिया। इस प्रतीक्षा का एक लाभ अवश्य हुआ और वह यह कि इस अवधि मे वे महासचिव से भारत के प्रधानमत्री बन चुके थे। सोवियत सघ की यात्रा से लौटते समय उन्होने मुझे अपने केबिन मे बुलाकर साक्षात्कार दिया इत्तफाक से मैं भी इस यात्रा मे उनके साथ था।

डा शकरदयाल शर्मा के मामले मे मेरा अनुभव दूसरा ही रहा है। उन्होने तीन-चार दिन के भीतर ही मुझे साक्षात्कार के लिए समय दे दिया। वे उस सम्य उपराष्ट्रपति हुआ करते थे। करीब एक घटे तक उन्होने जवाहरलाल नेहरू के सबध मे आत्मीयता के साथ चर्चा की। लोकसभा के तत्कालीन अध्यक्ष बलराम जाखड भी वर्ष मे एक बार साक्षात्कार के लिए समय दे दिया करते थे। औपचारिक एव अनौपचारिक ढग से वह अपने सदन के अनुभव सुनाया करते थे।

सामान्य श्रेणी के राजनीतिकर्मियो मे सासदो, विधायको और अन्य नेताओ को रखा जा सकता हैं। इन लोगो के साक्षात्कार लेने मे विशेष अडचन नही होती है। बल्कि, ये लोग अपनी बात कहने के लिए लालायित रहते है। विशेष रूप से इनकी रुचि घटनाओ पर अपनी प्रतिक्रियाऍ व्यक्त करने मे अधिक रहती है। लेकिन, कई बार ऐसा भी होता है जब चर्चित सासदो या विधायको का साक्षात्कार लेना कठिन हो जाता है। कई बार ऐसा भी देखा गया है जब नेता का कोई औपचारिक पद नहीं होता है, लेकिन वह अतिविशिष्ट व्यक्ति बन जाता है। ऐसे व्यक्तित्व का साक्षात्कार लेना गर्व की बात होती है, लेकिन यह काम आसान नही होता। ऐसी विभूतियॉ समाज और राजनीति को समान रूप से प्रभावित करती हैं। इनका साक्षात्कार लेना स्वय मे एक अनुभव है।

2 *गैर-राजनीतिक साक्षात्कार* यह सच है कि वर्तमान पत्रकारिता पर राजनीतिक साक्षात्कार की सस्कृति छाई हुई है। इस सस्कृति पर सवार होकर पत्रकार सत्ता के गलियारे मे बडी सुगमता से घुसपैठ कर लेता है। राष्ट्रीय राजधानी और प्रादेशिक राजधानियो मे नियुक्त औसत सपादक, ब्यूरो प्रमुख,

विशेष सवाददाता और संवाददाता राजनीतिक साक्षात्कार का शिकार करने की ताक मे रहते हैं। राजनीतिक साक्षात्कार का सबसे बडा लाभ पत्रकार को यह मिलता है कि वह कम समय मे नेताओं और प्रबधको की निगाह में चढ़ जाता है। जनता के बीच भी वह चर्चा का केंद्र बन जाता है। विवादास्पद राजनीतिज्ञ के साक्षात्कार तो पत्रकार को पर लगा देते है। कुल मिलाकर राजनीतिक साक्षात्कार मे ग्लैमर के तत्व निहित रहते है, इसलिए पत्रकार गैर-राजनीतिक साक्षात्कारो से परहेज करते है या इन्हे दोयम दरजे का समझते है।

लेकिन, ऐसे भी पत्रकार है जिन्हे गैर-राजनीतिक साक्षात्कारो मे अधिक आनद आता है। वे ऐसी विभूतियो के साक्षात्कार लेना पसद करते है जो गैर-राजनीतिक कार्यो के प्रति समर्पित है। इन विभूतियो मे मदर टैरेसा, बाबा आमटे, मेधा पाटकर सुदरलाल बहुगुणा, डा ब्रह्मदेव शर्मा सुब्बा राव आदि को शामिल किया जा सकता है। ऐसी विभूतियो का साक्षात्कार ग्लैमर तो नहीं देता है लेकिन एक आत्मिक सतोष अवश्य प्रदान करता है। इस तरह के साक्षात्कारो के लिए 'कमिटमेट' की आवश्यकता होती है। जब तक पत्रकार सामाजिक मुद्दो के प्रति प्रतिबद्ध नही है, तब तक वह इनसे अच्छा साक्षात्कार नहीं ले सकता। पर्यावरण के प्रति प्रतिबद्ध पत्रकार ही पर्यावरण-नेताओ से अच्छा साक्षात्कार ले सकता है।

इस सदर्भ मे मै एक-दो नामो की चर्चा करना जरूरी समझता हूँ। भारत डोगरा, अनुपम मिश्र, प्रभाष जोशी, उषा राय जैसे कुछेक ऐसे सक्रिय पत्रकार है जो ग्रामीण एव पर्यावरण की समस्याओ के प्रति प्रतिबद्ध रहते है। इन्होने ऐसे ही व्यक्तियों के साक्षात्कार अधिक लिए है जो गैर-राजनीतिक क्षेत्रो मे सक्रिय है। मै इस तरह के साक्षात्कारो को साथक पत्रकारिता की श्रेणी मे रखना चाहूँगा।

वैसे गैर-राजनीतिक साक्षात्कारो का दायरा काफी व्यापक है। इसके अन्तर्गत कई विशेषीकृत साक्षात्कारो को रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री उद्योगपति, व्यापारी, शेयर-विशेषज्ञ, खिलाडी व खेल-विशेषज्ञ जैसे व्यक्तियो के साक्षात्कारो को इस श्रेणी मे रखा जा सकता है। इस श्रेणी के साक्षात्कारो को व्यवसायप्रधान साक्षात्कार या व्यावसायिक साक्षात्कार कहा जा सकता है।

इस श्रेणी मे विभिन्न अधिकारियो को भी रखा जा सकता है। नगर निगम आयुक्त, पुलिस आयुक्त, एयरपोर्ट प्राधिकरण प्रमुख, स्वास्थ्य महानिदेशक, यातायात पुलिस प्रमुख, अनुसूचित जाति/जनजाति आयुक्त, सार्वजनिक क्षेत्रो के अध्यक्ष आदि ऐसे व्यक्ति है जिनके छोटे-बड़े साक्षात्कार आमतौर पर प्रकाशित होते रहते हैं। चूँकि ये विभाग जन-समस्याओ से संबधित रहते हैं इसलिए इनके प्रमुखो को पत्रकार

जुड़े रहते हैं। समय व आवश्यकता को ध्यान में रखकर इनके साक्षात्कार छपते रहते हैं।

आठवे दशक के प्रारम्भ मे मैंने *धर्मयुग* के लिए देश के प्रमुख अखिल भारतीय प्रशासनिक अधिकारियो के साक्षात्कार लिए थे। वे साक्षात्कार पूरी तरह से गैर-राजनीतिक थे। साक्षात्कारो का सबध देश मे बदलते प्रशासन के स्वरूप, प्रशासको की समस्याओ और राजनीतिक शासको के साथ उनके रिश्तो को लेकर था। मुझे याद है, लगभग सभी वरिष्ठ अधिकारियो से उत्साहपूर्ण रेसपॉन्स मिला था। करीब एक दर्जन अधिकारियो मे एक-दो ही अधिकारी ऐसे थे जिन्होने अपने नाम को प्रकाशित करने की अनुमति नही दी थी। लेकिन उन्होने अनौपचारिक वार्ता मे वर्तमान व्यवस्था के सबध मे अपने विचार खुलकर व्यक्त किये थे।

मेरा यह मत है कि व्यावसायिक साक्षात्कारो के लिए पत्रकार को सबधित क्षेत्र का ज्ञान होना चाहिए। किसी भी वैज्ञानिक या उद्योगपति से तब तक अच्छा साक्षात्कार सभव नहीं है जब तक कि साक्षात्कार लेनेवाला व्यक्ति उनके क्षेत्र से अच्छी तरह से परिचित नहीं है।

## साहित्यिक साक्षात्कार

आधुनिक पत्रकारिता मे गैर-राजनीतिक एव व्यावसायिक साक्षात्कारो का महत्व बढता जा रहा है। इस दृष्टि से साहित्यिक साक्षात्कारो का विशेष स्थान है। बल्कि, पूर्व-1947 की हिन्दी पत्रकारिता मे साहित्यकारो के साक्षात्कार काफी चर्चित रहे है। आजादी के बाद भी साहित्यिक साक्षात्कारो का महत्व कम नहीं हुआ है। विशेषरूप से पत्रकार-लेखक मनोहर श्याम जोशी के साहित्यिक साक्षात्कार तो काफी चर्चित रह चुके है। धर्मयुग साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिनमान, आलोचना, ज्ञानोदय सारिका, पहल, हस कहानी, प्रतीक, साक्षात्कार, पूर्वग्रह जैसी पत्रिकाओ ने साहित्यिक साक्षात्कारो को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया है।

यह सच है कि साहित्यिक साक्षात्कार मूलत साहित्यिक पत्रिकाओ तक ही सीमित रहे है। चूँकि ऐसे साक्षात्कारो के पाठक मूलत साहित्य-प्रेमी होते है इसलिए, सामान्य वर्ग इनके प्रति आकर्षित नहीं हो पाता है, एक तरह से वह साहित्यिक साक्षात्कारो से कटा रहता है। शायद दैनिक अखबारो मे ऐसे साक्षात्कारो को कम स्थान दिये जाने की यह प्रमुख वजह होगी।

पर एक सत्य यह भी है कि जब भी लोकप्रिय दैनिको मे किसी सुप्रसिद्ध साहित्यकार का कोई साक्षात्कार प्रकाशित होता है तो उसे पाठक बडी रुचि से पढते भी हैं। अब तो दिल्ली, प्रदेश राजधानियो और सभागीय मुख्यालयो से प्रकाशित होनेवाले दैनिको में साहित्यिक परिशिष्ट भी रहता है। कई समाचारपत्रो ने दैनिक पत्रिका

की अवधारणा को स्वीकार कर लिया है। अत: वे साहित्य, संस्कृति, [illegible] खेल-कूद आदि से संबंधित साक्षात्कार प्राय: छापते रहते हैं। साहित्यकार की भी इच्छा रहती है कि किसी प्रतिष्ठित दैनिक में उसका साक्षात्कार प्रकाशित हो, जिससे कि वह पाठकों के व्यापक वर्ग तक पहुँच सके। यह सच है कि वह गहन एवं गंभीर किस्म का साक्षात्कार साहित्यिक पत्रिका को ही देना पसंद करता है, लेकिन साहित्य की राजनीति के मामले में वह दैनिकों में स्थान की तलाश करेगा।

साहित्य एव संस्कृति के स्तम्भ इतने लोकप्रिय बनते जा रहे हैं कि कई दैनिकों ने इसे एक स्वतंत्र बीट ही घोषित कर दिया है। इसके लिए अलग से संवाददाताओं की नियुक्ति की जाती है जिससे कि वे साहित्य एवं संस्कृतिकर्मियों से अधिकार के साथ साक्षात्कार ले सके। अंग्रेजी अखबारो में तो बहुत पहले से यह व्यवस्था है।

आज साहित्य के साथ-साथ कला-सस्कृति के क्षेत्र में भी गतिविधियों का विस्फोट हुआ है। विशेषरूप से महानगरो और बडे नगरो में नाटको का मंचन, नृत्य-संगीत आयोजन, कला-प्रदर्शनियॉ, साहित्य-सिनेमा गोष्ठियॉ विशिष्ट वर्गीय जीवन का एक आवश्यक अग बनते जा रहे हैं। इसलिए कुशल संपादक का प्रयास यही रहता है कि वह अनुभवी पत्रकार से संबंधित क्षेत्रों की विभूतियों के साक्षात्कार प्राप्त करे। विख्यात साहित्यकारे, नाट्यकर्मियो, चित्रकारों, कलाकारों आदि के साक्षात्कार या उन पर आलेख उनके जन्मदिन पर प्रकाशित होते रहते हैं। अत: गैर-राजनीतिक साक्षात्कारों के महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। बल्कि, पत्रकारिता व्यवसाय की दृष्टि से गैर-राजनीतिक पत्रकारिता एक विशेषीकृत क्षेत्र बन चुकी है। इसलिए इस क्षेत्र के विशेषीकृत साक्षात्कार के लिए विशेषीकृत पत्रकार ही प्रभावशाली सिद्ध हो सकते हैं।

## काल्पनिक एवं आत्मकथात्मक साक्षात्कार

क श्रेणी के साक्षात्कारों में मैं काल्पनिक एवं आत्मकथात्मक साक्षात्कारों को भी रखना चाहूँगा। वैसे ये गैर-राजनीतिक भी हो सकते हैं, और राजनीतिक भी हो सकते हैं, यह व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करता है।

सर्वप्रथम काल्पनिक साक्षात्कार को लिया जाए। इसे एक तरह की 'फैंटेसी' भी कहा जा सकता है। कोई भी पत्रकार या लेखक किसी राजनीतिज्ञ, साहित्यकार या किसी भी अन्य व्यक्ति का काल्पनिक साक्षात्कार लिख सकता है। होली-दीवाली या अन्य विशेष अवसरों पर इस तरह के साक्षात्कार प्रकाशित किये जाते हैं। स्वर्ग में विष्णु, शकर, इन्द्र या नारद के काल्पनिक साक्षात्कार बहुत लिखे जा चुके हैं। लेकिन गॉधीजी, नेहरूजी, शास्त्रीजी, इंदिराजी आदि नेताओं के भी अनेक

काल्पनिक साक्षात्कार लिखे जा चुके हैं। इस तरह के साक्षात्कार व्यंग्यप्रधान होते हैं। इन काल्पनिक साक्षात्कारो के माध्यम से व्यवस्था को एक्सपोज किया जा सकता है, नेताओ की खिल्ली उडाई जाती है। पौराणिक पात्रो के साक्षात्कारो के माध्यम से किसी घटना विशेष पर फोकस डाला जाता है। दैनिक हिन्दुस्तान मे गोपालप्रसाद व्यास के नारदजी के साक्षात्कार काफी चर्चित रह चुके हैं। उन्होने 'नारदजी खबर लाए है' स्तम्भ के अन्तर्गत काल्पनिक साक्षात्कारो के माध्यम से समसामयिक घटनाओ पर तीखा व्यग्य किया है। रमेश बख्शी के सपादन मे वर्षो तक प्रकाशित हिन्दी की शकर्स वीकली मे भी ऐसे साक्षात्कार छपते रहे है।

काल्पनिक साक्षात्कार लिखने के लिए यह आवश्यक है कि लेखक-पत्रकार अपने काल्पनिक पात्र के जीवन-ससार से भली-भॉति परिचित हो। यदि लेखक कल्पना मे देश-विदेश की किसी मशहूर हस्ती से साक्षात्कार करता है तो उसे इसका पुख्ता ज्ञान होना चाहिए कि उसकी रचना के नायक की जीवन-शैली क्या है ? उसके बोलने, चलने, पहनने, खाने-पीने का ढग कैसा है ? वह किस भाषा मे बोलता है ? उसका चिन्तन-ससार कैसा है ? उसकी रुचियॉ क्या है ? विभिन्न महत्वपूर्ण मुद्दो पर उसकी क्या प्रतिक्रियाऍ रही हैं ? अत काल्पनिक साक्षात्कार मे जीवन्तता तभी पैदा की जा सकती है जब सबधित पात्र अपने समूचे परिवेश के साथ उसमे उपस्थित किए जाऍ।

ऐसे भी साक्षात्कार है जिनके माध्यम से साक्षात्कार देनेवाले ने अपने जीवन के बारे मे काफी कुछ कहा है। ऐसे साक्षात्कारो मे आत्मकथात्मकता के तत्व निहित रहते है। प्रस्तुत पुस्तक के एक अध्याय मे चौधरी देवीलाल का एक साक्षात्कार 'ताऊ बोल्या' है। इस साक्षात्कार मे देवीलाल ने अपने जीवन की विगत घटनाओ के सबध में काफी कुछ बतलाया है। यह आशिक रूप से आत्मकथात्मक साक्षात्कार है। पुस्तक के 'चुनौतियो से चुनौतियो तक', 'यात्रा अधूरी है', 'हम थक रहे है', 'कौन कहता है नेहरू तानाशाह थे' 'आत्म-तर्पण आत्मपाखण्ड भी है' जैसे अध्यायो मे आत्मकथात्मक साक्षात्कार के तत्वो को देखा जा सकता है। इन साक्षात्कारो के नायको – अर्जुन सिह, प्रणव मुखर्जी, डा शकरदयाल शर्मा, आर के करजिया, विष्णु प्रभाकर ने अपने उत्तरो मे अपनी जीवन-कथा के कई महत्वपूर्ण अश भी पिरोये हैं। अत सदर्भित साक्षात्कारो को आत्मकथापरक साक्षात्कार कहना अनुचित नहीं होगा।

आत्मकथापरक साक्षात्कार लेना तभी सभव है जब दोनो पक्षो के बीच फुरसत के साथ जीवन्त सवाद स्थापित हो, दोनो बराबर का रेसपोस दे। किसी एक पक्ष की उदासीनता से इसकी तारतम्यता प्रभावित हो सकती है। आमतौर पर ऐसे साक्षात्कार लम्बे होते है, और इनके लिए अच्छे 'डिसप्ले' की जरूरत होती है।

## ख : गैर पत्रकारिता एवं समाजशास्त्रीय साक्षात्कार

प्राय. यह माना जाता है कि साक्षात्कार-विधा पर पत्रकारिता का एकाधिकार है; पत्रकार ही साक्षात्कार ले सकते हैं। लेकिन, यह धारणा गलत है। पत्रकारिता से बाहर भी साक्षात्कार का एक व्यापक संसार है। विभिन्न अनुशासनों के व्यक्ति इससे जुड़े रहते है, और उसे समृद्ध करते रहते हैं। इस श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले साक्षात्कारो की तात्कालिक प्रकाशन उपयोगिता नहीं रहती है, लेकिन ये एक बडे अध्ययन के आवश्यक हिस्से होते हैं। इन साक्षात्कारों के माध्यम से समाज मे मौजूद विभिन्न प्रवृत्तियों, समस्याओ, तनावो, अन्तर्विरोधों, मतों, रुझानों, भावी संकेतो आदि का पता लगाया जाता है, इसके पश्चात कार्रवाई की एक उपयुक्त रणनीति तैयार की जाती है। इस तरह के साक्षात्कार विकसित और गैर-विकसित, दोनो ही राष्ट्रों मे समान रूप से लोकप्रिय हैं।

एक अच्छे समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, मानवविज्ञानशास्त्री, राजनयिकविज्ञानशास्त्री आदि के लिए यह आवश्यक है कि वे साक्षात्कार-विधा में दखल रखते हों। ये समाजशास्त्री इस बात पर जोर देते हैं कि 'प्री-फील्ड स्टडी' शुरू करने से पहले सर्वेक्षक को साक्षात्कार-विधा का पुख्ता ज्ञान होना चाहिए।

'सर्वेक्षण परियोजनाओं' मे तो साक्षात्कार माध्यम का भरपूर उपयोग किया जाता है। लेकिन, शहरी और ग्रामीण क्षेत्रो मे साक्षात्कार के तरीके अलग-अलग होते हैं। शहरी क्षेत्रो मे जहॉ एक औपचारिक समाज से सामना होता है वहीं ग्रामीण क्षेत्रो का परिवेश मूलत अनौपचारिक होता है। अत इन दोनों क्षेत्रों में साक्षात्कार लेते समय अलग-अलग विधियॉ अपनाई जाती हैं।

ये साक्षात्कार सक्षिप्त भी होते हैं, और लम्बे भी होते हैं। यह विषय की आवश्यकता पर निर्भर करता है। बाजार-सर्वेक्षण के दौरान किये जानेवाले साक्षात्कार संक्षिप्त किस्म के होते है, जबकि समाज एव नृतत्वविज्ञान से संबधित सर्वेक्षणों में काम आनेवाले साक्षात्कार अक्सर विस्तृत होते हैं। संबंधित व्यक्तियों से घंटो संवाद करना पडता है, तब जाकर समाजशास्त्रीय साक्षात्कार पूरा होता है।

संयोग से मुझे पत्रकारिता के साथ-साथ समाजशास्त्रीय साक्षात्कारों का अनुभव रहा है। विशेषरूप से मैंने ग्रामीण व आदिवासी क्षेत्रों में कई तरह के सर्वेक्षण किये थे। उक्त सर्वेक्षणों में एक-एक व्यक्ति के साथ कई-कई घंटे बिताने पड़ते थे, और अनौपचारिक साक्षात्कारं के माध्यम से वस्तुस्थिति का अध्ययन किया जाता था। इस तरह के साक्षात्कारों को 'संवाद-अवलोकन साक्षात्कार' भी कहा जा सकता है। क्योंकि इस तरह के साक्षात्कारों में जहॉं संबंधित व्यक्ति से संवाद के माध्यम से जानकारियॉं एकत्रित करनी होती हैं वहीं अवलोकन के माध्यम

*से उसके परिवेश का भी अध्ययन किया जाता है। क्योंकि यह संभव है कि* वस्तुस्थिति और तथ्यो मे अन्तर रहे, साक्षात्कार देनेवाला बतला कुछ रहा हो, और उसके परिवेश की स्थिति उससे भिन्न रहे। इसलिए सवाद के साथ-साथ अवलोकन की विधि भी अपनाई जानी चाहिए।

उपभोक्ता सस्कृति के विस्फोट ने बाजार अर्थव्यवस्था मे गतिशीलता ला दी है। इसलिए वस्तुनिर्माता सदैव इस प्रयास मे रहता है कि उसे अपने उत्पाद के साथ-साथ अपने प्रतिस्पर्धी के उत्पाद की बाजार-स्थिति की नियमित रूप से सही-सही जानकारी मिलती रहे। इसलिए आजकल 'मार्केट सर्वे' यानी बाजार सर्वेक्षण का कार्य काफी लोकप्रिय होता जा रहा है। विकसित देशो मे तो यह कार्य बहुत पहले से ही प्रचलित है, अब विकासशील देशो मे भी इसकी मॉग बढती जा रही है। जाहिर है कि इस कार्य का सफलतापूर्वक निष्पादन तभी किया जा सकता है जब उपभोक्ता का सही-सही साक्षात्कार प्राप्त हो सके। इस तरह के साक्षात्कार के लिए विशेष दक्षता की जरूरत पडती है। क्योकि, महानगरो की भागमभाग जिन्दगी मे किसी के पास भी इतना वक्त नहीं होता कि वह लम्बे समय तक सर्वेक्षक को अपना साक्षात्कार देता रहे। अल्पावधि मे अधिकाधिक जानकारी एकत्रित करने की दक्षता सर्वेक्षक मे होनी चाहिए। इसमे भी प्रश्न-उत्तर की विधि का सहारा लिया जाता है।

चुनाव-सर्वेक्षण मे तो इस तरह के 'त्वरित साक्षात्कार' बहुत कराये जाते हैं। सगठित सर्वेक्षण एजेसियो द्वारा शहरो और गॉवो मे मतदाताओ के लिए त्वरित साक्षात्कारो का जाल फैलाया जाता है। राजनीतिक दलो और नेताओ के सबध मे उनके मतो को एकत्रित किया जाता है। प्रधानमत्री, आम बजट और किसी प्रमुख घटना के सबध मे जनता की राय जानने के लिए 'त्वरित साक्षात्कार सर्वेक्षण पद्धति' को काफी कारगर माना जा रहा है। इस कार्य के लिए समाजशास्त्री और पत्रकार, दोनो की ही सेवाऍ प्राप्त की जाती हैं। दोनो मिलकर प्रश्नावली तैयार करते हैं, और अनुभवी सर्वेक्षक को इस कार्य मे लगा दिया जाता है।

पत्रकारिता के लिए भी त्वरित साक्षात्कार उपयोगी रहते हैं। सर्वप्रथम, त्वरित साक्षात्कारो पर आधारित सर्वेक्षण-निष्कर्षों को प्रकाशन के लिए विधिवत रूप से प्रसारित किया जाता है। इन निष्कर्षों पर आधारित लेख व टिप्पणियाँ लिखी जाती हैं। पत्र-पत्रिकाओ मे इन निष्कर्षो को प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता है।

इसके अतिरिक्त शुद्ध पत्रकार भी त्वरित साक्षात्कारों के माध्यम से रपट और रिपोर्ताज लिखते है। प्रस्तुत पुस्तक मे मैंने कई जगह त्वरित साक्षात्कारों को अपनी रिपोर्ताजो का माध्यम बनाया है। उदाहरण के लिए, पजाब, असम और राजस्थान से संबंधित रिपोर्ताजो मे इस विधा का जमकर इस्तेमाल किया है। मेरा

यह मानना है कि त्वरित साक्षात्कार की पद्धति के बिना इन रिपोर्ताजों को लिखना संभव नहीं होता। इन रिपोर्ताजों में त्वरित साक्षात्कार समाज के विभिन्न व्यक्तियों से संबंधित हैं। विशेष परिस्थितियों और घटनाओ की पृष्ठभूमि में ये साक्षात्कार लिये गये थे।

इन साक्षात्कारो में समाज की त्रासदी, इंसान की पीडा और व्यवस्था के अन्तर्विरोध व्यक्त हुए हैं।

आमतौर पर गैर-पत्रकारिता व समाजशास्त्रीय साक्षात्कारों में साक्षात्कार देने वाला व्यक्ति गौण रहता है। प्रश्नावली के माध्यम से सिर्फ उससे संबंधित जानकारियो (डेटा) के एकत्रीकरण पर जोर दिया जाता है। शोधकर्ता इन जानकारियों का विश्लेषण करता है, और निष्कर्ष निकालता है। इसके विपरीत पत्रकारिता-साक्षात्कार मे उत्तरकर्ता और प्रश्नकर्ता, दोनो ही पक्ष फोकस में रहते हैं।

लेकिन, इस मामले मे कोई 'हार्ड एण्ड फास्ट रूल' नहीं है। सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि साक्षात्कारकर्ता को क्या चाहिए। समाजशास्त्रीय साक्षात्कारो मे भी उत्तरकर्ता को फोकस मे रखा जाता है, उसकी विधिवत पहचान स्थापित की जाती है। एक तरह का यह 'परिचयात्मक साक्षात्कार' होता है। साक्षात्कार के माध्यम से व्यक्ति विशेष या परिवार का 'प्रोफाइल' तैयार किया जाता है। इसलिए समाजशास्त्रीय साक्षात्कारो मे भी लचीली पद्धति से काम लिया जाता है।

बस्तर के बैलाडीला क्षेत्र में आदिवासियो पर औद्योगिक सभ्यता के प्रभाव और विभिन्न प्रदेशो मे बधक श्रमिक प्रथा के सर्वेक्षण में मैंने ऐसा ही किया था; जहाँ त्वरित साक्षात्कार एकत्रित किये थे वही 'गहन साक्षात्कार' भी लिये। मेरी पुस्तक *आदमी, बैल और सपने* के कुछ महत्वपूर्ण अध्याय गहन साक्षात्कारो पर आधारित है। अत त्वरित व गहन साक्षात्कारो की उपयोगिता व्यक्ति और विषय पर निर्भर करती है। दोनो का अपना-अपना महत्व है। दोनों तरह के साक्षात्कारों के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता भी है। समाजशास्त्रीय या नृतत्वशास्त्रीय साक्षात्कारों के लिए विद्यार्थियों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है।

## टेली इन्टरव्यूज

आजकल टेली इन्टरव्यूज यानी दूरभाष साक्षात्कार की उपयोगिता भी बढ़ती जा रही है। 'दूर-साक्षात्कार' को इलैक्ट्रोनिक और प्रिंट मीडिया, दोनों ही समान रूप से अपना रहे हैं; दोनों ने ही इसकी उपयोगिता को स्वीकार किया है। स्पष्ट है कि प्रिंट मीडिया ने इसे पहले अपनाया। लेकिन, टेलीविज़न-खबर संसार का

यह अभिन्न हिस्सा बन चुका है।

जहाँ तक प्रिंट मीडिया का प्रश्न है वहॉ भी इसकी उपयोगिता रोज़ाना बढ़ती जा रही है। बडे-बडे समाचारपत्र और वरिष्ठ पत्रकार टेलीफोन पर ही विशिष्ट व्यक्तियो के साक्षात्कार ले लेते हैं। पहले टेली-इन्टरव्यूज को रिकार्ड किया जाता है, इसके बाद उन्हे ट्रासक्राइब किया जाता है। जब यह लिपिबद्ध कर लिये जाते हैं तब इन्हें प्रकाशित किया जाता है। लेकिन इस तरह के साक्षात्कारों का आयोजन विशेष अवसरो पर ही किया जाता है। उदाहरण के लिए विशेष घटनाओं के सबध मे राजनीतिज्ञो, विचारको और समाजशास्त्रियो की प्रतिक्रियाएॅ प्राय फोन पर ही ली जाती हैं। जरूरत पडने पर फोन पर लम्बे-लम्बे साक्षात्कार ले लिये जाते हैं। इस तरह के साक्षात्कारों से समय, श्रम और धन, तीनों की ही बचत होती है। लेकिन इस तरह के साक्षात्कारों की उपयोगिता 'अत्यावश्यकता' से जुडी रहती है।

इस सबध मे कुछ निजी अनुभवो का उल्लेख करना प्रासंगिक रहेगा। मैंने दिल्ली से फोन पर लाहौर, इस्लामाबाद, रावलपिंडी और कराची के नेताओ एवं बुद्धिजीवियों के साक्षात्कार कई दफे लिये। सबसे पहले पाकिस्तान के तानाशाह राष्ट्रपति जिया की विमान दुर्घटना में मृत्यु के कुछ घंटे बाद ही फोन पर त्वरित साक्षात्कार लेना शुरू कर दिया था। रात्रि के दस बजे से लेकर सुबह डेढ-दो बजे तक फोन पर पाकिस्तान के प्रमुख नगरों में स्थित पत्रकारो, लेखक-बुद्धिजीवियो और राजनीतिक कर्मियों के त्वरित साक्षात्कार चलते रहे। जैसे ही त्वरित साक्षात्कार प्राप्त होता, उसे तत्काल फोन पर ही इन्दौर लिखा दिया जाता। भारतीय अखबारो में इन्दौर स्थित नई दुनिया ही एक ऐसा दैनिक था जिसने राष्ट्रपति की दुर्घटना मे सन्देहास्पद हत्या के संबध में पाक नागरिकों के विचार अगली सुबह छाप दिये थे। यह प्रयोग सफल रहा। पाठकों का अच्छा रेसपोस मिला। इसके बाद भी इस सिलसिले को जारी रखा गया। प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसर पर दिल्ली से फोन पर पाकिस्तानी बुद्धिजीवियो के त्वरित साक्षात्कार आयोजित किये जाते हैं।

दूर-त्वरित साक्षात्कार के लिए एक अच्छी तैयारी की जरूरत पड़ती है। क्योंकि प्रत्येक सैकिंड मूल्यवान होता है, इसलिए पत्रकार से यह अपेक्षा की जाती है कि वह कम से कम समय व शब्दों का प्रयोग करके ज्यादा से ज्यादा जानकारी एकत्रित करे। इसलिए अन्तर्राज्यीय या समुद्रपारीय फोन करने से पहले पत्रकार को चाहिए कि वह अपने उद्देश्य-बिन्दु के संबंध में स्पष्ट रहे। अस्पष्टता त्वरित साक्षात्कार के उद्देश्यों को प्रभावित कर सकती है। अत. साक्षात्कार लेनेवाले में समय, शब्द और विचारों के साफ-सुथरे संयोजन की क्षमता होनी चाहिए।

# 2
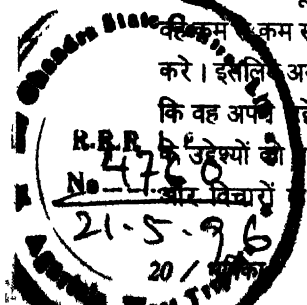
## साक्षात्कारों की पृष्ठभूमि

प्रस्तुत पुस्तक के प्रत्येक साक्षात्कार की अपनी एक कहानी है। साक्षात्कार से पूर्व और दौरान कई किस्म के दिलचस्प अनुभव हुए . कभी साक्षात्कार के लिए संबंधित व्यक्ति को तैयार करते समय लम्बी व उबाऊ प्रतीक्षा से गुजरना पड़ा, कभी साक्षात्कार देनेवाले की तुनकमिजाजी व गुस्से का सामना करना पड़ा, तो कभी साक्षात्कार के प्रकाशित होने के बाद फोन पर गालियाँ खानी पड़ीं। कुछ मामलों में तो प्रशंसा और आलोचना एक साथ बटोरनी पडी। एक मुख्यमंत्री ने पहले तो साक्षात्कार में अपने विचारों के यथावत प्रकाशन की तारीफ की, उसके लिए बधाई दी, लेकिन फिर यानी एक सप्ताह बाद इस भेंटकर्ता की खिंचाई भी कर डाली; क्योंकि अगले सात दिनों के दौरान मुख्यमंत्री के कुछ विचारो को लेकर उसकी खूब आलोचना हुई और मुख्यमंत्री ने अपनी खाल बचाने के लिए इसका सारा दोष भेंटकर्ता पर थोप दिया। कभी-कभी ऐसे भी अनुभव हुए हैं जब नेता अपनी कही हुई बातों से मुकर गये, जबकि उनके साक्षात्कारों को बाकायदा कैसेट मे रिकार्ड किया गया था। इस तरह के हादसे, इस पेशे के जरूरी सबक होते हैं। ऐसे सबक से कोई भी सक्रिय पत्रकार बच नहीं सकता।

भेटकर्ता के लिए गर्व के क्षण भी होते हैं, साक्षात्कारों ने मुझे भी गर्व के क्षण दिये हैं। मेरी दृष्टि में साक्षात्कार देनेवाले की प्रशंसा या आलोचना भेंटकर्ता के गर्व की कसौटी नहीं हो सकती, बल्कि सामान्य पाठक की प्रतिक्रियाएँ ही उसे गर्व की अनुभूति कराती हैं। यदि कोई साक्षात्कार आम पाठक को आन्दोलित करने में सफल रहता है तो इसे 'गर्व के क्षण' के रूप में लिया जाना चाहिए। पाठकों की प्रतिक्रियाओ के आधार पर यह भेंटकर्ता कह सकता है कि तकरीबन सभी सन्दर्भित साक्षात्कार विवाद एवं चर्चा का केन्द्र बने हैं। कतिपय वरिष्ठ नेताओ को साक्षात्कारों की वजह से राजनीतिक कीमत भी चुकानी पड़ी है; कुछ साक्षात्कार देकर पछताए भी; कुछ ने अपने कार्यों में सुधार भी किया। कुछ साक्षात्कारों ने स्वयंसेवियों और आन्दोलनकारियों में अच्छी-खासी हलचल पैदा की। इस हलचल की वजह से संबंधित नेता या मंत्री को तीखी आलोचना का सामना करना पड़ा। कुछ मामलों में नेता को पाठकों के साथ-साथ अपने पार्टी-सहयोगियों के भी आक्रमण झेलने पड़े। पार्टी में साक्षात्कार के कुछ

संवेदनशील कथनों को लेकर खासा विवाद भी चला। एक भेंटकर्ता के लिए इस प्रकार के अनुभव किसी गर्व से कम नहीं हैं।

यूँ तो प्रत्येक साक्षात्कार की छोटी-बडी कहानी है, लेकिन यहाँ कुछ चुनिंदा साक्षात्कारों की रचना-पृष्ठभूमि पर बात करना उपयोगी रहेगा। उदाहरण के लिए, इस पुस्तक का आरम्भिक साक्षात्कार 'रूबरू : अवाम और प्रधानमंत्री' एक अनूठा अनुभव है। यह अध्याय तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गॉधी से संबंधित है। यह एक प्रयोगात्मक साक्षात्कार है। इसमें स्व राजीव गॉधी से भेंटकर्ता की सीधी बातचीत नहीं है, लेकिन सामान्य जन या भेंटकर्ता के माध्यम से उनका साक्षात्कार प्रस्तुत किया गया है। प्रधानमंत्री और अवाम के बीच संवाद-संयोजन जहॉ काफी कष्टसाध्य रहा, वहीं यह एक समृद्ध अनुभव भी सिद्ध हुआ।

1988 के मध्य में *नई दुनिया* के सम्पादक ने मुझे प्रधानमंत्री के 'जनता-दर्शन कार्यक्रम' पर लिखने के लिए कहा। उन दिनों राजीव गॉधी अपने सरकारी निवास 7-रेसकोर्स रोड पर प्राय. प्रतिदिन जनता से मिला करते थे; यह कार्यक्रम करीब दो-तीन घंटा चलता था। प्रधानमंत्री से मिलने के लिए देश के कोने-कोने से दर्शनार्थी आते थे। वे निर्भय व नि.संकोच होकर अपनी लिखित या मौखिक बात राजीव गॉधी से कहते थे। यह सिलसिला देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं जवाहरलाल नेहरू ने शुरू किया था। श्रीमती इन्दिरा गॉधी ने भी प्रधानमंत्री-जनता संवाद जारी रखा। राजीव गॉधी ने भी पूर्व प्रधानमंत्री की इस स्वस्थ परम्परा को आगे बढाया। वे जब भी दिल्ली में होते थे, रोज़ सुबह जनता के साथ संवाद किया करते थे। यह कार्यक्रम खास किस्म की 'थ्रिल' से ओतप्रोत रहता था; कभी इसमें तकरार देखने को मिलती, कभी मनुहार, कभी शिकायत, कभी निष्ठा की भौंडी नुमाइश, कभी विलासिता में सने वर्ग के नुमाइंदों की भिनभिनाहट, कभी चीथडों में जीवित धरा के दलितों की त्रासदियॉ।

जब मुझसे कहा गया कि मैं इसे कवर करूँ, तब इस 'ॲसाइन्मेन्ट' को लेकर मेरे दिमाग मे एक हलचल मची। ऐसा नहीं था कि मैंने राजीव गाँधी को पहले कभी कवर नहीं किया था, बल्कि, 1985 में विदेश-यात्रा के दौरान मास्को से लौटते हुए विमान में उनका विशेष साक्षात्कार भी लिया था। इसके बाद भी उनके साथ कई मर्तबा देश-विदेश की यात्राएँ कीं; उनके साथ अनौपचारिक बातचीत की। लेकिन, जनता-दर्शन का कवरेज निश्चित ही एक चुनौतीपूर्ण ॲसाइन्मेन्ट लगा। मैं इस ॲसाइन्मेन्ट को सिर्फ रिपोर्टिंग की शक्ल नहीं देना चाहता था; इसे एक खबर के रूप में भी लिखा जा सकता था; इसकी एक

न्यूज-रिपोर्ट बनाई जा सकती थी। लेकिन, मैं इससे हटकर कुछ करना चाहता था। मैंने इस अवसर के कवरेज के लिए विभिन्न विधाओं के संबंध में सोचा। अन्त में तय किया कि इसे प्रयोगात्मक बनाया जाए, और तीन-चार विधाओ का एक साथ प्रयोग किया जाए।

सर्वप्रथम, मैने तय किया कि इसके माध्यम से इतिहास, शासक और जनता के रिश्तो के सबध मे पाठको से कुछ कहा जाए, और यह आत्मकथन वैज्ञानिक चिन्तन से रिक्त नहीं होना चाहिए। अत इसमे आरम्भ से अन्त तक एक अघोषित सूत्रधार की शैली का सहारा लिया गया है। कवरेज में 'प्रभाव' पैदा करने के लिए 'लाइव कॉमेटरी' शैली का प्रयोग किया गया है। शब्दों के माध्यम से 'विजुअल इम्पेक्ट' पैदा करना आसान नहीं, फिर भी कोशिश की गई है। मैने ऐसा करना जरूरी समझा।

इस अध्याय मे प्रधानमत्री और जनता के बीच एक जीवन्त सवाद दिखाने की कोशिश की गई है। जरूरत पडने पर प्रधानमत्री को कठघरे मे खडा भी दिखाया गया है। इसके लिए दोनो पक्षो के सवादो को पूरी तरह से रिकार्ड किया गया, जरूरी सन्दर्भ-सामग्री जुटाई गई। इसके बाद रिकार्ड की गई सामग्री का प्रतिलेखन यानी ट्रासक्रिप्शन कराकर यह साक्षात्कार तैयार किया गया। इसमे रिपोर्ताज भी है, साक्षात्कार भी और न्यूज भी। इस त्रिआयामी साक्षात्कार को एक 'थीम' मे पिरोया गया है। स्पष्ट शब्दो मे, धरा के अभागो को केन्द्र मे रखा गया है, और उसके इर्द-गिर्द प्रधानमत्री, उनके निजाम, उनके हुक्काम को रखा गया है।

भारतीय जनता पार्टी के मुख्यमत्री सुन्दरलाल पटवा के साथ भी रोमाचकारी अनुभव हुआ। प्राय यह देखा गया है कि लिखित प्रश्न-उत्तर साक्षात्कार से वास्तविकता उभर कर नहीं आ पाती है। लिखित या औपचारिक साक्षात्कार एक तरह से यान्त्रिक बन जाता है। अत यान्त्रिकता से बचने के लिए मैंने तय किया कि मध्यप्रदेश के मुख्यमत्री सुन्दरलाल पटवा के साथ एक प्रयोग किया जाए। यह किस्सा 1992 का है। वह वर्ष पटवा की लोकप्रियता का शिखर-काल था। दिल्ली स्थित मध्यप्रदेश भवन मे उनके साथ रात्रि-भोज पर साक्षात्कार का समय तय हुआ। मै अपने साथ सिर्फ टेप-रिकार्डर और खाली कैसेट ले गया। बतौर सावधानी एक नोटबुक भी जेब मे डाल ली। मैंने तय किया कि मुख्यमत्री से कोई भी लिखित सवाल न किया जाए, भोजन के साथ-साथ सहज व सामान्य ढग से बातचीत करनी है। मैं नहीं चाहता था कि मेरे शिकार को सतर्क होने का तनिक भी सकेत मिले। इसलिए साक्षात्कार का सिलसिला खान-पान से शुरू किया। धीरे-धीरे मै आगे बढता चला गया। उन्हें इस बात

[illegible] ही नहीं होने दिया कि मेरा निशाना क्या है। मुख्यमंत्री की भोजन-रुचि, पाचन-प्रक्रिया और उनके स्वप्न संसार को स्पर्श करता हुआ मैं उन्हें भूखों की दुनिया में ले गया और छत्तीसगढ़ के श्रमिक नेता शंकर गुहा नियोगी की हत्या, नर्मदा-बचाओ आन्दोलन, जगदलपुर में प्रसिद्ध आदिवासी समाज-सेवक डा ब्रहमदेव शर्मा को नग्नावस्था में घुमाना, उदर रोग से गरीब बच्चों की मौते आदि सवालो के कठघरे मे उन्हें खडा कर दिया। इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि साक्षात्कार में कोई तारतम्यता नहीं थी। संदर्भित साक्षात्कार – "मुझे कभी सपना नहीं आता . सुन्दरलाल पटवा" में तारतम्यता अन्तर्निहित है। सतह पर यह बेतरतीब दिखाई दे सकता है, लेकिन इसकी स्कीम में एक सोची-विचारी थीम पिरोई गई है। साक्षात्कार लेने से पहले ही मस्तिष्क में इसका ताना-बाना बुन लिया गया था, वैकल्पिक प्रश्न सोच लिए गए थे। और सब कुछ योजना के अनुरूप सम्पन्न हुआ।

दरअसल, सुन्दरलाल पटवा के साथ इस तरह का यह दूसरा साक्षात्कार था। इसका पूर्वाभ्यास मैं करीब डेढ वर्ष पहले 1990 में उनके साथ कर चुका था। 'रथ के संग-संग' साक्षात्कार मे मैने टेप-रिकार्डर का प्रयोग नहीं किया था, सिर्फ नोटबुक और पेंसिल का उपयोग किया। इस साक्षात्कार में भी प्रश्न लिखित नहीं थे। लिखित प्रश्नो के लिए अवसर भी नहीं मिला था। यह साक्षात्कार महज एक इत्तफाक था, भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष लालकृष्ण आडवाणी की रथयात्रा के साथ-साथ चलते हुए मुख्यमंत्री पटवा से यह साक्षात्कार लिया गया था। चूँकि मुझे अप्रत्याशित रूप से उनके साथ कार में यात्रा करने का अवसर मिल गया था, इसलिए मस्तिष्क में साक्षात्कार का कोई सुनियोजित खाका नहीं तैयार कर सका था। लेकिन जैसे-जैसे बातचीत का सिलसिला बढता गया, साक्षात्कार की थीम की लकीरे स्वत मस्तिष्क-पटल पर खिचती चली गई। लेकिन, इसकी शुरूआत भी मैने अस्वाभाविक या औपचारिक ढग से नहीं की। साक्षात्कार से पिछली रात उनकी कार दुर्घटनाग्रस्त होते-होते बची थी। बस! मेरे लिए यही घटना अप्रत्याशित साक्षात्कार की उडान-पट्टी सिद्ध हुई, कार मे यात्रा करते हुए उनसे तमाम तरह के सवाल कर डाले। यह साक्षात्कार काफी चर्चित रहा। इस साक्षात्कार को "मुझे कभी सपना नहीं आता सुन्दरलाल पटवा" साक्षात्कार की बुनियाद कहा जा सकता है।

मैं साक्षात्कार लेते समय मूड का विशेष ध्यान रखता हूँ। जब तक साक्षात्कार के दोनों छोरों – लेनेवाले और देनेवाले के बीच 'ट्यूनिंग' न हो, तब तक कोई बात बनती नहीं है। एक अच्छे व संतोषजनक साक्षात्कार के लिए दोनों के बीच अदृश्य व अबोले संवाद का होना जरूरी है। इसलिए साक्षात्कार लेने

से पहले मैं इस बात से पूरी तरह आश्वस्त होने [illegible] संबंधित व्यक्तित्व के साथ ट्यूनिंग है या नहीं ? साक्षात्कार देनेवाले का मूड कैसा है ? और मेरा स्वयं का मूड कैसा है ? कभी-कभी ऐसा भी हुआ है जब नेता या मंत्री साक्षात्कार देने के लिए तैयार है, और मैं मानसिक रूप से इसके लिए प्रस्तुत नहीं हूँ। 1994 के अन्त में उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री मुलायम सिंह टकरा गए। मैंने उनसे साक्षात्कार के लिए वक्त मॉगा। उन्होंने कहा : "अभी चलिए, ओखला रैस्ट हाउस में एक घंटे के लिए बैठ जाएँगे।" मेरे लिए साक्षात्कार की यह स्वीकृति अप्रत्याशित थी। मैंने सोचा था कि मेरे अनुरोध को स्वीकार करने मे समय लगेगा, लेकिन उन्होने तुरन्त ही मुझे उपकृत कर दिया। मेरे लिए यह दुविधा के क्षण थे, क्योंकि मेरा मूड उखडा-उखड़ा था, कुछ दूसरी बातें अथवा योजनाएँ दिमाग पर डेरा जमाए हुए थीं। यदि मैं बेमन से उनका साक्षात्कार लेता तो स्वयं के और उनके प्रति अन्याय करता। अत: मैंने उनसे क्ष्मा मॉगी, और अनुरोध किया कि वे साक्षात्कार के लिए फिर कभी समय दे।

साक्षात्कार के लिए मै अनुकूल वातावरण बनाना भी जरूरी समझता हूँ। एक सम्पूर्ण साक्षात्कार के लिए यह भी जरूरी है कि साक्षात्कार देनेवाले को अलग-अलग स्थितियो मे रखकर उससे बातचीत की जाए। उदाहरण के लिए मैंने प्रसिद्ध साहित्यकार विष्णु प्रभाकर को अलग-अलग स्थितियों में रखकर उनका साक्षात्कार लिया। 'आत्म-तर्पण, आत्म-पाखंड भी है' साक्षात्कार में मैंने प्रभाकरजी के दो अलग-अलग मूडों को 'कैप्चर' करने की कोशिश की है। इस साक्षात्कार का एक हिस्सा उनके घर पर पूरा किया गया, और दूसरा शाम को कनाट प्लेस स्थित कॉफी हाउस में। वे रोज सुबह कुछ घंटे लेखन करते हैं, इसलिए उनके अजमेरी गेट स्थित घर में मै उनसे सर्जन के क्षणों के बीच बातचीत करना चाहता था। उनका कॉफी हाउस के साथ दशकों पुराना याराना है, मै चाहता था कि संदर्भित साक्षात्कार मे उनकी इस 'यारी' को भी समेटा जाए, और लगे हाथ दिल्ली के बदलते स्वरूप पर भी चर्चा कर ली जाए। इसके लिए जरूरी था कि मैं उनके साथ कॉफी हाउस के माहौल में भी बात करता। अत. मैंने उनसे अनुरोध किया कि साक्षात्कार के शेष हिस्से के लिए कॉफीघर में कुछ वक्त बिताना जरूरी है। वे इसके लिए सहर्ष तैयार हो गए। दो-तीन दिन के बाद कॉफी-पियक्कडों के बीच उनसे बातचीत की गई। इस तरह एक संतोषजनक साक्षात्कार तैयार हो गया।

देवीलाल के साथ काफी रोचक अनुभव हुआ। वे मस्तमौला और मूडी किस्म के नेता हैं, बड़ी मुश्किल से समय देते हैं, और देते हैं तो खूब देते हैं। ऐसा ही मेरे साथ हुआ; तीन-चार बार अनुरोध करने के बाद उन्होंने साक्षात्कार के लिए

समय दे दिया। चूँकि वे किसान भी हैं, इसलिए समय उनके अनुसार चलता है। उन्होंने सबह-सुबह बुला लिया। लॉन में चारपाई लगा दी गई; चाय की जगह छाछ का गिलास हाथ में थमा दिया गया। चारपाई के पास ही गाय-भैंसें रँभाती रहीं। देवीलाल उर्फ ताऊ ने बेतकल्लुफी से कहा : "हाँ तो भाई, शुरू होजा।" उनके स्वर में खुरदरापन जरूर था, लेकिन आत्मीयता की भी अनुभूति हो रही थी। करीब तीन घंटे तक टेप-रिकार्डर चलता रहा। चूँकि ताऊ वृद्ध हैं इसलिए उनके स्मृति-दोष के प्रति काफी चौकस रहना पड़ा। वे तीन घंटे के साक्षात्कार में घटनाओं को दोहराते रहे, और स्वयं की बात काटते भी रहे; इसलिए 'ताऊ बोल्या' साक्षात्कार को लिखते समय काफी कठिनाई हुई। ऐसी स्थिति में भेंटकर्ता को चाहिए कि वह तथ्यों एवं घटनाओं की इतिहास से पुष्टि कर ले।

संत भिंडरॉवाले के साथ मुझे भय एवं हर्षमिश्रित अनुभव हुआ। मैंने उनका साक्षात्कार तब लिया था जब उनकी लोकप्रियता शिखर पर थी, और पंजाब आतंकवादी गतिविधियों की गिरफ्त में आ चुका था, सरकार और पुलिस संतजी से थर्राती थीं। वे अमृतसर स्थित स्वर्णमदिर परिसर के नानक निवास में अपना डेरा जमाये हुए थे। कुछ सम्पर्कों के माध्यम से मैं नानक-निवास पहुँचा। चारों ओर हथियारबंद मरजीवडे तैनात थे, तनिक से सन्देह पर वे किसी का भी जीवन ले सकते थे। पत्रकार उनसे भयभीत या आतंकित नहीं थे, लेकिन वे सुरक्षित भी महसूस नहीं करते थे; संतजी से मिलते समय मन में भय जरूर बैठा रहता था। सुरक्षा-असुरक्षा के भावों के बीच मैंने उनका साक्षात्कार लेने का फैसला किया।

संतजी पढे-लिखे बिल्कुल नही थे; ठेठ पंजाबी बोलते थे। मेरे जैसे महानगरीय पत्रकार के लिए उनका उच्चारण समझ पाना कठिन था; अत: एक स्थानीय सम्पर्क के माध्यम से उनके साथ संवाद शुरू हुआ। जब तक साक्षात्कार चलता रहा, तब तक मैं उनके हथियारबंद अनुयायियों से घिरा रहा, उनकी निगाहें मुझ पर गडी रहीं। साक्षात्कार "सभी अपने-अपने धर्म को पाले" के अन्त में भिंडरॉवाले ने पूछा भी है कि क्या मुझे उनसे भय नहीं लगता ? मैंने उनके प्रश्न का उत्तर नकारात्मक दिया है। मैंने उनसे कहा है कि मैं भी एक शक्तिशाली विचारधारा के हथियार से लैस हूँ; यह विचारधारा मुझे 'भयमुक्त' रखती है। लेकिन सच कहूँ, दिमाग के किसी कोने पर भय दस्तक जरूर दे रहा था, यह अलग बात है कि संतजी से मुक्त होकर मैं एक घंटा और नानक निवास में रहा। वहॉं संतजी के एक प्रसिद्ध जुझारू अनुयायी एवं पूर्व नक्सलवादी नेता हरमिंदर संधू से मुलाक़ात हुई। स्वयं संधू ने अपने कमरे में बैठाकर भिंडराँवाले के आन्दोलन के संबंध में विस्तार से चर्चा की। उन्होंने

उस समय कहा था कि मैं इस आन्दोलन को धार्मिक नहीं बनने दूँगा; इसे धीरे-धीरे वर्ग-संघर्ष के रास्ते पर ले जाऊँगा।

लेकिन, जब भेंटकर्ता ऐसी संवेदनशील स्थिति में फॅस जाए, तब उसे बेहद सावधानी से काम लेना चाहिए; कोई ऐसी बात कहने या प्रश्न करने से बचना चाहिए जिसमें भडकाने या कपट की 'बू' आती हो। दूसरे शब्दों मे, भेंटकर्ता के प्रश्न 'स्पष्ट एवं निर्मल' होने चाहिए, वे किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं प्रतीत होने चाहिए, ऐसा प्रतीत होते ही भेंटकर्ता को 'सन्देह के घेरे' में खडा कर दिया जाएगा।

अर्जुन सिंह के मामले में मुझे कई प्रकार के अनुभव हुए। प्रस्तुत पुस्तक में उनके पॉच चुनिदा साक्षात्कार शामिल किए गए हैं। ये साक्षात्कार राजभवन, कार और विमान-यात्राओ में लिए गए हैं। एक साक्षात्कार में वे पंजाब के राज्यपाल हैं, दूसरे में कांग्रेस पार्टी के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष और तीसरे साक्षात्कार अर्थात "सत्ता-सघर्ष ही आखिरी क्षितिज नही है अर्जुन सिंह" के दौरान उनका रोल ही बदल जाता है। जब यह साक्षात्कार आरम्भ किया था तब वे राजीव गॉधी-सरकार मे संचार मत्री थे। लेकिन साक्षात्कार का अंतिम चरण लिखते-लिखते वे अचानक मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्री बना दिए गए। चूँकि यह साक्षात्कार मूलत वैचारिक है, और दुनिया का राजनीतिक एवं वैचारिक फलक सामने रखकर उन्होने अपनी बात कही है, इसलिए इसे पूरा करने में समय लगा साक्षात्कार एक 'सिटिग' मे नहीं, कई किश्तों में पूरा किया गया; उनके साथ कई दफे बैठना पडा। अर्जुन सिंह ने साक्षात्कार के आरम्भ में ही कह दिया था कि वे पूरे सोच-विचार के साथ प्रश्नो का जवाब देना चाहते हैं, अत: इसमें समय लग सकता है। वे यह भी चाहते थे कि प्रत्येक प्रश्न-उत्तर किश्त की 'ट्रासक्राइब्ड कापी' उन्हें दिखाई जाए जिससे कि वे उसमें संशोधन कर सकें। इस प्रक्रिया मे डेढ-दो महीने लग गए और इस अवधि में उनका राजनीतिक रोल ही बदल दिया गया, उन्हें दिल्ली से उठाकर भोपाल फेंक दिया गया।

इस तरह के लम्बे खिंचनेवाले साक्षात्कार मे भेंटकर्ता को कई तरह की दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। सर्वप्रथम तो उसे स्वयं के मूड और थीम-आधारित प्रश्नों की तारतम्यता बनाए रखनी पड़ती है। विशिष्ट व्यक्तियों की अपनी सनकें होती हैं, इसलिए कभी-कभी भेंटकर्ता को तदनुसार स्वयं को 'एडजस्ट व रीएडजस्ट' करना पडता है; यह बेहद पीड़ादायक प्रक्रिया होती है। यद्यपि अर्जुन सिंह तुनकमिजाज नेता नहीं हैं, वे बेहद व्यवस्थित और एक 'रिद्‌ममयी साक्षात्कार' देनेवाले नेता हैं। लेकिन वे स्वभाव से अल्पभाषी हैं;

*उनके वाक्य 'टेलीग्राफिक शैली' के होते हैं; कभी-कभी वे द्वयर्थी होते हैं। ऐसी* स्थितियों में भेंटकर्ता को सावधानी से काम लेना होता है।

अर्जुन सिंह के एक साक्षात्कार ने तो काफी गुल खिलाया। उन्होंने मुझे 1986 में एक साक्षात्कार "चुनौतियों से चुनौतियों तक" दिया था। इस साक्षात्कार का एक वाक्य उनके लिए जोखिमभरा सिद्ध हुआ। तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के समक्ष उनकी पेशी हो गई। हुआ यह कि कांग्रेस अध्यक्ष एवं प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने उन्हें कांग्रेस का राष्ट्रीय उपाध्यक्ष नियुक्त किया था। उपाध्यक्ष पद का कार्यभार सम्हालने के तुरन्त बाद उन्हें कलकत्ता-यात्रा पर जाना पड़ा। उन्होंने मुझे कलकत्ता की विमान-यात्रा में यह विवादास्पद साक्षात्कार दिया। इस साक्षात्कार के आरम्भ में उन्होंने कहा था : "मैंने लिखा था कि पंडितजी, मैंने फैसला किया है कि जनसेवा के माध्यम से अपने भाग्य से प्रतिशोध लूँ, व्यक्ति से नहीं ... ।" उनके इस 'प्रतिशोध' शब्द ने कांग्रेस क्षेत्रों में राजनीतिक विवाद खड़ा कर दिया। उनके विरोधियो ने इस वाक्य को भ्रष्ट करके इसके कई अर्थ निकाल डाले। उनके दिल्ली तथा भोपाल स्थित राजनीतिक विरोधियों ने प्रचारित किया कि अर्जुन सिंह ने कहा है : "नेहरू परिवार से प्रतिशोध लूँ ... " उन्हें कई जगह इसकी सफाई देनी पड़ी, 'भाग्य से प्रतिशोध लूँ' वाक्य का मर्म समझाना पड़ा। कुछ लोगों ने अर्जुन सिंह को यह सुझाव भी दिया कि वे इस वाक्य का खण्डन जारी कर दें। उन्होंने मुझसे कहा भी कि इस तरह के सुझाव दिये जा रहे हैं। मैंने उनसे पूछा : "आपने क्या सोचा है ? आप चाहें तो खण्डन जारी कर सकते हैं। लेकिन आपने यह वाक्य कहा जरूर था।" उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा : " जोशीजी, खण्डन जारी करने का मेरा कोई विचार नहीं है। आपने जो लिखा है वह ठीक लिखा है। मैं स्थिति सम्हाल लूँगा।"

अर्जुन सिंह चाहते तो अपनी बात से मुकर सकते थे, क्योंकि विमान में ली गई भेंट-वार्ता रिकार्ड नहीं की गई थी, इसके सिर्फ नोट लिए गए थे; वे आसानी से भेंटकर्ता को चुनौती दे सकते थे, क्योंकि 1986 में राजीव गाँधी से सामना करने का अर्थ था राजनीतिक आत्महत्या के लिए तैयार होना। पर उन्होंने अपनी राजनीतिक स्थिति की सुरक्षा के खातिर इस भेंटकर्ता को परेशानी में नहीं डाला। यह मेरे लिए एक 'दुर्लभ अनुभव' था, क्योंकि आम राजनीतिज्ञ अपनी जान छुड़ाने के लिए आसानी से कह देता है कि यह 'फेक इन्टरव्यू' है, "मेरा इससे कोई वास्ता नहीं है।" इसलिए साक्षात्कार के दोनों छोरों के मध्य विश्वास होना जरूरी है।

कभी-कभी यह भी होता है कि संबंधित राजनीतिज्ञ या प्रशासक भेंटकर्ता को

विश्वास में लेकर कई प्रकार की संवेदनशील बातें कह जाता है, जिनका तत्काल प्रकाशन संबधित व्यक्ति और उद्देश्य के लिए घातक भी सिद्ध हो सकता है। इसलिए सवेदन-क्षेत्र मे प्रवेश करने से पहले भेंटकर्ता को चाहिए कि वह तत्काल प्रकाशन के मोह से बचे। पजाब के राज्यपाल के रूप में अर्जुन सिंह ने मुझे कई बार औपचारिक तथा अनौपचारिक साक्षात्कार दिए। ये साक्षात्कार पजाब के राजीव-लोगोवाल समझौते से पूर्व एवं बाद के कालो से सबंधित है। इन साक्षात्कारो के दौरान उन्होने मुझे कई प्रकार की सवेदनशील जानकारियाँ सकेतो मे दीं, लेकिन इस हिदायत और शर्त के साथ कि इन्हे सार्वजनिक नहीं किया जाएगा। मैने वचन का पालन किया। यदि कोई भेटकर्ता एक बार विश्वास भग कर देता है तो उसकी साख पर प्रश्न-चिह्न लग जाता है। यही बात साक्षात्कार देनेवाले व्यक्ति पर लागू होती है। राज्यपाल की भूमिका निभाते हुए अर्जुन सिह से लिए गए तीन चुनिदा साक्षात्कारों – 'घेराबंदी', 'घेराबदी से मुक्ति' और 'एक नाविक विश्वास'–को इस दायरे मे रखा जा सकता है।

विश्वास अर्जित करने के लिए मैं यह भी जरूरी समझता हूँ कि भेटकर्ता अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता स्पष्ट कर दे। वैसे इस सबध मे कोई 'हार्ड एण्ड फास्ट रूल' नहीं है, यह भेटकर्ता के मिजाज पर निर्भर करता है। लेकिन, मेरा निजी अनुभव रहा है कि जब भी मैने साक्षात्कार देनेवाले से अपनी वैचारिक स्थिति स्पष्ट की है, मुझे उससे अपेक्षित लाभ ही हुआ है, दोनो के बीच इस स्पष्टता ने एक विश्वास-सेतु की भूमिका निभाई है। इस सबध मे एक घटना का उल्लेख यहॉ प्रासगिक रहेगा।

भारतीय जनता पार्टी के तत्कालीन महासचिव एव विवादास्पद नेता गोविदाचार्य से एक बार मुठभेड हो गई। मै उनका एक बडा साक्षात्कार करना चाहता था, लेकिन साक्षात्कार से पहले उन्हे ठीक तरह से समझ लेना चाहता था। मैं यह भी चाहता था कि वे भी मुझे ठीक से जान ले। इसके लिए दो-तीन अनौपचारिक मुलाकाते कीं, उन्हे एक बार भोजन पर निमंत्रित किया। इन अनौपचारिक चर्चाओ मे हम दोनो को एक-दूसरे को समझने का मौका मिला। मैंने उन्हे अपनी वैचारिक पृष्ठभूमि से अवगत कराया। इससे उन्हे बेहद प्रसन्नता हुई और उन्होने कहा "मेरे छात्र-जीवन की भी यही वैचारिक पृष्ठभूमि रही है जो आज आपकी है।" हम दोनो के लिए यह एक सुखद संयोग था। इसके बाद 'मोहम्मदपथी हिन्दू और ईसापथी हिन्दू' साक्षात्कार लिया गया। इस साक्षात्कार मे उनके साथ कोई रियायत नही की गई है, बल्कि कई निर्मम सवाल किए गए है, उन्होने ईमानदारी के साथ जवाब भी दिए हैं। वैसे कुछ बाते उन्होने 'ऑफ दि रिकार्ड' भी कहीं, जिन्हें मैंने प्रकाशित नहीं किया

है। यदि मैं ऐसा करता तो दोनो के लिए असुविधाजनक स्थिति पैदा हो सकती थी।

प्रणव मुखर्जी और शरद यादव के साक्षात्कारो के मामले मे भी मैंने ऐसा ही किया, दोनो के साथ अनौपचारिक संवाद हुए। इस प्रक्रिया मे वैचारिक पृष्ठभूमि स्पष्ट हुई, और उनके सकोच भी सामने आए। पर विधिवत साक्षात्कार मे दोनो पक्षो ने साफगोई दिखाने मे कोई कोताही नहीं बरती।

मै यह भी मानता हूँ कि प्रत्येक मामले मे अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता स्पष्ट करना जरूरी नहीं है। कई नेताओ-मत्रियो के सामान्य ढग से साक्षात्कार लिए गए है, साक्षात्कार से पहले उनके साथ किसी प्रकार की वैचारिक चर्चा नहीं की गई, उन्हीं व्यक्तियो के साथ वैचारिक सवाद करना जरूरी समझा, जिनका अपना एक वैचारिक परिप्रेक्ष्य है। लेकिन, यह जरूरी नहीं है कि उनके विचारो से भेटकर्ता की सहमति भी रहे। और फिर, सहमति-असहमति की मुठभेडो से साक्षात्कार मे जीवन्तता पैदा हो जाती है। चन्द्रशेखर, डा ब्रह्मदेव शर्मा अर्जुन सिह, प्रणव मुखर्जी, शरद यादव, श्रीलता स्वामीनाथन, गोविदाचार्य विष्णु प्रभाकर कृष्णा अय्यर, पी एन भगवती, सत भिडरॉवाले जैसे व्यक्तियो के साक्षात्कारो को इस श्रेणी मे रखा जा सकता है।

साक्षात्कारो की इस शृखला मे ऐसे भी साक्षात्कार रखे गए है जो मूलत तथ्यात्मक एव सूचनात्मक है। इस श्रेणी मे हरिकिशनलाल भगत का साक्षात्कार 'जन सचार शैतान भी और देवता भी' तथा अजितकुमार पाजा का साक्षात्कार 'ऑखो मे झूलते बेशुमार स्वप्न' रखे जा सकते है। इस तरह के साक्षात्कारो का अपना एक महत्व है। ये मूलत घटना, सूचना और परिणाम एव प्रभाव-प्रधान होते हैं, इनकी प्रासगिकता तात्कालिकता से जुडी रहती है। दोनो तत्कालीन सूचना एव प्रसारण मत्रियो से उनके साक्षात्कार ऐसे दौर मे लिए गए थे जब देश मे टीवी के विस्तारीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हुई थी, और छोटे पर्दे पर रामायण महाभारत जैसे धार्मिक सीरियलो ने धूम मचा रखी थी, समाज के एक बडे वर्ग की चेतना को इन्होने झकझोर रखा था। अत मैने यह जरूरी समझा कि इन तत्कालीन मत्रियो के साथ मुठभेड की जाए और तथ्यो पर आधारित साक्षात्कार लिया जाए। ऐसा नहीं है कि इन साक्षात्कारो का कोई वैचारिक परिप्रेक्ष्य नहीं है, इनका अपना एक परिप्रेक्ष्य है, पर मूलत ये सूचना-प्रधान ही हैं।

इस श्रेणी का एक और साक्षात्कार उल्लेखनीय है–'आदिवासी कल्याण का सपना, सबका अपना-अपना' जो मूलत एक प्रयोगात्मक साक्षात्कार है, इसमे एक साथ मुख्यमत्री, सासद एव ग्रामीणो के साथ सवाद किया गया। यह सम्पूर्ण साक्षात्कार तथ्यो पर आधारित है, और आदिवासी-विकास की पृष्ठभूमि मे लिया

गया है। इसके पात्रों से अलग-अलग स्थानों पर संवाद किये गये हैं, लेकिन साक्षात्कार की पृष्ठभूमि एक ही है। इस साक्षात्कार को मैंने टीवी शैली में लिया है। सर्वप्रथम मैंने चुनिदा आदिवासी गाँवो का दौरा किया; आदिवासियों के साथ बात की, गॉवो के विकास के सबध मे जरूरी जानकारियाँ एकत्रित कीं। इसके बाद भोपाल लौटकर तत्कालीन मुख्यमत्री मोतीलाल वोरा का साक्षात्कार लिया, आदिवासी नेता अरविन्द नेताम और दिलीप सिह भूरिया के साथ भी चर्चा की, एकत्रित तथ्यो के आधार पर इन तीनो पक्षो के कथनो और स्वय के अनुभव को एक-दूसरे के सामने रखा और इस प्रकार चारो पक्षो ने मिलकर इस साक्षात्कार की रचना की। अत इसे एक बहुपक्षीय साक्षात्कार कहा जा सकता है। फिर भी मै इसे एक सफल प्रयोग नही मानता। यह और अच्छा बन सकता था लेकिन समयाभाव के कारण इसे झटपट और सक्षिप्त रूप मे तैयार करना पडा। नतीजतन यह सतोषजनक नहीं बन सका। इसे एक नमूने के रूप मे लिया जाना चाहिए।

इस अध्याय मे विद्याचरण शुक्ल के साथ हुई मुठभेड का भी उल्लेख जरूरी है, क्योकि उनके साक्षात्कार की बडी रोचक पृष्ठभूमि है। एक बार उन्होने अपने यहॉ पत्रकारो को बुलाया था। मै भी निमत्रित था। मैने उनकी खबर को रिपोर्ट करने के साथ-साथ उनके कक्ष का शब्द-चित्र भी लिख मारा। इससे वे कुछ उखड गए। उन्होने मुझे फोन दे मारा, अपनी शिकायत दर्ज कराई। अन्त मे तय हुआ "चलो एक अच्छी गपशप हो जाए।" बस ! हम दोनो उसी कक्ष मे साक्षात्कार के लिए बैठ गए जिसका मै शब्दो मे खाका उतार चुका था। इस साक्षात्कार की विशेषता इसका परिवेश-चित्रण है। यदि मै ऐसा नहीं करता तो शायद सन्दर्भित साक्षात्कार 'ढीली पकड और निस्तेज सवाद के बीच' इतना न उभरता। यह दो हिस्सो मे विभाजित है। पहले हिस्से मे पृष्ठभूमि एव परिवेश का चित्रण है, और दूसरे हिस्से मे सवाद है। कभी-कभी साक्षात्कार के लिए 'प्रोवोक' करना जरूरी हो जाता है। इसका उदाहरण है विद्याचरण शुक्ल का साक्षात्कार।

इस पुस्तक मे ऐसे भी साक्षात्कार है जिनमे भेटकर्ता को लगभग लुप्त रखा गया है, यद्यपि प्रश्नो के माध्यम से उत्तर उभारे गए है। ऐसे साक्षात्कारो को आलेख-शैली मे लिखा गया है। इस श्रेणी मे डा शकरदयाल शर्मा, आर के करजिया पी एन भगवती, डा देवेन्द्र कौशिक के साक्षात्कारो को रखा जा सकता है। ऐसा कभी-कभी व्यक्ति, विषय, स्थान और समय-सीमा को देखकर किया जाता है। कई साक्षात्कारो मे लम्बे-लम्बे उत्तर हैं, और प्रश्न नितान्त छोटे हैं। प्रश्नकर्ता ने जानबूझकर ऐसा किया है, क्योकि प्रश्नकर्ता उत्तर को

प्रमुखता देना चाहता था। संक्षेप में, भेंटकर्ता और सम्पादक को स्वयं यह तय करना पड़ता है कि उत्तर और प्रश्न के बीच कितना संतुलन रखा जाए। कई दफा ऐसा भी होता है जब प्रश्न महत्वपूर्ण होता है, लेकिन उसका उत्तर बहुत ही लचर रहता है। कभी-कभी साक्षात्कार देनेवाला व्यक्ति विवादास्पद प्रश्नों से कन्नी भी काट जाता है; वह सांकेतिक उत्तर या चुप्पी से काम चलाता है। अत: काफी कुछ भेंटकर्ता पर निर्भर करता है कि वह किस ढंग से सामनेवाले व्यक्ति से उत्तर उगलवाता है। इसमें कभी सफलता भी मिलती है, और कभी असफलता भी। कुल मिलाकर साक्षात्कार एक 'परस्पर उत्तेजक प्रक्रिया' है।

## आकस्मिक साक्षात्कार, रिपोर्ताज और शब्दचित्रात्मक टिप्पणियाँ

पुस्तक का अंतिम भाग विविधापूर्ण है। इसमें रिपोर्ताज है; चलते-फिरते या समाचार-साक्षात्कार हैं; शब्द-चित्रात्मक टिप्पणियॉ हैं; शब्दचित्र हैं; यादें है; यादों के सहारे उभरे आकार हैं। कुल मिलाकर इसे एक 'कॅलाइडस्कोप' भी कहा जा सकता है।

वैसे संकीर्ण विधा-विधान की दृष्टि से इस भाग की रचनाओं को गैर-साक्षात्कार विधाओं के साथ रखा जा सकता है, यह कहा जा सकता है कि इनका साक्षात्कार विधा से कोई संबंध नहीं है। लेकिन मैं साक्षात्कार को व्यापकता में देखता हूँ; उसे औपचारिक प्रश्न-उत्तर के साँचे में नहीं ढालता। वस्तुत: पत्रकारिता में साक्षात्कार कई रूपों में प्रतिबिम्बित होता है। संदर्भित रचनाओं में भी साक्षात्कार के विभिन्न 'शेड' मौजूद हैं। रिपोर्ताज में इसका आकस्मिक या बेहद अनौपचारिक शेड दिखाई देगा, जबकि कुछ में इसका खबर-शेड उभरता हुआ मिलेगा; कहीं यह सूक्ष्म रूप में दिखाई देगा, क्योंकि जब भी किसी घटना के पात्रों में मुठभेड़ होगी, संवाद का संचार हुए बिना नहीं रहेगा। रिपोर्ताज, फीचर, निबंध और शब्द-चित्रों में समाहित रहते हैं ये सूक्ष्म शेड, साक्षात्कार के। उदाहरण के लिए, इस पुस्तक का प्रथम अध्याय ही एक गैर-पारम्परिक साक्षात्कारीय शैली में लिखा गया है। आरम्भिक अध्याय—रूबरू : अवाम और प्रधानमंत्री — में आरम्भ से अन्त तक संवाद है; प्रधानमंत्री और अवाम के बीच संवाद होता रहता है; प्रश्न-उत्तर की प्रक्रिया चलती रहती है। कड़े अनुशासन की दृष्टि से देखें तो इसे साक्षात्कार की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। लेकिन, मैंने शास्त्रीय अनुशासन को लाँघकर इस तरह के साक्षात्कारों को प्रस्तुत पुस्तक में शामिल करने की जोखिम ली है। शुरू में यह योजना थी

कि इस अध्याय को दूसरे भाग का प्रारम्भिक अध्याय बनाऊँ; थीम की तारतम्यता की दृष्टि से यह ठीक रहता, यह कॅलाइडस्कोप मे फब सकता था, पर बाद मे यह विचार त्याग दिया। मै पुस्तक की शुरूआत अनुशासित तरीके से नहीं करना चाहता था। मै चाहता था कि पाठक एक शॉक के साथ साक्षात्कारो की यात्रा शुरू करे। अत थीम का अनुशासन तोडकर इस अध्याय को दूसरे भाग से निकालकर पहले भाग के प्रथम अध्याय के रूप मे रखा। एक प्रकार से इस अध्याय मे 'इन्टर-डिसिप्लिनरि एप्रोच' से काम लिया गया है। इसमे यह लेखक प्रश्नकर्ता कहीं नही है लेकिन साक्षात्कार के सभी तत्व इसमे मौजूद है। यह भी कहा जा सकता है कि जनता ने प्रधानमत्री का साक्षात्कार लिया, साथ ही, सूत्रधार की शैली भी इसमे है।

दूसरे भाग के प्रथम अध्याय –'देखी जमाने की यारी' मे पहले भाग के प्रथम अध्याय की थीम दूसरे रूप मे जारी रखी गई है। 'देखी जमाने की यारी' में कथात्मक शैली है, फ्लैशबैक है, सवाद है शब्दचित्र है, टिप्पणियॉ है, एक तरह से यह कई विधाओ का 'कोलाज' है। जब यह प्रकाशित हुआ तो इसे पाठको से अच्छा-खासा रेसपॉन्स मिला था। इसके अगले अध्याय 'जयचन्द और मीरजाफरो की सियासत मे एक पारदर्शी आदमी' मे भी कमोबेश यही ॲप्रोच अपनाई गई है, इसमे एक सक्षिप्त सामाचार-साक्षात्कार भी है।

इन दोनो अध्यायो के बाद के चार अध्याय लगभग समान थीम एव शैली के हैं। लेकिन इनके विषय, पात्र और स्थान अलग-अलग है। 'राजनीतिक पक्षाघात से जूझते चरण सिह' 'राजीव को गप्पियो के क्रमाक' 'बॉह पर ताबीज बॉधे कम्प्यूटरवाले गए विदेश' और 'कोई हारा कोई जीता, दिल्ली के दिल पर यह बीता' घटना-प्रधान एव विवरणात्मक टिप्पणियॉ है। इन चारो मे से शुरू की तीन रचनाऍ नवे दशक की है जबकि अतिम रचना 1971 की है। लेकिन चारो के पात्र राजनीतिज्ञ है और इन चारो मे चलते-फिरते साक्षात्कार हैं। इनमे नेता भी है और सामान्य जन भी। चारो अध्यायो का मूल स्वर व्यग्य है, जिसे 'रनिग कॅमेट्रि' के जरिये उभारा गया है।

उपरोक्त चार अध्यायो के बाद के ज्यादातर अध्याय रिपोर्ताज शैली मे लिखे गए है। इसमे दो रचनाऍ आठवे दशक की है। अगस्त 1970 मे मैने अजमेर में ख्वाजा साहब का 757वॉ वार्षिक उर्स कवर किया था। *दिनमान* के तत्कालीन सपादक स्व रघुवीर सहायजी ने मुझे हिदायत दी थी कि उर्स का कवरेज सिर्फ न्यूज-रिपोर्ट नहीं होनी चाहिए बल्कि उसमे समाज, लोग, उनकी जिन्दगी, उनका सघर्ष–सक्षेप मे, उनका समूचा ससार बोलना चाहिए। आज इसे लिखे करीब 25 बरस बीत चुके है, लेकिन, लगता है मैं इससे आगे नहीं बढ सका

हूँ। यह मुझे अपने जीवन का बहुत प्यारा 'पीस' लगता है। दरअसल, यह मेरा पहला हस्तक्षेप था सार्थक पत्रकारिता के क्षेत्र मे।

*दिनमान* के लिए ही मैने रेगिस्तान के अकाल का सर्वेक्षण किया। यह किस्सा भी उसी वर्ष का है। इसमे यह लेखक सामान्य जन से मुखातिब है। यह मेरे जीवन की पहली बडी सर्वे-रपट थी इसमे जहॉ अकाल का प्रभाव दिखाने की कोशिश की गई है वही रेगिस्तानी दुनिया के लोकदेव बाबा रामदेव और उनके मेले को भी कवर किया गया है। अजमेर के उर्स और रामदेव के मेले की आत्मा एक है, दोनो ही भारत की साझी सास्कृतिक विरासत के जानदार प्रतीक है, रिपोर्ताज शैली मे लिखे गए इस अध्याय मे यह पक्ष उभारा गया है। इसके लिए जरूरी था कि आकस्मिक जन-साक्षात्कार की पद्धति अपनाई जाए और यह प्रयोग अच्छा रहा।

आगे के शेष अध्याय पजाब और असम परिदृश्य से सबधित है। इन दोनो राज्यो के त्रासदीग्रस्त परिदृश्य पर ये रिपोर्ताज अलग-अलग समय पर लिखे गए थे। 1983 के असम-आन्दोलन और नेल्ली-नरसहार के 'कवरेज' के दौरान कई प्रकार की अनुभूतियॉ हुई मानवता की त्रासदी को समीप से देखा, समाज के साथ खिलवाड करती विभिन्न शक्तियो को देखा, राजसत्ता की जडता देखी, सम्वेदना से रिक्त इसान देखा घटना-स्थल की यात्रा करते समय भूमिगत आन्दोलन के नेताओ से सामना हुआ। मैने इन सबको समेटा है 'असम आन्दोलन ताम्बूल के वनो मे मौत की फसल' शीर्षक लम्बे रिपोर्ताज मे। तत्कालीन भूमिगत नेताओ—प्रफुल्ल कुमार महत और नूरूल हुसैन के साक्षात्कारो पर आधारित एक अध्याय अलग से शामिल किया गया है। इस अध्याय मे आठवे दशक के असम-आन्दोलन और हिन्दू-मुसलमानो के अन्तर्सबधो मे झॉकने का प्रयास है।

पजाब-परिदृश्य पर लिखे गए रिपोर्ताजो मे 10-11 वर्ष के काल-कैनवास को समेटा गया है। इस अवधि मे मैने बहु-आयामी त्रासदी से ग्रस्त पजाब की अनेक यात्राएँ कीं, कई खबरे भेजीं, कई रिपोर्ताज लिखे। प्रस्तुत पुस्तक मे सात चुनिदा रिपोर्ताज शामिल किए गए हैं। ये 1984 से आरभ होते हैं, और 1994 तक समाप्त होते है। पजाब की रिपोर्ताज-श्रृखला की शुरूआत उत्तर-त्रासदी परिदृश्य से होती है, और समाप्ति 'त्रासदियो का पटाक्षेप आगाज एक नई सुबह की' रिपोर्ताज पर होती है। ये तमाम रिपोर्ताज त्वरित जन-साक्षात्कारो पर आधारित हैं। कुछ नेताओ के औपचारिक साक्षात्कार भी शामिल किए गए है। पर मेरा यह मानना है कि त्वरित एव अनौपचारिक सक्षिप्त साक्षात्कारो के बिना एक अच्छा रिपोर्ताज नहीं लिखा जा सकता। रिपोर्ताज को मैं केवल

घटनाओं तथा चीजो के यथावत चित्रण के रूप में नहीं देखता। इसे 'जीवन्त एव प्रामाणिक' बनाने के लिए यह भी जरूरी है कि घटना से जुडे लोगों के विचारो को जाना जाए त्रासदी का उनके जीवन पर क्या प्रभाव पडा ? उन्होने त्रासदी को कैसे झेला ? या उन्होने किसी खास स्थिति मे कैसे रिएक्ट किया ? इसके लिए त्वरित, अलिखित, अनौपचारिक और सक्षिप्त शैली के साक्षात्कार उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। अत मैने अपने रिपोर्ताजो मे इस शैली के साक्षात्कारो का खूब प्रयोग किया है। साक्षात्कार-यात्रा मे पाठक इस शैली की सार्थकता अनुभव करेगे।

और अन्त मे –

प्रस्तुत पुस्तक के साक्षात्कार तथा रिपोर्ताज सिर्फ शौक या व्यावसायिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए नही लिखे गए है, बल्कि मेरा यह प्रयास भी रहा है कि ये रचनाएँ सदर्भित काल के दस्तावेज बने। साक्षात्कार एक अक्षर-आईना होता है व्यक्ति का, और समाज के प्रति उसके सरोकारो का। किस तरह की घटनाएँ पैदा करते है समाज व सत्ता के नियता घटनाओ के प्रति वे किस प्रकार 'रिएक्ट' करते है, इस सम्पूर्ण प्रक्रिया का गवाह साक्षात्कार है। अत इन साक्षात्कारो के कठघरे मे लोग भी है, नियता भी है, और स्थितियाँ भी है। बस ! कठघरे की जिरह से कही हरकत हो जाए लेखक के लिए यह काफी है।

*105, समाचार एपार्टमेन्ट्स*
*मयूर विहार, फेज-एक,*
*दिल्ली–110091*

**रामशरण जोशी**

# कठघरे में

# रूबरू : अवाम और प्रधानमंत्री

काल कैसा भी रहे, शासक और शासित के मध्य सवाद-स्थिति किसी भी समाज, किसी भी देश की गतिशीलता की बुनियादी शर्त है।

सवाद राजा व प्रजा और जनता व नेता के सबधो को एक आकार देता है। जीवत सवाद जीवत राष्ट्र की रचना करते है और आधे-अधूरे सवाद लुज-पुज राष्ट्र को जन्म देते है। इतिहास साक्षी है—परिवर्तन, बडे-बडे विप्लव सवाद की कोख से जन्मे है। समाज की नाडी पर अँगुली रखने का सिलसिला सामती काल मे भी था। मौर्य-साम्राज्य की सफलता का राज चाणक्य के नेतृत्व मे चन्द्रगुप्त और प्रजा के बीच सवाद व सबधो को गतिशील आकार देना था। अशोक ने इसे एक नया आयाम दिया। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, हर्षवर्धन, अकबर आदि सिहासन और प्रजा की सवाद-यात्रा के ऐतिहासिक पडाव है। रस्सी खिचती है, घटा बजता है, महलो मे कोलाहल होता है और एक अदना औरत जहाँगीर को हिलाकर रख देती है। मिसाल बनती है यह घटना एक सरोकार की तख्त और रियाया के बीच। जनता और नेता के बीच सवाद होता है समाज आदोलित होता है, राष्ट्र दहल उठते है क्रातियाँ आती है। अमेरिका फ्रास, रूस चीन, वियतनाम इतिहास को एक नया अर्थ देते हैं। आधी धोती, पतली लाठी और जीवत सवाद के साथ एक निर्बल काया सूर्यास्तरहित साम्राज्य को हिन्दुस्तान से उखाडकर फेक देती है। पर, जब सवादशून्यता होती है, इतिहास जोखिम भरा बन जाता है। दुर्घटनाएँ होती है। राजा परकोटो मे सिकुडना शुरू कर देता है। जनता के साथ रोगग्रस्त सवाद होने पर नेता को पलायनवादी प्रवृत्ति दबोच लेती है। लोक-साक्षात्कार का सुख नहीं, सगीनो के साये में रहना रास आने लगता है। टूटे सवाद और बीमार रिश्ते जन्म देते है—अराजकता, फासीवाद नस्लवाद, तानाशाही, आपातकाल और राज्य-आतंकवाद

*व प्रति-आतकवाद को। एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के कई देशों मे सवादहीनता का दौर आज भी मौजूद है।*

मगर जब एक स्वस्थ-निर्मल साक्षात्कार होता है, एक गुदगुदी जन और प्रतिनिधि मे अकुरित होने लगती है। दोनो परस्पर प्रतिबिम्बित दिखते है। दोनो का अस्तित्व एक दूसरे मे गुँथा हुआ। आकाक्षाओ का रेला उमडा होता है। जब प्रधानमत्री के निवासस्थान पर राजीव गाँधी और जनता का परस्पर साक्षात्कार देखता हूँ, इन विचारो की रेलमपेल मे स्वय को घिरा पाता हूँ।

लोकतत्र मे प्रधानमत्री का जनता से मिलना एक 'कृपा' नही, उत्तरदायित्व है, एक जरूरी 'कर्ज' है, जिसे जन-साक्षात्कार के जरिए अदा किया जाता है। जनता का प्रधानमत्री से मिलना एक कर्तव्य नही, बल्कि एक 'अपरिहार्य हक' है। इस कर्ज और हक का एक अद्‌भुत सगम सात रेसकोर्स मार्ग स्थित प्रधानमत्री निवास पर देखने को मिला। समाज के सभी वर्गो, सपन्न व विपन्न वचक व वचित, नेता व अभिनेता, बुद्धिजीवी व निरक्षर, अभिजात व सामान्य अधिकारी व व्यापारी, साधु-सन्यासी व भक्तगण, शिक्षक व छात्र, सवर्ण व असवर्ण के प्रतिनिधि अपनी-अपनी मडलियो मे मौजूद थे। सभव है, यह जमावट विचित्र विरोधाभास पूर्ण दृश्य रेखाकित करे। परन्तु, दूब के मखमली ऑगन मे सभी वर्गो की एक ही तान थी-अपने जनप्रतिनिधि राजीव गॉधी के दर्शन और उनके साथ सवाद।

प्रधानमत्री के आने से पहले अधिकाश के हाथो मे अर्जियॉ है। हर किसी के हाथ मे पुस्तक, हार, दुशाले, प्रमाण-पत्र, अदालती फैसले की प्रति, व्यक्ति बॉयोडॉटा, ज्ञापन मुख्यमत्रियो, मत्रियो, प्रदेशाध्यक्षो आदि के खिलाफ शिकायती पर्चियॉ, निमत्रणपत्र और न जाने क्या-क्या चीजे है। अभी प्रधानमत्री के आने मे कुछ मिनटो की देरी है। क्यूँ न परिचय ले लिया जाए। सबसे आगे दो-तीन श्वेताम्बर मुनियो की टोली है। फिर इसके बाद उत्तरप्रदेश के मुसलमान है। कुछ ईसाई है। असतुष्ट काग्रेसी हैं। बिहार सेवादल की महिला सदस्याएँ है। यह लीजिए, प्रधानमत्री आ रहे है। बिल्कुल श्वेत वस्त्रो में। साथ मे है उनके सतीश शर्मा, जे के जैन, जनार्दन द्विवेदी, मणिशकर अय्यर, और कुछ अधिकारी। जाहिर है वे पहली मडली के पास पहुँच रहे है। सवाद आरम्भ

श्वेताम्बर प्रतिनिधि अभिवादन करते है। करीब सत्तर साला मुनि उन्हे एक प्रति विमोचन के लिए देते है। प्रधानमत्री विमोचन करते है।

**मुनि** . आपको मै यह प्रति भेट करूँगा। आपने मेरे हिन्दी आदोलन की पुस्तक का विमोचन किया था। जे के जैन (पूर्व सासद) साथ मे थे।

**प्रधानमत्री** : हॉ-हॉ याद आया।

**मुनि** : मैं इंदिराजी से भी मिल चुका हूँ।

*(मुनिजी राजीवजी को एक कोने मे ले जाते है। कुछ मिनट गुफ्तगू करते हैं। सुनाई नहीं देता। कुछ क्षण पश्चात मुनिजी ऊँची आवाज मे कहने लगते हैं)* आपके और हमारे बीच उन्होने गलतफहमी पैदा कर दी थी। अब दूर हो गई है। हम तो प नेहरू से अब तक आपके साथ है। *(मुनिजी नेहरू के साथ खिचे अपने चित्र दिखाते है। प्रधानमत्री देख रहे है।)* इदिराजी भी हमे बहुत मानती थी। *(प्रधानमत्री के चेहरे पर मुस्कान बिखर जाती है और वे नमस्कार करते हुए आगे बढ जाते है)।*

कुछ दूरी पर एक ईसाई महिला नमस्कार करते हुए कहती हैं

**महिला** . प्रधानमत्रीजी, क्रिसमस की छुट्टी होनी चाहिए।

**प्रधानमंत्री** · धर्म के मामले मे एक कमेटी बैठती है, वही तय करती है।

**महिला** : न्यू इयर डे (वर्ष के पहले दिन) की छुट्टी नही होती है। दुनिया मे होती है।

**प्रधानमंत्री** दुनिया मे कही नही होती। इग्लैड मे भी नहीं होती। अमेरिका मे भी नहीं होती। कहीं नही होती।

*(महिला यह सुनकर खामोश हो जाती है। फिर साहस बटोरकर कहती है।)*

**महिला** . अच्छा, दूसरी बात यह है कि यू पी साइड मे क्रिश्चियस की कोई आवाज नही है। इस ओर कुछ ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि उन्हे भी कुछ मिले।

**प्रधानमंत्री** · देख लेगे

*(इसी बीच एक मुस्लिम हस्तक्षेप करते हुए)*

**एक** . साहब उर्दू के बारे मे भी सोच लीजिए। देख लीजिए, दूसरी भाषा के रूप मे। हम लोगो को 'मामडन' आबादी के बीच मे जाना पडता है और वे पूछते हैं।

**प्रधानमंत्री** : ठीक है, मै ध्यान रखूँगा।

**दूसरा** : पीएसी (उत्तरप्रदेश की सशस्त्र पुलिस) बदनाम हो चुकी है। इसमें हर कम्युनिटी का आदमी रखा जाए।

**प्रधानमंत्री** . अन्दर से तो हमने काफी बदल दिया है।

**सभी** · कुछ और कर दीजिए।

**दूसरा** . इसका नाम भी बदल दीजिए। इसके नाम से ही हम भयभीत हो गए हैं।

**प्रधानमंत्री** : इसको हम देख लेगे।

**तीसरा** : माइनरटीज (अल्पसंख्यक) कांग्रेस से बहुत दूर चले गए हैं। कुछ करिए ना.

प्रधानमंत्री हँसते हुए आगे बढ रहे हैं। अब उद्योगपतियों की मंडली के सामने ठहर गए हैं। मंडली के सदस्य उन्हें एक ज्ञापन देते हैं। राजीव गाँधी तुरन्त हिदायत देते हैं-इन लोगो की मनटेकसिंह (आर्थिक सलाहकार) से मुलाकात करा दीजिए।

हिदायत देकर प्रधानमंत्री आगे बढ रहे हैं। सहारनपुर के वृद्ध सज्जन आगे आकर उन्हें इलायची पेश करते हैं। वे चट से खाना शुरू कर देते हैं। अब अरुणाचल के कार्यकर्ताओं की टोली के सामने हैं। ये सभी असंतुष्ट हैं। शिकायतें सामने रखते हैं (हिन्दी में संवाद)

**एक युवक** : वास्तव में हम लोगो को असतुष्ट के रूप में देखा जाता है। हमारी बात भी सुनी जानी चाहिए। हम आलाकमान के फैसले को मंजूर करेंगे। पर बात हमारी सुनी जाए।

**एक युवती** : हमारे नेता हमसे मिलते नहीं हैं। टाइम नही देते हैं। मुख्यमंत्री और पी.सी.सी प्रेसीडेट अपने घरों में बैठते हैं।

**प्रधानमंत्री** : मुझे बात बताओ, क्या है?

**युवती** : ऊपर आपका काग्रेस मंत्री मिनिस्टर ठीक चल जाएगा। पर नीचे हालत बहुत खराब है। आब्जर्वर ठीक नहीं है। एक सस्पेंड एम एल.ए. को मिनिस्टर बनाया गया है। नए मंत्रियों में हमारे किसी आदमी को नहीं लिया गया है।

**प्रधानमंत्री** : ठीक है, मैं ध्यान रखता हूँ।

**युवती** : आप लोग को हम लोग कम्प्लैन (शिकायत) करने आया है, ऐसा मत सोचिए।

**प्रधानमंत्री** : तकल्लुफ मत करो, आया करो।

**युवक** : हमको गाली दी जाती है कि आप लोगों को पार्टी से निकाला जाएगा।

**युवती** : हम आपसे मिला है, सफाई माँगी जाएगी।

राजीव गाँधी हँस देते है। इसके साथ आगे बढ़ जाते हैं। अब वे अधिकारियों की एक टोली के सामने हैं। नेहरू शताब्दी वर्ष के कार्यक्रम पर चर्चा होती है। अधिकारीगण उन्हें बाल-अपराधियों की समस्या से अवगत कराते हैं।

**अधिकारी** : सर, बाल-कानून तो बन गया है, परन्तु उस पर अमल नहीं हो पा रहा है। राज्यों के पास ढाँचा नहीं है।

**प्रधानमंत्री** : राज्यों के पास पैसे नहीं हैं।

**अधिकारी** : इसमें कितने पैसे लगते हैं? बाल-न्यायालय बनाने होंगे ना?

**प्रधानमंत्री** : पर होस्टल तो बनाने होंगे ना। उसमें पैसा लगता है।

**अधिकारी** : बाल--श्रमिकों व अपराधियों का मामला है। बडा मामला है। कानून तो बन गया है, परन्तु अमल के स्तर पर स्थिति बहुत खराब है।

**प्रधानमंत्री** : ओके ओके.. *(खाँस उठते हैं)*

अब प्रधानमंत्री बिहार से आए कांग्रेस सेवादल की टोली से मुखातिब हैं–

**राँची की एक युवती** : *(बेधड़क तर्ज में)* हम आपसे मिलने के लिए जिन्दगी में पहली बार दिल्ली आई हुई हैं। 1980 से 85 के बीच में राँची में कांग्रेस की स्थिति बहुत ही मजबूत थी। हम इसमे सावधान/सक्रिय थे। वर्तमान अधिकारीगण, वे हम लोगों के साथ अपमानपूर्ण व्यवहार करते है। आपने, इंदिराजी ने हम लोगों को जो सम्मान दिया था, अब नहीं रहा। सब लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि में लगे हुए हैं। हम लोगों की संख्या 1200 थी। सही मार्गदर्शन नही मिलने के कारण कम हो रही है।

**प्रधानमंत्री** : अब बताएँ क्या चाहते हैं? अब क्या करना चाहिए? *(युवती उन्हें एक पुर्जा थमा देती है, कहती है, इसको पढ़ लीजिए।)* ठीक है।

**युवती** : सर सर एक बात और . सर, हम भाभीजी से मिलना चाहते हैं . सर, पहली बार आई हैं ..

**प्रधानमंत्री** : *(हँसते हैं)* वे मिलती तो हैं नहीं आप लोग.

**युवक** : सर, इनको मिला दीजिए *(एक साथ कई युवक-युवतियों की मनुहार)*।

**प्रधानमंत्री** : अच्छा, कोशिश करूँगा।

महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के असंतुष्ट शिकायत करते हैं। मध्यप्रदेश की एक महिला विधायक दस्तावेज के साथ सांसद सुभाष यादव के विरुद्ध शिकायत करती है। कहती है, जिलाध्यक्ष तंग हैं।

**प्रधानमंत्री** : मैं दिखाता हूँ अभी...

**युवती नेता** : हम कांग्रेसवाले कैसे जिन्दा रहेंगे?

**विधायिका** : भ्रष्टाचार के आरोप लग गए हैं। *(अखबार की कतरनों का बंडल थमा देती हैं। प्रधानमंत्री एक हाथ से लेकर दूसरे हाथ से, पास खड़े किसी सहायक को थमा देते हैं। विधायिका पथराई आँखों से देखती रह जाती हैं।)*

**अब वे दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों से मुखातिब हैं। कुछ छात्र माँग करते हैं कि उन्हें युवा कांग्रेस में काम करने का अवसर दिया जाए। कुछ बातचीत के बाद वे आगे बढ जाते हैं। एक वृद्ध उन्हें बुद्ध की प्रतिमा भेंट करते हैं। एक बूढ़ी औरत सामने आकर दरख्वास्त देती है।**

**वृद्धा** : हमारा पति काम करते रहत

**प्रधानमंत्री** : कौन गाँव मे !

**वृद्धा** : पी डब्ल्यू डी में काम करते रहत ना आर के पुरम। आठ साल काम किए। बस से टकराके खतम हो गई न बसवालो ने कुछ दिया और ना ही नौकरिया ही कुछ मिली। हमारे मरद की जगह दूसरे को लगाई दिया। लडका को भी कुछ नहीं दिया।

*(प्रधानमत्री गंभीरता से सुनते है। फिर उन्हे जे के जैन के पास भेज दिया जाता है)* देखो इन्हे कही लगा दो तुम्हारी दरख्वास्त मै देख लूँगा। अब तुम जैन साहब से बात करो।

प्रधानमत्री मध्यप्रदेश के एक दसवर्षीय बालक से मिलते है। पतला-दुबला पर बोलने मे होशियार। राजीव गाँधी के पास पहुँचते ही वह फटाफट बोलना शुरू कर देता है।

**बालक** · नमस्कार, श्रीमानजी। मैं नैनसिह बादामी। मै कविता रचता हूँ।

**प्रधानमत्री** तो एक सुनाओ।

**बालक** . *(भरे गले से)* श्रीमानजी, जब मेरे फादर ड्यूटी पर जाते है तो लेट हो जाते है और मै यह चाहता हूँ कि हम एक

**प्रधानमंत्री** : *(बीच मे काटते हुए)* लेट क्यों हो जाते हैं ?

**बालक** : मेरी माताजी गुजर चुकी हैं। मेरी माताजी जब गुजरी, तब मै दो साल का था। मेरी उमर अभी सात साल छह महीने है। *(ऑखों में ऑसू)* और श्रीमान, वे इसलिए लेट हो जाते है, क्योंकि वे हमारी रोटी बनाते है और स्कूल भेजते हैं। *(रोते हुए)*

**प्रधानमंत्री** : कहाँ काम करते हैं वो ?

**बालक** : श्रीमान, जिला धार में। *(रोते हुए)* मुझे बुखार आ रहा है *(प्रधानमंत्री फौरन बालक के माथे पर हाथ रखते हैं।)*

**प्रधानमंत्री** : दिखाओ। इसका माथा गरम है . बुखार क्यों आ रहा है ?

**बालक** : **क्या मालूम श्रीमानजी** ? *(रोने लगता है, हाथ में होती है नई दुनिया की प्रति। प्रधानमंत्री उससे अखबार लेते हैं और एक नजर डालते हैं ।)*

**प्रधानमंत्री** : जरा इनसे *(पास खड़े संयुक्त सचिव जनार्दन द्विवेदी की ओर संकेत करते हुए)* बात करो और डॉक्टर को दिखाओ।

द्विवेदी उसे बाहर ले जाते है। दवाई दिलवाई जाती है। परन्तु जाने से पहले बालक कहता है –

**बालक** : श्रीमानजी, मै चाहता हूँ कि एक खुद का कारखाना लेकर कुछ करूँ।

**प्रधानमंत्री** : कुछ मदद करेगे अभी तुम अपने को दिखाओ . *(लड़का चला जाता है।)*

**प्रधानमंत्री** : सात साल का है, कितना बोल्ड है लड़का।

दूब पर पसरे सफेदपोश दर्शनार्थियों के अंतिम छोर पर एक सूरदास युगल प्रधानमत्री से मिलने के लिए आतुर है। सही मायनों में वंचितों का प्रतिनिधि। ईश्वर की कृपा से वंचित और व्यवस्था से पिटा। गनीमत यह है कि पत्नी की गोद में सोते एक महीने के बच्चे को विरासत मे कोख से अंधत्व नहीं मिला है। परन्तु व्यवस्था द्वारा लादे गए कुपोषण का शिकार वह भी है। राजीव गॉधी उनके पास पहुॅच रहे हैं।

**पत्नी** : हम ब्लाइंड मैन हैं।

**प्रधानमत्री** : दोनों ?

**पत्नी** : हॉं। सर, यहॉ हमें पन्द्रह दिन हो गए हैं। आपसे मिल नहीं सके। रेलवे प्लेटफॉर्म पर पडे हैं। हमे दुकान चाहिए। कार्पोरेशन से दुकान मॉंगी थी, नहीं मिली।

**पति** : *(कुछ कागजात दिखाता है)* हमको किसी का सपोर्ट नही है, सर। घर रहने के लिए नहीं है, सर। बहुत प्राबलम है। धंधा करने के लिए पैसा नहीं है।

प्रधानमंत्री किसी फाल्गुनीराम यादव को बुलाते हैं और दोनों को उनसे बात करने के लिए कहते हैं।

डालियों पर चिडियॉ चहचहाने लगती हैं। प्रधानमंत्री जल्दी में दिखाई देने लगते हैं। परन्तु, मिलनेवालों का उतावलापन बढता ही रहता है। संगठन में पद पाने के लिए पर्चियॉ दी जाती हैं। कारखाना लगाने के लिए अमेठी के लोग गुहार लगाते हैं। और इस तरह से एक सुबह समाप्त होती है। प्रधानमंत्री फुर्ती के साथ लौट जाते हैं। शीला दीक्षित फाइल लेकर पहुॅच जाती हैं।

**जनता से रूबरू होने का यह सिलसिला प्रथम प्रधानमत्री जवाहरलाल नेहरू के जमाने से चला आ रहा है। वे तीनमूर्ति भवन मे रोज सुबह लोगो से मिला करते थे। तब भी इतनी ही भीड हुआ करती थी। सवादो का सिलसिला तब भी ऐसा ही चला करता था।**

तीन-तीन पीढियो की सुरक्षा मे तैनात रहनेवाले श्री दत्ता कहते है नेहरूजी के जमाने मे शरणार्थियो की भीड काफी हुआ करती थी। तीनमूर्ति के बाहर आए दिन प्रदर्शन हुआ करते थे। गरीब लोग तब भी आया करते थे। पडितजी को बच्चो के साथ चित्र खिचवाने मे काफी आनन्द आया करता था। पडितजी के साथ इदिराजी भी अक्सर लोगो से मिलने आया करती थी।

"उस समय सुरक्षा की कोई खास व्यवस्था नही हुआ करती थी। पडितजी को सुरक्षा के बदोबस्त से अक्सर चिढ हुआ करती थी। किसी प्रकार हम मना लिया करते थे। लोगो से मिलने मे इदिराजी काफी रुचि लेती थी। वे खुद लोगो की दरख्वास्ते सम्हालकर रखा करती थी। ऑफिस जाते समय उन्हे देखा करती थी। दौरे के समय मिलनेवाली दरख्वास्तो के बारे मे वे काफी चोकस रहा करती थीं। एक भी खो गई तो समझो आफत। लोगो से मिलने मे हम लोगो ने सुरक्षा के नाम पर रुकावट पैदा कर दी तो वे चिढ जाया करती थी। इस मामले मे नेहरूजी और इदिराजी हमेशा निर्देश देते थे कि लोगो से मिलने और सुबह के दर्शन मे कोई रुकावट पैदा न की जाए।

मे प्रधानमत्री पद से हटने के बाद भी इदिराजी से मिलनेवालो का तॉता लगा रहा करता था। जब वे दौरे पर जाती, तब भी पहले जैसा हाल था। तब उनसे मिलने जनता आया करती थी, नेता नही आते थे। जनता-शासन मे पश्चिम बगाल की कम्यूनिस्ट सरकार को छोडकर कही भी पूर्व प्रधानमत्री के नाते इदिराजी को पर्याप्त सुरक्षा व्यवस्था नही दी गई। आपात्काल मे प्रधानमत्री निवास पर सुरक्षा व्यवस्था बढा दी गई थी। जून 1984 की अमृतसर घटना के बाद कुछ और सख्ती की गई। परन्तु जनता-दर्शन निरतर चलता रहा और आज भी चल रहा है। प्रधानमत्री और जनता के बीच सीधा सबध रहे, इसका ध्यान राजीवजी भी रखते है। उन्हे भी सुरक्षाकर्मियो से चिढ होती है। मुझे अच्छी तरह याद है, 1981 मे जब उन्होने अमेठी से उपचुनाव लडा था तब सभी सुरक्षाकर्मियो को अस्वीकार कर दिया था। अधिकारियो ने कहा भी, आप सुरक्षा के साथ जाएँ, परन्तु राजीवजी ने कहा—इसकी कोई जरूरत नही है। बस, सुरक्षा के नाम पर बमुश्किल मै साथ गया।"

**चालीस सालो मे बहुत कुछ बदल गया। राजीवजी की इच्छाओ के विरुद्ध सुरक्षा इतजामो को कडा करना पडा है। इतिहास-चक्र की गति विलक्षण है। साक्षी है**

काल, जीवन और मृत्यु की एक झीनी पारदर्शी रेखा भी जनता तथा उस काया के बीच नहीं थी। एक निश्छल व निर्मल और सीधा सरोकार जनता के साथ रहे, इसलिए प्रार्थना-सभा में उसने उत्सर्ग को चुना था और राज्य-संगीनों के साए को अस्वीकार किया था। धर्मनिरपेक्षता पर तंग दिमागी का धब्बा न लगे, उत्सर्ग-महायात्रा के एक और सहयात्री ने अपने ही अगरक्षकों के हाथों उत्सर्ग का वरण किया था।

काल के महासागर मे कितना पानी बह चुका है। संगीनों के साए में निवास स्थान जिंदा है। जगह-जगह कडी सुरक्षा-जॉच के पश्चात दर्शनस्थल तक पहुँचा जा सकता है। पर प्रधानमंत्री सुरक्षा-परिधि को लॉघने की ताक में हमेशा रहते हैं। उनका यह उतावलापन दिल्ली-बाहर के दौरों में ज्वार बन जाता है। दौरे तमिलनाडु के हो या अमेठी के या कहीं और के, मचल उठते हैं वे लोगो से मिलने के लिए। लोग उन पर, और वे लोगों पर टूट पडते हैं। लोक-संवाद के लिए निरंतर सत्रह-अठारह घंटों की यात्राएँ, सफर में प्रधानमंत्री की दिनचर्या बन गई हैं। सवाद-यात्राओ के दौरान सबसे अधिक चिढ उन्हे सुरक्षा तथा अन्य तामझामों से होती है।

एक वाकया है। अमेठी यात्रा के दौरान रात को ग्यारह-बारह बजे सुनसान जंगल मे कारो का काफिला रुकवा दिया। न जाने क्या सनक सवार हुई, राजीव गॉधी पीछे आनेवाली एक कार मे टॉर्च मारकर झांकने लगे। टॉर्च की लाइट हमारे चेहरो पर पडी तो हैरत हुई, भारत का प्रधानमंत्री सामने खड़ा है। दरयाफ्त किया--राजीवजी, क्या हुआ ? आप इस प्रकार बगैर अगरक्षक के भटक रहे है?

**प्रधानमंत्री** : कारो ने परेशानी पैदा कर दी है। इतनी कारें साथ में चल रही हैं। कोई जरूरत नही है।

यह कहकर एक झटके के साथ आगे बढ़ गए। उनके अंगरक्षक पीछे छूट गए। बाद में पुलिसवालों ने बताया कि काफिले में सौ से अधिक कारें थी। अंत में, प्रधानमंत्री ने स्वय आदेश दिया कि बारह कारों से अधिक कारें साथ मे नहीं रहेंगी। यह वाकया एक बार नहीं, दो बार हुआ। अन्य यात्राओं में भी उनकी यह झुँझलाहट उबली। उनके एक सुरक्षा-अधिकारी का कहना था कि सोनियाजी बीच में न पडें तो प्रधानमंत्री सुरक्षा की धज्जियॉ उडा दें। जनता और उनके बीच कोई दीवार न रहे, वे यह चाहते है। इसीलिए न सुबह का दर्शन, जनता-दर्शन जैसे संबोधन बदलकर अब सुबह के साक्षात्कार को 'जनसंपर्क' नाम दिया गया है। जनसंपर्क या जन-संवाद को प्रधानमंत्री एक विशाल अनुभव के रूप में देखते हैं। उनके अनुभवों की स्लेट काफी साफ एवं खाली है, इसलिए उनकी कोशिश रहती है कि जन-साक्षात्कार के माध्यम से अनुभवों की नई इबारत लिखें। भारतीय समाज की

ज्यादातर सच्चाइयाँ उनके लिए एक नया सबक है। इसलिए जब उनका पाला ऐसी सच्चाइयो से पडता है, वे अवाक् रह जाते हैं। एक ऐसी ही घटना है।

उनके निवास पर हरियाणा के सौ-एक हरिजन स्त्री-पुरुष जमा थे। हरियाणा मे उनके साथ अन्याय हुआ था। हत्या और बलात्कार के साथ वे जिदा थे। उन्हे सुरक्षा और इसाफ चाहिए था।

प्रधानमत्री उनके पास पहुँचते है। शोर मच रहा है। बच्चे चीख रहे है। वे अपनी यातना-कथा प्रधानमत्री को सुना रहे है।

**हरिजन** हमारे साथ पूरा न्याय किया जाए। पूरा बाल्मीकि समाज काग्रेस के साथ रहा है। हमारे साथ हरियाणा मे अत्याचार हो रहा है। आज इसीलिए हमे प्रधानमत्री तक पहुँचने का समय मिला है और यहाँ तक हम पहुँचे। तीन हजार का जुलूस लेकर डी सी तक पहुँचे थे परन्तु कोई कार्रवाई नही की।

**प्रधानमत्री** मत्री से भी मिले?

**हरिजन** जी हाँ। परतु कुछ नही हुआ। *(इसी बीच एक बच्चा चीखने लगता है। शायद भूख-प्यास के कारण प्रधानमत्री उसकी तरफ देखते है।)* हमारी अपील है कि इसे देखा जाए। *(बच्चे का रोना जारी है।)*

**प्रधानमत्री** बच्ची क्यो रो रही है? *(हरिजन इस सवाल पर ध्यान नहीं देते है। रोते हुए कहते है- )*

**हरिजन** समर्थ लोग है वे हमारी इज्जत लूटते है। हमे मार दिया जाता है। हमारी बहू-बेटियो की सरे-आम इज्ज लूट ली जाती है। मनीषा जैसा काड होता है तो देश के सारे अखबारवाले बडी-बडी सुर्खियो मे छाप देते है। परतु हमारी इस बात के बारे मे अखबारवाले भी चुप रहे। कोई अखबारवाला इसे नहीं निकाल सका। अब हमारी आखिरी दरख्वास्त आपसे है, क्योकि हम अपनी बहू-बेटियो की इज्जत लुटते हुए कैसे देखे?

**प्रधानमत्री** *(शिकायतभरे अदाज मे मेरी ओर देखते है)* देखा आपने? आपकी प्रेस क्या करती है? *(प्रधानमत्री उनसे अर्जियाँ लेते है। उनके साथ चित्र खिचवाते है।)*

एक नग-धडग साधु राजीव गाँधी से टकराता है। पचास-साठ साल का है। रस्सी की लँगोटी बाँध रखी है। हाथ मे लाठी है। खुद बैठा रहता है, राजीव झुककर उसकी बात सुनते है। बीच-बीच मे साधु उनके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद भी देता है।

**साधु .** इदिराजी की समाधि के पास मै बेटा एक पारसनाथ मदिर बना रहा हूँ।

**तो बेटा मैं थक गया हूँ। तेरह साल हो गया है, मैं किसी से कुछ नहीं माँगता। मैंने आपके पास चिट्ठी भी दी है। मै फलाहारी बाबा हूँ। अपना सदा आशीर्वाद दे रखा है सबको। संजयजी को भी। तो बच्चा आपको मिलने आया हूँ। रामायण चलाता हूँ। इंदिराजी भी जानती थीं। तो किसी दिन आप आओ।**

**प्रधानमंत्री** : हॉ, मैं किसी दिन

*(राजीवजी जल्दी में होते हैं, पिंड छुड़ाने की मुद्रा में।)*

**साधु** : मेरा स्थान इंदिरा-जवाहरलालजी के बीच में है। तो बच्चा, मैं पारसनाथ शंकरबाबा बनाना चाहता हूँ। सदा मै तेरे नाम से जपता हूँ।

**प्रधानमंत्री** : क्या सरकार की जमीन है ?

**साधु** : वो सब जमीन आपकी ही है, मेरा कुछ नही है। *(प्रधानमंत्री फिर मुस्कुराते हैं)* मेरा तो प्रेम और शांति है। भारत में तेरी जय हो। बेटा, तेरी सदा जय हो।

**प्रधानमंत्री** : *(हॅसते हुए)* ध्यान मे रखेंगे।

**साधु** : तू सदा मौज करेगा। मेरा सदा आशीर्वाद है। पूरे परिवार के लिए है। *(आत्मीयता के साथ प्रधानमंत्री के सिर पर हाथ रखता है। दोनो हॅसते है। साधु अपनी अक्खडी धुन में दृश्य से गायब हो जाता है।)*

अब दृश्य मे श्रीनिवास तिवारी, रामेश्वर नीखरा, दिलीपसिह भूरिया, सुश्री बिमला वर्मा प्रकट होती हैं। सुश्री बिमला वर्मा राजीव गॉधी को चंद सेकडो के लिए एक ओर ले जाती हैं। कान मे कुछ फुसफुसाती है।

और इस तरह से सपर्क व संवाद का निरंतर सिलसिला चलता रहता है प्रधानमंत्री के साथ। संवाद मे दरार न पडे इसकी जिम्मेदारी शासक की है। दिलीपसिंह भूरिया जैसे वंचित वर्ग के कई सांसदों को इस बात की पीडा है कि जोरावर वर्ग के प्रतिनिधि प्रधानमंत्री को घेरे रहते हैं। उन्हें आसानी से मिलने का वक्त दे दिया जाता है। दूरदराज के पिछडे व निर्धन लोग कई-कई दिन तक राजधानी में भटकते रहते हैं। वे राजीव गॉधी से मिलने में असफल रहते हैं, प्रधानमंत्री के साथ दिल की बात नही कर पाते हैं। बडे लोग बात भी करते हैं, और अपनी मॉगे मनवा भी लेते हैं। प्रधानमंत्री को चाहिए कि वे दूरदराज के गॉवों के लोगों और खासतौर पर वंचित वर्गों के प्रतिनिधियों के लिए मिलने का समय निश्चित कर दें। उस दिन वे किसी और से न मिलें। राजीव गॉधी को इस ओर चौकस रहने की आवश्यकता है।

यह सच भी है, संवाद जब टूटता है, शून्यता उसका स्थान ले लेती है, तब शासक निरंकुश होने लगता है। वह हर चेहरे में स्वयं को प्रतिबिम्बित देखना चाहता है।

उसे साथी या सहयोगी की जरूरत नहीं होती है खवास या खवासिन को जमा करना उसका राज-धर्म बन जाता है। ऐसे मे प्रजा या जनता मनुष्य नहीं, सत्ताभोग की 'वस्तु' बन जाती है। किसी समाज या राष्ट्र की ऐसी त्रासदी पर दुष्यत कुमार से बेहतर कौन टिप्पणी कर सकता है

**न हो कमीज**
**तो पाँवो से पेट ढँक लेगे**
**ये लोग कितने मुनासिब हैं**
**इस सफर के लिए।**

ऐसा सफर टूटे सवाद न टूटे जनता को गूँगी बहरी और शॉर्टमेमरी मे न बदला जाए ऐसी एक न्यूनतम उम्मीद प्रधानमत्री से करना गैरमुनासिब माना जाएगा?

## अर्जुन सिंह से साक्षात्कार - 1

# 'सत्ता-संघर्ष ही आखिरी क्षितिज नहीं'

पिछले दिनों दिल्ली-रायपुर यात्रा में श्री अर्जुनसिंह ने चौंकाया . आहिस्ता से अपना ब्रीफकेस खोला और सोवियत नेता गोर्बाचोव की पुस्तक 'पेरोस्त्रोइका' निकालकर चुपचाप पढने लगे । इस दशक की चर्चित पुस्तको में से एक 'पेरोस्त्रोइका' तब तक आम सुलभ नहीं थी । सीमित संख्या में पहुँची हुई थी । इस भारी-भरकम पुस्तक पर तत्कालीन संचारमंत्री की ऑखें रायपुर तक जमी रहीं ।

'एक, कम्युनिस्ट नेता की ऐसी पुस्तक पढने का सबब ?' मैं जिज्ञासा बाँध नहीं सका, पूछ ही लिया ।

'क्यो कोई ऐतराज? भारत जैसे देश के लिए समाजवादी देशों में परिवर्तन की ताजा प्रक्रियाओं को समझना उपयोगी होगा । इस दृष्टि से यह पुस्तक एक सार्थक पहल से परिचित कराती है ।' और एक गर्वीली मुस्कान के साथ अपना वाक्य पूरा करने लगे, 'जानते है इसे मेरी बेटी ने जन्मदिन पर प्रजेंट किया है ।'

अर्जुनसिंह के साथ यह एक असामान्य घटना नहीं थी । चुपचाप खिसककर बुकस्टालो पर पहुँच जाना और ढेर सारी पुस्तकें खरीद लेना उनकी यात्राओं का एक सहज पक्ष रहा है । उनके निजी पुस्तकालय में राजनीतिक दर्शन संबंधी अनेक पुस्तके देखी जा सकती है । विश्व राजनेताओं की राजनीतिक पेचीदगियों को समझना और ताजा वैचारिक व राजनीतिक उथल-पुथल से परिचित रहना, उनके लिए यह जरूरी खुराक है । पेरोस्त्रोइका' यानी पुनर्निर्माण उनके लिए एक ताजा 'टॉनिक' थी ।

*नई दुनिया* के भोपाल संस्करण के उद्घाटन-अवसर पर अर्जुनसिंह ने शासन व शासक की एक परिभाषा की थी । नागरिकों पर हुकूमत करना और उपलब्धियों

की लंबी फेहरिस्त तैयार करना ही काफी नहीं है। महत्वपूर्ण यह है कि शासक व शासन कितना संवेदनशील है? उनका परिप्रेक्ष्य व दृष्टि क्या है? समाज में गुणात्मक परिवर्तन लाने के लिए दोनों कितने प्रतिबद्ध हैं? इस सन्दर्भ में स्व. इंदिरा गाँधी के बँधुआ मुक्ति व ऋणग्रस्तता उन्मूलन कार्यक्रम और 1980-84 के मुख्यमत्री अर्जुनसिंह के झुग्गी-झोपडीवासियों एवं रिक्शा चालकों को मालिकाना हक देने के कदम सतही तौर पर चुनावी स्टंट या सस्ती लोकप्रियता के हथकंडे लग सकते हैं। परन्तु, एक ठहरे समाज में ऐसी पहलकदमियों से पेंदे और सतह पर हलचल पैदा हुई है, नई लहरें उठी हैं। धरा के अभागों में स्वामित्व का बोध एक साथ कई प्रक्रियाओं को शुरू कर डालता है।

भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों में इस कंपन की आवश्यकता है। अर्जुनसिंह से तीसरी दुनिया के नेतृत्व और मौजू मुद्दों पर साक्षात्कार नहीं, बल्कि एक सवाद किया गया। यह संवाद दो-तीन चरणों में पूरा हुआ। इसका सरोकार रोजमर्रा की राजनीति से नहीं था। बल्कि संवाद के बिंदु थे- विकसित पूँजीवाद, सामंतवाद, उपनिवेशवाद, समाजवादी देशों में परिवर्तन, फासीवाद, पिछडे देशो का मजहबी फासीवाद, संक्रमण काल का नेतृत्व व परिवर्तन की रणनीति, नेतृत्व की विकल्पहीनता की त्रासदी आदि। सहमति व असहमति सवाद में बराबर बनी रही।

**जोशी** : *क्या आज तीसरी दुनिया विकल्पहीनता के दौर से गुजर रही है ?*

**अ सि** . तीसरा विश्व 'विकल्पहीनता' मे जीवित है, मैं इससे असहमत हूँ। बल्कि मैं यह कहना चाहूँगा कि औपनिवेशिक काल मे भी विकल्पहीनता नहीं थी। नेतृत्व का सकट भी कभी नहीं रहा । इतिहास साक्षी है माओ, गाँधी, नेहरू, होची मिन्ह जैसे युग पुरुष औपनिवेशिक काल की ही देन हैं। नेतृत्व की दृष्टि से औपनिवेशिक काल मे ही अफ्रीका ने इतिहास में नए अध्याय जोडे हैं। यदि विकल्पहीनता या नेतृत्व-सकट के सिद्धांत को स्वीकार करे, तब हमें दक्षिण अफ्रीका और लातिनी देशो के मुक्ति-संघर्षो के अस्तित्व को भी अस्वीकार करना पड़ेगा। मैं समझता हूँ, ऐसा करना इतिहास के साथ अन्याय होगा।

सामंतवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध निर्णायक सघर्ष ही तीसरे विश्व की ऐतिहासिक विशेषता कही जाएगी। विकल्पहीनता या नेतृत्वहीनता के वातावरण में इस प्रकार के संघर्षो का होना संभव नहीं है। स्पष्ट शब्दों में कहें तो पिछड़े, उत्पीडित और विकासशील देशो के लिए सघर्ष ही एक विकल्प है। बदलते संदर्भों में विश्व में नई अर्थव्यवस्था को जन्म देने के लिए तीसरी दुनिया के संघर्ष को 'नव-विकल्प' की सज्ञा दी जा सकती है। एशिया, अफ्रीका, लातिनी देशों का नव-नेतृत्व इस विकल्प को अमली रूप देने के लिए प्रयत्नशील भी है।

गुटनिरपेक्ष आदोलन (दक्षेस) जैसी गतिविधियाँ इस दिशा के महत्वपूर्ण सोपान है। *नासिर, इंदिरा गॉधी, कास्त्रो, जूलियस न्यरेरे नेल्सन मडेला जैसे नेताओं ने तीसरे* देशो के नेतृत्व मे नए आयाम जोडे है, क्या इससे इकार किया जा सकता है? इन देशो का युवा नेतृत्व भी सघर्षशील विरासत को समृद्ध बनाने मे प्रयत्नशील है।

यह सच है कि सामाजिक सास्कृतिक, आर्थिक धरातलो पर काफी कुछ किया जाना शेष है क्योकि औपनिवेशिक शासन ने तीसरे विश्व के समाजो के जीवत तत्वो को खोखला करने मे कोई कसर नही छोडी है, उसे बुरी तरह से झकझोरा है। फलस्वरूप इन देशो मे कई विसगतियॉ दिखाई देती है। प्राचीनता और आधुनिकता का विवेकपूर्ण समन्वय नही हो पाया है। उपभोक्ता सस्कृति का विस्फोट हो चुका है जबकि समाज इसका सामना करने के लिए पूरी तौर पर तैयार नही है। इससे भी इकार नही किया जा सकता है कि भारत अफगानिस्तान, पाकिस्तान जैसे तीसरी दुनिया के देशो मे विसगतिपूर्ण विकास-व्यवस्थाएँ मौजूद हैं, औद्योगीकरण के साथ-साथ कबीलाई व आदिवासी अर्थव्यवस्थाएँ विद्यमान है।

यह सभव है कि इस विरोधाभास ने नए तनावो और अतर्विरोधो को जन्म दिया है। तीसरे विश्व के राजनीतिक मैनेजमेट के सामने निश्चित ही ये तनाव एक चुनौती है क्योकि सक्रमण काल की कई समस्याएँ होती है, कभी इनका हल शीघ्र मिल जाता है, और कभी विलब से । जब विलब होगा तो कोलाहल होना स्वाभाविक है।

इस बात से भी इकार नही किया जा सकता कि तीसरी दुनिया की जनता की अपेक्षाएँ भी तेजी से बढी है। वे नेतृत्व मे शीघ्रता की अपेक्षा रखती है। जब अपेक्षाओ की पूर्ति नही होती है तब नेतृत्व के प्रति कई प्रकार की आशकाएँ पैदा हो जाती है। वैसे सक्रमण काल मे निरतर अनिश्चितता, अस्थिरता और आशकाओ का वातावरण रहता भी है। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया भी है। विकास के विभिन्न मॉडलो को लेकर प्रयोग चलते रहते है, कभी भी प्राथमिकताएँ स्पष्ट नही रहती। शार्टकट से प्रगति के शिखर पर पहुँचने का लोभ भी समाज मे पैदा हो जाता है और पिछडे देश इन दबावो के कारण किसी भी शक्तिशाली खेमे से जुड़ने के लिए विवश हो जाते है। यदि नेतृत्व जमीन से जुडा है तो सक्रमण काल की विसगतियो को सुलझाया जा सकता है पर इसके लिए राजनीतिक इच्छा-शक्ति का होना आवश्यक है।

**जोशी** *क्या आज तीसरे विश्व का नेतृत्व विशिष्ट वर्गीय नही है?*

**अ सि** . यह मत आशिक रूप से सच है कि पिछडे देशो का नेतृत्व विशिष्ट वर्गीय है। नेतृत्व-वर्ग की दृष्टि व लोक-दृष्टि मे अतर भी है। नेतृत्व-वर्ग की जीवन-शैली भिन्न होती है। जनमानस व राजमानस के बीच 'परायापन' भी

दिखाई दे सकता है। ये सब बाते सही भी हो सकती हैं। पर इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि तीसरी दुनिया के देशो का नेतृत्व-वर्ग पश्चिम का पिट्ठू है या नकलची है। भारत इसका उदाहरण है। यहाँ के नेतृत्व ने स्वतत्रता के पश्चात यथार्थवाद को अपनाया और विकास की एक देसी दिशा निर्धारित की है। भारत मे कई अभूतपूर्व प्रयोग भी हुए है। नेहरूजी को इनका सूत्रधार कहा जा सकता है। मै नहीं समझता कि हम अपने प्रयोगो मे बिलकुल ही फेल हुए है। कमियाँ अवश्य रही हैं। परतु देश के नेतृत्व-वर्ग ने उनमे सशोधन के द्वार कभी बद नहीं किए। वास्तव मे भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था इस बात का प्रमाण है कि आजादी के बाद का नेतृत्व विकास के तनावो को कम करना चाहता था। यह समय की माँग भी थी। देश के पुनर्निर्माण मे मिश्रित व्यवस्था ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई भी है। समाजवादी निर्माण के लिए नेतृत्व प्रतिबद्ध भी है।

इसके साथ ही यह जरूर स्वीकार किया जाना चाहिए कि मिश्रित अर्थव्यवस्था की कुछ सीमाएँ है। आरोप लगाए जा सकते है कि इसके अपेक्षित परिणाम नहीं निकले। पर इस अर्थव्यवस्था को बिलकुल 'ब्लैक एण्ड ह्वाइट' मे देखना भी ठीक नहीं है।

**जोशी** *विकसित योरपीय पूँजीवादी तथा समाजवादी शिविरो के राष्ट्रो मे काफी हद तक परस्पर विश्वास है। योरपीय आर्थिक समुदाय काफी प्रभावशाली है, पर एशियाई व अफ्रीकी देशो मे इस विश्वास की कमी है। क्या इसकी यह वजह नहीं है कि इन देशो का नेतृत्व परस्पर भयग्रस्त है और स्वतत्र निर्णय लेने मे अक्षम है?*

**अ सि** यह कहना एक जल्दबाजी का निष्कर्ष होगा। नवस्वतत्र राष्ट्रो की कई बुनियादी समस्याएँ है। पूर्व साम्राज्यवादी शासको ने इन देशो को हर स्तर पर विभाजित रखने की पूरी कोशिश की है। उसमे वे सफल भी रहे है। इसलिए एक स्वाभाविक विश्वास का अभाव उनमे दिखाई देता है। इन देशो मे विकास के तनाव भी है। राजनीतिक व्यवस्थाओ मे भी अतर है। भारत की अर्थव्यवस्थाओ की बुनियाद आत्मनिर्भरता है, जबकि कुछ देशो के सबध मे यह बात नही कही जा सकती। एशिया के कई देश योरपीय-अमेरिकी आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था के उपग्रह या ग्राहक-देश बनकर रह गए है।

परतु इस स्थिति से मुक्ति की दिशा मे दक्षेस को एक महत्वपूर्ण कदम कहा जा सकता है। दक्षेस भारतीय उप-महाद्वीप के बीच सहयोग की भावना की एक साकार अभिव्यक्ति है। यह सही है कि इसकी तुलना योरपीय आर्थिक समुदाय के साथ नहीं की जा सकती। वह विकसित राष्ट्रो का एक आर्थिक जमघट है। दक्षेस की अभी केवल शुरूआत है। यह पहल निश्चित ही दक्षेस राष्ट्रो मे दीर्घकालीन विश्वास पैदा करेगी। यदि यह पहल सफल रही तो इसके दूरगामी परिणाम निकलेगे। दक्षेस की

सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इसके सदस्य-राष्ट्र नव-साम्राज्यवाद से मुक्त रहें : क्षेत्रीय अंतर्विरोधों का समाधान क्षेत्रीय दायरे में किया जाए; महाशक्तियों के दरवाजों पर दस्तक देने के मोह से बचा जाए। यदि दक्षेस प्रयोग सफल रहा तो निश्चित ही कालांतर में पिछडे देशों का नेतृत्व अधिक सुदृढ़ होगा। विकासशील देशों के साथ कोई खिलवाड नहीं कर सकेगा।

**जोशी** : *विश्व में विकास के दो मॉडल हैं– पूँजीवादी और समाजवादी। समझ में नहीं आता कि भारत का रास्ता कौन-सा है? ऐसा नहीं लगता कि हम विसंगतियों और विरोधाभासों के दौर से गुजर रहे हैं ?*

**अ. सिं.** : विकास एक सपाट मैदान नहीं है, पेचीदा प्रक्रिया है। इस दृष्टि से भारत अपवाद नहीं है। हमारे देश मे प्रयोगों की पूरी गुंजाइश है। आप जानते ही हैं कि प्रयोग सभी देशों में हो रहे है। समाजवादी देश भी इससे अछूते नहीं रहे हैं। तब भारत में इससे परहेज नहीं किया जाना चाहिए। परंतु, शर्त यह है कि मूलभूत आदर्श और लक्ष्य के सबंध में कोई भटकाव नहीं होना चाहिए।

आप जानते ही हैं कि संविधान की दृष्टि से भारत का रास्ता समाजवादी है। एक मिश्रित अर्थव्यवस्था का मॉडल हमारे नेताओं ने स्वीकार किया है।

**जोशी** : *मगर चालीस वर्ष के अनुभव इस सच्चाई के साक्षी हैं कि भारत समाजवाद के लक्ष्य से काफी दूर है। भारत मे न तो एक उन्नत पूँजीवादी व्यवस्था है, और न ही गतिशील समाजवाद है। मिश्रित अर्थव्यवस्था का लाभ एक सीमित वर्ग तक पहुँचता है। क्या आप इससे इकार करते है ?*

**अ. सिं.** : यह निष्कर्ष निकालना सही नहीं है कि इस व्यवस्था का लाभ केवल सीमित वर्ग तक पहुँचा है। मेरे मत में इसका विस्तार हुआ है। परंतु, जनसंख्या के विस्फोट ने इसके लाभो को धुँधला कर दिया है। इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि समाज के कई वर्ग ऊपर उठे हैं; बल्कि पिछडों में भी समृद्ध वर्ग पैदा हुआ है। समाजशास्त्रीय अध्ययनों का यह निष्कर्ष है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था की विभिन्न उपलब्धियों के बावजूद इसमें आंशिक सत्यता है कि विषमता दूर नहीं हुई है। सदियों से दलित व उत्पीडित वर्गो के साथ अपेक्षित सामाजिक व आर्थिक न्याय नहीं हो सका है। इसके कई ऐतिहासिक कारण भी हैं। भारत में आज भी सामंती और महाजनी मानसिकता हावी है। यद्यपि सामंतवाद और महाजनी पूँजीवाद एक संस्था के रूप में समाप्त हो चुके हैं, पर संस्कार के रूप में अवश्य जीवित हैं। परिणाम यह है कि हमारी आधुनिक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संस्थाओं में अपेक्षित गतिशीलता का अभाव है। देश का राजनीतिक नेतृत्व ठहराववादी मानसिकता को तोड़ने तथा समाज में हस्तक्षेप करने में आंशिक

रूप से विफल रहा है। सभी दल इस विफलता के लिए जिम्मेदार हैं। तभी आजादी के चार दशकों के बावजूद मंदिरों में हरिजनों का प्रवेश-निषेध, सती प्रथा, दहेज प्रथा, जातिवाद, सांप्रदायिकता जैसी समस्याएँ देश को हिलाए रखती हैं। आदिवासी समाज आज भी कई लाभों से वंचित है। व्यवस्था में निहित विसंगतियों के कारण ही औद्योगीकरण का अपेक्षित लाभ नीचे तक नहीं पहुँच सका है। केंद्र और प्रदेशों के बीच विभिन्न क्षेत्रों मे असंतुलन बना हुआ है। केंद्र का शासनतंत्र अधिक गतिशील व चुस्त माना जाता है।

विभिन्न विफलताओं के बाद भी मिश्रित अर्थव्यवस्था के मॉडल को मैं भारत के लिए उपयुक्त मानता हूँ। वैसे इसमें सुधार की आवश्यकता है। सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों को समाज के प्रति जवाबदेह बनाने की आवश्यकता है। निजी क्षेत्र में भी समाज के पति संवेदनशीलता का अभाव है। किसी भी क्षेत्र को समाज के प्रति उत्तरदायित्व की कीमत पर विकास व लाभ की अनुमति नहीं दी जा सकती।

याद रखिए किसी भी व्यवस्था का मूल उद्देश्य आर्थिक या राजनीतिक उपलब्धियाँ ही नहीं हैं, बल्कि समाज के व्यक्तित्व का समतावादी व सर्वांगीण विकास भी है। इस दृष्टि से समाजवाद या पूँजीवाद की समीक्षा करना अनुचित नहीं होगा। नि संदेह समाजवाद विकास की सबसे बेहतर अवस्था है। उसमे कमियाँ हैं तो उन्हें दूर किया जाना चाहिए। इतिहास साक्षी है कि पूँजीवादी व्यवस्था को बनाए रखने के लिए कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना की गई थी। दोनों व्यवस्थाओं ने अपने-अपने अनुभवो से सीखा है। नए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दबावों के वातावरण मे आज इन व्यवस्थाओ में संशोधन भी आवश्यक हो गए हैं। परंतु भारत के संबध मे विकास का स्वदेशी मॉडल जरूरी है। निश्चित ही पूँजीवादी रास्ते से भारत अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकेगा।

**जोशी** · *मान लीजिए कभी देश के तीनों सर्वोच्च पदों पर आदिवासी, हरिजन और पिछड़ों का वर्चस्व कायम हो जाए, तब सवर्ण नेताओं की मनोदशा क्या होगी? क्या इससे गुणात्मक परिवर्तन आएगा ?*

**अ. सिं.** : सवाल काफी सामयिक है। इसमे दो मत नहीं, इसका एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव अवश्य पड़ेगा। आर्थिक और राजनीतिक नेतृत्व पर जिस वर्ग का पुश्तैनी अधिकार रहा है, हो सकता है उन्हें यह परिदृश्य रास न आए। उत्पीड़ित व दलित वर्ग का वर्चस्व कभी नहीं रहा। इसका दुष्परिणाम यह निकला है कि समाज की समूची ऊर्जा व सृजनशीलता को पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं मिल सकी। संविधान के अंतर्गत ऐसे वर्गों को सरक्षण प्राप्त है। परंतु केवल मंत्री, सांसद, विधायक और अधिकारी बनने से ही काम नहीं चलता। प्रश्न यह है कि आदिवासी-हरिजनों में से कितने वैज्ञानिक, लेखक, कलाकार, दार्शनिक, समाजशास्त्री बन सके। इन वर्गों

की सृजनशील ऊर्जा को जागृत करना आवश्यक है। केवल अधिकारी या नेता बनने से ही काम नहीं चलेगा। जरूरी है कि इतिहास सवर्ण नायकों के समान आदिवासी-हरिजन वर्गों के नायकों को भी स्वीकार करे; समाज में उन्हें उचित मान्यता मिले।

इस दृष्टि से मेरे मंत्रालय (अर्थात संचार मंत्रालय) ने एक छोटी-सी पहल की है। पिछले वर्ष राजीवजी ने छत्तीसगढ़ के शहीद आदिवासी वीर नारायण सिंह की स्मृति में डाक-टिकट जारी किया है। अन्य आदिवासी स्वतंत्रता सेनानियों की स्मृति में भी डाक टिकट जारी किए जा रहे हैं। इसका एकमात्र उद्देश्य है कि समाज के विकास में इन वर्गों की भूमिका को भी वांछित मान्यता मिले।

**जोशी** : *आपने देखा, देश की तपस्वी राजनीतिक पीढ़ी समाप्त हुई, संक्रमण काल की पीढ़ी भी लुप्त होने को है। वर्तमान पीढ़ी किस परिप्रेक्ष्य में जीवित है, यह स्पष्ट नहीं है। भावी पीढ़ी का क्या परिप्रेक्ष्य हो सकता है, यह अनिश्चित है। इस संबंध में आपकी टिप्पणी ?*

**अ. सिं.** : देखिए, परिप्रेक्ष्य की बिलकुल शून्यता है, ऐसा मैं नहीं मानता। एक परिप्रेक्ष्य अवश्य है; गाँधीजी और नेहरूजी भारत के लिए एक आधारभूत परिप्रेक्ष्य तैयार कर चुके हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम नए संदर्भो, नई परिस्थितियों में इस परिप्रेक्ष्य को लागू करें। इंदिराजी ने बदले सदर्भों के मुताबिक इसे ढाला; परंतु वे मूल-मार्ग से कभी विचलित नहीं हुई। क्या भारत धर्मनिरपेक्षता, गुटनिरपेक्षता, समाजवाद, गरीबी के विरुद्ध लड़ाई, सर्वहारा वर्ग के कल्याण जैसे सिद्धांतों को छोड़ सकता है ? यदि ऐसा होता है तो वह दिन भारत के लिए आत्मघाती दिन होगा। भावी पीढ़ी के लिए भी यही आधारभूत परिप्रेक्ष्य होगा। यह जरूरी है कि समय-समय पर प्राथमिकता बदलती रहे। प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी भी यही चाहते हैं कि भारत में जड़ता पैदा नहीं होने दी जाए। भारत को नई परिस्थितियों, नई चुनौतियों के लिए तैयार किया जाना चाहिए। देश के राजनीतिक नेतृत्व को भी एक ढर्रावादी शैली से मुक्ति लेनी होगी, परिवर्तन के जेनुइन विकल्प खोजने होंगे। केवल सत्ता संघर्ष से ही काम नहीं चलेगा। सत्ता के आगे भी एक क्षितिज है। वर्तमान और भावी पीढ़ियों को इसे नहीं भूलना चाहिए।

**जोशी** : *पिछले दिनों आपकी पार्टी के वयोवृद्ध नेता श्री उमाशंकर दीक्षित ने एक अँगरेजी साप्ताहिक को दिए गए अपने साक्षात्कार में कहा है कि ब्राह्मणवाद का पुनरुत्थान पार्टी और देश के लिए अच्छा है। क्या इस तरह के वक्तव्यों से पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा नहीं मिलेगा ?*

**अ. सिं.** : जहाँ तक मुझे याद है, वे इस कथन का खंडन कर चुके हैं। फिर भी यह

स्पष्ट है कि पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियाँ समाज की गतिशीलता को क्षीण बनाती है; उसे जड बनाती है, कालातर मे फासीवाद को जन्म देती है। पुनरुत्थान, कट्टरता, सकीर्णता जैसी ताकतो से किसी भी देश का आज तक भला नहीं हुआ है, बल्कि ऐसे देश कई प्रकार की ट्रेजडियो की चपेट मे आ चुके है। जर्मनी इसकी मिसाल है। कुछ पडोसी देश भी आधुनिक सदर्भो मे इसके प्रतीक है। इन देशो मे एक मजहबी फासीवाद का वातावरण मौजूद है। दोनो ही सामाजिक और राजनीतिक सकट के दौर से गुजर रहे है। भारत और वे एक ऐसे भँवर मे कभी न फँसे, इसके लिए सावधानी बरती जानी चाहिए। बिहार के जाति-सघर्ष रामजन्मभूमि, बाबरी मस्जिद मेरठ आदि के साप्रदायिक दगे सामाजिक-सास्कृतिक-धार्मिक सकीर्णता और कट्टरवादिता के परिणाम ही कहे जाएँगे। ऐसी घटनाओ से प्रतिगामी ताकतो को ही बल मिलेगा, देश के जीवन मे गतिशीलता कभी पैदा नही होगी।

**जोशी** *देखने मे आया है कि निजी एव सार्वजनिक अवसरो पर जन-प्रतिनिधियो का व्यवहार सामती व शाही किस्म का होता है। शासक दल भी इसका अपवाद नहीं है। ऐसा क्यो ?*

**अ. सि** सामती सस्कारो और प्रवृत्तियो के खिलाफ सघर्ष सिर्फ कानून के बल पर नहीं किया जा सकता। इसके लिए एक सामाजिक-राजनीतिक चेतना की आवश्यकता है। रूस और चीन मे क्रातियाँ हुए कई दशक बीत चुके है परतु बुर्जूआ सस्कारो के विरुद्ध आज भी वहाँ सघर्ष चल रहा है। ऐसे ही सास्कृतिक सघर्ष की भारत में भी आवश्यकता है। मेरा यह मत है कि देश के प्रत्येक जागरूक नागरिक, विशेषकर जन-प्रतिनिधि को ऐसी प्रवृत्तियो या सस्कारो के सार्वजनिक प्रदर्शन से परहेज करना चाहिए क्योकि ऐसे प्रदर्शनो से कोई नए मूल्यो की स्थापना नहीं होती कोई नया इतिहास नही बनता। पूर्व शासक रहे या सामान्य जनता, इतना निश्चित जानिए कि अब इस देश मे सामती व्यवस्था फिर से अस्तित्व मे नहीं आ सकती।

# चुनौतियों से चुनौतियों तक

"इतिहास की कैसी विडम्बना है ! कैसा भाग्यचक्र है ! उन्नीस सौ बावन में नेहरू द्वारा पिताश्री शिवबहादुर सिंह का सार्वजनिक अपमान और आज उन्हीं के नाती द्वारा मुझे संगठन के महत्वपूर्ण पद पर बैठाना, सब कुछ कितना विचित्र और सयोग-भरा लगता है। मैंने लिखा था कि पंडितजी, मैंने फैसला किया है कि जनसेवा के माध्यम से अपने भाग्य से प्रतिशोध लूँ, व्यक्ति से नहीं .. ।"

राजनीतिक जीवन की कदाचित सबसे बड़ी विडम्बना ही यह होती है कि उसके लिए स्वयं को समर्पित कर देनेवाले लोग, अमूमन जरूरतों से ऊपर, लेकिन आकांक्षाओं के नीचे रह जाते हैं। केवल कुछ ही ऐसे लोग होते हैं, जो साहस को एक निरंतर उम्मीद में बदलते हुए, ध्येय को किसी भी कीमत पर नहीं भूलते। अर्जुनसिंह उन्हीं में से एक हैं। उन्होंने 1952 में चुरहट से मात्र एक छात्र नेता के रूप में अपने जीवन की शुरूआत की थी। बहरहाल, यह बात गौरवपूर्ण ही कही जाएगी कि एक भरी- पूरी शताब्दी तक 'लोगों की एकमात्र उम्मीद' बनी रही पार्टी के संगठन का दायित्व, पिछले दिनों उन्हें सौंपा गया है। वैसे, संगठन और सत्ता की कार्य-शैली में थोड़ा-सा अंतर होता है। मसलन, जब आप किसी भी तरह का फैसला लेने की स्थिति में नहीं होते, तभी आपको सबसे अहम फैसले लेने होते हैं। लेकिन, ऐसी ही ढेरों कठिन घड़ियों में, ऐतिहासिक निर्णय लेते हुए, श्री सिंह ने अपने संयम की दृढ़ता के कई सबूत दिए हैं। पार्टी उपाध्यक्ष के नये रोल में अर्जुनसिंह से एक मुठभेड़।

## सरकार और संगठन दोनों की सीमाएँ हैं

"देखिए, संगठन या सरकार की सर्वोच्चता के प्रश्न को पूरे परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। किसकी सर्वोच्चता किस पर है, इसे परिप्रेक्ष्य से काटकर नहीं समझा जा

सकता है।" अर्जुनसिंह बौद्धिक अंदाज में कहने लगे, "असल बात यह है कि सरकार और संगठन दोनों की भूमिकाएँ प्रभावशाली दिखाई देनी चाहिए। पार्टी का आदेश रोज- रोज तो सरकार को दिया नहीं जा सकता। और वह उस पर हमेशा चले, ऐसा भी जरूरी नहीं है। दोनो की अपनी-अपनी सीमाएँ और कार्यशैलियाँ हैं। फिर भी मै यह निश्चित रूप से कहना चाहूँगा कि पार्टी की सर्वोच्चता कायम करने की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। पार्टी अध्यक्ष व प्रधानमत्री राजीव गॉधी ने इस दिशा मे प्रयास शुरू कर दिए है। अब समय तो लगेगा ही।"

"माना समय लगेगा। पर सर्वोच्चता या पार्टी की पहलकदमी को मान्यता तभी मिल सकती है, जब शिखर-नेतृत्व और धरातल-नेतृत्व के बीच स्वस्थ सवाद के रिश्ते हो। देखा यह जा रहा है कि दिल्ली के नेताओ और ब्लॉक स्तर के कार्यकर्ताओं के बीच समझदारी एव कार्यशैली में बुनियादी अतर है। दोनो की दृष्टियों में कई विसगतियॉ है। इन्हे कैसे दूर करेगे?" चर्चा बढाने के लिए मैंने सवाल किया।

"मै इससे पूरी तरह सहमत हूँ। नेतृत्व के दोनो वर्गो के बीच अतराल है, किंतु इसे दूर करने के लिए ठोस प्रयास किए जा रहे है। प्रशिक्षण शिविर लगाए जा रहे हैं। नीचे से ऊपर तक सवाद की प्रक्रिया शुरू की जा रही है। जनता से संबंधित मुद्दों के प्रति मडल स्तर से लेकर दिल्ली स्तर तक का नेतृत्व सवेदनशील बने, यह चेष्टा की जा रही है। हम चाहते है कि शिखर-नेतृत्व और निचले स्तर के नेतृत्व के बीच निरतर विचारो तथा कार्यक्रमों का आदान-प्रदान होता रहे। इससे जुडे व्यावहारिक पहलुओ पर विचार शुरू हो चुका है।"

"काग्रेस मे स्वच्छता की बात कही जा रही है। जैसे राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था है, उसमे क्या यह सभव है?"

"दृष्टि, प्रयास और परिणाम से ही हम सिद्ध कर सकते हैं कि पार्टी में स्वच्छता से हमारा क्या आशय है।" वे फिर अपनी पुरानी बात दोहराते हुए बोले, "आप जानते ही है कि आचार-सहिता बनाई जा रही है। स्वीकृत आचार-संहिता के खिलाफ जो भी जाएगा, उसके खिलाफ कार्रवाई की जाएगी। आपने अभी देखा, राजस्थान के जोशी-मत्रिमडल से पशुपालन मत्री रामसिंह बिश्नोई को हटा दिया गया। आचार-सहिता मे ऐसी सभी बातें को शामिल किया जाएगा। संपत्ति का सवाल भी आचार-संहिता में शामिल किया जाएगा।" उपाध्यक्ष ने एक महत्वपूर्ण बात यह जोडी, "आप जानते ही है कि समाज मे आर्थिक विषमता है। हम चाहते है कि ग्रामीण-शहरी सीलिंग सख्ती से लागू की जानी चाहिए। दोनों ही क्षेत्रों में एक निर्धारित सीमा से अधिक जायदाद रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। यदि कोई कांग्रेसी इसे तोडता है तो आचार-संहिता के तहत उसके खिलाफ जाँच के बाद कार्रवाई की जाएगी।"

## पहला फ्लैशबैक

इतिहास का एक बीता सफा। बरस 1952। स्वतंत्र भारत का पहला चुनाव। तत्कालीन विंध्य प्रदेश में मतदान की एक पूर्व संध्या।

प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू रीवॉ-क्षेत्र की एक चुनाव सभा को संबोधित करने मंच पर पहुँच चुके हैं। साथ में हैं (स्वर्गीय) शंभूनाथ शुक्ल और कप्तान अवधेश प्रताप सिंह। मंच के नीचे, पंक्ति में नेहरूजी के स्वागत के लिए खडा है एक छात्र नेता - रीवॉ के दरबार महाविद्यालय छात्रसंघ का अध्यक्ष। भाषण आरंभ होने से पहले स्थानीय नेता प्रधानमंत्री से कुछ बतियाते हैं। नेहरूजी तमतमाते हैं। वे अपने भाषण में घोषणा करते हैं–"चुरहट से खडा होनेवाला कांग्रेसी उम्मीदवार कांग्रेस का नहीं है। ताज्जुब है, जिस इसान के खिलाफ हाईकोर्ट में मुकदमा चल रहा है, उसे पार्टी से टिकट कैसे दे दिया गया? वह हमारा अधिकृत उम्मीदवार नहीं है।" चारों तरफ खामोशी, ताज्जुब भरी। ऐन मौके पर प्रधानमंत्री का ऐसा ऐलान अपनी ही पार्टी के एक उम्मीदवार के खिलाफ ? किसकी हिम्मत जो नेहरूजी को चुनौती देता !

नेहरूजी फुर्ती से मंच से नीचे उतरते है। सबका अभिवादन स्वीकार करते हैं। छात्र-नेता से परिचय कराया जाता है– ये उक्त उम्मीदवार के बड़े पुत्र हैं। नेहरूजी युवक को गौर से देखते हैं। पीठ पर थपकी जमाते हैं, और दृश्य से चले जाते हैं। वह उम्मीदवार करीब एक हजार वोटों से हार जाता है। अदालती फैसला भी उसके खिलाफ जाता है।

सफा बदलता है। 1957 के चुनाव। इस दृश्य में डॉ सुशीला नैयर उपस्थित होती हैं। तब का छात्र-नेता और अब का भरा-पूरा प्रौढ युवक। कानूनी डिग्री से लैस, अदालतों में प्रेक्टिस के लिए तैयार। सामंती विरासतवाले परिवार की तमाम जिम्मेदारियों को उठाए। इतिहास दोहराया जाता है। विध्यप्रदेश के पुराने नेता, डॉ नैयर से उक्त युवक को टिकट देने की सिफारिश करते हैं। कांग्रेस पर्यवेक्षक डॉ. नैयर, वकील युवक को बुलाती हैं। युवक से कहा जाता है, "प्रदेश के वरिष्ठ नेता चाहते हैं कि तुम ही चुरहट से चुनाव लड़ो। काग्रेस का टिकट तुम्हें दिया जाएगा।" परंतु, युवक विनम्रता के साथ टिकट लेने से इनकार कर देता है। 1952 के इतिहास की याद दिलाते हुए, डॉ. नैयर से कहता है, "पहलेवाले चुनाव में भी मेरे स्वर्गीय पिता को टिकट दिया गया था। अदालत में उनके विरुद्ध केस चल रहा था। उन्होंने टिकट लेने से इनकार किया था। परंतु, षड्यंत्र करके टिकट दिलवाया गया, और मतदान के मौके पर सार्वजनिक रूप से उन्हें ज़लील करवाया गया। मैं वह इतिहास नहीं दोहराना चाहता। कांग्रेस का हूँ, कांग्रेस के साथ हमेशा रहूँगा। पर चुनाव कांग्रेस उम्मीदवार के रूप में नहीं लड़ूँगा। वचन देता हूँ, जीतने

के बाद कांग्रेस में शामिल हो जाऊँगा।" डॉ नैयर युवक की टीस को अनुभव करती हैं। दोनों के बीच पत्र-व्यवहार भी होता है। वह युवक निर्दलीय प्रत्याशी के नाते चुरहट से खडा होता है और करीब ढाई हजार वोटों की जीत के साथ राजनीतिक अखाडे मे मॅजे पहलवान की तरह पैर अडा देता है। कांग्रेस के अधिकृत उम्मीदवार मुनिप्रसाद शुक्ल की जमानत जब्त हो जाती है। परतु, दोनो की चुनावी दुश्मनी यहीं से व्यक्तिगत मित्रता मे बदल जाती है।

सफे कई बदलते है। 1952 का छात्र-नेता एक लबा सफर तय करते हुए बजरिए भोपाल, चडीगढ से दिल्ली पहुँचता है। सभी दॉव-पेचो से लैस एक सफल रणनीतिज्ञ के रूप मे उभरनेवाले इस राजनेता को 19 जनवरी 1986 की सुबह पं नेहरु की तीसरी पीढी के प्रतिनिधि राजीव गॉधी बुलाते है। सगठन की कुंजी थमा देते हैं। तब के युवक और आज के अर्जुनसिह को कांग्रेस पार्टी का उपाध्यक्ष बना दिया जाता है। पार्टी के नए उपाध्यक्ष के लिए 1952 की घटना आज भी एक 'दुखद स्वप्न' है।

"इतिहास की कैसी विडबना है, कैसा भाग्यचक्र है ' 52 मे नेहरूजी द्वारा पिता श्री शिवबहादुर सिह का सार्वजनिक अपमान और आज उन्हीं के नाती द्वारा मुझे सगठन के महत्वपूर्ण पद पर बैठाना, सब कुछ कितना विचित्र और सयोग भरा लगता है ! 1952 की घटना मेरे लिए राजनीतिक षड्यंत्र की पहली शिक्षा थी। उस समय के दो बडे नेताओ ने पंडितजी को भडकाया और पिताजी को अपमानित करने के लिए षड्यंत्र की रचना की।" इस तरह से शुरू होती है अर्जुनसिंह की चुरहट से नई दिल्ली तक की यात्रा। सुखद और दुखद, दोनों तरह के पडावों से बारी-बारी गुजरते हुए उपाध्यक्ष अर्जुनसिंह इस प्रतिनिधि से पदो के महत्व को परिभाषित करते हुए कहते हैं, 'आपने पूछा है कि वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में मत्री-पद को सर्वोच्च माना जाता है। क्या उपाध्यक्ष बनने के पश्चात इस मान्यता में बुनियादी परिवर्तन हुआ है? मैं समझता हूँ पद का महत्व काफी कुछ देखनेवालों की दृष्टि पर निर्भर है। पदो को नापने के अलग-अलग मापदंड हैं। असली सवाल तो यह है कि पद ग्रहण करनेवाला व्यक्ति उस पद को किस दृष्टि से देखता है? पद का महत्व और उसकी उपयोगिता सबंधित व्यक्ति की दृष्टि पर निर्भर करती है। सच्चाई यह है कि पद अपने आपमे कुछ नही है। आप इसे क्या बनाना चाहते हैं, यह महत्वपूर्ण है। सीधी भाषा में कहूँ तो सगठन का पद मंत्री-पद से कम नहीं है।"

सत्तारूढ दल के उपाध्यक्ष के साथ यह बातचीत हो रही थी जमीन से 30 हजार फुट की ऊँचाई पर तैरते हुए विमान में। बगल की सीट पर बैठे थे केंद्रीय विधि मंत्री ए के सेन। उपाध्यक्ष, 14 फरवरी को पश्चिम बंगाल कांग्रेस की खोज-खबर लेने कलकत्ता की ओर जा रहे थे। कांग्रेस के कुछ नेता बीच-बीच में आते, चिट्ठी-पत्री,

**शिकायत-सुझाव श्री सिंह को थमाते रहते। बातचीत आगे बढती है।**

## दूसरा फ्लैश बैक

**1954 के सफे वापस सामने है। अदालत का फैसला हो चुका है। युवा अधिवक्ता अर्जुनसिंह 5 मई को अपने पिता को रीवॉ सेट्रल जेल के सुपुर्द करते है। सीखचो के अंदर पिता और बाहर पुत्र। सलाखो के इस पार से अर्जुनसिह सकल्प लेते हैं, "आज जो कलक परिवार पर लगा है, उसे जनता की सेवा के माध्यम से एक दिन धो डालूँगा।"**

एक और याद। "1960 मे मैंने पडितजी को दिल्ली पत्र लिखा।" अर्जुनसिह काफी कुछ भावुक हो उठे थे, फिर भी सयत थे, आगे बोले, "पत्र भावनाओ से ओतप्रोत था – मैंने लिखा था कि पडितजी, मैंने फैसला किया है कि जनसेवा के माध्यम से अपने भाग्य से प्रतिशोध लूँ, व्यक्ति से नहीं। उनका जवाब भी आया। विधानसभा मे मैने इसी बीच एक प्रस्ताव रखा कि सभी जन-प्रतिनिधियो को अपनी सपत्ति की घोषणा करनी चाहिए। मैंने अपनी जायदाद का ब्यौरा तत्कालीन सभापति श्री कुजीलाल दूबे को पत्र मे दे दिया, जिसे उन्होने सदन मे पढकर सुना दिया। सदस्यो ने भारी विरोध किया। तत्कालीन मुख्यमत्री डॉ काटजू से अपील की गई कि इस हिस्से को सदन की कार्रवाई से निकाल दिया जाए। मैने इस सदर्भ मे पडितजी को भी पत्र लिखा। पत्र मिलते ही नेहरूजी ने दिल्ली बुलाया। उन्होने सपत्ति-घोषणा की बात पसद की। इसके बाद उसी साल ए आइ सी सी ने एक परिपत्र जारी किया, जिसमे निर्देश दिए गए कि निर्वाचित काग्रेस प्रतिनिधि अपनी सपत्ति का विवरण पार्टी-अध्यक्ष को दे।

"इसी मुलाकात मे पडितजी से मैने यह भी कहा कि जब-जब मैने काग्रेस मे आने की कोशिश की, तब-तब कोई अप्रिय घटना घटती रही। प्रवेश टलता रहा। पडितजी ने डॉ काटजू से सपर्क किया। उसके बाद मैं विधिवत काग्रेस मे शामिल हो गया। आज भी मै उसी सकल्प को पूरा करने मे जुटा हूँ।"

हम वापस आज मे लौटे–

"क्या ऐसा सभव हो सकेगा? प्रधानमत्री के मुताबिक काग्रेस मे बिचौलियो और दलालो की भरमार है। सामती तत्व हावी है। आप सामतवाद से कैसे लड पाएँगे?" जवाब मे वे अपनी विख्यात शालीनता व विनम्रता के साथ कहने लगे, "मै समझता हूँ काग्रेस मे सामतवाद या सामतीवर्ग जैसी कोई चीज नहीं है। परतु, सामती मानसिकता अवश्य है। राजीवजी का भी इसी मानसिकता से आशय था।"

फिर कुछ क्षणों के लिए हमारी चर्चा साम्यवादी देशों के अनुभवों के आसपास घूमने लगी। "आप अच्छी तरह जानते हैं कि साम्यवादी देशों में सामंती एवं पूँजीवादी वर्ग तो समाप्त हो जाते है, परतु वैसी मानसिकता लबे समय तक बनी रहती है।" (याद आया, माओत्से तुग ने कुछ ऐसा ही अनुभव किया था। उनकी मान्यता थी कि बुर्जुआ वर्ग की समाप्ति के बावजूद 'बुर्जुआ-मानसिकता' के खिलाफ संघर्ष लंबे समय तक जारी रहता है।) "काग्रेस की भी ऐसी ही स्थिति है।" उपाध्यक्ष ने मत दिया। उनका तर्क था, "काग्रेस ने सामंतवाद समाप्त कर दिया है, सामत-वर्ग को तोड दिया है। इसलिए यह कहना कि सामत-वर्ग पार्टी पर हावी है, सही नहीं है। यदि ऐसा होता तो काग्रेस इतने प्रगतिशील कदम नही उठा सकती थी।" फिर जागीरदारी प्रथा, बधुआ प्रथा, ऋण-मुक्ति, प्रीवीपर्स की समाप्ति, बैको का राष्ट्रीयकरण जैसे प्रगतिशील कदमो का उल्लेख हुआ। मध्यप्रदेश मे झुग्गी-झोंपड़ी निवासियो और रिक्शाचालको को मालिकाना हक देना ऐसे कदम थे जिससे जायदादधारी और जायदादहीन वर्गो के बीच स्थायी तनाव के बिन्दु पैदा हुए हैं। क्या ऐसे कदम कोई सामती वर्ग ले सकता था?" श्री सिह ने सवाल किया।

उपाध्यक्ष ने अपनी बात जारी रखी "राजीवर्जी सामती मानसिकता को समाप्त करना चाहते है। इस दिशा मे एक ठोस कदम यह रहेगा कि निर्णय लेने की प्रक्रिया का व्यापक विस्तार हो, उसका अधिक लोकतत्रीकरण किया जाए, क्योकि सामती मानसिकता निर्णय लेने की प्रक्रिया को सीमित कर देती हैं। ऐसे ही कदम राजनीतिक-सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रो मे भी उठाए जाएँगे।"

"पिछले एक लबे अरसे से हो यह रहा है कि काग्रेस पार्टी केवल राजनीति मे ही गुम होकर रह गई है। जीवन के दूसरे क्षेत्रो मे क्या होना चाहिए, इससे उसका कोई सरोकार नही रहा। मिसाल के तौर पर सस्कृति और शिक्षा के क्षेत्र मे काग्रेस की भूमिका बिलकुल गोल है। ऐसा क्यो ?" मैने पूछा।

"आपका कहना बिलकुल सही है। कुछ भी नही हुआ है। हालाँकि ए आई सी सी मे इस प्रकार के कई विभाग है। परतु उनकी कोई सार्थक भूमिका सामने नहीं आ रही है। हमारी कोशिश अब यह रहेगी कि काग्रेस गैर-राजनीतिक क्षेत्रो मे भी गतिशील बने। मै इससे भी सहमत हूँ कि पार्टी मे एक लबे समय से वैचारिक बहसें बद है। मै चाहता हूँ कि वैचारिक अभियान पार्टी मे चलाया जाए।"

"आप इसे कैडर आधारित पार्टी क्यो नही बनाते?' मैने सवाल किया। उपाध्यक्ष अपना पक्ष रखते हैं, "काग्रेस कैडरवाली पार्टी कभी नही बन सकती, उसका 'मास करेक्टर' (जनसमूहवादी चरित्र) ही बना रहेगा। शायद यह ठीक भी है। इसके पीछे एक लबी ऐतिहासिक प्रक्रिया है। जन्म से लेकर आज तक इसमे विभिन्न धाराएँ बहती चली आ रही है। यदि इसे कैडरवाली पार्टी बनाते है तो कई धाराएँ सूख

जाएँगी; कई लोकतांत्रिक वर्गों के लिए कांग्रेस के दरवाजे बंद करने पडेंगे। हम नहीं चाहते कि कांग्रेस के जन-आधार सिकुडें। फिर भी मैं इससे सहमत हूँ कि एक सीमा तक कैडर तो होना ही चाहिए। पहले भी रहा है। इसके बगैर काम नहीं चलेगा। इसलिए कैडर तैयार करने के लिए प्रशिक्षण शिविर लगाए जा रहे हैं।"

"ठीक है। पर क्या आप ऐसा नही मानते कि कैडर के अभाव में पार्टी को नुकसान भी हुआ है। जिन प्रदेशों में कांग्रेस हारी है वहाँ वापस सत्ता में नहीं लौटी है। पश्चिम बंगाल सहित दक्षिण के प्रदेश इसके उदाहरण हैं। अब वह केवल हिन्दी क्षेत्र में सीमित हो गई है।"

"पहले तो मैं इस धारणा को ही गलत मानता हूं कि चुनाव में हार-जीत से ही किसी पार्टी का राष्ट्रीय या प्रादेशिक चरित्र तय होता है। और जिन प्रदेशों मे कांग्रेस हारी भी है, तो केवल 5-6 प्रतिशत से ही। अत: विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि गैर-कांग्रेसी राज्यों में भी कांग्रेस के आधार अभी तक हैं। यह सही है कि तमिलनाडु में लंबे समय से कांग्रेस सत्ता-दृश्य पर नहीं है। आंध्र प्रदेश और कर्नाटक तो ताजा घटनाएँ हैं।" उपाध्यक्ष ने प्रतिवाद किया।

"पश्चिम बंगाल को आप क्यो भूल रहे हैं! ऐसा भी तो हो सकता है कि तमिलनाडु का इतिहास दूसरे प्रदेशों में दोहरा दिया जाए ?" मैंने एक सवाल और किया। श्री सिंह कुछ क्षण चुप रहे, फिर बोले, "हम जनता से जुडे मुद्दो के बल पर फिर से उन प्रदेशों में सक्रिय होंगे। आप इतना तो मानेंगे कि गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक विषमता जैसे सवालों पर क्षेत्रीयता की दृष्टि अलग नहीं हो सकती। क्षेत्रीय दलों की तुलना में कांग्रेस अधिक शक्ति के साथ इन मुद्दों को उठा सकती है; ऐसी समस्याओ का निराकरण कर सकती है। अत: कांग्रेस की भूमिका को गैर-कांग्रेस प्रदेशों में कम करके नहीं ऑका जाना चाहिए।"

"अर्जुनसिंहजी, पिछले कुछ समय से यह भी देखा जा रहा है कि राजनीति पर नौकरशाही हावी होती जा रही है। राजनीतिक प्रशासक (पॉलीटिकल एक्जीक्यूटिव्ज) नौकरशाहों पर आश्रित होते जा रहे हैं। अधिकारी वर्ग से अधिक सलाह ली जाती है। राजनीतिक प्रबंध या राजनीतिक कार्यशैली एक कंपनी प्रबंध की तरह बनती जा रही है। इस संबंध में आपकी क्या प्रतिक्रिया है?"

"आपका यह कहना काफी हद तक सही है। किसी भी लोकतंत्र के लिए ये स्वस्थ लक्षण नहीं हैं। मेरा तो यही मत है कि निर्णय-प्रक्रिया में पॉलीटिकल एक्जीक्यूटिव की सर्वोच्चता रहनी चाहिए, अधिकारियों की नहीं। संक्षेप में, राजनीतिक कार्यपालिका का अधिकार, प्रयोग और उत्तरदायित्वों के मामले में अंतिम रहना चाहिए। आज जो चल रहा है, उसे बदलना होगा।"

"क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि भारत की सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था में कई विसगतियाँ हैं, कई विरोधी प्रक्रियाएँ एक साथ चल रही हैं ? एक तरफ कट्टर साप्रदायिकता है और दूसरी ओर तकनीकी क्राति, सुपर कम्प्यूटर युग मे प्रवेश कर रही है। शासक दल के उपाध्यक्ष के नाते ऐसी स्थिति मे देश का राजनीतिक व बौद्धिक नेतृत्व कैसा होना चाहिए ?" दमदम हवाई अड्डा छूने से पहले यह मेरा आखिरी सवाल था।

"जोशीजी मानव सभ्यता को ये झटके तो झेलने ही पडेगे। अमेरिकी लेखक एलविन टाफ्लर की प्रसिद्ध पुस्तक 'फ्यूचर शॉक' तो पढी ही होगी। असलियत यह है कि पिछडे देशो मे ऐसी समस्याएँ आम है। चारो तरफ देख लीजिए, जितने पिछडे व गरीब देश है वहाँ धार्मिक कट्टरता व धर्मान्धता भी है और तकनीकी विकास भी, दो विपरीत दिशाएँ एक साथ अस्तित्व मे है । भारत आज सक्रमण काल से गुजर रहा है।

"बहुत नाजुक क्षण हैं परतु अभिव्यक्ति के अपने-अपने तरीके है। मगर यह भी सच है कि जब सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक चेतना पैदा होगी और उस पर आधारित सही ढग के आदोलन तेज होगे, उस स्थिति मे साप्रदायिक शक्तियाँ और लोगो की धर्माधता जैसे मुद्दे अपने आप लुप्त हो जाएँगे" तब तक विमान हवाई अड्डे पर उतर चुका था। विमान के बाहर इका सासद प्रियरजन दास मुशी और सैकडो कार्यकर्ता मालाए लेकर खडे हुए थे। मै सोचने लगा कि श्री अर्जुनसिह का यह उपाध्यक्ष पद पडाव है, या पूर्ण विराम ? इतिहास के आनेवाले सफे इसका जवाब देगे।

# घेराबंदी

"अकबर साहब, मुझे उम्मीद है आप अपनी बुक–*दी सीज विदिन* – का अगला चेप्टर *लिफ्टिंग ऑव दी सीज विदिन* लिखने के लिए तैयार रहेंगे।"

पिछले महीने, चंडीगढ में एक दोपहर-भोज पर मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री और वर्तमान में पंजाब के राज्यपाल अर्जुनसिंह ने यह विश्वास-भरा वाक्य कलकत्ता से प्रकाशित अँगरेजी साप्ताहिक 'संडे' के युवा संपादक एम. जे. अकबर से पंजाब की ताजा स्थिति पर बातचीत करते हुए कहा था। पिछले रविवार चंडीगढ में जब मैं उनसे कुछ सवाल पूछ रहा था तो बाताचीत के आखिरी छोर पर उन्होंने मेरे लिए भी, इन शब्दों को दोहराना प्रासंगिक समझा। इसलिए मैंने इस साक्षात्कार के आलेख का आरंभ उसके अंत से करना पसंद किया है। राज्यपाल के साथ दो किस्तों में हुई बातचीत के दौरान उभरे आत्मविश्वास की यह झलक– लिफ्टिंग ऑव दी सीज विदिन यानी भीतरी घेराबंदी का अंत–सहसा पहले दिखाई दी। अकबर की पुस्तक–*दी सीज विदिन* इन दिनों काफी चर्चा मे है। पूर्व मुख्यमंत्री श्री सिंह इस पुस्तक का आजकल आनंद ले रहे हैं और सामने है पंजाब की समस्या का परिप्रेक्ष्य।

पंजाब की कमान सँभालने के पश्चात चंडीगढ में श्री सिंह का मध्यप्रदेश के किसी अखबार के साथ यह पहला साक्षात्कार था। श्री सिंह की व्यस्तता के कारण बातचीत दो किस्तों में पूरी हो सकी। एक तरह से यह ठीक ही रहा। साक्षात्कार का पहला हिस्सा तत्काल हो गया, परन्तु दूसरा हिस्सा समस्याग्रस्त राज्य के विभिन्न शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रो के तीन-रोजा दौरे के पश्चात पूरा हुआ। अत: मौके पर उभरनेवाले नए सवालो पर श्री सिंह के साथ बेबाक बातचीत की जा सकी।

**कहते हैं, जब किसी सक्रिय राजनेता से मुक्ति लेनी हो तो उसे राजनीति से वैराग दिलाकर राज्यपाल बना दो। राजनीतिक प्राणियों के बीच राजभवन एक तरह से**

सन्यासाश्रम माना जाता है। परन्तु, श्री सिह के मामले मे इस फार्मूले को बहुत माकूल नहीं कहा जा सकता।

पजाब-भूमि मे श्री सिह लीक से हटे राज्यपाल के रूप मे धीरे-धीरे प्रसिद्ध हो रहे हैं। उनकी राजनेता-राज्यपाल की एक स्वतत्र पहचान बनने लगी है। पूर्ववर्ती राज्यपाल श्री सतारावाला की कार्यशैली बिल्कुल भिन्न थी। कहा जाता है, पंछी को भी उनके दर्शन दुर्लभ रहते थे। बमुश्किल,एक दिन मे तीन-चार व्यक्तियो से वे मिलना पसद किया करते थे। चाहे एक घटे का सफर क्यो न हो, कैरियर से सैनिक अफसर श्री सतारावाला को हवाई यात्राएँ खूब रास आती थीं। दोपहर के भोजन के पश्चात विश्राम के समय, कोई कार राज-भवन मे दाखिल नही हो सकती थी।

लेकिन श्री सिह ने अपने द्वार सभी के लिए खोल रखे है। एक दिन मे कई-कई बैठके और पच्चीस-पच्चीग-तीस-तीस व्यक्तियो से मुलाकाते। सुबह आठ बजे से रात के ग्यारह बजे तक बातचीत के दौर। हवाई यात्रा के बजाय,भरपूर कार-यात्राएँ। बल्कि, ऐसा लगता है वे पजाब मे आकर अधिक मुखर हो गए हैं। मध्यप्रदेश मे वे जितने अपने मे सिमटे हुए दिखाई देते थे, चडीगढ मे उतने ही खुले-खुले लगते हैं। राजभवन मे उनकी सुरक्षा के लिए हिंदू और सिख दोनो ही तैनात हैं। अफवाह यह थी कि उनके स्टाफ मे कोई भी सिख नही है। लेकिन राजभवन के मुख्यद्वार का प्रहरी ही सिख है। निजी सेवा मे भी कई सिख है।

उनसे हुई बातचीत के प्रमुख अश—

**जोशी** *पजाब के विभिन्न भागो का दौरा करने से एक सच्चाई खास तौर पर उभरी है। औसत सिख महसूस करता है कि उसके साथ दोयम दर्जे के नागरिक जैसा व्यवहार किया जा रहा है। वह चाहता है कि उसकी खोई हुई गरिमा-प्रतिष्ठा लौटनी चाहिए।*

**सिह** यह एक आधारहीन धारणा है। सरकार सिखो को दूसरे नागरिको के समान ही समझती है, उनके साथ कोई सौतेला व्यवहार नही किया जाता और न ही सरकार की ऐसी कोई मशा है कि सिख समुदाय की गरिमा-प्रतिष्ठा को किसी तरह की ठेस पहुँचाई जाए। यदि वे ऐसा सोचते है तो गलत है। फिर भी हमारा प्रयास यही रहेगा कि उनकी मिथ्या धारणाएँ दूर हो। सरकार जो भी कदम उठाएगी, काफी सावधानी के साथ उठाएगी और एक ऐसा वातावरण पैदा करने की कोशिश करेगी, जिसमे वे अपने को गरिमायुक्त अनुभव करे।

**जोशी** : *लोगों की शिकायत यह भी है कि सरकार जानबूझकर सिखो को अलगाव मे रखना चाहती है। लोकप्रिय सरकार की समाप्ति के पश्चात राज्यपाल और*

*उनके सलाहकारों ने सिखों के साथ सीधा संपर्क नहीं किया; केवल नेताओं से ही मिलते रहे; आम सिख के मन की बात जानने की कोशिश नहीं की गई।*

**सिंह** : पहले के राज्यपाल क्या करते थे, मैं नहीं जानता। परन्तु, मेरी कोशिश यही रहती है कि मैं अधिक से अधिक लोगों से मिलूँ और उनकी समस्याओं को जानूँ। फिर भी मैं व्यक्तिगत संपर्क को और तेज करूँगा। बैसाखी के पश्चात जनसंपर्क अभियान चलाऊँगा। कस्बों और गाँवों को और करीब से समझने की कोशिश की जाएगी। इन्हीं जनसंपर्क अभियानों के जरिए सिख समुदाय का खोया हुआ विश्वास प्राप्त किया जा सकता है।

**जोशी** : *वैसे रिश्वत देश की समस्या है। परंतु पंजाब में रिश्वतखोरी की चर्चा बहुत सुनने को मिली। राज्य के कस्बाई एवं ग्रामीण क्षेत्रों में बगैर किसी अपवाद के हिंदू-सिख दोनों ने ही पुलिस महकमे में रिश्वतखोरी की शिकायत काफी की है। कई सिखों का यह भी कहना था कि अगर रिश्वतखोरी पर पाबंदी लगा दी जाए तो कई समस्याओं का हल हो सकता है। पुलिस आतंक जमाने के लिए लोगों को पकड़ती है और रिश्वत ऐंठकर उन्हें छोड़ देती है।*

**सिंह** : लोकतांत्रिक सरकार में कई बुराइयाँ होती हैं, उनमें से एक यह भी है। हम इस समस्या के प्रति पूरी तरह से सजग हैं। हमारा प्रयास रहेगा कि जल्द से जल्द इस बुराई पर काबू पाएँ। इस दिशा में कई कडे कदम उठाए जाएँगे। कोशिश यह भी रहेगी कि पुलिस किसी को नाहक तंग न करे। इस मामले में हमें जन-सहयोग भी चाहिए। हम चाहते है कि आतंक को दबाने में जनता भी सहयोग दे। इसलिए मध्यप्रदेश के समान पंजाब में भी मैं ग्राम-सुरक्षा समितियों का गठन करना चाहता हूँ। आतंकवाद को दबाने के मामले में ये समितियाँ उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। इसके अलावा लोगों को लाइसेंसशुदा हथियार लाने-ले जाने की छूट दे दी गई है। ऐसे लोगों को भी हथियार दिए जाएँगे, जिन्हें आतंकवादियों से संभावी खतरा बना हुआ है। हम चाहते हैं कि सरकार के साथ-साथ लोगों में भी आतंकवाद का मुकाबला करने के लिए एक 'सामूहिक इच्छा' पैदा हो। यही सामूहिक इच्छा सांप्रदायिक सद्भाव को सुदृढ बनाए रखेगी। एक समुदाय के रूप में सिख आतंकवाद में शामिल नहीं हैं। थोड़े-बहुत हैं, जो कि पूरे सिख समुदाय को बदनाम करने पर तुले हुए हैं। मेरा प्रयास यह भी रहेगा कि जनता से, खासतौर पर सिखों के बीच सीधा संपर्क कायम किया जाए; किसी प्रकार की कोई खाई या दूरी न रहे। परंतु, सिखों को भी चाहिए कि वांछित वातावरण पैदा करने में सरकार को सहयोग दें। सौहार्दपूर्ण वातावरण पैदा करने के लिए सिखों को अपनी हठधर्मिता छोड़नी चाहिए। यह कैसे मुमकिन हो सकता है कि हर मामले में 'सिखों का बोलबाला' रहे, जिसकी वे हमेशा माँग करते रहते हैं। स्थिति को सामान्य बनाने में सरकार ने जो

पहल-कदमी की है, उसका स्वागत किया जाना चाहिए। जोशीले और उग्रवादी नारे उछालने से किसी का कोई विशेष लाभ नहीं होगा।

हमारी कोशिश यही है कि पजाब की समस्या का समाधान हमेशा के लिए हो, किश्तों मे न हो।

**जोशी** : *फिर से उग्रवादी घटनाएँ सामने आ रही है। क्या ऐसी घटनाएँ पुन बडी त्रासदी के पूर्व संकेत तो नही?*

**सिह** . मै ऐसा नही मानता । कानून और व्यवस्था पूरी तरह से नियत्रण मे है। यह सही है कि स्थिति को पूरी तरह सामान्य होने मे समय लगेगा। इस तरह की छुटपुट घटनाओ से किसी निष्कर्ष पर नही पहुँचना चाहिए। स्थिति मे पहले से काफी सुधार हुआ है। हिदुओ और सिखो के सबध तनावपूर्ण नही है। सभव है, परस्पर सदेह हो। कई बड़े हादसो से गुजरने के पश्चात परस्पर सदेह या अविश्वास का होना अस्वाभाविक नहीं है। फिर भी दोनो के बीच सदियो पुराना भाई-चारा अभी बना हुआ है।

पजाब के बेरोजगाार नौजवान सिखो को रोजगार देने की दिशा मे कदम उठाए जा रहे है, उनको रचनात्मक कामो मे लगाने की योजना बनाई जा रही है, जिससे कि वे उग्रवादी गतिविधियो से दूर रहे। इसके लिए अलग-अलग क्षेत्रो मे लघु उद्योग-धधे स्थापित किए जा रहे है। छुटपुट आतकवाद से निपटने के लिए और सख्त कदम उठाए जा रहे है। रात की गश्त काफी बढा दी गई है।

**जोशी** *इसी से जुडा एक और मुद्दा है। पिछले अनुभव हैं कि सेना से रिटायर होनेवाले कई सिख सत भिडरॉवाले की मडली मे शामिल हो गए थे। क्या यह संभव नही हो सकता कि ऐसे अनुभवशील व्यक्तियो को भी किसी रचनात्मक काम में लगा दिया जाए, ताकि फिर से कोई मेजर शाह बग सिंह प्रकट न हो?*

**सिंह** : सुझाव बेहतर है। परतु सेना से अवकाश लेनेवाले व्यक्तियो की संख्या काफी है। अवकाश-प्राप्त सैनिको का किस तरह बेहतर उपयोग हो सकता है, इस संबंध मे गभीरता से सोचने की आवश्यकता है।

**जोशी** : *किसान पजाब की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं। हर जगह छोटे-बडे किसानों की शिकायत थी कि उन्हे न समय से पानी मिलता है, न बिजली, और न कर्ज ही।*

**सिंह** : हॉ, इस तरह की समस्याएँ तो हैं। फिर भी बिजली की सप्लाई में काफी सुधार हुआ है। और क्या किया जा सकता है, इस सबध मे सोचा जा रहा है।

**जोशी** : *लोकप्रिय सरकार की स्थापना हो, इस संबंध में आपका अभी तक का कोई*

*सार्थक प्रयास?*

**सिंह** : मेरा प्रयास यही है कि पंजाब मे जल्द से जल्द लोक-प्रतिनिधि सरकार की बहाली हो। परंतु, कई पेचीदगियॉ हैं। बावजूद इन सबके, उम्मीद भी है कि देर-सबेर लोकप्रिय सरकार लौट आएगी। निश्चित समय-अवधि देना कठिन है, तब भी इस साल के अदर यह काम संपन्न होना चाहिए।

**जोशी** . *चलिए, लौटे मध्यप्रदेश की ओर। क्या एक सक्रिय राजनेता को राज्यपाल के पद पर बोरियत नही होती होगी?*

**सिंह** : ऐसी कोई बात नही । यहॉ भी उतनी ही सक्रियता है। बल्कि यहां का परिश्रम कुछ मानो मे मध्यप्रदेश से अधिक है। यहॉ भी कम जिम्मेदारी न समझे। बस इतना अतर आया है कि वहॉ अध्ययन-मनन के लिए समय नहीं मिलता था, परंतु इसके लिए यहॉ समय है। आजकल एम जे अकबर की ताजा पुस्तक—*दी सीज विदिन* पढ रहा हूँ। पिछले दिनो अकबर साहब यहॉ आए थे। काफी बातचीत हुई। मुझे आशा है कि वे अपनी पुस्तक का दूसरा अध्याय *लिफ्टिंग ऑव दी सीज विदिन* लिखेगे। इसके लिए पजाब मे उचित भूमिका तैयार करने का प्रयास करूँगा। *(हॅसी )*

**जोशी** . *और पजाब से मुक्ति के पश्चात भोपाल लौटने का कोई विचार ?*

**सिह** . अरे भाई, पजाब से मुक्ति के पश्चात कुछ समय के लिए आराम करना चाहता हूॅ। जोशीजी, आठ साल से लगातार खट रहा हूॅ। अब पोते-पोती बडे हो गए है। उनका भी तो हक है।

**जोशी** . *इसका मतलब आप राजनीति से वैराग लेगे?*

**सिंह** : *(जोर का ठहाका)* अरे भाई, ऐसा नहीं। सच बात तो यह है कि सब कुछ मेरे नेता राजीवजी पर निर्भर है। जैसा वे आदेश देंगे, वैसा ही करूँगा।

**14 अप्रैल, 1985**

## अर्जुन सिंह से साक्षात्कार - 4

# घेराबंदी से मुक्ति

'याद है आपको, अप्रैल मे मैने कहा था कि पजाब की घेराबदी का जल्दी अत होगा, स्थिति सामान्य होगी, शाति लौटेगी और यह प्रदेश अन्य प्रदेशो के समान फूले-फलेगा। आज उस मजिल के आस-पास है हम।"

पजाब के राज्यपाल और मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमत्री श्री अर्जुनसिह ने ये शब्द 29 जुलाई को एक खुली बातचीत मे दोहराए। पाठको को याद होगा, श्री सिंह का यह आत्मविश्वास और भविष्यवाणी इसी 14 अप्रैल की एक भेटवार्ता मे झलकी थी। अवसर था बैसाखी का। जरा याद कीजिए उस समय के पजाब को हर दिन हत्या और विस्फोटो का दौर । कही आतकवाद का जिन्न ताण्डव कर रहा था, तो कभी अकालियो के मोर्चे, धर्मयुद्ध और घल्लूघारा का भूत पजाब पर सवार होता था। रात नौ बजे के बाद से पजाब की सडको से जीवन फरार रहता था। रात्रि-बसे गुमशुदा बनी हुई थी। मोटरसाइकिल पर डबल सवारी पर रोक थी। हर चौराहे, हर मोड पर अर्द्ध-सैनिको और सैनिको की चौकियाँ हुआ करती थीं। हर वक्त पजाब की साँसे दहशत के बीच नीचे-ऊपर हुआ करती थीं।

आज पजाब एक खुले आकाश मे उडान भर चुका है। सडको पर सन्नाटे का निशाचरी काल टूटता जा रहा है। रात्रि-बस-सेवाएँ शुरू हो चुकी हैं। दहशत लापता है। लोगबाग खुले मन से एक-दूसरे से मन की बात बतियाते हैं, जैसा भी अब तक घटा है उसे एक भयावह स्वप्न का नाम देते है। रावी-व्यास के तटो पर एक नया जीवन अकुरित हो इसके लिए सभी के कंधो पर इच्छा व प्रयासों के लागल है।

एक कोरे कागज पर एक वाक्य- राजीव-लोगोवाल समझौता—लिख देना जितना आसान है, उससे कितने गुना कठिन रहा होगा इसकी भावना को शब्दो मे ढालना।

**राष्ट्रीय त्रासदी की कोख से जन्मे इस समझौते को कैसी प्रसव-पीड़ा के दौर से** *गुजरना पडा होगा? **कितने खतरे थे इस प्रसव मे।*** *हरेक को '**मिसकेरिज**' का डर* था। मान लीजिए, **यह समझौता नहीं** होता तो इससे **सबद्ध** व्यक्तियों **की छवि कैसी** रहती? विगत में इंदिरा-काल के दौरान भी चद प्रयास किए गए थे। जितनी बार प्रयास विफल हुए, उतनी ही बार इदिराजी के प्रति सिख-समुदाय का गुस्सा भी गाढा हुआ। इदिराजी और अकाली दल के बीच कोई मध्यस्थ रक्षा-कवच नहीं रखा गया था। इस बार इस कमी को दूर किया गया। प्रधानमत्री और सिख समुदाय के बीच राज्यपाल का एक रक्षा-कवच रखा गया, ताकि समय पडने पर दोनों ओर के आक्रमण झेल सके। राज्यपाल श्री सिह ने यह भूमिका सफलता के साथ निभाई है, रोज सत्रह-सत्रह घटे काम किया है। शाम 6 बजे तक राज्य के विकास-कार्यों से जूझना, उसके बाद समझौता-ऑपरेशन शुरू करना। एक महीने मे तीस-तीस दफे दिल्ली-चंडीगढ के बीच श्री सिह को चक्कर लगाना पडा है। सुबह पाँच बजे उठकर योगाभ्यास एव ध्यान से नई ऊर्जा की प्राप्ति के साथ फिर कभी दिल्ली कूच की तैयारी, तो कभी बाढ-क्षेत्रों का दौरा। और इसी दौरान गुरु गोविन्द सिंह से लेकर अमृता शेरगिल तक का अध्ययन। आजकल कैनेडी परिवार पर लिखी गई पुस्तक–*डायनेस्टी ऑर डिजास्टर* पर ऑखे गडी हुई है राज्यपाल की।

कैसे भरी उडान मुक्त गगन मे एक लहूलुहान पछी ने? सुनिए हर महत्वपूर्ण पल की यात्रा-गाथा खुद राज्यपाल अर्जुनसिहजी के मुख से

"जब मै मार्च महीने मे भोपाल से चडीगढ पहुँचा था, मेरे सामने दो स्पष्ट उद्देश्य थे–आतकवाद का अत और पजाब मे सामान्य स्थिति का निर्माण। प्रधानमत्री का इस दिशा मे साफ निर्देश मेरे साथ था। उनका नारा था– पजाब की प्रगति और आतक का अत। उनका यह सदेश मुझे पजाब के कोने-कोने में पहुँचाना था, इस सदेश के शुभ परिणाम निकल सके, इसके लिए बंजर भूमि को उपजाऊ भूमि मे बदलना था। बस, इस विश्वास के साथ प्रयास शुरू कर दिए।

"जैसाकि आप जानते ही है, मेरे पजाब पहुँचने से दो दिन पहले सत लोगोवाल और तलवडीजी रिहा किए गए थे। इन दोनो अकाली नेताओं ने बाहर आकर उग्रवादी भाषा का प्रयोग किया, जिसे लोगों ने पसद किया, क्योंकि इन दोनो नेताओं को मालूम था कि इस समय पजाब के लोग कडी भाषा पसद करेंगे। उस समय तक मेरा इन सिख नेताओ के साथ न कोई सपर्क था, और न ही सवाद।"

"टूटे रिश्तो के बीच मैंने कार्यभार सम्हाला था। शुरू से ही राजीवजी की व्यूहरचना यह रही कि पजाब मे शाति और विकास को एक दूसरे से जोडकर संवाद स्थापित किया जाना चाहिए। इसके लिए यह जरूरी था कि लोगों का ध्यान आतकवाद से हटाकर शाति और प्रगति की ओर ले जाया जाए।"

"मैं यहाँ एक बात और साफ करना चाहूँगा। पिछले चार महीनों के दौरान प्रधानमत्री को जितने करीब से देखने और समझने का अवसर मिला है, उससे पहले कभी नही मिला। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि अपनी माँ की हत्या के बावजूद राजीवजी ने एक पल के लिए भी सिखो के प्रति दुर्भावना या कटुता-खिन्नता जाहिर नहीं की। उनकी जगह कोई और व्यक्ति रहता तो उसकी दृष्टि व्यक्तिगत राग-द्वेष से प्रेरित रहती, पूर्वाग्रह-दुराग्रह उसके मन मे रहते। परतु, प्रधानमत्री श्री गाँधी के मन मे सिखो के खिलाफ लेशमात्र भी बदले की भावना पैदा नहीं हुई। मै स्वय हैरान हूँ वे जब भी मुझसे मिले, उन्होने हमेशा मुझसे एक तटस्थ प्रधानमत्री के नाते पजाब पर बाते की, न कि स्व इदिरा गाँधी के पुत्र राजीव गाँधी के रूप मे। वास्तव मे उनमे यह जबरदस्त गुण है। मुझे उनकी इस ऊर्जा का परिचय उस समय भी मिला जब वे आतक के माहौल मे हुसैनीवाला आने के लिए तैयार हो गए।"

"प्रधानमत्री की इस व्यूहरचना का वाछित प्रभाव पजाब के लोगो पर पडा, हालाँकि अकालियो पर अपेक्षित असर नही हुआ था उस समय। इस व्यूहरचना के पक्ष मे जनमत तैयार करने का काम मैने जोर-शोर से शुरू कर दिया। धीरे-धीरे एक अच्छा वातावरण बनने लगा। लोगो को अनुभव होने लगा कि आतक को समाप्त किए बिना शाति सभव नहीं है और शाति के बिना प्रगति की शुरूआत सभव नहीं है। यह अप्रैल का पहला पखवाडा था।"

"इस पखवाडे के दौरान और भी कई कदम उठाए गए। सिख छात्रो के सगठन से पाबदी हटाई गई। टोहरा और बादल को रिहा किया गया। एक बडा कदम और उठाया गया। इस साल 13 अप्रैल को बैसाखी अमृतसर मे काफी धूमधाम से मनाई गई। आप जानते ही है कि इस समारोह मे कई प्रदेशो के मुख्यमत्री, नेता और सासद शामिल हुए थे। वास्तव मे यह समारोह समझौते के लिए बनी व्यूहरचना का ही अग था। हम चाहते थे कि पजाब मे जो कुछ भी किया जा रहा है और/या किया जानेवाला है, इसके लिए अन्य राज्यों की जनता का भी समर्थन जुटाया जाए। इसके साथ ही पजाब की जनता को भी यह जतला दिया जाए कि शाति की जरूरत केवल उसकी अकेले की नही है बल्कि दूसरे प्रदेशो की जनता की भी है। अभी कोई भी, टकराव और हिसा पसद तथा बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं है। इसलिए हमारे लिए यह जरूरी था कि अन्य राज्यो के जनप्रतिनिधियो को पंजाब लाया जाए।"

"इस समारोह का प्रभाव अनुकूल रहा। अकाली दल ने मोर्चा स्थगित कर दिया, केवल घल्लूघारा मनाने का निर्णय लिया। अकाली नेताओ ने यह भी साफ कर दिया था कि वे शाति के साथ घल्लूघारा मनाएँगे। हम यही चाहते थे।"

"छब्बीस अप्रैल को लोंगोवालजी दिल्ली-यात्रा पर निकले। इस यात्रा से हमे काफी

लाभ हुआ। उन्होंने देखा कि पंजाब के बाहर भी एक भारत है जिसकी समझदारी को नकारा नहीं जा सकता। हम यही चाहते थे कि वे पंजाब के बाहर के लोगों को ठीक से समझें। अपनी दिल्ली-यात्रा के दौरान वे इन्द्र कुमार गुजराल जैसे प्रतिपक्षी नेताओं के संपर्क में आए।"

"यहां यह बताना भी जरूरी है कि इसी बीच प्रधानमत्री और प्रतिपक्षी नेताओं के बीच संपर्क भी हुआ। प्रधानमत्री ने प्रतिपक्षी नेताओं से कहा था कि अकाली नेताओ के साथ बातचीत के आधार के लिए यह जरूरी है कि सरकार के पास उनकी मॉगो का एक अंतिम लिखित दस्तावेज हो क्योंकि अखबारो मे मॉगे अलग-अलग ढग से छपती रहती है। साथ ही अकाली नेताओं की मॉगें बदलती भी रहती हैं। राजीवजी के आग्रह पर विपक्षी नेताओ ने उन्हे आश्वासन दिया कि वे अकाली नेताओ से मॉगों का लिखित ब्यौरा प्राप्त करके सरकार को देंगे। अपनी दिल्ली-यात्रा के दौरान सतजी विभिन्न धाराओ के संपर्क मे आए। मैं मानता हूँ कि इस यात्रा का उन पर प्रभाव अवश्य पडा है। मेरा यह भी मत है कि लोंगोवालजी ने दिल्ली-यात्रा के बाद ही समस्या के समाधान की दिशा मे अपनी मन स्थिति बना ली थी कि क्या किया जाए।"

**जोशी** · *लेकिन दिल्ली से पजाब लौटते ही अकाली दल के टुकडे भी हो गए। सत भिंडरॉवाले के पिता बाबा जोगेन्द्रसिह के नेतृत्व मे एक नया अकाली दल बन गया। इससे आप घबराए नही ?*

**अ. सि.** : वास्तव मे अकाली दल के लिए यह बडी नाजुक स्थिति थी। सब दुविधा मे थे कि क्या करे। जोगेन्द्रसिह गुट उग्रवादी बोली बोल रहा था। इस दुविधा की स्थिति में अगला निर्णय लेने मे पॉच-सात दिन लग गए।

मई के पहले सप्ताह मे पजाब विश्वविद्यालय मे पजाबी के प्रोफेसर डॉ अतरसिह से सपर्क हुआ। डॉ सिंह संतजी के विश्वासपात्र थे, इसलिए उनके माध्यम से सपर्क किया गया। अकाली दल के अध्यक्ष लोंगोवाल को संदेश भेजकर पूछा गया कि आखिर उनकी व्यक्तिगत राय क्या है? उन्हे यह भी संदेश भेज दिया गया कि प्रधानमत्री की दिली इच्छा है कि संविधान के अंतर्गत और देश की अखंडता के दायरे मे रहते हुए पजाब समस्या का हल जल्द से जल्द हो, और इसके लिए प्रधानमत्री कृतसकल्प है। इस संदेश का थोडा-बहुत असर पडा। यही कारण है कि सतजी जोगेन्द्रसिह के साथ नहीं गए। इसके साथ ही दोनो के बीच दूरी बढने लगी। सपर्क के इस सिलसिले के साथ ही ऐसे बिन्दु भी स्पष्ट होने लगे जिनके आधार पर दोनो ओर से अगले कदम उठाए जा सकते थे।

**जोशी** : *इसके साथ ही दिल्ली मे बम विस्फोटो की घटनाएँ भी हुई। क्या इन*

*घटनाओं का आपके प्रयासों पर प्रभाव नहीं पडा?*

**अ. सिं.** : बल्कि अनुकूल असर पडा। इन घटनाओं के बाद ही लोंगोवालजी के रवैये में जबर्दस्त परिवर्तन आया। सच्चाई यह है कि सतजी के साथ-साथ समूचे सिख समुदाय ने नए सिरे से सोचना शुरू किया। इन घटनाओं की खुलकर भर्त्सना की गई। इन घटनाओ के कारण ही सत गुट ने अपनी एक अलग पहचान बनाए रखने का फैसला किया।

रूस जाने से पहले प्रधानमत्री ने मुझे यह स्पष्ट आदेश दिया कि उनकी गैर-मौजूदगी मे हिसा नहीं होनी चाहिए। लोगोवालजी को भी स्पष्ट कर दिया गया कि सरकार किसी भी कीमत पर और हिसा बर्दाश्त नहीं करेगी। आतकवाद को कुचलने के लिए वह किसी भी सीमा तक जा सकती है। सच कहूँ, हमने हिंसा से निपटने के लिए पूरी तैयारियाँ भी शुरू कर दी थीं।

सतजी ने भी रचनात्मक रास्ता अपनाना शुरू कर दिया। उन्होने हिंसा का विरोध किया। इससे दोनो खेमो मे दूरी और बढती गई। हमारा यही लक्ष्य था। इसके साथ-साथ हम जनमत तैयार करते चले गए। हममे विश्वास पैदा होता गया कि लम्बी शाति बनाए रखी जा सकती है।

***जोशी** : क्या रूस-यात्रा के दौरान प्रधानमत्री ने आपसे सम्पर्क किया था?*

**अ सिं.** हाँ, एक बार किया था। वे पजाब की ताजा स्थिति जानना चाहते थे। श्री गाँधी के लौटने पर मुझे डॉ अतरसिह से पुन सम्पर्क करके सीधी बातचीत का आधार तैयार करने को कहा गया।

***जोशी** . क्या यह सही है कि आ, समझौते से पहले तीस-चालीस मर्तबे सतजी से मिले?*

**अ सि** ये मनगढत खबरे है। सुरजीतसिंह बरनाला बलवतसिह आदि अकाली नेताओ से चार-पाँच मुलाकाते जरूर हुई थीं। जाहिर है, समझौते के संबंध में चर्चाएँ हुई। इन सारी चर्चाओ से मै हर क्षण प्रधानमंत्री को अवगत कराता रहा, ताकि किसी भी प्रकार की कोई गलतफहमी पैदा न हो सके, और वांछित कदम उठाया जा सके।

***जोशी** . प्रधानमत्री ने सत लोगोवाल को पहला औपचारिक पत्र कब लिखा था?*

**अ सिं.** : सचिव शकर नारायण ने ही निमत्रणपत्र सतजी के गाँव जाकर उन्हें दिया और 21 जुलाई को सतजी का जवाब मिल गया। संतजी का पत्र प्रधानमंत्री को संबोधित था।

***जोशी** : क्या यह सच है कि प्रकाश सिंह बादल और टोहरा प्रधानमत्री के साथ*

*बातचीत के लिए शुरू से ही तैयार नहीं थे, और आखिर तक संतजी को दिल्ली जाने से रोकते रहे ?*

**अ. सिं.** : इस संबंध में मेरी कोई निजी जानकारी नहीं है । और फिर यह अकालियों का आंतरिक मामला है; मुझे इस संबंध में कुछ नहीं कहना है ।

परन्तु इतना जरूर कहा जा सकता है कि चाहे जो लोग असहमत रहे हों, संतजी ने वार्ता के लिए अपना दिमाग पहले ही बना लिया था । वे इस पर अंत तक अडिग रहे । वार्ता का निर्णय उन्होंने स्वयं लिया । यहाँ एक तरह से गुरु ग्रथसाहिब ने भी इसका समर्थन किया ।

***जोशी*** : *क्या मतलब ?*

**अ. सिं.** : आप जानते ही हैं कि कोई महत्वपूर्ण या ऐतिहासिक फैसला लेने से पहले सिख लोग अपनी धार्मिक पुस्तक को देखते हैं । मेरी जानकारी के मुताबिक 21 जुलाई की सुबह संतजी, बलवंतसिहजी, डॉ अतरसिंह आदि ने ग्रथसाहिब को खोला और दिल्ली-वार्ता के लिए आदेश लिया । ग्रथसाहिब खोलने पर जो आदेश था वह यह कि आप लोग जो करने जा रहे हैं वो सबके हित मे है और हम तुम्हारे साथ हैं । संतजी के लिए यह अच्छा शकुन था । इससे उन्हें बहुत मदद मिली, क्योंकि धार्मिक वैधता उनके साथ थी ।

***जोशी*** : *यह कहाँ तक सच है कि सैनिक भगोडों के सवाल पर दिल्ली-वार्ता टूटनेवाली थी?*

**अ. सिं.** : ये खबरें बेबुनियाद हैं । भगोडों के सवाल पर कोई मतभेद नहीं था, केवल नदी के पानी के मुद्दे को लेकर थोडी-बहुत बाधाएँ थीं; वो भी सैद्धांतिक नहीं थीं, बल्कि उसके कुछ व्यावहारिक पक्ष को लेकर थीं । दुबारा बातचीत के बाद ड्राफ्ट में इधर-उधर हेरफेर किया गया था । परन्तु यह कहना गलत है कि हमारी वार्ता टूटनेवाली थी ।

***जोशी*** : *संतजी कहते हैं कि समझौते में कुछ गुप्त धाराएँ हैं जो कि सही समय पर बताई जाएँगी?*

**अ.सिं.** : समझौते में गुप्त धाराएँ कोई भी नहीं हैं । संतजी सीधे आदमी हैं । लोगबाग भगोड़ों को लेकर गलतफहमी पैदा करने की कोशिश कर सकते हैं । परन्तु, समझौते में यह साफ है कि उनका पुनर्वास किया जाएगा । सैनिक अदालतें जैसी भी सजा देंगी, सरकार का उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं होगा । प्रधानमंत्री ने तो समझौते से बहुत पहले ही अपनी स्थिति साफ कर दी थी । यह सही है कि मानवीय आधार पर भगोड़े सैनिकों का पुनर्वास किया जाएगा ।

***जोशी*** : *आपके अलावा समझौते मे और किन-किन लोगों का योगदान रहा है?*

**अ. सिं.** : श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह और गृहमत्री श्री चह्वाण का। इन नेताओं ने भी बरनाला और बलवतसिह से समय-समय पर बातचीत की है।

***जोशी*** : *कुछ क्षेत्रो का कहना है कि समझौते के सूत्रधार श्री अरुणसिह हैं; वे अंत तक सक्रिय रहे है। यहाँ तक कि उनकी सलाह पर ही श्री गाँधी ने आपको भेजा था?*

**अ सिं** . यह तो मै नहीं जानता कि किसकी सलाह से मुझे पजाब भेजा गया था। लेकिन इतना जरूर कह सकता हूँ कि समझौते के दो दिनों मे श्री अरुणसिह देश से बाहर थे। फिर भी श्री अरुणसिंह के साथ-साथ श्री अरुण नेहरू से समय-समय पर बातचीत होती रहती थी। दोनो का योगदान रहा है।

पर आप जानते हैं कि इस समझौते की सफलता का सबसे बडा श्रेय श्री गाँधी को है। इसलिए ही नहीं कि वे प्रधानमत्री हैं बल्कि इसलिए भी कि उन्होने समझौते के सबध मे जबर्दस्त गोपनीयता बरती है। बहुत सीमित लोगो को ही समझौते के सबध मे मालूम था। लोगो को बिलकुल भी भनक नही होने दी। डॉ अतरसिह की भूमिका भी सराहनीय रही है, जिन्होने बगैर किसी लागलपेट के संतजी और सरकार के बीच भरोसेमद सेतु की भूमिका निभाई है।

***जोशी*** : *क्या आप ऐसा समझते है कि कुछ लोग समझौता नहीं होने देना चाहते थे?*

**अ. सिं.** : इसकी सभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। विगत मे भी ऐसे प्रयास हो चुके है। इसलिए इस बार अत्यत सावधानी बरती गई है।

***जोशी*** . *जिस ढग का समझौता हुआ है क्या इंदिरा शासन मे यह सभव नहीं था ?*

**अ. सि** . चूँकि उस समय इस समस्या से मेरा कोई सबध नहीं था, इसलिए इस सबध मे मेरी कोई राय नही है।

***जोशी*** : *क्या राष्ट्रपति ज्ञानीजी और पूर्वमुख्यमत्री दरबारासिह से कोई राय ली गई थी?*

**अ. सिं.** : किसी भी राष्ट्रपति को इस तरह के विवाद में घसीटना उचित नहीं है। वैसे दरबारासिहजी को इस सभझौते के सबंध मे कोई जानकारी नहीं थी।

***जोशी*** : *पिछले चार महीनों के दौरान आपको इस मामले में पूरी आजादी थी?*

**अ. सिं.** : जी हॉ। मेरे काम में किसी ने कोई हस्तक्षेप नहीं किया। प्रधानमंत्रीजी ने मुझे पूरी छूट दी थी।

***जोशी* : *अब अगला कदम आपका क्या रहेगा?***

**अ. सिं.** : जाहिर है पंजाब में निष्पक्ष चुनाव कराना। जनता का जैसा भी निर्णय रहेगा वह सभी को मान्य होना चाहिए। चुनाव कराने से बहुत सारे तनाव स्वत: दूर हो जाएँगे। इसके साथ ही मेरी कोशिश यह भी रहेगी कि राज्य में शांति बनी रहे, कानून और व्यवस्था भंग न हो।

***जोशी*** : *क्या आप समझते हैं कि समझौते के बाद अब राज्य में स्थायी शांति कायम हो गई है?*

**अ. सिं.** : यह कहना जरा मुश्किल है। फिर भी यह तो स्वीकार किया जा सकता है कि पजाब में एक 'टिकाऊ शांति' (ड्यूरेबल पीस) रहेगी। समझौते का यह कतई मतलब नही है कि आतंकवादियों के मामले में प्रशासन ढीला पड जाएगा। आज भी पूरी सावधानी बरती जा रही है।

***जोशी*** : *खबरें छपी हैं कि आपके जीवन को खतरा है, आतंकवादी घात में हैं। क्या यह सच है?*

**अ. सिं.** : ऐसी सूचनाएँ है। फिर भी चिंतित होने की कोई आवश्यकता नहीं है। मै तो केवल इतना ही कह सकता हूँ कि यदि किसी दिन कोई दुर्भाग्यपूर्ण घटना होती भी है तो मेरी यही प्रार्थना रहेगी कि देश की एकता-अखंडता के लिए राजीवजी ने जो कदम उठाए हैं, उनमें कोई व्यवधान पैदा नहीं होने देना चाहिए।

***जोशी*** : *क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि मध्यप्रदेश की तुलना मे पंजाब में आपकी राजनीतिक कार्यशैली का उदात्तीकरण (सब्लीमेशन) हुआ? मेरा मतलब, पजाब में आप एक बडे उद्देश्य के प्रति समर्पित रहे है ?*

**अ. सिं.** : मै इतना ही कह सकता हूँ कि पजाब में राष्ट्रीय सदर्भ की दृष्टि से मुझे 'जॉब-सेटिस्फेक्शन' अधिक हुआ है।

**1 अगस्त, 1985**

# एक नाविक-विश्वास

तूफानी नदी के पार उतरकर घाट पर पाल डाले देखा है किसी निढाल, सुस्ताते चौकस नाविक को? ठीक वैसी ही दशा पजाब क राज्यपाल अर्जुनसिंह की आजकल है। पजाब-समझौते क पश्चात् राजभवन मे इतमीनान के साथ बैठना श्री सिंह के लिए अब दुर्लभ क्षण नही है। एक व्यस्तत मिश्रित फुर्सत की सी मनोदशा है उनकी। चडीगढ़ स्थित पजाब राजभवन मे मिलिए उनसे व भी पाएँगे उन्हे बहुत कुछ तनावमुक्त। जरूरत पडने पर खिलखिलाकर हस भी देगे। कभी कभी वे अपनी जगविख्यात 'तार इबारती' शैली मे फिसलत हुए दिखाई देंगे। कुछ अच्छे परिचित हुए तो आपसे गौर कजूस बने बातचीत कर लेग। हो सकता है आप दग रह जाए। पर मेरा अनुभव फिर से सप्ताह भी रहा है। राज्यपाल काफी बेफिक्र लगे मगर उतने ही चौकस। तो लीजिए उनके साथ एक बार फिर हुई गुफ्तगू के चद हिस्से हाजिर है स्थान राजभवन का दफ्तरी कमरा है।

***जोशी*** *लगता है काफी फुर्सत से है?*

**अ सि** अब राज्यपाल का काम ही क्या रह गया है? समझौता हो गया मेरा काम खत्म। और फिर प्रतिनिधि सरकार बनने क पश्चात राज्यपाल की भूमिका कितनी रह जाती है?

***जोशी*** *अभी सरकार बनने मे देर है?*

**अ सि** बहुत अधिक नही एक-डेढ महीने की बात है, मेरा पूरा प्रयास है कि चुनाव शातिपूर्वक हो जाए सरकार बन जाए। बस इसके बाद राज्यपाल की उतनी आवश्यकता नही रहेगी जितनी आज है। वैसे भी टिकटो के बँटवारे और उम्मीदवारो के चयन मे मेरा कोई हस्तक्षेप नही है। मैं नहीं चाहूँगा कि

चुनाव-नतीजों के पश्चात मेरे प्रति कोई शिकायत रखे। दिल्ली जाने, हाई कमान जाने– क्या करना है, क्या नहीं करना।

***जोशी** : संतजी की हत्या के पश्चात, क्या आपको चुनावों में हिंसा की आशंका नहीं लगती?*

**अ. सिं.** : जरूर लगती है। चुनावो मे बिलकुल हिंसा नहीं होगी, ऐसा मैं नहीं कहूँगा। हम यह मानकर चलते हैं कि हिंसा अवश्य होगी। परंतु, हिंसा का सामना करने के लिए, सभी आवश्यक कदम उठा लिए गए हैं, सुरक्षा का पर्याप्त बंदोबस्त किया गया है। उम्मीदवारों को सुरक्षा गार्ड दिए जाएँगे, संवेदनशील निर्वाचन क्षेत्रो में अतिरिक्त व्यवस्था की जाएगी। सीमावर्ती क्षेत्रो में खास व्यवस्था की गई है ताकि चुनावों के दौरान कोई घुसपैठ न हो सके। घुसपैठ करने और हिंसा भडकानेवालों को सख्ती से कुचल दिया जाएगा।

***जोशी** : वैसे चुनावों में हिंसा कोई नई बात नहीं है। बिहार की तुलना में पंजाब में हिसा कम रहेगी या ज्यादा?*

**अ. सिं** . मात्रा की दृष्टि से कुछ भी कहना मुश्किल है। यह तो चुनाव के दौरान ही पता चलेगा। पर कोशिश रहेगी कि हिसा नगण्य रहे। संभव है बिहार की तुलना में पजाब में हिंसा की घटनाएँ कम हों। वास्तव में पजाब में चुनाव हिंसक और तानाशाही ताकतों के लिए चुनौती है। पडोसी देश की अधिनायकवादी व्यवस्था नहीं चाहती कि पंजाब में एक स्वस्थ लोकतंत्र लौटे। उसके मसूबे हैं कि पंजाब में लोकतत्र की कभी बहाली नहीं हो, राज्य में अराजकता और हिंसा बनी रहे। हमने इस चुनौती को स्वीकार किया है। पजाब में चुनाव कराना ही इस बात का द्योतक है कि हमारा लोकतत्र में अटूट विश्वास है।

***जोशी** : वह सब तो ठीक है, पर सभी जगह चर्चा यह है कि आप पजाब से पिंड छुडाने के लिए उतावले हैं। इसीलिए आपने झटपट में चुनाव कराए हैं। यदि आप चाहते तो चुनाव टाले जा सकते थे।*

**अ. सिं.** : मैं इससे सहमत नहीं हूँ। मेरा एक प्रश्न है आप सभी से। क्या समझौता टाला जा सकता था? क्या कोई यह कहता है कि अभी समझौता नहीं होना चाहिए था? फरवरी-मार्च में होना चाहिए था? एक ओर विरोधी चाहते थे कि पंजाब-समस्या का माकूल समाधान जल्द से जल्द निकले, अकालियों के साथ कोई टिकाऊ समझौता हो जाए। अब वो ही लोग कहते हैं कि चुनाव टाले जा सकते थे। समझौता और चुनाव दोनों एक-दूसरे से जुडे हुए हैं। क्योंकि समझौते के तहत जनवरी से फैसले आने शुरू हो जाएँगे। समझौते के अंतर्गत आयोग के फैसलों को लागू करने के लिए एक प्रतिनिधि सरकार की आवश्यकता है। मान लीजिए, चुनाव

मार्च तक टाल दिए जाते। तब जनवरी मे आनेवाले फैसलो को रोक दिया जाता। ऐसी स्थिति मे जनता पर उसका क्या असर पडता ? जनता समझौते को लेकर सरकार पर अविश्वास करने लगती। फिर प्रचार किया जाता कि सरकार समझौते से मुकर गई है। समझौते की शुरूआत ही अविश्वासपूर्ण रहती। तब क्या ठीक रहता? इसलिए यह कहना गलत है कि मै झटपट मे चुनाव कराकर पजाब से जाना चाहता हूँ। मेरा प्रयास केवल यह है कि एक निर्वाचित सरकार समझौते को लागू करे ताकि जनता का विश्वास लोकतत्र मे और मजबूत हो।

**जोशी** *अच्छा यह बताइए, जब सतजी की हत्या का समाचार मिला, उस समय आप पर क्या बीती? क्या आपने अपने फैसले पर पुनर्विचार नही किया?*

**अ सि** इस तरह की घटनाएँ लोकतत्र के रास्ते से विचलित नहीं कर सकतीं। सतजी की हत्या के पश्चात चुनाव टालने का अर्थ निकाला जाता आतकवादियो के सामने आत्मसमर्पण। उनके हौसले और बुलद होते। वे इसे अपनी जीत समझते। देर-सबेर हिसात्मक घटनाएँ होतीं। लोकतत्र के लिए ऐसे मोड पर चुनाव स्थगित करना एक अच्छा कदम नहीं रहता। यह सही है कि उनकी हत्या से राष्ट्रीय और व्यक्तिगत दोनो स्तरो पर आघात लगा है। मेरा यह दृढ विश्वास है कि सतजी की शहादत पजाब मे अमन-चैन कायम करके ही रहेगी। जहाँ तक मेरी जानकारी है सतजी की हत्या से आतकवादी अलग-थलग पडने लगे है। उनके साथ सहानुभूति रखनेवाले भी दूर होते जा रहे है। गॉवो मे उनका समर्थन टूटने लगा है। सतजी की हत्या से हर हिन्दू-सिख-मन को चोट लगी है। कौन नहीं जानता कि सतजी की हत्या गुरुद्वारे मे अरदास करते हुए की गई थी। क्या कोई असली सिख इस हत्या को सहन कर सकता है? कोई सच्चा धार्मिक इसान यह पसद नही करेगा कि पूजा-स्थलो को इस प्रकार अपवित्र किया जाए।

मेरा पक्का विश्वास है कि सतजी की शहादत से पजाब मे एक नए युग की शुरूआत होगी। सिख समुदाय आत्ममथन करेगा, हिन्दू भी आत्मविश्लेषण करेगा, क्योंकि सतजी ने दोनो की एकता हेतु अपना उत्सर्ग किया है।

**जोशी** *चर्चा है कि सतजी की हत्या से आपकी स्थिति प्रभावित हुई है?*

**अ सि** अब मै इस सिलसिले मे क्या कह सकता हूँ। लोगो का अपना ख्याल है। मै इतना ही कह सकता हूँ कि आज भी मै उतनी ही निष्ठा और विश्वास के साथ काम कर रहा हूँ, जितना पहले करता था।

**जोशी** *क्या आप राज्यपाल पद से शीघ्र मुक्त होना चाहेगे?*

**अ सि** . पजाब मे प्रतिनिधि सरकार का गठन होने के पश्चात मेरी भूमिका क्या रहेगी, इसका फैसला प्रधानमत्री करेगे, मैं नहीं।

**जोशी** : *आपकी पहली पसंद क्या रहेगी—दिल्ली या भोपाल?*

**अ. सिं.** : पहले यहाँ से तो मुक्त होने दीजिए। आगे जैसा राजीवजी चाहेंगे, वैसा होगा।

बातचीत समाप्त हुई। एक बला का आत्मविश्वास उनके चेहरे पर चमक रहा था। घाट पर लगने के बाद नाविक का भी ऐसा ही विश्वास होता है, और वह इसी विश्वास के बल पर अगला दरिया पार करने की तैयारी शुरू कर देता है। मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह भी इसी नाविक-विश्वास के साथ अगली तैयारी में हैं।

**3 सितम्बर, 1985**

# ताऊ बोल्या ...

चौधरी देवीलाल राजनीति के बजारे हैं। अपना आशियाना बसाते हैं, खुद ही उसे उजाड देते हैं और अगला डेरा डालने के लिए नई ठौर की तलाश में निकल पड़ते हैं। यह सिलसिला आज भी बदस्तूर जारी है। पूर्व उपप्रधानमंत्री देवीलाल उम्र के अठहत्तर वसंत-पतझर देख चुके है। राजगद्दी पर बैठे या उतरे, लोगों को प्रधानमंत्री बनाया या उतारा और पार्टियॉ बनाईं या तोडीं, पर उन्होंने अपनी बंजारी-अलमस्ती कभी नहीं छोडी। जीवन के इस अंतिम पडाव पर भी एक शरारती शिशु उनके भीतर जीवित है। एक राजनीतिक जिजीविषा ताऊ को निरंतर भटकाती रहती है। तभी तो वे एक नई राजनीतिक पार्टी बनाने के लिए सडकों, खेतों-खलिहानो में निकल पडे हैं। लौ बुझने से पहले वे अपने जुनून की पराकाष्ठा का साक्षात्कार कर लेना चाहते हैं। नई दिल्ली स्थित अपने निवास के ऑगन में वे ठेठ गॅवई अंदाज मे बैठे हैं। गायें बॅधी हुई हैं। सुरक्षा में हथियारबंद संतरी तैनात हैं। चिड़ियों की चहचहाहट और वाहनों के शोर के बीच किसान-दुनिया का यह किंवदंती-पुरुष अपनी कडक व खुरदरी आवाज में स्मृतियों तथा संकल्पों के गलियारे की सैर कराता है। काफी कुछ बेतरतीब रहता है, पर याददाश्त बला की है। प्रस्तुत हैं महत्वपूर्ण झॉंकियॉं, उनके गलियारे की।

***जोशी** : आप जीवन और राजनीति, दोनों के अंतिम पड़ाव में हैं। पर आपको चैन नहीं है, एक नई राजनीतिक पार्टी बनाने के लिए एक बच्चे के समान मचल रहे है। ऐसा क्यों?*

**दे. ला.** : 'पॉलीटिकल' आदमी जो होता है, उसको 'रैस्ट' कभी नहीं मिलता। अगर वह सही मायने में पॉलीटिकल है तो। पॉलीटिकल आदमी को रैस्ट, 'अरैस्ट' में मिलता है। और अरैस्ट में जाता है वह किसी राजनीतिक मुद्दे को लेकर।

*(यह वाक्य पूरा होने के साथ ही यादों का रेला उमडता है । ताऊ अपनी छह दशक पुरानी संघर्ष-गाथा शुरू कर देते हैं । बीच-बीच में अर्धविराम-पूर्ण विराम लगाने की असफल कोशिश की जाती है । पर ताऊ एक जुनूनी रफ्तार से दौडते रहते हैं । संघर्ष-कहानी यूँ शुरू होती है ।)*

जब हम 1927 में काग्रेस मे थे, साइमन कमीशन आया था हिन्दुस्तान मे । कांग्रेस ने इसका बॉयकॉट किया था । वापस-जाओ के नारे लगाए थे । साइमन के खिलाफ बंबई, दिल्ली और लाहौर में प्रदर्शन हुआ । मैं उस समय लाहौर में था । प्रदर्शन की अगुवाई करनेवाले लाला लाजपतराय के साथ हजारों का हुजूम था । जब नारे लग रहे थे, तब अँगरेज पुलिस अफसर सांडर्स ने लाठी-चार्ज किया । लालाजी घायल हो गए । मैने इस पूरे मजर को देखा था । तब से ही मेरे दिमाग मे यह चीज थी कि अँगरेज बला का जालिम है, इसकी सरकार को खत्म करना चाहिए । तब मैं हिसार जिले के एक गॉव मे पढा करता था । साइमन कमीशन के बाद से मै लगातार सारी एक्टीविटीज को देखता रहा । जब लाहौर में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने मुकम्मल आजादी का ऐलान किया, तब भी मैं था । रावी के किनारे कांग्रेस का सालाना जलसा था । जब लाहौर मे नेहरूजी का जुलूस निकल रहा था, तब वहॉ एक भल्ले दी हट्टी थी । उनके पिता मोतीलाल नेहरू वहॉ बैठे हुए थे । वे फूल बरसा रहे थे । यह शायद 1929 के दिसबर महीने की बात है । तब मैं मोगा से कांग्रेस का वालिंटीयर था ।

उस जमाने मे हम सुना करते थे कि विलायत में मशीनों से खेती होती है, सामान मोटरों से ढोया जाता है । उस जमाने मे हमारे यहॉ कार-मोटर का सवाल नही था । अँगरेज फौजी बताते थे कि उनके यहॉ खूब खुशहाली है । तो उस समय हमारे दिमाग में जो नक्शा हिन्दुस्तान के लिए बना था, वह आज भी मौजूद है । उस समय हमारी इच्छा थी कि हमारा देश योरप की तरह खुशहाल हो, मशीनें आऍं ।

***जोशी** : तो यह सपना था?*

**दे. ला.** : हॉ, मेरा यह पुराना सपना था । इस सपने को पूरा करने के लिए ही कांग्रेस से बाहर आए । कांग्रेस मे लड़े । और आज लडते-लडते अठहत्तर साल के हो गए । 1962 में कांग्रेस छोडी थी । 1936 में मेरे बडे भाई ने कांग्रेस टिकट से तब के पंजाब से चुनाव लड़ा था । मैं चुनाव लड नहीं सकता था । मेरी उम्र कम थी । इसलिए बडे भाई चौ साबराम को खडा किया गया था । और उनके मुकाबले में सर सिकंदर हयात खॉ, सर मजीठा जैसे बडे-बडे लोग खड़े हुए थे । उस जमाने में सर, राव साहब, खान बहादुर साहब जैसे टाइटल मिला करते थे । जैसे आज टाइटल मिलते हैं... क्या हैं वे

**दे ला** हॉ हॉ। ऐसे ही टाइटल। उस जमाने मे हमारा आज का हरियाणा पजाब मे था। तो इस रीजन मे सर छोटूराम सबसे बडे लीडर थे। उनकी तूती बजा करती थी। उनके सामने कोई खडा होने की हिम्मत नही किया करता था। मै चूँकि काग्रेस मे था और लाहौर जेल से सजा काट आया था – सिविल नाफरमानी मे मुझे जेल भेजा गया था – लिहाजा 1936 मे चुनाव लडने की इच्छा हुई। पर मै सिर्फ 23 साल का था। इसलिए मेरे बडे भाई को खडा किया गया । बडे भाई सिरसा फतेहाबाद निर्वाचन क्षेत्र से कामयाब हो गए। उन दिनो एक ही हिसार जिला हुआ करता था। अब तो तीन जिले हो गए–हिसार भिवाणी और सिरसा। तो सिकदर हयात, खिजरे हयात और छोटूराम ने हराने के लिए बडा जोर मारा। लेकिन, मै जेल काटकर निकला हुआ था, इसलिए लोगो ने हर जगह मेरी बात सुनी। मै बडे घर का था इसलिए जहॉ भी जाता था, लोग घेर लेते थे। मेरी मुहिम सफल रही। भाई चुनाव जीत गए।

मै 1939 के सत्याग्रह मे भी भाग लेना चाहता था। लेकिन, गॉधीजी ने परमिशन नहीं दी। बडे भाई एम एल ए थे। उन्होने सत्याग्रह मे भाग लिया। वे गिरफ्तार हो गए, और जेल भेज दिए गए। फिर भारत छोडो आदोलन चला। तब मैं बबई मे था। उस समय अखबारो मे छप गया कि काग्रेस का प्रोगराम तोड-फोड का है, रेल-पटरियॉ उखाडने का है। फिर सरकार ने गिरफ्तार करना शुरू कर दिया। मैं बबई से बच निकला। फिर मै अडरग्राउण्ड हो गया। चुपचाप काम करता रहा। लेकिन, बाद मे क्विट इडिया आदोलन मे मै और मेरा भाई भी गिरफ्तार हो गए। हमे मुल्तान की सेट्रल जेल मे रर गया। इसी जेल मे पजाब और दिल्ली के भी बडे-बडे लीडर आ गए। तो जेल मे अजीब तमाशा हुआ।

बाबा गुरुदत्त सिह से मुलाकात हुई । ये कामागाटामारू जहाज लेकर आए थे। इनके सारे हथियार पकड लिए गए थे। ये और मि एम एम फारुखी हमारा 'स्टडी सर्कल' लगाया करते थे। फारुखी साहब अभी सी पी आई के नेता है। जेल मे ही हमारी क्लास लगा करती थी। बडा काबिल आदमी था फारुखी। इनकी रामकथा जबर्दस्त हुआ करती थी। पर ज्यो ही जर्मनी ने 'रसिया' पर हमला किया, एक नया तमाशा हो गया। हम फारुखी साहब के वार्ड मे ‹टडी सर्कल लेने गए तो वे नदारद थे। मैंने पूछा कि फारुखी साहब कहॉ है तो बताया गया कि वे तो रात मे ही चले गए। रसिया पर जर्मनी के अटैक को फारुखी साहब ने पीपुल्स वार कह दिया था। आप तो जानते ही है कि कम्युनिस्टो ने पीपुल्स वार कह दिया था। वे बाहर आ गए, और हम जेल मे ही रह गए। एक साल की सजा काटी। उन दिनों मिलने की इजाजत किसी को नही थी, पैरोल पर मुश्किल से छोडा जाता था। उन दिनों महाशय कृष्ण (प्रताप-और वीर अर्जुन समूह के सस्थापक) भी जेल में थे।

दरबारासिंह भी जेल में था।

सर छोटूराम से हमेशा मेरी ठनी रही। वे मुझे गिरफ्तार करवाना चाहते थे। वारंट मेरे पीछे था। राजस्थान की सरहद का किस्सा है। बारिश जोर की हो रही थी। मैं घोडे पर था। चारों तरफ पुलिस फैली हुई थी। उस समय अफवाह यह भी फैल गई कि देवीलाल गोली का शिकार हो गया। मेरे फादर ने मुझसे कहा कि तू गिरफ्तार हो जा। सभी लोग गिरफ्तारी के लिए कह रहे थे। मैं भी चाह रहा था। पर मेरी इच्छा थी कि मेरे साथ कुछ और लोग भी गिरफ्तारी दें। तो मैंने संदेशा भेजा कि गिरफ्तार तो हो जाऊँगा, पर पहले पॉच-दस आदमियों को पकडो। मैंने कुछ आदमी भेज दिए। मैं भी गिरफ्तार हो गया। फिर मुझे हिसार और इसके बाद मुल्तान जेल ले जाया गया। जब रिहा हुआ तो मै छोटूराम से मिला, और दरख्वास्त की कि मेरे बडे भाई की पैरोल पर रिहाई करवाओ। फिर मेरे भाई को रिहा कर दिया गया। उन्हें हिसार ले जाया गया। उन दिनों पैरोल पर छूटनेवालों को पॉच से ज्यादा लोगों के बीच नहीं बैठने दिया जाता था।

उस समय पाकिस्तान के बनने की बात चल रही थी। मुसलमानों, हिन्दुओं के लिए अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्र हुआ करते थे। छोटूराम मुसलमानों को प्रभावित करने के लिए एक अखबार निकालना चाहते थे। इसमें उन्हें मेरी मदद चाहिए थी। तब मैंने उन्हें आश्वासन दिया था कि आप पाकिस्तान के खिलाफ हैं और मुसलमानों को अपनी ओर खींचना चाहते हैं, तो इस काम में मैं आपकी पूरी मदद करूँगा। मैंने उनके लिए 20 हजार रुपये जमा भी किए। उस समय उनकी योजना थी मुस्लिम सीटों को जीतने की। अगर योजना कामयाब हो जाती तो पाकिस्तान नहीं बनता। लेकिन वे बीमार पड गए। वक्त से पहले मर गए। उनकी प्लानिंग ऐसी थी कि मुसलमान का वोट पडना ही नहीं था। मगर उनकी डैथ के बाद हालात बदल गए। पंजाब के 175 के हाउस में मुस्लिम लीग 34 सीट जीत गई। पाकिस्तान बना तो डॉ. गोपीचंद भार्गव, भीमसेन सच्चर की आपसी लडाई की वजह से बना। ऐसी ही लडाइयॉ लड़ते रहे। मैं कभी सिकंदर हयात, कभी खिजर हयात, कभी डॉ फिरोज खॉ नून से मिलता। उन दिनो मे भी एम एल ए. को तोडा जाता था। आखिर के दिनों में मुस्लिम लीगियों ने नेताओं को तोड़ा। खिजर हयात भी मुस्लिम लीग में जा मिला। मैं लाहौर में समझाने भी गया, मगर कुछ हुआ नहीं। लीगी कामयाब हो गए। तो आप कहते हैं ना कि मुझे सवाल किया ना. .

***जोशी** : चैन नहीं है*

**दे. ला.** : चैन हो नहीं सकता। हमारा इतिहास इसका गवाह है।

***जोशी** : आजादी के बाद भी वही सिलसिला जारी है?*

**दे. ला.** : हाँ, अभी तक भी वही चल रहा है। अंग्रेजों के जमाने में दस-बारह बार

जेल गया। आजादी मिलने के बाद भी सात-आठ बार जेल जा आया।

देखिए, जब तक किसान-मजदूर खुशहाल नहीं होंगे, गाँधी का सपना पूरा नहीं होगा।

***जोशी*** *: चौधरी साहब, आपकी संघर्ष की गाथा सुनी। अब यह बताइए कि आपने दो साल पहले जो प्रयोग किया उसके परिणाम कैसे रहे? वी पी सिंह की सरकार बनवाई। फिर चंद्रशेखर की सरकार बनी। दोनों सरकारों की अकाल मृत्यु हुई। क्या आपको कोई पश्चात्ताप है?*

**दे. ला.** : देखो ना, अब तक कांग्रेस में पूँजीपतियों, उद्योगपतियों का डोमीनेशन (वर्चस्व) था। 1952 में लोकसभा में 5 गाँव के लोग थे। ये लोग थे—सरदार पटेल, एन. जी. रंगा, डॉ. रामसुभाग सिंह, चौ रणधीर सिंह और मदन सिंह । बाकी 537 शहरी हुआ करते थे। सेंट्रल हॉल में बिडला की लॉबी मशहूर हुआ करती थी। लॉबी के साथ 73-80 सांसद माने जाते थे। और अब ऐसी चीज है कि बिड़ला भी पैसे देकर, राज्यसभा के लिए विधानसभा के सदस्यों को खरीदता है। टिकट बिड़ला बाँटा करते थे। अब यह नक्शा बदल गया।

आज किसान-मजदूर आगे आया है। इसकी आबादी 80-85 प्रतिशत है। मैंने बड़ी कोशिश की थी कि यह ताकत सामने आए। मैंने कोशिश की थी कि किसी तरह कांग्रेस के सामने कोई विकल्प तैयार हो। क्योंकि कांग्रेस में रहकर मैं कुछ कर नहीं सका था। मैं कांग्रेस के रहम पर रहता था। मुझे टिकट नहीं मिला था। तमाशा देखिए ! मेरे जैसे आदमी को टिकट नहीं देते थे, ये बेईमान।

कांग्रेस के मुकाबले पार्टी खड़ी करने का मेरा मकसद था। मैंने हरियाणा में न्याय-युद्ध शुरू किया। इसके बाद मैंने वहाँ अपनी हुकूमत बना ली। मेरी सरकार ने बहुत सुविधाएँ दीं। कर्जा बिल पास किया। पेंशन दी। इसका प्रभाव पूरे देश पर पड़ा। इससे किसानों की हवा बनी। इसे पूँजीपति ताड गए। इन्होंने भी गाँववालों को टिकटें देनी शुरू कर दीं। भाजपा ने भी यही किया। जैसे भाजपा का मुख्यमंत्री है—कल्याणसिंह। है यह लोधा। खेती करनेवाली जाति है। इसी तरह से मुलायम सिंह है। यादव है। तो इस किस्म के आदमी आने लगे तो इन्हें खतरा हो गया।

तो मैंने पूँजीपतियों के प्रभाव को ख़त्म करने के लिए सारे हिन्दुस्तान में कोशिश शुरू कर दी। हिंदुस्तान का मतलब है यू. पी और बिहार। पंजाब में 13 और हरियाणा में 10 सांसद हैं। दोनों को मिलाते हैं तो 23 होते हैं। राजस्थान में 25 होते हैं। अकेले उत्तरप्रदेश में 85 सीटें हैं और 54 हैं बिहार में। बिहार में भूमिहारों और ठाकुरों का प्रभाव था। ये लोग बूथ कैंप्चर किया करते थे। ये रामबिलास पासवान— आज लीडर बना फिरता है, इसको हमने बिजनौर और हरिद्वार से खड़ा

किया था दो दफा। जमानत जब्त हो गई थी। शरद यादव को राजीव गॉधी के खिलाफ अमेठी से खडा किया था। जमानत जब्त हो गई थी।

सो, मैंने यह सोचा कि जब ठाकुर भूमिहार मतपेटियो पर कब्जा कर लेते है तो गरीब आदमी कभी नही जीत सकता। गरीब आदमी वोट नहीं डाल सकता। इसलिए मैंने सोचा कि इन दो जातियो मे से किसी एक को लेना चाहिए। इसलिए स्ट्रट्जीकली मैने वी पी सिह को पकडा। 1988 मे सगरिया क्षेत्र मे इसकी सभा कराई। मेरे कहने पर मेरे रिश्तेदार ने वी पी सिह की सभा के लिए ढाई लाख आदमी जमा कर दिए। मैने वहीं ऐलान कर दिया था कि सिह साधारण आदमी नही है, हिन्दुस्तान का होनेवाला प्रधानमत्री है। इसके बाद मैने इसे प्रधानमत्री बनाना शुरू कर दिया। साथ ही मैंने यह कोशिश भी जारी रखी कि इसे अपनी औकात हमेशा याद रहे। इसलिए सगरिया के बाद गगानगर की यात्रा मे इसके साथ मै नहीं गया। शहर की ढाई लाख की आबादी है। इसकी सभा मे दस-ग्यारह हजार लोग ही आए। सिह को यह अहसास होना चाहिए था कि उसकी औकात मुझसे है। मैं इसका दिमाग ठिकाने लगाता रहा। लेकिन, मै यह भी कहता रहा कि लाल किले पर वीपी बोलेगा, ताऊ ठीक तोलेगा। सिह की हवा बनाई। माकूल नतीजा निकला। देश के ठाकुर हमारे साथ हो गए। इसका नतीजा यह भी निकला कि जिसके पास कपडा नहीं था, उसको कपडा मत्री (शरद यादव) बनवा दिया। जो पचायत के सदस्य नही बन सकते थे, वे लोकसभा मेम्बर बन गए। ठाकुरो के साथ होने से पासवान सबसे ज्यादा वोटो से जीत गया।

इससे पहले मैने मोरारजी देसाई के मामले मे भी ऐसा ही किया था। हमने और जयप्रकाश ने कोशिश करके देसाई को प्रधानमत्री बनाया था। क्या आप जानते हैं कि यह कैसे प्रधानमत्री बना था? बहुतो को मालूम नहीं है। मै बतलाता हूँ। लोग तो जयप्रकाश को प्राइमिनिस्टर बनाना चाहते थे। हम चाहते थे चौधरी चरणसिह को बनवाना। लेकिन, आचार्य कृपलानी और जेपी का झुकाव देसाई की तरफ था। फिर मैंने चरणसिह को समझाया कि आपको तो कोई प्रधानमत्री बनाएगा नहीं, जगजीवनराम बना दिया जाएगा। चौधरी साहब जगजीवनराम के खिलाफ थे। इसलिए चरणसिहजी से यह कहलवा दिया कि जगजीवनराम न हो पर देसाई हो जाए। इस तरह देसाई प्राइमिनिस्टर बना। लेकिन, प्रधानमत्री बनते ही देसाई मनमानी करने लगे। सीधे ही लोगो को मत्री बनाने लगे। फैसला यह हुआ था कि देसाई सभी से सलाह करके लोगो को अपनी सरकार में लेगे। लेकिन उस बेईमान ने इसकी परवाह नहीं की। बगैर सलाह के जनसघ के लोगो को ले लिया। चरणसिह के लोगो को भी बगैर उनकी मर्जी के लिया। इस मामले मे एच एम पटेल, चॉदराम, प्रो शेरसिह, आडवाणी की मिसालें दी जा सकती है। देसाई की

कोशिश थी कि मंत्री उसके प्रति सीधे वफादार रहें। उसके इस रवैये से सरकार में मतभेद पैदा हो गए। बहाना बनाकर चरणसिंह को सरकार से निकाल दिया गया। देसाई का विरोध करने के लिए दिल्ली में चरणसिंह के समर्थक जमा होने लगे। रैली हुई। यह सब देखकर मोरारजी ने मुझे बुलाया। पूछा कि ये लोग क्यों इकट्ठे हो रहे हैं? मैंने कहा कि ये लोग आपके पास फरियाद लेकर आ रहे हैं। उन्होंने कहा कि इन्हें रोको। मैंने कहा कि देसाई साहब ये लोग मेरे रोके नहीं रुकते। तो उन्होंने कहा कि फिर तुम चीफ मिनिस्टर कैसे बनोगे? तो मैंने कहा कि चीफ मिनिस्टर तो पैदा नहीं हुआ था। दाव लग गया तो बन गया, जैसे कि आपका दाव लग गया तो आप प्राइमिनिस्टर बन गए। पैदा तो मैं किसान हुआ हूँ। मैं किसान का विरोध कैसे करूँ? फिर इन लोगों ने इकट्ठे होकर मेरे विधायकों को भारत-दर्शन कराया।

मेरी योजना तो राजस्थान में भी किसान को मुख्यमंत्री बनाने की थी। कुम्भाराम आर्य को बनवाना चाहता था। चौधरी साहब ने भी किसी किसान को मुख्यमंत्री बनाने के लिए कहा था। मैंने कुम्भाराम को बुलाया। रात को कुम्भाराम मेरे साथ ही ठहरा । रात को करीब तीन बजे हरिदेव जोशी का फोन आया। कुम्भाराम फोन पर बात कर रहा था। मेरी आँख खुल गई । मैंने पूछा, किससे बात कर रहे हो। उसने कहा कि जयपुर से जोशी साहब है। उन दिनों जोशी राजस्थान के मुख्यमंत्री थे। विधानसभा भंग नहीं हुई थी। मैंने सोचा कोई बात हो रही होगी। मैं सो गया। सुबह उठा तो देखा कि कुम्भाराम आर्य गायब है। वह जयपुर जाकर कांग्रेस में मिल गया। इसके बाद चौधरी साहब ने पूछा कि किसको बनाएँ। तो मैंने कहा कि अब तो भैरोसिंह के अलावा दूसरा कोई नहीं है। *(जोर से हँसते हुए)* मैंने किए हैं ये पाप सारे।

***जोशी*** *: यह बतलाइए कि 1977 में देसाई सरकार बनी, इसके बाद 1989 में वी.पी. सिंह की और इसके बाद चंद्रशेखर सरकार...*

**दे. ला.** : भई मैं यही तो बता रहा था, भई मैंने मोरारजी को बनाया। इसके बाद सबसे पहले मेरे ऊपर वार किया गया। उसके बाद राजनारायण को पार्टी से निकाल दिया, फिर हमने तय किया कि राजनारायण के साथ रहना चाहिए। रोजाना लोगों को जमा करना शुरू किया। कर्पूरी ठाकुर को मैंने समझाया कि तेरे पास 54 एम. पी. हैं। मेरे पास तो 9-10 हैं । कुछ तू हिम्मत कर, कुछ मैं करता हूँ। इसके बाद मैंने प्रण किया कि मुझे झोंपड़ी से निकाला गया तो मोरारजी भी महल में नहीं रहेगा। फिर मैंने पटाना शुरू किया। इसके बाद चरणसिंह का नंबर आया। वो प्रधानमंत्री बने। लेकिन वो संसद का सामना नहीं कर सका। यह पूँजीपतियों की शरारत है सारी।

यह सब देखकर ठाकुरों को पकड़ा। वी पी सिंह प्रधानमंत्री बना। इसके बाद चंद्रशेखर का नंबर आया लेकिन, दो सिपाहियों का बहाना बनाकर उसकी सरकार भी गिरा दी। सिपाही थे भजनलाल के। भजनलाल ने उन सिपाहियों को प्रोमोट कर दिया।

***जोशी** : लेकिन मेरे कहने का मतलब है*

**दे. ला.** : मै बताता तो रहा हूँ–मैंने चार-चार प्राइमिनिस्टर बनवा लिए। पर अब – मै यह साफ शब्दों में कह दूँ–जोड-तोड की राजनीति नहीं चलेगी।

***जोशी** : आपने चार-चार प्रधानमंत्री बना डाले। लेकिन, आपके अनुभव तो सुखद नही रहे।*

**दे. ला.** : नहीं, मेरा तजुर्बा तो बडा अच्छा रहा।

***जोशी** : वो कैसे?*

**दे. ला.** : आज गरीब आदमी के लोग संसद में पहुँच गए हैं। देश की दसवीं लोकसभा में आज 343 सदस्य गॉव के है। पहली लोकसभा में यह संख्या सिर्फ पॉच थी। कांग्रेस के 153 और भाजपा के 63 सांसद गॉव के है।

***जोशी** : चौधरी साहब, बुनियादी मुद्दा यह है कि 1977 से आज तक विपक्ष की सरकार जम नहीं पाई। किसी ने भी अपना कार्यकाल पूरा नही किया। चारो सरकारों की अकाल मौत हुई*

**दे. ला.** : इसकी वजह यह है कि देश मे जोड-तोड की राजनीति कभी कामयाब नहीं होगी। हिन्दुस्तान में अब लुटेरे और कमेरे की लडाई है। लुटेरा तो है पूॅजीपति और सामत, कमेरा है किसान और मजदूर। अब असली लडाई शुरू हुई है। इसलिए मैं कह रहा हूॅ कि स्टेज ऐसी आ गई है जब लडाई सीधी होनी चाहिए। जोड-तोड़ की राजनीति फेल हो चुकी।

***जोशी** : तब आपको चार-चार सरकारें बनवाने और उनका अकाल पतन हो जाने से कोई पश्चात्ताप नहीं है?*

**दे. ला.** : बिल्कुल नहीं है। मैंने जो किया वो हालात के मुताबिक किया। पर अब आगे ऐसा नहीं चल सकेगा।

***जोशी** : आपने कभी वी पी सिंह का साथ दिया, कभी चंद्रशेखर का। कभी किसी* को अच्छा करार दिया, कभी किसी को बुरा बतला दिया। आज आपके हाथों से *राज-पाट छिन चुका है। अब आपकी नजर में दोनों में से कौन अच्छा प्रधानमंत्री था?*

**दे. ला. :** *(सवाल से कतराते हुए)* **सबसे बड़ी बीमारी है सचिवालय में। नौकरशाही का दबदबा है। सच बात यह है कि ब्यूरोक्रेट हमें चलाते हैं, हम नहीं चलते। राजीव गॉधी और इंदिरा गॉधी को चलाते थे फोतेदार और आर के धवन। वी पी सिंह को चलाता था विनोद पाण्डे और भूरेलाल। चंद्रशेखर को चलाते थे एस के मिश्रा और नरेशचंद्र।**

***जोशी :*** *एस के मिश्रा को तो आप ही लेकर आए थे?*

**दे. ला. :** भई, पाप मैंने बहुत किए हैं। मैंने तो अपने सिर का ताज सिंह के सिर पर रख दिया था। वह उस समय बहुत अच्छा आदमी था। बडा ईमानदार था, है बडा मेहनती। एस के मिश्रा मेहनती है। मेरा प्रिंसिपल सेक्रेटरी था। कृषि मत्रालय में वह सचिव था। मैने इसे प्रिंसिपल सेक्रेटरी बनवाया। इसका दोष नहीं है। मैने चद्रशेखर से कहा था कि आई ए एस हमारे आदमी नहीं हैं। यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन में हमारे आदमी होने चाहिए। संघ लोकसेवा आयोग के दस सदस्यो मे से कोई भी गॉव का नहीं था। चंद्रशेखर को कहा था, इसे बदलो। उधर सुरेन्द्रनाथ राज्यपाल बन गया। आयोग मे एक जगह खाली हुई थी। मैंने गॉव के आदमी को लेने के लिए कहा था। एस के मिश्रा ने पूरा नहीं किया।

***जोशी :*** *मतलब यह हुआ कि मिश्रा के सामने प्रधानमंत्री कुछ नहीं कर सके?*

**दे. ला. :** मिश्रा की मुट्ठी मे चंद्रशेखर हो गए। मिश्रा खुद भी वहॉ जा पहुॅचा। तो मतलब यह हुआ कि आई ए एस सचिवालय चला रहे हैं। नौकरशाही का दबदबा है। वी पी सिह, चद्रशेखर प्राइमिनिस्टर तो बन जाते हैं, लेकिन किसान के हिसाब से नहीं सोचते। नौकरशाही की तरफ ध्यान ही नहीं देते। ये तो सिर्फ दस्तखत कर देते है। हम चाहते है कि आयोग के 11 सदस्यों में से सात देहात के हो जाने चाहिए। जब मेरे हाथ मे ताकत थी तो मैंने 11 राज्यपाल गॉव के बना दिए थे। दुनिया में भारत के 104 राजदूत हैं जिनमें से सिर्फ तीन ही गॉव के हैं।

***जोशी :*** *मै अपने पुराने सवाल पर लौटता हूॅ। चरणसिंह सरकार का प्रयोग आपके सामने था। फिर आपने कांग्रेस के साथ मिलकर चंद्रशेखर की सरकार बनवाई। क्या एक अनुभव काफी नहीं था?*

**दे. ला. :** मैने कहा ना कि जोड -तोड़ करके कोशिश की थी। क्योंकि लोग बार-बार चुनाव पसद नहीं करते हैं। मैं अब भी इस सरकार को खत्म करने के हक में नहीं हूॅ। चुनाव होंगे तो लोग जूते मारेंगे। मैं स्टेबिलिटी के हक में हूॅ। स्टेबिलिटी समर्थन से नहीं होती है। यह होती है मिली-जुली सरकार से। राष्ट्रीय एकता परिषद् की बैठक में मैंने कहा था नरसिंह राव से—देखो मेरे पास वी. पी. सिंह, आडवाणी बैठे हैं। लेकिन, राम-जन्मभूमि का बहाना बनाकर आडवाणी ने

समर्थन वापस ले लिया। यह सामने बैठा चद्रशेखर। इसको भी आपने समर्थन दिया था। लेकिन, दो सिपाहियो का बहाना बनाकर कांग्रेस का दिमाग खराब कर दिया, समर्थन वापस ले लिया। इसलिए किसी की सपोर्ट पर निर्भर मत रहो। मिली-जुली सरकार बनाओ। राज करना सीखो। मैने कहा था, मिली-जुली सरकार मे हमेशा सभी की दिलचस्पी होती है। सभी चाहेगे कि सरकार चले। सपोर्ट मे यह होता है कि जैसे ही सरकार मे स्थिरता दिखाई दे, समर्थन वापस ले लो। मैने सिर्फ स्थिरता के खातिर ही सरकार बनवाई थी।

***जोशी*** · *आपने मिली-जुली सरकार की बात कही है। पिछले कुछ दिनो से राष्ट्रीय स्वयं सेवक सघ के शिखर-नेता भाजपा और इका की मिली-जुली सरकार बनाने की बात कर रहे है। हालॉकि भाजपा नेता आडवाणी ने इससे असहमति व्यक्त की है। इका-भाजपा जुगलबदी के सबध मे आपकी क्या राय है?*

**दे *ला*** : मिली-जुली सरकार बनना चाहिए, भारतीय जनता पार्टी को छोडकर।

***जोशी*** *मगर, क्यो?*

**दे. *ला*** भाजपा राजनीतिक पार्टी नहीं है। यह तो 'ब्रीफकेस-पार्टी' है। व्यापारियो की पार्टी है। व्यापारियो के ब्रीफकेस मे तो होती है चैकबुक। चैकबुक से कनाडा चले जाओ, वाशिगटन चले जाओ। रुपए निकलवाओ, और काम करो अपना। व्यापारियो का जहॉ व्यापार होता है, वही देश होता है उनका।

***जोशी*** *देवीलालजी, अब तो भाजपा मे भी पिछडे और गॉव के लोग आ गए हैं। कल्याणसिह, उमा भारती इसकी मिसाल है।*

**दे. *ला*** . भाजपावाले जाटो, कुरमियो, लोधो का शोषण करते है– उनके सामने टुकडे फेक-फेककर। काग्रेस भी यही करती आई है। सारी पार्टियॉ उल्लू बनाती हैं किसानो को।

***जोशी*** . *तो भाजपा-इका की मिली-जुली सरकार नही होनी चाहिए?*

**दे. *ला.*** : बिल्कुल नहीं। दोनो की मिली-जुली सरकार खतरनाक होगी देश के लिए।

***जोशी : आज भाजपा के पास 119 सांसद हैं। पार्टी की कैसे उपेक्षा की जा सकती है?***

**दे. *ला.*** . तो क्या हुआ? आप दल-बदल विरोधी कानून खत्म कर दो। सारे आ जाऍगे हमारे साथ। काग्रेस और भाजपा, दोनो के सासद हमारे साथ होगे। अब आएँ तो कैसे आएँ–खतरा है। उत्तर प्रदेश में तमाशा नहीं हो रहा है। सच बात तो यह

है कि बी जे पी की तो पोल खुल गई। नारे लग रहे है—अब तो सरकार तेरी है—मंदिर मे क्यो देरी है?

***जोशी** . आपको याद होगा, पूर्व प्रधानमत्री वी पी सिह ने भाजपा से छह महीने की मोहलत माँगी थी। पर आडवाणी ने नही दी। आज इस बात को बीते एक साल हो गया है। मदिर न तब बन सका था न आज बन सका*

**दे ला** भाई मेरे तभी तो कह रहा हूँ—कमडल की राजनीति थी। कुर्सी की लडाई थी। नारे लगाए जा रहे है। उत्तरप्रदेश के उपचुनावो मे भाजपा के उम्मीदवारो की जमानते जब्त हुई है। जिन्हे माफिया कहा जाता था, वे जेल मे रहते हुए चुनाव जीत गए। सच बात तो यह है कि जैन डालमिया, बिडला, टाटा—ये लोग माफिया के गुरु है।

***जोशी** आपकी नजर मे मडल और कमडल की उपयोगिता आज भी है?*

**दे ला** कमडल तो फूट गया और मडल बिखर गया। मडल-कमडल काहे के हैं—ये तो सब उल्लू बनाने के ढग है। मडल और कमडल, दोनो बेईमानो के गठजोड थे। लेकिन यह ज्यादा नही चला करता। इसीलिए मैने अब तौबा की है ना कि मै गठजोड की राजनीति से तग आ गया।

***जोशी** चौधरी साहब आप कुछ भी कहे, एकता-यात्रा तो जमकर निकल रही है।*

**दे ला** · काहे की एकता यात्रा—यह तो 'दुर्भावना-यात्रा' है। इससे लडाई-दगे होगे। भाजपा सबसे खतरनाक पार्टी है। मेरी नजर मे यह घोल, तोल, मोल और रोलमरोल की पार्टी है।

सबसे पिड छुडाकर अब मै सीधी लडाई लड रहा हूँ। जिद मे हमारी सभा हुई थी। साढे तीन लाख आदमी थे। मुझे किसान-मजदूर जागरण आदोलन चलाने का अधिकार सौपा गया है। इस आदोलन की पहली सभा 29 दिसबर को झुनझुनू में हो रही है। इसके बाद 5 जनवरी को भरतपुर मे होगी। जनवरी मे ही पश्चिमी उत्तरप्रदेश के शहरो मे सभा की जाएगी।

***जोशी** . देवीलालजी, अगर राजीव गाँधी जीवित होते तो राजनीति का नक्शा कैसा होता?*

**दे. ला.** . राजीव गाँधी भी नौकरशाहो के हाथो मे रहते। वैसे आदमी अच्छा था। दिल का अच्छा।

***जोशी** : पर राजनीति की समझदारी नही थी*

**दे. ला.** . नहीं, समझदारी भी थी। लेकिन, चारो तरफ से उन्हें गलत लोगो ने घेर

*रखा था। राजीव गाँधी पैराट्रपर लोगों यानी आधारहीन लोगों से घिरा हुआ था। मैं तो दस जनपथ आता-जाता था; सब देखता था।*

***जोशी*** *: क्या आप समझते हैं कि राजीव गाँधी के निधन के बाद भारत में कुनबा-राजनीति का युग खत्म हो चुका है?*

**दे. ला.** : मैं तो कहता हूँ कि कुनबा राजनीति क्या, गठजोड़ की राजनीति समाप्त हो चुकी है। वैसे राजीव गाँधी के खानदान ने काम भी किया था। अखबारों में खूब उछल गया। पर अब तो लीडरशिप नहीं रही ना .. । काँग्रेस की लीडरशिप तो खत्म हो गई। नरसिंह राव के साथ आज लोग नहीं हैं। उनकी सभाओं में लोग नहीं आते हैं। जनता यह भी नहीं जानती है कि नरसिंह राव प्रधानमंत्री हैं भी या नहीं। मेरी सभाओं में आज भी लाखों लोग आते हैं।

***जोशी*** *: क्या वजह है कि आज आपके साथ आपके ही बेटे नहीं हैं ? ओमप्रकाश चौटाला आपकी अवहेलना करते हैं।*

**दे. ला.** : देखिए, ओमप्रकाश चौटाला का बेटा मेरे कमरे में बैठा हुआ है। प्रताप ने कहा था कि मेरे बाप का बाइकाट करो। आज उसके दोनों बेटे मेरे यहाँ बैठे हुए हैं।

***जोशी*** *: आश्चर्य है बेटे साथ नहीं हैं. पोते आपके साथ है? इसकी वजह क्या है?*

**दे. ला.** : इसकी वजह यह है कि लोग समझते हैं, देवीलाल को मार सकते हो उसके बेटे को बदनाम करके। मुझे तो कोई मार नहीं सकता। मैं तो मूढे पर बैठनेवाला हूँ। गाय का दूध पीनेवाला हूँ। सामने गाय देख रहे हैं ना ... मै इसी का दूध पीता हूँ। आपको तो गाय की बदबू आती होगी. . *(हँसते हुए)*

***जोशी*** *: नहीं, नहीं, मैं भी गाँव का ही हूँ- चौधरीजी। गाँव में ही पढ़ा-लिखा हूँ।*

**दे. ला.** : अब मेरे खिलाफ कोई चीज है नहीं। इसलिए मेरे बेटों को निशाना बना लेते हैं। हालाँकि ओमप्रकाश जैसा कोई वक्ता नहीं है। उस जैसा संगठनकर्ता नहीं है। लेकिन, अखबारों ने चौटाला की हवा बिगाड़ दी।

***जोशी*** *: तब यह माना जाए कि आपकी राजनीतिक लड़ाई में वे आपके साथ हैं?*

**दे. ला.** : लडाई में मेरे साथ नहीं हैं, राजनीति में हैं। राजनीतिक झुकाव सबका अपना-अपना है। जब कोई पढ़-लिख जाए तो मेरे जैसे अनपढ के समझाने पर वो समझेगा थोड़े ही। मैंने अपने बेटों को धमका दिया है कि अलग-थलग रहो, वरना एक साथ मोटर में बैठकर चलो। मैं अपने आप लड़ लूँगा। अब लड़ाई भी

*क्या है। चौटाला अमेरिका चला गया। दूसरा यहाँ बैठा है।*

**जोशी** : *चौटालाजी अमेरिका क्यों चले गए?*

**दे. ला.** : *इस बारे में चद्रशेखर से पूछो, यशवत सिन्हा से पूछो, चंद्रास्वामी से पूछो। चंद्रास्वामी के बारे में सवाल पूछे जाते हैं तो ताऊ हर बार कन्नी काट जाते हैं।*

**जोशी** : *अब आपके सामने एक काल्पनिक सवाल रख रहा हूँ। यदि आप देश के प्रधानमंत्री होते या बनते हैं तो आपकी प्राथमिकताएँ क्या होंगी?*

**दे. ला.** : *मैं सबसे पहले नौकरशाही को ठीक करूँगा।*

**जोशी** : *और क्या-क्या करेंगे? आपको सारी पावर मिल जाती है तो कौन-कौन-से काम हाथ मे लेंगे?*

**दे. ला.** : *मुझे शेखचिल्ली मत बनाओ (जोर का ठहाका) मैंने तो एक मोटी-सी बात बतला दी है।*

**जोशी** : *आजकल देश में विदेशी कर्जो की बहार आई हुई है। आपकी नजर में इसके क्या प्रभाव पडेंगे?*

**दे ला.** : *मुल्क को बेच दिया इन लोगो ने, कंगाल कर दिया भारत को, और यह सारी विदेशी दौलत चद घरानों के पास जमा हो रही है। बहुत बुरे नतीजे निकलेंगे।*

**जोशी** : *तब इससे मुक्ति कैसे मिलेगी?*

**दे. ला.** : *अब यह तो जनता जब कभी बगावत करेगी, तभी निजात मिलेगी। जनता इन पर टूटेगी· यह तभी मुमकिन होगा जब मज़दूर-किसान एक होंगे।*

**22 दिसंबर, 1991**

# 'परिवर्तन की शृंखला की एक कड़ी हूँ' :

*'परिवर्तन की शृखला में एक कडी मात्र हूँ। विराम समझने की भूल नहीं करता और न ही कभी करूगा।' अ भा राष्ट्रीय महासभा (काग्रेस) के शिमला अधिवेशन के एकमात्र चुनाव के विजेता युवा तुर्क नेता श्री चन्द्रशेखर से बातचीत का सिलसिला इन शब्दो में शुरू हुआ।*

*शिमला की माल रोड से लगभग डेढ हजार फुट नीचे एन्नाडीले मैदान में कांग्रेस की केन्द्रीय चुनाव समिति के सदस्यों के चुनाव की सरगर्मी । श्री चन्द्रशेखर ने मैदान से न हटने की घोषणा कर दी है। एक सिरे से दूसरे सिरे तक कहा गया कि अधिकृत सूची में श्री चन्द्रशेखर का नाम नहीं है। सदस्य कभी स्वयं को देखते, कभी चंन्द्रशेखर को और कभी मंच पर बैठे उच्च नेताओं . श्रीमती इन्दिरा गॉधी, श्री चन्द्रजीत यादव, उमाशकर दीक्षित, जगजीवन राम, सुब्रह्मण्यम, कमलापति त्रिपाठी, शंकरदयाल शर्मा आदि को। उन्हें अचम्भा था कि एक ओर युवा तुर्क अ भा कांग्रेस महासमिति के महासचिव श्री चन्द्रजीत यादव हैं तो दूसरी ओर युवा नेता श्री चन्द्रशेखर खडे हैं। चारों तरफ अनिश्चितता का धुँधलका छाया हुआ है। इसी मे से झॅकते हुए चंद्रशेखर कह रहे हैं– 'जिस ढग से चुनाव कराए जा रहे हैं, ऐसी स्थिति मे हो सकता है, मैं हार जाऊॅ।' परन्तु, उनकी दाढ़ी में कोई सलवट नही आई। आखिर मतदान हो गया।*

*शिमला का दस अक्तूबर का उज्ज्वल प्रभात। फिर शोर उमड रहा था। युवा तुर्क चन्द्रशेखर बधाइयों के भँवर में फॅस गए। पत्रकारो और फोटोग्राफरों का ताँता। सैकडों सवाल, सैकडों शंकाओं के समाधान और सैकडों चित्र। श्री चन्द्रशेखर की जीत सम्भवत युवा तुर्कों की जीत न थी; युवावर्ग दो हिस्सों मे बॅटा था– एक महासमिति के युवा सचिव के साथ तो दूसरा उसे चुनौती देनेवाले युवावर्ग के साथ,*

जिसकी पीठ पर कुछ असंतुष्ट नेता और मंत्री भी थे। इसी खींचातानी में उनसे कह रहा हूँ– 'एक दाढीवाले की दूसरे दाढीवाले को बधाई।'

तपाक से उत्तर मिला- 'हॉ भाई ! यह दाढी का ही तो चमत्कार है।'

## परिवर्तन की गति मन्थर

***जोशी** : बम्बई अधिवेशन (1969) से लेकर शिमला-अधिवेशन तक क्या आप दल की कोई ठोस उपलब्धि मानते हैं?*

**चं शे** . केवल एक सीमित ठोस उपलब्धि। विभाजन के पश्चात समाजवाद लाने की दिशा मे काग्रेस के उच्च नेतृत्व मे एक सतही एकता आई है। इसी के फलस्वरूप संविधान मे सशोधन, आम बीमे का राष्ट्रीयकरण, भू पू नरेशो का प्रिवीपर्स समाप्त करने का निर्णय, एकाधिकार की प्रवृत्ति पर नियन्त्रण इत्यादि सम्भव हो पाए हैं। फिर भी मेरी ऐसी मान्यता है कि अभी कुछ नहीं हो पाया है। काग्रेस संस्था के विभाजन के बाद भी परिवर्तन की गति अत्यन्त मन्थर है। यह एक चिन्ता की बात है कि दल के उच्च-वर्ग की ढुलमुल नीति मे कोई अन्तर नहीं आया है।

***जोशी** . क्या काग्रेस के वर्तमान नेतृत्व मे कुछ और बुनियादी सुधारों की आवश्यकता है?*

**च शे.** सुधार की सदैव आवश्यकता रहती है। अगर ऐसा नहीं किया जाता तो उसमे ठहराव आ जाता है, परन्तु इसके साथ ही जनता मे राजनीतिक चेतना का ठोस फैलाव भी आवश्यक है। किसी दल में केवल सुधार से काम नहीं चल सकेगा। यदि जन-चेतना का अभाव है तो सुधार के पश्चात भी नेतृत्व के भ्रष्ट होने का अदेशा बना रहेगा। काग्रेस कार्यकर्त्ता जहॉ नेतृत्व के परिवर्तन की बात करते हैं, वहॉ जनजागरण और वैचारिक-क्रान्ति से कतराते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि नेतृत्व में सुधार और जन-चेतना की प्रक्रियाएँ साथ-साथ चले।

वैसे आम तौर पर किसी भी सगठन मे सुधार के कदम का स्वागत होना चाहिए, क्योंकि इस तरह के सुधार कभी-कभी आवश्यक हो जाते हैं, परन्तु सुधार या परिवर्तन के पीछे सक्रिय शक्ति का जनता और दल के आम कार्यकर्त्ताओं से सीधा तालमेल होना चाहिए। परिवर्तन के कदम उसी अवस्था मे कारगर सिद्ध हो सकते हैं, जबकि उनसे दल की नीति एवं कार्यक्रमो की रक्षा हो, न कि किसी विशेष व्यक्ति की प्रतिष्ठा स्थापित हो।

***जोशी** : उडीसा तथा अन्य स्थानो के उपचुनावों मे कांग्रेस को मिली करारी हार से आप ऐसा नहीं मानते कि आपका दल लोकप्रियता खोता जा रहा है?*

**चं. शे.** : उपचुनावो में दल की पराजय से यह नतीजा नहीं निकालना चाहिए कि

जनता ने हमारी नीतियों को अस्वीकार कर दिया है। परन्तु, इससे ये संकेत तो अवश्य मिलते हैं कि जनता कितनी तेजी से परिवर्तन चाहती है। जब हम जनता की आकांक्षाओं को अमली जामा पहनाने का दावा करते हैं, तब जनता इसका शीघ्र सबूत भी चाहती है। इसके लिए वह दल या संगठन के कदमों को सदैव शंका की दृष्टि से देखती है।

इसके अतिरिक्त हमें भूलना न चाहिए कि जनता की भावनाएँ तेजी से जगाई तो जा सकती हैं, परन्तु उन्हें सुविधा से सुलाया नहीं जा सकता। जब एक बार जन-आकांक्षाएँ जग जाती हैं, तो उन्हें चमत्कारी उपलब्धियों की अपेक्षा रहती है, जो न तो सम्भव है और न ही व्यावहारिक। हकीकत तो यह है कि आगे बढ़ती जनता को इतनी आसानी से व्यवस्थित नहीं किया जा सकता, जितनी आसानी से राजनीतिक दलों का नेतृत्व व्यवस्थित हो जाता है। कांग्रेस को चाहिए कि वह जनता को सही ढंग से शिक्षित करे और उसकी समस्याएँ समझे। यदि इस तथ्य की उपेक्षा करके चातुर्यपूर्ण माध्यमों से आश्चर्यपूर्ण उपलब्धियों की बात की जाएगी तो निश्चय ही इस प्रकार के माध्यम बिखर जाएँगे और समस्या और भी उलझ जाएगी।

उपचुनावों में पराजय से कांग्रेस-जनों को यह भी समझ लेना चाहिए कि उनकी विरोधी शक्तियाँ समाप्त नहीं हुई हैं, केवल सुप्तावस्था में हैं।

## युवा पीढ़ी और श्रीमती इन्दिरा गाँधी

*जोशी : श्रीमती इन्दिरा गाँधी का नेतृत्व किस सीमा तक युवा पीढ़ी को साथ ले सकता है?*

चं. शे. : इन्दिरा-नेतृत्व का प्रश्न नहीं है, प्रश्न है दलीय कार्यक्रमों एवं नीतियों का। ये कार्यक्रम ही युवको को आकर्षित करते हैं अथवा उन्हें निराश करते हैं। इसके अतिरिक्त एक तथ्य और भी है। प्रत्येक दल अपनी सुरक्षा की चिन्ता करता है। युवा-शक्ति सुदृढ़ रहती है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक दल चाहता है कि युवकों को साथ लिया जाए। कांग्रेस भी इसी भावना से प्रभावित है।

*जोशी : क्या आप ऐसा विश्वास करते हैं कि विधानसभाओं के अगले चुनावों में युवकों को उचित प्रतिनिधित्व दिला सकेंगे?*

चं. शे. : मेरा प्रयास यही रहेगा कि युवकों को उचित प्रतिनिधित्व मिले। यह बात साफ तौर पर समझ लेनी चाहिए कि युवा-पीढ़ी की और अधिक देर तक उपेक्षा नहीं की जा सकती। आज जो लोग युवकों का प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं, उनकी भी असलियत का अब पता चल जाएगा; मुखौटावादी चेहरा स्वत: साफ

होकर सामने आ जाएगा।

आज आवश्यकता इस बात की है कि दल का नेतृत्व अपनी वैचारिक शक्ति के दायरे को और भी चौडा करे। नारेबाजी और लम्बे-चौडे भाषणो से बचना चाहिए अन्यथा उनके सारे प्रयत्न असफल हो जाएँगे।

## युवा-चेतना रास्ता निकालेगी

***जोशी** : केन्द्रीय चुनाव-समिति मे कुछ उन लोगो को लिया गया, जिन्हे हाल ही मे ऊँचे पदो से हटाया गया है और दबे रूप मे उन पर भ्रष्टाचार के आरोप हैं। यहाँ तक कि एक सदस्य को तो न्यायालय ने भी भ्रष्टाचार के मामले में दोषी ठहराया है। ऐसी स्थिति मे दल की इस उच्च समिति मे उनका चुना जाना क्या यह सिद्ध नही करता कि कांग्रेस के अनेक रूप हैं? क्या इससे युवकों को निराशा नहीं होगी?*

**चं शे** : देखिए जनाब! इस प्रकार के तत्त्वो के समिति मे प्रवेश से यह तो सिद्ध हो ही गया कि दल को उनकी आवश्यकता है। उच्च पदो से हटाया जाना एक दिखावा मात्र था। फिर भी इस प्रकार के व्यक्तियो के चयन मे मेरा कोई हाथ नहीं है। उनके चुने जाने और न चुने जाने से मेरा कोई सम्बन्ध नही।

जहाँ तक बात है युवको की निराशा की, उसका अवश्य ही महत्व है। परतु, उससे यह नतीजा नहीं निकालना चाहिए, कि इस प्रकार के तत्वो से युवा-चेतना की प्रक्रिया प्रभावित होगी। यह प्रक्रिया स्वत ही अपना मार्ग प्रशस्त करती जा रही है।

***जोशी** . बदलाव के लिए उठा युवको का उग्र-हिसक आन्दोलन भी आज असफल-सा हो गया, और कांग्रेस भी कोई उचित मार्ग नही दिखा सकी है। ऐसी स्थिति मे आप युवको से क्या अपेक्षा करते है?*

**चं. शे** : मेरे युवा बन्धु! प्रत्येक वस्तु के लिए बलिदान की आवश्यकता होती है। बदलाव के लिए उठा आन्दोलन असफल ही हुआ है, मरा तो नही। यद्यपि उग्र आन्दोलन मे कुछ त्रुटियाँ अवश्य हो गई है, तथापि यह मान बैठना मूर्खता होगी कि आन्दोलनकारियो का बलिदान निष्फल गया है।

हम लोगों को चाहिए कि उग्र युवावर्ग की भावनाओं और पीडाओं को ठीक तरह से समझें, उन्हें विश्वास में ले, तभी सामाजिक परिवर्तन मे उनका सक्रिय योगदान मिल सकता है।

**31 अक्टूबर, 1971**

# ढीली पकड और निस्तेज संवाद के बीच

"मुझ पर लिखा गया आपका शब्द-चित्र पढा। काफी अच्छा लगा। पहली बार किसी पत्रकार ने ऐसा लिखा है।" टेलीफोन के उस छोर से आवाज थी। "धन्यवाद," इस छोर से कहा गया।

"पर शब्द-चित्र एकांगी जरूर लगा," उस छोर से शिकायत-भरा स्वर था। "वो कैसे?" इस छोर से एक व्यग्रता थी, "उस दिन प्रेसवार्ता में जो देखा उसको शब्दों में रेखांकित कर दिया।"

"कमरे की वस्तुओं का चित्रण ठीक किया। परतु, आप भूल गए मेरे कमरे में एक शेर का सिर भी दीवार पर टॅगा हुआ है, सिर्फ मृग का धड ही नहीं है। मैं निस्तेज नहीं हूँ, जैसा कि आपने लिखा है। मुझमें तेज है।" दूसरे छोर से मध्यप्रदेश के वरिष्ठ नेता श्री विद्याचरण शुक्ल इस संवाददाता को अपने व्यक्तित्व का मर्म समझा रहे थे। संदर्भ था नई दुनिया के 27 जून के अंक मे प्रकाशित 'विद्याचरण शुक्ल': एक शब्दचित्र' का। आलेख मे पत्रकारों से बातचीत करते हुए उनकी मनोदशा तथा कक्ष-स्थिति का शब्द-चित्रांकन था। इस पर उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। तब से लेकर आज तक काफी उथल-पुथल हो गई। श्री शुक्ल कांग्रेस पार्टी से निकाल दिए गए। उन्होंने राजीव गॉधी से इस्तीफा मॉंगा। संभवत: जीवन में पहली बार श्री शुक्ल ने राजघाट पर अन्य निष्कासित इंकाइयों के साथ अनशन किया; गाँधीजी के औजारों को नए संदर्भो में युवा राजीव गॉधी के खिलाफ आजमाने की कोशिश की। यह एक अच्छा मौका था नए ज्वार के बीच बागी महानदी वीसी की क्षमताओं की थाह लेने का। धारा के विरुद्ध श्री शुक्ल कितनी दूर तक जा सकते हैं, इस संबंध में राष्ट्रपति परिसर में स्थित उनके भव्य निवासस्थान पर एक बेबाक संवाद हुआ। वही कक्ष था, वही वस्तुएँ थीं, वही वातावरण था, परंतु संदर्भ बदले हुए थे, और पूर्व केंद्रीय मंत्री शुक्ल के स्वर भी।

मुट्ठी में आसमान कैद करने का स्वप्न कितना रोमांचक है स्वयं में? इस हौसले के साथ बाहर निकल पड़ें और बीच रास्ते में पहुँचकर पाएँ कि आसमान टूट चुका है और मुट्ठी खुल चुकी है, तब क्या हो? समर-भूमि में एक योद्धा देखे कि निर्णायक क्षणों में उसकी सेना अदृश्य हो चुकी है और वह लहूलुहान होकर अकेले अपने शिविर में लौटना चाहता है। उपलब्धि के लिए उसके पास न जीत है और न ही पूर्ण पराजय। जीत और पराजय के बीच का पडाव कितना कष्टकर है? न वह 'जीत' तक पहुँच सकता है और न ही 'हार' को स्वीकार कर सकता है। ऐसे क्षण उसे अंतर्मुखी-अतर्दर्शी बना डालते हैं—क्या वास्तव मे मेरा किसी के साथ समर था ? किसके विरुद्ध और किसके सहयोग से था या युद्ध था ही नहीं, एक आत्मछलावा था?

ऐसे ही अंतर्विवेचना के भाव मध्यप्रदेश के वरिष्ठ नेता और असंतुष्टो के सेनापति के रूप में प्रसिद्ध श्री विद्याचरण शुक्ल के चेहरे पर छाए हुए थे। अवसर था सीमित पत्रकारों के साथ कुछ 'ऑन-दी-रिकार्ड' और कुछ 'ऑफ-दी-रिकार्ड' बातचीत करने का। पत्रकारों के साथ उनकी अनौपचारिक बातचीत कोई नई घटना नहीं थी। पर इस बार इसलिए महत्वपूर्ण थी कि ढेर सारे विवादों के बीच पत्रकारों को बुलाया गया था। पूर्व केंद्रीय मत्री शुक्लजी जिन्हें प्यार से 'विद्या भैया' या 'वी सी' कहा जाता है, इस बात से इकार नहीं कर सकते कि उनके और प्रधानमत्री के संबंधों को लेकर एक लंबे समय से विवाद चल रहा है। श्री शुक्ल की राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह से निकटता भी शकाओं से परे नहीं रही है। हो सकता है यह बिल्कुल गलत हो, परंतु उन्हे प्रधानमत्री-विरोधियों में प्रमुख माना जाता है। जबसे राष्ट्रपति-प्रधानमंत्री की टकराहटें शुरू हुई, तब से वे निरतर विवादों के घेरे में रहे हैं। राजनीतिक क्षेत्रों में फुसफुसाहटें खूब फैली कि श्री शुक्ल ने निवृत्तमान राष्ट्रपति को फिर से चुनाव लड़ने के लिए उकसाने की तमाम कोशिशें कीं। प्रचार हुआ कि अन्य खुर्राट असंतुष्टों से मिलकर वे एक सौ सत्तर इका सांसदों तक को फोड सकते है। पिछले पन्द्रह-बीस दिनों में उन्हें कई अफवाहों के साथ जोडा जाता रहा है। प्रधानमंत्री राजीव गाँधी को वे 'मानसिक धरातल' पर एक नेता के रूप में स्वीकार करने में असमर्थ हैं, इंकाइयों के बीच यह एक आमचर्चा रही है पिछले दस-बारह महीनों से। जब यह साफ हो गया कि ज्ञानी जैलसिंह ने श्री वैकटरमन के विरुद्ध बागी उम्मीदवार के रूप में खड़े होने से इंकार कर दिया, तब कई घटनाओं के एक दृश्य का पटाक्षेप हो गया और इस घटना के पटाक्षेप के साथ-साथ श्री शुक्ल पर आक्रमणों की बौछार शुरू हो गई। संसद के केंद्रीय कक्ष में प्रदेश के तीन इंका सांसदों—प्रतापभानु शर्मा, दिग्विजय सिंह और सुरेश पचौरी के साथ तकरारें हुईं। इससे पहले भी उनकी तकरारें हो चुकी हैं। उनकी एक खुली युद्ध-शैली रही है, घात लगाकर वार करने की नहीं। पिछले सात सालों में उन्होंने इस शैली को और पैना किया है। इंदिरा काल में उन्होंने श्री अर्जुनसिंह के साथ मोर्चा खोला और उन्हें केंद्रीय पद छोड़ना पड़ा। तब से

आज तक वे चैन से नहीं बैठे हैं। आँखों में आसमान समा जाए और मुट्ठी में सत्ता सिमट आए, इसका एक युद्ध वे लड़ते रहते हैं और लहूलुहान होकर लौटते रहते हैं।

आज भी उनकी मुद्राएँ साक्षी थीं कुछ ऐसी ही लौटती यात्रा की। राष्ट्रपति-परिसर के अंदर स्थित एक विशाल बंगले के करीने से सजे एक कक्ष में श्री शुक्ल शांत बैठे हैं। सोफों पर पत्रकार। ठीक सामने दीवार पर टँगा है साँभर का सिर, पीठ पीछे पं. नेहरू और श्रीमती इंदिरा गाँधी के श्वेत-श्याम चित्र। श्री शुक्ल की बाईं ओर दीवार पर एकतारा लटका हुआ है। दो सजावटी शेर एक-दूसरे को घूरने की मुद्रा में रखे हैं तो रेगिस्तानी ऊँटों का कारवाँ भी है।

इस पृष्ठभूमि में श्री शुक्ल के मुद्राभाव संयोजन ने वातावरण को अनायास ही आकर्षक बना दिया है। मुख-मुद्राएँ जरूर स्थिर थीं, परंतु पेशानी पर उभरनेवाले भावों के साथ मौन संवाद करना कम दुष्कर कार्य नहीं था। वैसे हृदय-भाव छुपाने में शुक्ल कम पटु नहीं हैं। याद है, जब उन्होंने इंदिरा सरकार से इस्तीफा दिया, तब इस संवाददाता और *नई दुनिया* के तत्कालीन संपादक श्री राजेन्द्र माथुर के साथ करीब एक घंटे तक बडे इत्मीनान के साथ बातचीत करते रहे, क्षण-भर के लिए भी आभास नहीं होने दिया कि सत्ता-आकाश उनकी मुट्ठी से फिसल चुका है।

आज भी उन्होंने आहिस्ता-आहिस्ता अपने ऊपर लगाए गए आरोपों का खंडन किया, स्पष्ट किया कि वे कांग्रेस के अनुशासित कार्यकर्ता हैं, आज वे जो भी कुछ हैं, कांग्रेस सगठन की बदौलत है। शायद टीस उनके हृदय में रही होगी। उनके मुख पर एक विचित्र निस्तेज छाया हुआ था। जब उन्होंने इंदिरा-सरकार से इस्तीफा दिया था, तब उनके चेहरे पर चमक थी, एक उत्साह था, रंगों से भरा हुआ था उनका चेहरा। हर शब्द, हर वाक्य उनके कमान में था। पर आज? वे कई दफे सवालों को ठीक तरह से समझ व सुन नहीं पा रहे हैं। झलक रहा है, उनके मन-मस्तिष्क में कोई गहरी उथल-पुथल चल रही है। लगता है कोई बाँध टूटना चाहता है, जिसे रोकने की वे भरसक कोशिश कर रहे हैं। इस आंतरिक द्वंद्व के कारण बाह्य वातावरण पर उनकी पकड ढीली दिखाई दे रही है। संवादों के बीच एक अनमना भाव उनके मुख पर है। उनके और शब्दों के बीच एक अदृश्य संवादहीनता है। पत्रकारों को अपने सवाल बार-बार दोहराने पड़ रहे है। शोर के बीच शुक्लजी का यह गाफिल रूप पहली बार देखा। मेरी निगाहें वापस फ्रेमों में सजे नेहरू-इंदिरा, घूरते दो शेरों और ऊँटों के कारवाँ पर बारी-बारी से पड़ती है। दाईं ओर अपने पिताश्री पं रविशंकर शुक्ल के चित्र पर एक दृष्टि डालते हुए श्री शुक्ल कहते हैं–"मुझे जो भी कुछ कहना होगा, पार्टी-मंच पर कहूँगा।" श्री शुक्ल के बाईं ओर चुपचाप टँगा था एकनारा।

27 जून, 1987

**विद्याचरण शुक्ल से साक्षात्कार**

दूसरा भाग   सामना

# 'राजीव गाँधी तो सिर्फ दुर्घटनाओं की पैदाइश हैं'

आमतौर पर श्री शुक्ल को देश की समकालीन काग्रेसी राजनीति मे कभी गभीरता मे नहीं लिया गया। उनकी छवि धारा के विरुद्ध तैरने की कभी नही रही। चन्द्रशेखर, मोहन धारिया, अर्जुन अरोडा, कृष्णकात  चन्द्रजीत यादव के समान तत्कालीन युवा तुर्क होने का श्रेय उन्हे कभी नही मिला। इकाई सिद्धातकारो और रणनीतिज्ञो की श्रेणी मे भी उन्हे कभी नहीं रखा गया। कुल मिलाकर श्री शुक्ल की छवि एक 'सुकुमार नेता' की रही। उनकी कोमल तबीयत की कई कहानियाँ आपातकाल और उसके बाद चर्चित रही है। जनता-शासनकाल मे वे विवादो से घिरे रहे। इदिरा शासन की वापसी के पश्चात श्री शुक्ल मे एक नया किरदार जन्मा। इंदिराजी के जीवित रहते हुए उन्होने तत्कालीन मुख्यमत्री श्री अर्जुनसिह से टक्कर ली। परोक्ष रूप से दिल्ली के शिखर-नेतृत्व को चुनौती दी गई। निश्चित ही मुख्यमत्री के विरुद्ध उनका वक्तव्य एक दुस्साहसिक कदम था। केंद्रीय मत्रिमडल से उन्हे हटना पडा। इदिराजी जब तक जीवित रहीं, यह अफवाह बराबर बनी रही कि श्री शुक्ल को कभी भी सरकार मे लिया जा सकता है। जब राजीव गाँधी प्रधानमत्री बने  तब भी श्री शुक्ल को लेकर अफवाहे कम नहीं थीं। पिछले सात-आठ सालो की सच्चाई यह रही है कि शिखर-नेतृत्व से उनकी दूरी और गहराती गई। परिणाम यह निकला कि शिखर-नेतृत्व ने उन्हे पार्टी से ही निकाल दिया। कहा जा सकता है, श्री शुक्ल की राजनीतिक महानदी मे उतार के ही दौर चलते रहे है।

परतु, उतार को चीरता हुआ और नए ज्वार पर सवार आज एक नया शुक्ल दिखाई देता है। यद्यपि इस ज्वार के सूत्रधार श्री शुक्ल नहीं है, थपेडो ने उन्हे उसका हिस्सा जरूर बना दिया है। दो दिन तक अलग-अलग किस्तो मे सपन्न बातचीत मे श्री शुक्ल का नया रूप खुलकर मुखरित हुआ। उनकी मुख-मुद्राएँ काफी कुछ

**कह रही थीं। जहाँ आज की परिस्थितियों को लेकर गुस्सा था, गहरी निराशा थी, वहीं भविष्य को लेकर एक दृष्टि व आशा भी थी।** श्री शुक्ल मे आपातकालीन **गलतियों के** लिए आत्मस्वीकृति का **बोध** भी मिला, और पहली बार उन्हे **यथास्थितिवाद** के विरुद्ध खडा भी पाया। श्री **शुक्ल** ने घोषणा की कि देश को एक नए सविधान की आवश्यकता है, **निजी सपत्ति के अधिकारो** की फिर से पडताल की जानी चाहिए और नव-आर्थिक उपनिवेशवाद के खिलाफ सघर्ष करना होगा। प्रस्तुत है उनके समसामयिक कायाकल्प के साथ साक्षात्कार के अश

***जोशी*** *बोफोर्स काड की जॉच के लिए ससदीय समिति के गठन पर हुई बहस के दौरान आप करीब एक घटे तक सदन मे खडे रहे। अध्यक्ष ने आपकी उपस्थिति का नोटिस नही लिया। आपको अपना वक्तव्य देने की अनुमति भी नहीं दी गई। हारकर आपने भी विपक्ष के साथ सदन का बहिष्कार किया। चूँकि पहली दफा सत्ता-पक्ष से बाहर रहकर आपने सत्ता से टक्कर ली और सदन का बहिष्कार किया, तो क्या आपको यह अटपटा नहीं लगा? कैसी थी आपकी मनोदशा?*

**शुक्ल** बहुत अच्छी थी। मै बहुत प्रसन्न था। पहली बात तो यह कि मन मे लग रहा था कि अन्याय के विरुद्ध प्रतिकार को मुखर रूप दिया जा रहा है। और अटपटा इसलिए भी नही लगा क्योकि हम विरोधी दल के हिस्से तो हैं नहीं। हम लोगो को सदन मे जो दर्जा दिया गया है वह अनअटैच्ड मेम्बर' का है। याने गुटनिरपेक्ष । याने त्रि ॰कु । *(हॅसी। )*

**समझ** लीजिए गुटनिरपेक्ष स्थिति मे रहकर कार्य करने मे कोई कठिनाई नहीं होती **है मन** मे। क्योकि आज भी हम अपने को काग्रेसी मानते है, **मन से**। उस तरह **से हम** अपने को काग्रेस-विरोधी नहीं मानते है बहिर्गमन के समय, अलबत्ता अपने को 'राजीव विरोधी' मानते हैं।

***जोशी*** *क्या नेतृत्व का विरोध करना पार्टी-विरोधी गतिविधि नही कहा जाएगा?*

**शुक्ल** बिल्कुल नहीं। पार्टी के अदर रहकर नेतृत्व का विरोध करना पार्टी-विरोधी गतिविधि कतई नहीं है। आपने देखा ही होगा, राज्यों मे नेतृत्व बदला जाता है। इसके लिए अभियान चलाए जाते हैं। दिल्ली आकर भी अभियान चलते है, हस्ताक्षर अभियान भी चलते हैं। इसके बाद नेतृत्व-परिवर्तन होता है।

परतु, आज गडबड यह हो रही है कि दल और नेता को एक मान लिया गया है। नेता माने दल, दल माने नेता– यह हम लोगो को बिलकुल नामजूर है, यह बात हम पहले से भी कहते आ रहे है, और अब भी कहेगे। हमारा यही अभियान रहा है। असली बात यह है कि ये जो काग्रेसी का आवरण ओढे व्यक्ति (राजीव गाँधी) हैं, ये काग्रेसी नहीं हैं। काग्रेसी भाषा जरूर बोलते हैं, परतु मन व कर्म से जरा भी

नहीं हैं। गलत व्यक्ति को चुन लिया गया है, और ये भी गलत आदमियों को प्रोत्साहित कर रहे है। मैं इस सबध मे माखनलाल फोतेदार का नाम लेता हूँ, जिनकी कुख्याति विभिन्न कारणो से है। ये फोतेदार अयोग्य और अवाछित हैं। इन्हे बडा महकमा भी दिया गया है, जबकि इस मत्रालय के लिए समझदार व काबिल व्यक्ति की आवश्यकता है। यह मै जरूर साफ कर दूँ कि *व्यक्तिगत स्तर पर मैं* राजीव-विरोधी नहीं हूँ। उनका मेरे साथ अच्छा व्यवहार रहा है। कम से कम मै उन्हे अपना व्यक्तिगत विरोधी नहीं मानता। उनके मन मे मेरे प्रति क्या है, यह वही जाने। पर राजनीतिक स्तर पर मै उनका विरोधी हूँ, वह भी इसलिए कि वे काग्रेस को गर्त मे डाल रहे है। बहुत तेजी से काग्रेस को उस गर्त से निकालने मे बडी कठिनाई होगी या सभव ही नही होगा। इससे पहले कि वे काग्रेस को पूरी तरह डुबो दे, उसे बचाना जरूरी होगा। पजातात्रिक प्रणाली से नेता का चुनाव होगा तो काग्रेस बचेगी।

***जोशी*** *आज काग्रेस मे लोकतात्रिक प्रक्रिया का अभाव है। क्या आपके मत मे यह एक आकस्मिक घटना है और राजीव गॉधी इसके लिए दोषी है?*

**शुक्ल** नही, ऐसा नही है। यह एक लम्बी प्रक्रिया है। 1970 और 1978 मे पार्टी के विभाजन के पश्चात कुछ ऐसी स्थिति बनी। इदिराजी तो इस स्थिति को जैसे-तैसे सम्हालती रही, उनका नेतृत्व किसी को खराब भी नहीं लगता था, परतु, राजीव गॉधी मे अनुभव का अभाव है। उनकी राजनीतिक पृष्ठभूमि भी नही है। अत इस अनुभवहीनता के कारण श्री गॉधी ने श्रीमती गॉधी के कार्यों के विपरीत कदम उठाए हैं।

अब आप देखिए प्लेन दुर्घटना मे सजय गॉधी की मृत्यु हुई तो राजीव गॉधी एम पी बन गए। दूसरा धमाका इंदिराजी की हत्या से हुआ तो वे प्रधानमत्री बन बैठे, वे कोई राजनीतिक प्रक्रिया से तो प्रधानमत्री बने नहीं। हम लोग बने या हटे हैं, सब राजनीतिक प्रक्रिया की पैदाइश है लेकिन राजीव गॉधी तो दुर्घटनाओ की पैदाइश हैं। आज इन दुर्घटनाओ का फल पार्टी और देश दोनो को भुगतना पड रहा है।

***जोशी*** . *आपने उस समय विरोध क्यो नही किया जब श्री गाँधी को प्रधानमत्री बनाया जा रहा था?*

**शुक्ल** : उस समय हम लोगो को जरा भी अदाज नहीं था। इदिराजी की हत्या से हम सब लोग स्तब्ध थे। विरोध की कोई सोच भी नहीं सकता था, बल्कि हम सबने समर्थन ही किया। उम्मीद थी कि वे अच्छा काम करेगे। उनके स्वभाव और कार्यशैली की किसी को जानकारी नहीं थी। बस इतना ही कहा जा सकता है कि इंदिराजी के शव के बाजू मे ज्ञानीजी ने राजीव गॉधी को शपथ दिलवा दी। हमसे तो पूछा तक नहीं गया। हमने तो सोचा था कि पार्टी की बैठक होगी, बातचीत होगी,

तब जाकर कोई नेता बनेगा। परंतु इस प्रक्रिया को ताक में उठाकर रख दिया। जब दिल्ली जल रही थी, तब खबर आई कि उन्हें स्थायी प्रधानमंत्री की शपथ दिला दी गई है। फिर भी हमने सोचा कि जो हो गया सो हो गया' अब पूरी तरह से राजीव गाँधी को सहयोग देंगे। हमने ऐसा ही किया।

*जोशी : आपको राजीव गाँधी ने कब से निराश किया?*

**शुक्ल :** निराशा की शुरूआत बंबई में हुए कांग्रेस शताब्दी समारोह से हुई। जिस ढंग का भाषण राजीव गाँधी ने दिया था उससे यह लगने लगा था कि ये कांग्रेस पार्टी नहीं चला सकेंगे। राजीव गाँधी को सत्ता के दलाल और संगठन कार्यकर्ता के बीच का अंतर मालूम नही है। फोतेदार, सीताराम केसरी जैसे लोग राजनीतिक परजीवी हैं।

बंबई से आज तक कई छोटी-मोटी घटनाएँ होती गईं। पहले यह लगा कि श्री गाँधी संगठन नहीं चला सकेंगे, और अब लग रहा है कि सरकार भी नहीं चला सकेंगे, क्योंकि वे कांग्रेस-संस्कृति को नही जानते, इनमे कांग्रेसी संस्कार नहीं है। जब से हर तरह के घपले होने लगे या कराए जाने लगे, तब से यह विश्वास हो गया कि ये सरकार नहीं चला सकते। यही कारण है कि इन्होंने अपने इर्द-गिर्द अच्छे लोगों को नहीं रखा।

*जोशी : यदि आपको सरकार में शामिल किया जाता तो*

**शुक्ल :** खैर, मेरा तो कोई सवाल ही नहीं उठता और न ही उनमें मुझे लेने की कोई इच्छा होगी, मुझे हमेशा से ऐसा लगता रहा है, हालाँकि उनके साथ मैंने घंटों बिताए है। जरा भी यह मत सोचिए कि मेरा श्री गाँधी के प्रति या उनका मेरे प्रति कोई पूर्वाग्रह या दुराग्रह था। अभी भी कोई व्यक्तिगत कटुता नहीं है। मैं तो केवल इतना मानता हूँ कि जिस स्थान पर वे अचानक पहुँच गए हैं, वहाँ उस काम के लिए वे सर्वथा अयोग्य सिद्ध हुए हैं। उससे दल व देश का भारी नुकसान हुआ है।

*जोशी : क्या आप यह मानते हैं कि भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार या आर्थिक अपराध एक आकस्मिक घटना है? क्या वर्तमान व्यवस्था में ही यह निहित नहीं है?*

**शुक्ल :** आकस्मिक घटना बिल्कुल नहीं है। कम-ज्यादा हमेशा चलता रहा है। परतु, प्रधानमंत्री के स्तर पर किसी ने भ्रष्टाचार की कल्पना भारतवर्ष मे नहीं की थी। इंदिरा गाँधी, मोरारजी देसाई आदि पर आरोप नही लगे थे। श्री देसाई के पुत्र पर जरूर लगे थे।

*जोशी : मुख्यमंत्रियों पर जरूर लगाए गए है। इनमें मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री भी शामिल हैं।*

**शुक्ल :** परंतु देश के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ है जब प्रधानमंत्री पर

जिम्मेदार लोगो ने भ्रष्टाचार के आरोप लगाए हैं। बगैर भ्रष्ट हुए आरोप नहीं लग सकते। चद्रभानु गुप्त का उदाहरण सामने है। वे पार्टी के लिए पैसा जमा किया करते थे। परतु उन्होने जनहित का नुकसान करके पैसा जमा नहीं किया। ललित नारायण मिश्र के संबंध में भी यही बात है। ललित बाबू की हत्या के बाद उनके बिल चुकाने के लिए उनके परिवार के पास पैसे नहीं थे। दोनों ही नेता पार्टी के लिए पैसे इकट्ठे किया करते थे, निजी कामों के लिए नहीं। इधर-उधर छोटी-मोटी गलतियॉ हो गई हों तो कुछ नहीं कह सकता।

***जोशी*** *: क्या राजीव गॉधी के हटने के पश्चात भ्रष्टाचार समाप्त हो जाएगा?*

**शुक्ल** : बिल्कुल समाप्त तो नही होगा, कम जरूर हो जाएगा। भ्रष्टाचार शिखर से शुरू होता है। भ्रष्टाचार एक व्यभिचार की तरह है जिसका उन्मूलन एक साथ नहीं हो सकता। मै यह भी नहीं मानता कि चुनाव लडने के लिए भ्रष्टाचार की आवश्यकता होती है।

***जोशी*** *खर्चीले चुनाव के लिए पैसा कहॉ से आता है?*

**शुक्ल** *(बडी मासूमियत भरे अदाज मे)* मित्र लोग देते है, श्रद्धा रखनेवाले लोग पैसा देते है। पॉच साल मे एक बार आते हैं और चुनाव के लिए पैसा दे जाते है। इसमे कोई भ्रष्टता नही है। मै निजी रूप से दो कोषाध्यक्षो को जानता हूँ। प उमाशकर दीक्षित और डी पी मिश्रा। इन दोनो को मैने करीब से देखा है। इन पर भ्रष्टाचार के जरा भी आरोप नहीं लगे। करोडो रुपए पार्टी के लिए खर्च किए, किसी ने उँगली तक नहीं उठाई।

आज जिसे देखो वही कहता है कि वह पार्टी के लिए धन जमा कर रहा है। किसके लिए ले रहे है? अब मै नाम नही लेना चाहता। आप भी जानते ही हैं। दिल्ली मे रहकर कितनी तरह की बातचीत होती है – किसके पास कितना करोड रुपया जमा है, किसके पास कितना। इन चर्चाओ का कोई आधार तो है। ब्रिटेन, अमेरिका मे भी करोडो रुपए लिए जाते है। सबको मालूम रहता है कि कौन कितना ले रहा है, कौन कितना दे रहा है। अमानत मे खयानत नहीं होती। परतु आज भ्रष्टाचार को खुली छूट दे दी गई है। बच्चन के इस्तीफे और वी पी सिह की कार्रवाई से इसकी पुष्टि होती है।

***जोशी*** *: रक्षा-सौदो मे घूस या दलाली नई बात है?*

**शुक्ल** . ऐसी बात नही है। परतु, आज एक बडा फर्क है। विगत मे सेना के अधिकारी रक्षा-सौदो मे शामिल रहते थे, मत्री लोग दूर रहते थे, वे सौदेबाजी मे पडते ही नही थे। 1980-81 के बाद यह देखा गया कि सौदेबाजी राजनीतिक स्तर

पर होने लगी। इसके बाद से ही राजनीतिक हस्तियों के नाम आने लगे। मैं भी तीन साल तक रक्षा-उत्पादन मंत्री रहा। मेरा तो कभी नाम नहीं आया, और न कभी आएगा। जब से राजीव गॉधी राजनीति में आए है, तभी से भ्रष्टाचार की पराकाष्ठा शुरू हुई है।

***जोशी** : जब आप इस बात को जानते थे तो आपने विरोध क्यों नही किया?*

**शुक्ल** : कहा ना आपसे, हमने उन्हें धीरे-धीरे समझा। हम लोगों को लगता जरूर था कि कुछ ठीक बात नहीं हो रही है। पर इंदिराजी हमारी नेता थीं। हम उनका विरोध किसी भी ढग से नहीं करना चाहते थे। इसलिए हम शिकायत नही करते थे। इतना जरूर जानते थे कि इंदिराजी के जाने बिना यह सब काम हो रहा है। स्वीकार करता हूँ कि इंदिराजी ने ऐसी बातें कभी नहीं कीं। हो सकता है राजीव जी उस समय छोटे पैमाने पर करते होंगे। परंतु शुरूआत 1982 में हो चुकी थी। यदा-कदा सुनने में बातें मिलती थीं, धीरे-धीरे प्रकट होने लगीं। जब ये सर्वेसर्वा हो गए, तब यह बात बिलकुल खुलकर सामने आ गई।

***जोशी** . जब श्री अरुण नेहरू प्रधानमंत्री के साथ थे, उनके संबध मे कई तरह की चर्चाएँ चली थीं। आज वे बिल्कुल स्वच्छ माने जाते हैं।*

**शुक्ल** : अरुण नेहरू पर ऐसे आरोप कभी नहीं लगे हैं। वे राजीव के सहयोगी थे। उन पर भ्रष्टाचार के आरोप कभी नहीं लगे। प्रधानमंत्री की परिधि में रहने के कारण शंकाएँ जरूर उठीं, परतु शंका और आरोप में अंतर है।

> (ये सब सवाल थे पहली किस्त में। साक्षात्कार की दूसरी किस्त की शुरूआत दूसरी सुबह हुई। तब श्री विद्याचरण शुक्ल का वही कक्ष था। बाजू में रखा एकतारा था, और ऊपर दीवार पर टॅगा सिह-मुख था। गुजरी शाम की तरह पूर्व केंद्रीय मंत्री शुक्ल की व्यस्तता मे कहीं ढील नहीं थी। रायपुर के इकाइयों का जमावडा लगा हुआ था। बातचीत का दूसरा दौर छत्तीसगढ से ही शुरू किया . )

***जोशी** : छत्तीसगढ से दिल्ली तक की राजनीतिक यात्रा का आपकी दृष्टि में क्या मूल्यांकन हो सकता है? क्या इसे आप सफल मानते हैं?*

**शुक्ल** : 1946 से मेरी राजनीतिक यात्रा शुरू होती है जब मैं पहली बार दिल्ली आया था। चॉदनी चौक स्थित दीवान हाल में विद्यार्थी कांग्रेस का राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था। अध्यक्षता श्रीमती अरुणा आसफअली ने की थी। इसके बाद राजनीतिक गतिविधियों का सिलसिला चल पडा। 1946 में पिताजी की मृत्यु हुई। उनके स्पष्ट आदेश थे कि जब तक वे जिंदा हैं, मैं और श्याम भैया राजनीति नहीं करेंगे। उनकी मृत्यु के बाद ही हम दोनों ने 1947 का चुनाव लड़ा। उनकी हमेशा से रुचि प्रदेश

मे थी और मेरी राष्ट्रीय-अतरराष्ट्रीय राजनीति मे। वैसे उन दिनों सासदों की तुलना मे विधायको को अधिक महत्व दिया जाता था।

मुझे दिल्ली की राजनीति मे सफलता मिली। पडितजी पतजी, मौलाना आजाद राजेन्द्र बाबू इदिराजी आदि नेताओ ने मुझे खूब प्रोत्साहन दिया। लेकिन मै यह स्पष्ट कर दूं कि मुझे कैरियर बनाने की लालसा बिल्कुल नहीं थी। काग्रेस के आदेशो का पालन ही मेरा असली ध्येय था। हम दोनो भाइयो के जीवन मे पद का महत्व रहा ही नही। इसीलिए आपने देखा होगा कि हम दोनो के जीवन मे कई बार राजनीतिक उतार-चढाव आए है क्योकि सिद्धातहीन राजनीति हम लोगो ने कभी नही की। 1977 मे भी एक ऐसा ही सकट आया था जो सैद्धातिक रूप से दोनो को सही लगा वही हमने किया। बहुत-सी गलतियाँ आपातकाल के दौरान हुई, वो भी इसलिए कि इदिराजी के निर्देशो का पालन करना मैने अपना कर्तव्य समझा यद्यपि उनके आदेशो का पालन करना या नही करना मेरे हाथ मे था। इसीलिए मैने पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। आज भी मै उनसे मुकरता नहीं हूँ। इदिराजी हमारी नेता थीं। वैसे तत्कालीन परिस्थितियो मे लगता भी यही था कि उनके आदेशो का पालन करना देश-हित और समाज हित मे है।

यद्यपि श्यामाचरणजी ने इदिराजी का साथ छोड दिया परतु मै उनके साथ रहा। श्यामा भैया को जो उचित लगा उन्होने वही किया। फिर भी मै अपनी राजनीतिक यात्रा को सर्वथा सफल व औचित्यपूर्ण मानता हूँ। मुझे पूरा सतोष है। सफलता का नाता पद से नही होता।

***जोशी*** *क्या शिखर पर पहुँचने की इच्छा नही होती? क्या महत्वाकाक्षी होना अनुचित है?*

**शुक्ल** बिलकुल नही है। परतु पद की इच्छा लेकर मै राजनीति मे नहीं आया हूँ और न ही श्याम भैया यह इच्छा लेकर राजनीति मे घुसे है कि हम शिखर या नबर-एक पर पहुँचेगे। ऐसी कैरियरवादी भावना को मै बहुत घातक मानता हूँ। राजनीति और जनजीवन को पद-प्राप्ति की दृष्टि से देखना ही नहीं चाहिए। इसलिए मै काल्पनिक सवालो मे कोई विश्वास नही रखता कि यदि मै नबर-एक पर होता तो क्या होता या क्या नहीं होता।

***जोशी*** *फिर भी अपने समकालीन नेताओ के साथ आप स्वय को किस स्तर पर देखते है?*

**शुक्ल** : मै अपने को समकालीन नेताओ के मध्य मे और उनके साथ देखता हूँ, अपने को किसी से छोटा या बडा नही मानता। केवल आदर्श मेरी कसौटी है।

***जोशी*** · *आज देश मे 'फास्ट फूड' की तरह 'हडबडिया राजनीति' का दौर चल रहा*

*है। वैचारिक पक्ष लुप्त हो गया है। नई चुनौतियाँ उभर रही हैं। तैयारी बिलकुल नहीं है। ऐसी स्थिति में देश को कैसी राजनीतिक शैली की आवश्यकता है?*

**शुक्ल** : देश को पूर्णरूपेण संघर्ष की शैली की आवश्यकता है। संघर्ष, विधानसभा में या संसद में कहीं भी रहकर चल सकता है। मैं समझता हूँ कि संघर्ष लम्बे समय तक चलाया जाना चाहिए। मुलायम व आसान रास्ता अपनाने की आवश्यकता नहीं है। यह सही है कि आज की राजनीति में कई ऐसे लोगों की घुसपैठ हो चुकी है जो मुलायम रास्ता तलाशते हैं, आजू-बाजू से निकल जाते हैं, चट्टान की तरह खडे नहीं रहते। आज विश्वनाथ प्रताप सिंह जैसे संघर्ष की आवश्यकता है। उन्होंने सरकार में रहकर भी सघर्ष किया है। उनके बारे में अलग-अलग राय हो सकती हैं कि उनका रास्ता ठीक था या गलत, परतु उन्होंने मंत्री रहकर केवल फाइलें खिसकाने का काम नहीं किया।

वैसे पूरी राजनीतिक शैली मंथर गति की है। यह कहना गलत है कि हम कम्प्यूटर युग मे पहुँच चुके हैं, हम लोग आज भी बैलगाडी युग मे हैं। आज भी सरकार उसी मंथर गति से चल रही है जिस गति से बीस साल पहले चला करती थी। कम्प्यूटर युग का पोस्टर चिपका देने से काम नहीं चलेगा। वास्तव मे आज अपने संविधान मे आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। मैं तो यह कहूँगा कि एक दूसरा संविधान चाहिए। चालीस साल पहले जिस सविधान को बनाया गया था उसमें पचास-साठ संशोधन अब तक किए जा चुके हैं। अब यह कल की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं रहा। जन-भावनाओ और जन-समस्याओ के अनुरूप नया संविधान बनाया जाना चाहिए। यह सही है कि जब वर्तमान संविधान बनाया गया था तब उसकी शुरूआती उपयोगिता रही। परंतु आज उसका कोई औचित्य नहीं है। आज बिलकुल नई चुनौतियॉ हैं। हम आर्थिक उपनिवेशवाद का मुकाबला इस सविधान से नहीं कर सकते और न ही विकेंद्रीकरण कर सकते हैं। गॉवो को आज पूरी स्वायत्तता की आवश्यकता है। इसलिए एक ऐसा सविधान होना चाहिए जिसमें प्रत्येक गॉव को पूरी ताकत मिले, तभी बैलगाडी युग से छुटकारा मिल सकता है।

देश मे व्याप्त विषमता का आधारभूत कारण ही संविधान है, क्योंकि यह मूलतः यथास्थितिवादी है। हमें इस यथास्थिति को तोडना है, क्रांतिकारी बदलाव लाने हैं; इसके लिए बिलकुल नई दृष्टि की आवश्यकता है। अब आप देखिए, विकसित देशो ने इस बात का पूरा अंदाजा लगा लिया है कि विकासशील देशों की आवश्यकता आज से पच्चीस साल बाद क्या होगी। उसी आधार पर उन्होंने रणनीति तैयार कर ली है। यदि हमने उनकी तैयारियों की उपेक्षा की तो उनका आर्थिक साम्राज्यवाद आगे भी जारी रहेगा और एक बार फिर हम विकसित देशों की श्रेणी में आने से पिछड़ जाएँगे। यहॉ यह जरूर कहना चाहूँगा कि यदि भविष्य में हम विकसित देश बनते हैं तो आज के विकसित देशों की शोषणवादी मनोवृत्ति से बचना होगा।

मैं तो यह मानता हूँ कि सम्पत्ति के अधिकारों की पुनर्समीक्षा की जानी चाहिए। जिस यथास्थिति की ओर मैंने अभी संकेत किया है, वह सम्पत्ति के संबंध में ही है। यह कैसे सहन किया जा सकता है कि जो सपन्न है उन्हें संपन्न बने रहने की छूट रहे, और गरीब गरीब ही बने रहे। अब गरीबों को अमीर बनाना होगा। यह तभी संभव है जब प्रगतिशील संविधान लागू किया जाए। इसके लिए पार्टी के अंदर और बाहर संघर्ष करना होगा। इसके साथ ही सामंती मानसिकता के खिलाफ जंग छेड़नी होगी। सामंती मानसिकता केवल मध्यप्रदेश मे ही नहीं, बल्कि पूरे देश में है; मध्यप्रदेश की अपेक्षा बिहार व उत्तरप्रदेश मे अधिक है। यह तो एक भारतीय स्थिति है।

***जोशी*** *: राजनीतिको की वर्तमान पीढी में चिंतन, परिप्रेक्ष्य और कल्पनाशीलता का अभाव है। राजनीति का काफी हद तक अपराधीकरण हो चुका है। फिर भी आप उम्मीद करते है कि कुछ क्रांतिकारी परिवर्तन हो सकता है?*

**शुक्ल** : मैं यह नहीं मानता कि आज की पीढी मे सोच-विचार की कमी है। इसमें भी संघर्षशील, आदर्शवान और समझदार लोग है। बल्कि हमारी पीढी से अधिक सोचने-समझनेवाले लोग है। उनको काम करने का मौका मिलना चाहिए। अब तक उन्हें दबाकर रखा गया है, गलत लोगो को विधानसभा और संसद मे पहुँचा दिया गया है। फिर भी मै यह कहूँगा कि अपराधी चरित्र के जो व्यक्ति राजनीति में आ गए हैं, वे भावी पीढी का प्रतिनिधित्व नहीं करते। यह एक ऐसी स्थिति है कि आप एक खुशबूदार बगीचे में चले जाइए, और वहॉ कोई बदबूदार या काँटेदार वस्तु रख दीजिए। इसका यह मतलब नहीं हुआ कि पूरा बगीचा ही बदबूदार है। ये अपराधी चरित्र के व्यक्ति ऐसे ही है। ये हमारा प्रतिनिधित्व नही करते।

***जोशी*** *: आज की इस उपभोगवादी व्यवस्था में गॉधीजी के हथियारों को प्रासंगिक मानते हैं?*

**शुक्ल** : गॉधीजी के सत्याग्रह आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जैसे पहले थे। वे शाश्वत हैं। हम लोग जनमानस से प्रभावित होकर काम कर रहे हैं, करोडों लोगों के मानस में जो भावना बैठी हुई है, उसको मुखर रूप दे रहे हैं। इसका यह अर्थ कतई नही है कि हम जो कर रहे है जनता उसका अनुसरण करेगी। हम जनता का अनुसरण कर रहे हैं।

> (अंतिम टिप्पणी  श्री शुक्ल के स्वागत कक्ष में संजय गॉधी का चित्र आज भी टॅगा हुआ है और वहीं माखनलाल चतुर्वेदी की प्रसिद्ध पंक्तियॉ भी। श्री शुक्ल के निजी कक्ष से कितनी व कैसी सिंह-गर्जन होती है, भविष्य इसका साक्ष्य देगा।)

**20 अगस्त, 1987**

# सुन्दरलाल पटवा से साक्षात्कार - 1

## 'मुझे कभी सपना नहीं आता'

स्थान  दिल्ली स्थित मध्यप्रदेश भवन। समय  रात्रिभोज।

मुख्यमत्री श्री सुन्दरलाल पटवा बिल्कुल 'रिलेक्स्ड' मूड मे है। रगीन टीवी चल रहा है। सेवक ने एक-दो वीडियो कैसेट टीवी सेट पर लाकर रख दिए है। मुख्यमत्री के तनावमुक्त चेहरे को देखकर यह अदाज लगाना मुश्किल है कि उनके दिल पर भिलाई-गोलीकाड का कोई बोझ है या इदौर में सपन्न प्रादेशिक भाजपा प्रतिनिधि मभा मे उनके नेतृत्व पर कोई घातक हमला किया गया है। वे नर्मदा परियोजना पर विवादास्पद मोर्स-रपट से भी अविचलित है। सौम्य व सात्विक राजनीति के दर्पण पर धूल के कण जरूर दिखाई देते है। इस बाबत उनका तर्क है  हमे भगवान मत समझिए।

रात्रिभोज पर फुर्सत व इत्मीनान के साथ पकवान, स्वप्न, बच्चो की मौत, नियोगी हत्याकाड, गोलीकाड, पार्टी का सवर्णवादी चेहरा, पर्यावरण आंदोलन, बाबा आमटे, अमजद अली खॉ आदि सभी विषयो पर डेढ-दो घंटा बातचीत का सिलसिला जारी रहता है। सब कुछ बेतरतीब है, लेकिन एक अदृश्य तरतीब निहित है मुख्यमंत्री पटवा के मन व दिमाग में झॉकने की। सूप परोसा जा चुका है और टेप-रिकॉर्डर शुरू हो चुका है।

***जोशी** : जब आप विविध स्वादयुक्त भोजन करते हैं, तब आप क्या सोचते हैं?*

**सुन्दरलाल पटवा** : भोजन के समय मैं सिर्फ भोजन के संबंध मे सोचता हूॅ। आयुर्वेद का ऐसा कहना है कि जो कुछ तुम्हारे सामने आता है उसे दुनिया का सर्वश्रेष्ठ भोजन समझ कर ग्रहण करो। यदि प्रसन्नता के साथ भोजन करोगे तो वह तुम्हें लगेगा। यदि भोजन के समय चिंताग्रस्त रहे, आकाश-पाताल के बारे में सोचते रहे

**तो उससे** पाचन-प्रणाली प्रभावित होगी।

***जोशी** : तब तो आपको नीद भी अच्छी आनी चाहिए ! बिल्कुल साउंड स्लीप !*

**सुन्दरलाल पटवा** · नीद बिल्कुल अच्छी आती है।

***जोशी** कभी आप स्वप्न देखते है?*

**सुन्दरलाल पटवा** . स्वप्न कभी नही देखता। स्वप्न कभी नही आता। मुझे स्मरण नही कि कभी स्वप्न आया।

***जोशी** . तो इतनी साउड स्लीप आती है?*

**सुन्दरलाल पटवा** हॉ साउड स्लीप ही आती है। कभी कभी क्या होता है कि जब कोई काम दिमाग मे घूम जाता है उस समय निद्रा नही तद्रा आती है *(हँसी)* लेकिन सामान्यत ऐसा नही होता है।

***जोशी** जब आपको निद्रा या तद्रा जो भी सही, आती है तब आपको क्या प्रदेश-चिताएँ आदोलित नही करती?*

**सुन्दरलाल पटवा** चिता या समस्या तो दिमाग मे चलती रहती है। कुछ स्वभाव मेरा इस प्रकार का है कि जब तक कोई काम 'परफेक्शन' तक न पहुँचे शाति नही मिलती। सौ फीसदी पूर्णता प्राप्त करूँ ऐसी मेरी कोशिश रहती है। लेकिन ऐसे क्षण दुर्लभ रहते है।

***जोशी** मध्यप्रदेश के करीब 40-45 प्रतिशत लोग गरीबी की सीमा-रेखा तले रहते है। लाखो लोगो को दो जून खाना नसीब नही होता। जब आप पौष्टिक भोजन पर बैठते है या तद्रालीन रहते है तब ऐसे लोगो के सबध मे कोई खयाल आता है? क्या आप यह नहीं सोचते कि सभी नागरिको को भरपेट खाना मिले और गरिमापूर्ण जीवन?*

**सुन्दरलाल पटवा** लोगो की चिता तग करने के बजाय मुझे इस पर गुस्सा आता है। ऐसा क्यो है ? मध्यप्रदेश मे विपुल प्राकृतिक सम्पदा है। सब प्रकार की अनुकूलता है। बहुत ही अमीर प्रदेश है। तब भी यह स्थिति है। एक दुखद विरोधाभासपूर्ण हालत है। तब इच्छा होती है कि मैं जल्दी से जल्दी इस अनुकूलता का लाभ उठाकर स्थिति को बदल डालूँ। पिछले दो साल से मुख्यमंत्री हूँ। मैं देख रहा हूँ कि यह गरीबी, यह अभाव हमारी मजबूरी है ही नही। इसे ठीक किया जा सकता है। दुख यह है कि जितना ध्यान इस दुखद तस्वीर की ओर जाना चाहिए था, वह नहीं गया। अब मेरी इस पीडा को इस रूप मे नही लिया जाना चाहिए कि पुरानी काग्रेस सरकारो को मै गुनहगार ठहरा रहा हूँ। मध्यप्रदेश के हितों की

निरंतर उपेक्षा की गई। भोपाल और दिल्ली में समान हाल रहा। दिल्ली में तो यह अनजाना प्रदेश रहा। तो इस पर गुस्सा आता है। इसलिए तस्वीर को बदलने की बेचैनी रहती है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि मैं इसे लेकर चौबीसों घंटे घुलता रहूँ, चिंता में डूबा रहूँ। हालत बदले, इसकी कोशिश करनी चाहिए।

***जोशी** : कुछ दिन पहले भोपाल के पास चार-पाँच बच्चे भूख मे तड़प-तड़पकर मर गए। मुरैना मे भी करीब दो सौ बच्चे खसरे की बीमारी से मर गए। जब ये खबरें आपको मिली, तब आपके दिल-दिमाग पर क्या बीती?*

**सुन्दरलाल पटवा** : मुरैना में साठ-पैसठ बच्चे मरे थे। इसके ऑकड़े हमारे पास हैं।

***जोशी** : चलिए, हम लोग ऑकडों के झमेले मे न पडें, सिर्फ मानव त्रासदी की बात करे। तो मैं आपसे पूछ रहा था कि आप पर क्या बीती?*

**सुन्दरलाल पटवा** वही प्रतिक्रिया होती है मुझे गुस्सा आता है। मैं बार-बार पूछता हूँ—सोचता हूं कि ऐसा क्यों हो रहा है? लेकिन मैं क्या करूँ? *(खीझ व विवशताभरा स्वर)* मेरी इस संबध मे स्वामी अग्निवेशजी से भी फोन पर बात हुई थी। यह घटना एक खदान पर हुई। उस खदान का मालिक काग्रेस पार्टी की अनुसूचित जाति प्रकोष्ठ का अध्यक्ष है। अग्निवेशजी मिले तो उन्होंने मुझसे कहा कि वे भी शर्मिंदगी से भरे हुए हैं, क्योंकि वे भी भोपाल-क्षेत्र से चुनाव लड़ चुके हैं। इसलिए इस तरह की घटनाओं पर उन्हें भी शर्म महसूस होती है। मैंने उनसे कहा कि आप इस समस्या का कोई निदान बताओ, आपने बँधुआ मजदूरो मे काम किया है, मै आपसे अपने सहयोगी के रूप में कोई सुझाव चाहता हूँ। तो ये घटनाएँ परेशान तो करती हैं। लेकिन इस मामले मे कोई मुख्यमंत्री या सरकार स्विच ऑन या ऑफ नहीं कर सकते। हमारी प्राथमिकता जरूर यह रही है कि अतिम व्यक्ति का उदय हो। अत्योदय हमारा लक्ष्य है और हम इसी मजिल की ओर जा रहे हैं। हम इस अंतिम व्यक्ति को मनुष्य का दर्जा हासिल करा सकें, तभी हमारा इस पद पर बैठना सफल रहेगा।

***जोशी** : आप प्रतिपक्ष के नेता भी रहे है। क्या मुख्यमंत्री बनने से पहले आप इस तरह की त्रासदियों से परिचित नही थे? क्या आपको यह मालूम नही था कि बस्तर, मुरैना या और दूसरे पिछड़े क्षेत्रो में भूख, बीमारी और कुपोषण से इंसान मरते आ रहे है? मुख्यमंत्री के रूप में आपने इन समस्याओं को प्राथमिकता पर क्यों नहीं रखा?*

**सुन्दरलाल पटवा** : प्राथमिकता के अलावा भी यदि कोई शब्द है तो हम वहाँ इसे रखना चाहते हैं। लेकिन, समस्या का चट मँगनी पट ब्याह नहीं हो सकता। कुछ मुश्किलें हैं। उदाहरण के लिए मुरैना को ही लें। जिले के खसरा प्रभावित

क्षेत्र मे मैंने अपने दो-तीन मत्रियो को भेजा। वहॉ वे तीन दिन रुके। लेकिन अधविश्वास की हद इतनी है कि कोई भी सही जानकारी देने के लिए तैयार नहीं था। इन गॉवो मे अशिक्षा गरीबी कुपोषण और अधविश्वास चारो तरफ फैले हुए थे। अधविश्वास की वजह से माता-पिता यह नही बतलाते कि उनके बच्चो को माता निकली हुई है। टीका नहीं लगवाना चाहते। इतना ही नही, माता निकलती है तो गरम लोहे की सलाखो से उसे दाग देते है। वे इस बीमारी को दैवी प्रकोप के रूप मे देखते है।

दूसरी समस्या पैरामेडिकल स्टाफ की है। इसका हल हमे करना है। यह स्टाफ खानापूर्ति करता है। हमारे डॉक्टर सर्जन भी इससे दुखी रहते है। स्टाफ की अपनी एक एसोसिएशन है। हमारे सामने भी मुश्किले हैं। हम इन लोगो का तबादला करे या सजा दे तो कोर्ट है स्टे ऑर्डर है दुनिया-भर की झझटे है। इस सारी प्रक्रिया मे हमारे हाथ पॉव बध जाते है। तो भी हमारी प्राथमिकता है कि पीडितो के कल्याण के लिए ठोस कदम उठाएँ। हमने मत्रियो को अलग-अलग जिले का प्रभारी बना रखा है। बस्तर के इचार्ज कैलाश जोशी है। लेकिन सबसे बडी समस्या यह है कि लोग अपनी आदत नही बदलते। रात-भर मे आदिवासियो की आदते नही बदली जा सकती। चाहे जा खा लेते है। पानी खराब है। कुपोषण है। इन लोगो के शरीरो मे पैतृक बीमारियॉ भी है और फिर तीन-चार साल मे बीमारी का एक सर्किल आता है। अब हमारी कोशिश यह है कि इन पिछडे क्षेत्रो मे पानी ठीक-ठाक मिले। बडी सख्या मे ट्यूबवेलो की व्यवस्था की गई है। जिन क्षेत्रो मे पानी मे लोहे की मात्रा अधिक मिलती है वहा पानी के शुद्धीकरण के प्लाट लगाए गए है। दो साल मे जितना सभव है उससे कही ज्यादा हमने किया है। बस्तर को विशेष प्राथमिकता के आधार पर लिया गया है। पर इसके प्रत्यक्ष नतीजे आने मे समय लगेगा। बस्तर अभी तक एक तरह का डम्पिग ग्राउड रहा है। जिस अफसर या कर्मचारी को सजा देनी होती थी उसे बस्तर फेक दिया जाता था। हमने इस धारणा को बदला है। पिछले डेढ साल मे जो बेस्ट टीम हो सकती थी उसे वहॉ नियुक्त किया है। इसके नतीजे सामने आ रहे है। नक्सली समस्या के हल मे हमे स्थानीय लोगो से सहयोग मिल रहा है। मुठभेडे हुई है, पहली बार किसी प्रमुख नक्सली को मारा गया है, ये सूचनाएँ भी आ रही है। परतु बस्तर देश का दूसरा सबसे बडा जिला है। अनेक तरह की समस्याएँ है। अशिक्षा है कुपोषण है, शोषण है—तमाम दुनिया-भर की खराबियॉ बस्तर मे है।

***जोशी*** *आपने अभी नक्सल समस्या का जिक्र किया। आप इसे कानून-व्यवस्था की समस्या मानते है या ?*

**सुन्दरलाल पटवा** ना ना ना। न यह कानून-व्यवस्था की समस्या है और

न ही बस्तर की समस्या। यह समस्या या तो आंध्र से घुसी है या महाराष्ट्र से।

***जोशी** : तब इसे बस्तर के स्थानीय लोगों का समर्थन क्यों मिल रहा है?*

**सुन्दरलाल पटवा** : स्थानीय लोगों का सपोर्ट भी नहीं मिल रहा है। शुरू में इन लोगों ने क्या किया कि जंगलात के भ्रष्ट लोगों– डी एफ ओ , फॉरेस्ट गार्ड, रेंजर आदि को मारा; ठेकेदारों की पिटाई की, जो मजदूरी नहीं देते थे। इससे आदिवासी खुश हो गए। शुरूआत इस फीलिंग से हुई। लोगों ने इन्हें उद्धारक के रूप में देखा। लेकिन बाद में इनका असली चेहरा सामने आया। आंध्र में भी इनके कई गुट बन गए हैं। अब इस आंदोलन में तमाम विकृतियाँ आ गई हैं। इस तरह के आंदोलनों की यह अनिवार्य नियति है। अब यह कुपथगामी हो गया है। नक्सली आते हैं; आदिवासियों के यहाँ जबरन रोटी खाते हैं; उनकी लड़कियाँ ले जाते हैं; पैसेवाले आदिवासियों को लूट भी लेते हैं। तो लोगों में नफरत पैदा हो रही है। लेकिन करें क्या उनकी बंदूक के सामने? दो साल पहले तो पुलिस नक्सली क्षेत्रों में घुस नहीं सकती थी। आज ऐसा नहीं है। पुलिस में विश्वास पैदा हुआ है। लेकिन मैं यह साफ कर दूँ कि हमारे आदिवासी नक्सली नहीं हैं। नक्सलियों को सहानुभूति भी नहीं मिल रही है।

***जोशी** : आपकी बात सही हो सकती है। पर क्या यह सच नहीं है कि पिछड़े क्षेत्रों में सरकारी एवं गैर-सरकारी अमला मनमानी करता है, बर्बरतापूर्ण अत्याचार करता है, शोषण करता है, जमीन की लूट करता है, वन-उपजों को हड़प लेता है– क्या ये सारी बातें नक्सलवाद के लिए खाद-पानी का काम नहीं करतीं? भविष्य में इस तरह की घटनाएँ नहीं होंगी, इसकी क्या गारंटी है आपके पास? इस तरह की समस्याओं से निपटने के लिए आज नक्सली हैं तो कल दूसरे लोग सामने आएँगे।*

**सुन्दरलाल पटवा** : आपकी ये सारी बातें सही हैं। इन क्षेत्रों में सरकार नाम की संस्था के प्रति बड़े पैमाने पर विश्वास का अभाव है। आदिवासियों के प्रति सरकारी अधिकारियों में मानवीय दृष्टि पैदा करना कोई सरल काम नहीं है। अब हमारी कोशिश है कि इन क्षेत्रों में ऐसे सरकारी प्रतिनिधियों को भेजा जाए जिनमें इन लोगों के प्रति प्रेम-भाव हो। फिर भी मैं यह कहूँगा कि सरकारी तंत्र का सोच–मानस– रातभर में बदलना नामुमकिन है। अब दो साल में इस घोड़े (प्रशासन) ने अपने सवार (राजनेता) को कुछ-कुछ पहचानना शुरू किया है। सवार (मंत्रिपरिषद) के मुताबिक घोड़ा नहीं चलेगा तो चाबुक पड़ेगी, अब यह भावना प्रशासकों में पैदा होने लगी है। अब हमारी कोशिश है कि ऐसे अधिकारियों एवं कर्मचारियों का चयन करें जिनमें मानवीय संवेदनाएँ हों। हम चाहते हैं कि तहसीलदार, पटवारी, थानेदार, फॉरेस्ट गार्ड ऐसे होने चाहिए जो कि आदिवासियों की समस्याओं के प्रति संवेदनशील हों, क्योंकि आदिवासियों के लिए ये कर्मचारी

मुख्यमंत्री एव प्रधानमंत्री से अधिक शक्तिशाली है। हमें विश्वास है कि हम इस काम में सफल हो जाएँगे। यह बात जरूर है कि हमारी इस भावना को निचले स्तर तक पहुँचने मे समय लगेगा। इसके साथ यह भी सच है कि जब तक आदिवासियों का विश्वास हम अर्जित नहीं कर लेते, कुछ होनेवाला नही है। यह तभी सभव है जब हम बीसवीं सदी के अंतिम प्रहर मे जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएँ इनकी झोपडियो तक पहुँचा दे। तभी नक्सलियो की बदूक से निपटा जा सकता है।

*जोशी . आपने अभी शासक और प्रशासक की बात की। मुझे याद है, जब आप मुख्यमत्री बने तब आपकी सरकार की परिभाषा सौम्य एवं सात्विक राजनीति से की गई थी। क्या यह आज भी प्रासंगिक है?*

**सुन्दरलाल पटवा** : हमारा मानना यही है कि सौम्य एव सात्विक राजनीति ही अततोगत्वा देश व प्रदेश का भला करेगी। लेकिन मुश्किल यह है कि मध्यप्रदेश मे सीधा-सीधा राजनीतिक ध्रुवीकरण है। एक तरफ काग्रेस है और दूसरी तरफ भाजपा। एक लबे समय के बाद काग्रेस विपक्ष मे है और हम सत्ता मे। हमारी पूरी कोशिश रहती है कि सौम्यता, विनम्रता और सहयोग से काम लें। हम चाहते हैं कि तिकास के मामले में विपक्ष एक रचनात्मक व सकारात्मक भूमिका निभाए, हमारी खामियों को भी उजागर करे, लेकिन सहयोग तो दे। हमे यह घमंड भी नहीं है कि हम सर्वज्ञ है और गलती कर ही नहीं सकते। ऐसी गलतफहमी हमें नहीं है। मुश्किल यह है कि काग्रेस के दिमाग मे चौबीसो घंटे एक ही बात रहती है : भाजपा सरकार को भग करो और चुनाव कराओ। इसीलिए कांग्रेसी ऊटपटॉग काम करते हैं। कुकडेश्वर चले गए, मस्जिद गिराने का आरोप लगा दिया। चित्रकूट चले गए, मंदिर गिराने का झमेला खडा कर दिया। प्रधानमंत्री से गुहार लगा दी कि सरगुजा आ जाओ, लोग भूख से मर गए। बस, किसी न किसी ढग से सरकार भग कराने की मॉग करना है। मै मानता हूँ कि यह बचपना है।

*जोशी : प्रधानमत्री ने तो आपको पॉच बरस का अभयदान दे दिया!*

**सुन्दरलाल पटवा** : *(कुछ तुनककर)* देखिए, हम प्रधानमंत्री के अभयदान पर जिंदा नहीं हैं। उन्होंने तो एक वास्तविक बात कही है। याद रखिए, हम किसी की कृपा से यहॉ नहीं, हैं और न ही कृपा से यहाँ रहेंगे। जिस दिन जनसमर्थन समाप्त हो जाएगा, हमें किसी प्रधानमत्री का अभयदान-बभयदान काम नहीं आएगा। सभी को यह याद रखना चाहिए कि देश में लोकतंत्र है, किसी खानदान का राज नहीं है। किसी एक की नहीं, विभिन्न पार्टियों की सरकारें प्रदेशों में हैं– कांग्रेस को यह याद रखना चाहिए। पर हो यह रहा है कि कांग्रेस इस सच्चाई को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। सूखे पर बहस की माँग करते हैं और सदन का बायकाट कर डालते हैं। सदन के बाहर कांग्रेसी नकली विधानसभा चलाते हैं। ऐसा फूहड़

**प्रदर्शन करते हैं कि शर्म को भी शर्म लग जाए। इस वातावरण में हम सौम्य और सात्विक राजनीति कैसे करें?**

***जोशी** : सौम्य-सात्विक छवि की बात चली तो जानना चाहता हूँ कि दो वर्ष आपको सत्ता में बीत चुके है, पर भाजपा की अभी तक यह छवि बनी हुई है कि यह सवर्णवादी है, खाते-पीते लोगो की पार्टी है, दलितो से इसका कोई सरोकार नहीं है– इसमें कहाँ तक सच्चाई है?*

**सुन्दरलाल पटवा** हम पर साप्रदायिकता का भी ठप्पा लगा हुआ है। यह सब प्रचारतत्र का कमाल है। हम अपने व्यवहार से ही इन आरोपो का जवाब दे सकते हैं। अब आप स्वय देखिए, जितने राजे-महाराजे, करोडपति, जमींदार आदि थे, सब काग्रेस मे है। मध्यप्रदेश मे सभी बडे बीडी मालिक एव सामत काग्रेस के साथ हैं। टोटल। तब भी हमारी पार्टी पूँजीपतियो की पार्टी कहलाती है। अब ऑकडे उठाकर देख लीजिए, जनसघ के जमाने से ही हम आदिवासी एव ग्रामीण सीटे जीतते रहे है। शहरी क्षेत्रो मे तो इक्की-दुक्की सीटे ही जीतते रहे हैं। तब भी हम सामती पार्टी है।

***जोशी** · लोग तो यही कहते है कि भाजपा के नेतृत्व पर सवर्ण वर्ग हावी है आदिवासी, हरिजन और अन्य दलित वर्ग बराए नाम है।*

**सुन्दरलाल पटवा** देखिए, मेरी सरकार मे आठ लोग मत्री है पिछडे वर्ग के। संगठन मे भी महामत्री बैठे हुए है। प्रदेश की अनुसूचित जाति-जनजाति की सीटो मे से दो-तिहाई हम जीते है।

***जोशी** . छत्तीसगढ मे तो स्थिति बिल्कुल भिन्न है। वहॉ आपकी पार्टी आज भी निर्धनो से जुडी हुई नहीं है।*

**सुन्दरलाल पटवा** *(कुछ विचलित दिखाई देते हैं)* देखिए, लोकसभा के चुनावो से यह सारा बवडर बनाया गया है। इसमे हमे निश्चित रूप से एक झटका लगा। पर हमारा वोट-प्रतिशत कम नही हुआ है। मै मानता हूँ, लोकसभा-चुनावों मे हमने कुछ लापरवाही बरती। सरकार मे आने के बाद जो सहज अलाली आ जाती है, उसके हम शिकार हो गए। सच तो यह है कि काग्रेस नहीं जीती है, हम अपनी कमियो से हारे है। इस झटके ने प्रचार कर दिया कि हमारा जनाधार खत्म हो गया है। अभी उपचुनाव हुए है। इससे स्पष्ट है कि जनता हमारे साथ है।

***जोशी** : पर बुधनी मे आपका मारजिन कम हुआ है।*

**सुन्दरलाल पटवा** : इसकी वजह है जातिवाद, यह किराट-प्रभावी क्षेत्र है। पिछले वर्ष हमारा उम्मीदवार इसी जाति का था, तब मारजिन बढ गया था। इस बार हमारा

उम्मीदवार इस जाति का नहीं था। दूसरी वजह यह भी है कि यह सीट परपरागत काग्रेस की रही है। विदिशा क्षेत्र मे प्रतापभानु शर्मा को बुधनी ही लोकसभा चुनावों मे जीत दिलाती रही है। वरना शेष सभी विधानसभा सीटो से वे हारते रहे हैं। इसलिए काग्रेस की पुश्तैनी बुधनी सीट को हम 500-600 वोटो से जीत पाए। यही हमारी उपलब्धि है। इसी तरह हमने छत्तीसगढ मे पेमनगर की सीट 5000-6000 मतो से जीती। हमारी दिक्कत यह है कि हमारी छोटी-मोटी कमियाँ भी प्रचारित हो जाती है। बडी बडी सफलताएँ गोल कर दी जाती है। इसकी सबसे बडी वजह यह है कि कुछ क्षेत्रो मे हमारे सबध मे पूर्वाग्रह बना हुआ है। मिसाल के तौर पर इदौर का प्रतिनिधि सम्मेलन। यह सम्मेलन बहुत शानदार हुआ। सफल रहा। सभी ने दिलचस्पी ली। लेकिन अखबारो मे मुझ लेकर ही चर्चा की गई।

***जोशी*** *क्या यह सही है कि आपसे इस्तीफा मागा गया था?*

**सुन्दरलाल पटवा** इसमे सौ केस दूर की भी सच्चाई नही हे। लेकिन पूर्वाग्रह से ग्रस्त अखबारो का क्या किया जा सकता है? सम्मेलन मे भिलाई काड के सबध मे सरकार की कार्रवाई का सभी ने समर्थन किया था। सभी ने माना कि सरकार जितना कर सकती थी उससे कही अधिक किया। चूँकि यह मामला न्यायिक जॉच के लिए लम्बित है तो कुछ कहना मुनासिब नही होगा। पर कितनी गोली चलनी चाहिए कितनी लाठी चलानी चाहिए इसका निर्णय तो घटनास्थल की स्थिति पर ही निर्भर करता है। मुख्यमत्री तो इसका फैसला करता नही है। इसलिए मुझे भिलाई गोलीकाड के लिए कैसे उत्तरदायी ठहराया जा सकता हे। जहॉ तक रही नैतिकता की बात। अहमदाबाद के साप्रदायिक दगा मे 25 मर गए। इसमे मुख्यमत्री की कौन सी नैतिकता है?

> *इसी बीच टेलीफोन की घटी बजती है। सक्षिप्त वार्तालाप कहिए किशनलालजी मै पटवा बोल रहा हूँ। हॉ चिमनभाई से आज सुबह ही मेरी मुलाकात हुई थी उन्होने तो हमे पीछे छोड दिया है। उनके यहॉ पच्चीस लोग मर चुके है और चिमन ने सामान्य किस्म की इक्वायरी के ही आदेश दिए है जबकि मैने तो भिलाई काड मे न्यायिक जॉच के आदेश दिए है (इसके बाद पटवाजी जोर से ठहाका लगाते है) ठीक है शर्माजी कल मुलाकात होगी। एक साथ भोजन करेगे। आडवाणीजी से भी मिल लूगा । कुछ मिनट के व्यवधान के बाद मुख्यमत्री वापस मेरी ओर मुखातिब होते है।*

अब देखिए आज ही मेरी महाराष्ट्र के मुख्यमत्री से बात हुई है। वहॉ भी गोली चली है। हमे सरकार चलाना है। यह मानना कि ऐसा कुछ होगा ही नही गोली चलेगी ही नही यह बात नामुमकिन है।

***जोशी** : पटवाजी, एक बात समझ में नहीं आती— नियोगी हत्याकांड से लेकर भिलाई गोलीकांड तक की स्थिति यह है कि आम लोग सरकार की नीयत पर शक करते हैं। नियोगी का हत्यारा फरार हो गया, अभी तक नहीं पकड़ा गया। भिलाई के श्रमिक-असंतोष की स्थिति से सरकार बेखबर रही। आम जनता में इम्प्रेशन यही है कि सरकार की नीयत साफ नहीं है। ऐसा क्यों है?*

**सुन्दरलाल पटवा** : देखिए, नियोगी की हत्या हुई, हमने अपनी सर्वश्रेष्ठ टीम वहाँ जाँच के लिए तैनात कर दी। घटना के तीसरे दिन मैंने गृहमंत्री को पत्र लिखा कि सी.बी.आई. से इसकी जॉच करा ली जाए। मुझे बताइए कोई मुख्यमंत्री इससे ज्यादा क्या कर सकता है अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए? अब यह मामला सी.बी.आई. के हाथों में है। हमारा इससे दूर का भी नाता-रिश्ता नहीं है।

***जोशी** : क्या आप समझते हैं कि सी.बी.आई. को जाँच सौंपने से आपकी जिम्मेदारी समाप्त हो जाती है? तकनीकी दृष्टि से आप सही हो सकते हैं। लेकिन नैतिक एवं राजनीतिक दृष्टि से यह कहना क्या उचित होगा कि मध्यप्रदेश सरकार का इस जाँच से कोई लेना-देना नहीं है? अस्पताल से नियोगी के हत्यारे का फरार हो जाना, बड़ा रहस्यमय और विचित्र लगता है।*

**सुन्दरलाल पटवा** : देखिए, नैतिक दृष्टि से ही नहीं, सभी व्यावहारिक दृष्टियों से हम इस जिम्मेदारी से मुक्त हैं। और फिर नैतिक या राजनीतिक क्या होता है? आखिर हम सरकार चला रहे हैं, तो किसी प्रक्रिया से चला रहे हैं। इसमे नैतिकता कहाँ आती है, भाई?

***जोशी** : नियोगी एक सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता थे। आप भी सामाजिक-राजनीतिक धर्मी हैं। क्या आपकी यह कोशिश नहीं होनी चाहिए कि हत्यारे जल्दी से जल्दी पकड़े जाएँ?*

**सुन्दरलाल पटवा** : इसीलिए तो हमने हमसे ज्यादा सक्षम एजेंसी के हाथों में यह काम सौंप दिया है। भारत सरकार के हाथ तो लम्बे-चौड़े हैं। वह दुनिया में कहीं से भी अपराधी को पकड़कर ला सकती है। आज तक मूल अपराधी का पता नहीं है। जो पकड़ा गया वो भी भाग गया। अत: प्रदेश सरकार को नैतिक रूप से कैसे दोषी ठहराया जा सकता है? वि.प्र. सिंह आते हैं, जार्ज आते हैं, अग्निवेश आते हैं; सभी राज्य सरकार को दोषी ठहराते हैं। केंद्र को कुछ नहीं कहा जाता। यह अजीब बात है। ऐसा प्रचारित किया गया है मानो कि शंकर गुहा नियोगी को सुंदरलाल पटवा ने मार डाला। यह कहाँ का न्याय है? नियोगी की विधवा पत्नी पाँचवीं क्लास पास है। दुनियाभर में उसे घुमाया जा रहा है। कहाँ से पैसा आ रहा है? कौन करवा रहा है यह सब?

***जोशी** : क्या इसमें आपके प्रमुख विरोधी दल कांग्रेस का हाथ है?*

**सुन्दरलाल पटवा** : कांग्रेस का हाथ हो चाहे किसी का हाथ हो.. मुझे तो लगता है सबका हाथ है। *(पटवा सवाल को टालना चाहते हैं)* भाजपा को छोड़कर सभी का हाथ है। सभी भाजपा सरकार को बदनाम करना चाहते हैं।

*(वार्ता के इस स्थल पर इंदौर की सांसद सुमित्रा महाजन कक्ष में दाखिल होती हैं। मुख्यमंत्री कहते हैं–आ जाइए.. आ जाइए।)*

***जोशी** : फिर भी अपराधी को फरार होने देने में किस-किसका हाथ हो सकता है?*

**सुन्दरलाल पटवा** : अब यकायक तो मैं किसका नाम लूँ? लेकिन क्या यह सच नहीं है कि पंजाब में अपराधी जेलों में से भाग रहे हैं। काश्मीर में भाग रहे हैं। देखिए, हर सरकार की एक सीमा होती है। सरकार कोई भगवान नहीं है, इसमें भी कमियाँ हैं।

***जोशी** : प्रश्न है सरकार नाम की संस्था की साख का। चाहे यह सरकार भोपाल की रहे या दिल्ली की, ऐसी घटनाओं से इसकी साख पर कालिख नहीं पुतती है?*

**सुन्दरलाल पटवा** : है ना. । पर इस तरह की घटनाएँ हमेशा से होती आई हैं। मैं इससे सहमत हूँ कि इस तरह की घटनाओं को जितना कम किया जा सके, उतना अच्छा है।

***जोशी** : अब जैसे अभी भिलाई में गोलीकांड हुआ। क्या आपको वहाँ के श्रमिक-असंतोष का मालूम नहीं था?*

**सुन्दरलाल पटवा** : बहुत पहले मालूम था। न्यायिक जॉच के आदेश दे दिए हैं। नियोगी हत्याकांड और श्रमिक-असंतोष के पीछे कुछ और भी कारण हैं; सिर्फ मजदूरों की छँटनी ही नहीं है। नियोगी के समर्थक श्रमिकों में लीडरशिप का झगड़ा है *(मुख्यमंत्री ने श्रमिकों के साथ वार्ता का ब्यौरा दिया और उन हालातों को सामने रखा, जिनमें पुलिस को गोली चलानी पड़ी। मुख्यमंत्री ने दावा किया कि श्रमिकों के व्यवहार ने पुलिस को गोली चलाने के लिए विवश किया, क्योंकि वे रेल-पटरी पर से अपना धरना समाप्त नहीं करना चाहते थे। उन्होंने पुलिस पर पथरावबाजी की। इसके बाद ही स्थिति बिगड़ी।)* देखिए, नियोगी के पास सौ ट्रक चलते हैं। करोड़ों रुपए की संपत्ति है। राजेन्द्र सायल भी इसके कर्ताधर्ता हैं।

***जोशी** : पी.यू.सी.एल. के सायल को गिरफ्तार करने की आवश्यकता क्यों हुई ?*

**सुन्दरलाल पटवा** : वही लीडरशिप का झगड़ा है। लीडरशिप और संपत्ति, दोनों ही इसमें कारण हैं। नियोगी को इस स्थिति तक पहुँचाने में सायल ही तो प्रमुख

है। सायल के अतरराष्ट्रीय सबध है। हर दूसरे-तीसरे महीने विदेश यात्रा करता है। इसके पास प्रचार के विपुल साधन है। जरा-सा हाथ लगाओ तो दुनिया-भर मे शोर मच जाता है। सुप्रीम कोर्ट मे बडे-बडे वकील खडे हो जाते है। केद्र के साथ मैने अपनी एक मीटिग मे कहा है कि पी यू सी एल , सहेली, एकता सस्था, पर्यावरणवादी, सुधारवादी, आदिवासी कल्याण मिशनरी झारखड आदि सस्थाएँ देश को तोडना चाहती है। हमारे पास नक्शा है। ये नागालैड से लेकर गोआ तक एक अलग देश बनाना चाहते है। यह एक साजिश है। हम इसे शुतुरमूर्ग बनकर न देखे। मै अनेक बार केद्र का इस सबध मे चेतावनी दे चुका हूँ।

***जोशी .*** *जैसे पर्यावरण की बात चली। इसमे कुछ जैनुइन लोग भी है। सबको एक ही लाठी से कैसे हॉका जा सकता है ! पर्यावरण आदोलन मे बाबा आमटे, मेधा पाटकर, सुदरलाल बहुगुणा, डॉ ब्रह्मदेव शर्मा जैसे व्यक्ति सक्रिय है।*

**सुन्दरलाल पटवा** अब मै इनके बारे मे कुछ न कहूँ, वही ठीक है। आपका इन लोगो के बारे मे भ्रम गलतफहमी बनी रहे वही अच्छा है।

***जोशी*** *तो भी?*

**सुन्दरलाल पटवा** नही नही डा बी डी शर्मा बहुत अच्छे व्यक्ति है।

***जोशी*** *अब पिछले दिनो नर्मदा परियोजना के सबध मे विश्व बैक की मोर्स रपट आई है। उसके सबध मे आपका क्या कहना है?*

**सुन्दरलाल पटवा** वह एकदम फार्स है उसमे अनेक अतर्विरोध है। मोर्स मुझसे भोपाल मे मिले थे। आधे घटे तक मुझसे बात की थी। मैने मोर्स से कहा था कि हम नर्मदा घाटी के लोगो के प्रतिनिधि हैं। हमने वहॉ की सारी सीटे जीती है। हमे वहॉ की चिता ज्यादा है। तुम कहा से आ गए देवदूत बनकर? ये मेधा पाटकर कहॉ से आ गई महाराष्ट्र से? कुष्ठो की सेवा करनेवाले बाबा आमटे कहॉ से आ गए? देखिए पर्यावरण और गरीबी कभी साथ नही चल सकती। हमे सिचाई चाहिए, बिजली चाहिए, उद्योग चाहिए। मोर्स की रपट देखकर मुझे लगता है कि उन्होने यह रपट लिखी ही नही है सिर्फ अपने हस्ताक्षर कर दिए है क्योकि उन्होने जो मुझसे बाते की थी ठीक उसके विपरीत रपट मे जिक्र किया गया है। राम जाने क्या हुआ है ! बाबा और मेधा ने आज तक मुझसे बात करने की कोशिश नही की। चूँकि इनका अतरराष्ट्रीय स्तर पर नाम है दुनिया-भर मे छपते है। हमे इनका गोरखधधा समझ मे नही आता भई। अलबत्ता पुनर्वास और पर्यावरण की चिता हमे जरूर करनी चाहिए। इसके प्रति सरकार सजग भी है। अब हमे मोर्स कह रहे है कि यह करो, वह मत करो। हम इन आसमान से टपकने-वाले देवदूतो से परेशान हैं।

***जोशी :*** *बस्तर मे बोधघाट का मामला भी लटका हुआ है। क्या इस सबध मे कुछ*

*नए सिरे से पयास किए जा रहे हैं?*

**सुन्दरलाल पटवा** हॉ, मैने प्रधानमत्रीजी से बात की है। कमलनाथ से बात की है। वे पुनर्विचार के आग्रह से सहमत है।

***जोशी*** . *पटवाजी, अब तक पुनर्वास के जो अनुभव रहे है, वे बहुत सुखद नही हैं।*

**सुन्दरलाल पटवा** मै आपसे सहमत हूँ, पुनर्वास के अनुभव बहुत दुखद हैं। सरकार नाम की सस्था के साथ जो अविश्वसनीयता जुड गई है, तकलीफ का यह सबसे बडा कारण है। हम लाख सिर पटक-पटककर कहते रहे कि अब पुनर्वास अच्छा किया जाएगा, कोई मानने के लिए तैयार नहीं है। हमे विरासत मे शासन व प्रशासन तत्र की अविश्वसनीयता एवं अप्रामाणिकता मिली है। हम क्या करें? अब किसी भी सडक चलते आदमी से कहा जाए कि यह नेता है तो वह तपाक से कहेगा, अरे यह तो चोर है। हर क्षेत्र की यही हालत है। पत्रकारिता की हालत भी कोई अच्छी नही है।

**सुमित्रा महाजन** अब इसे तामसिक ढग से मत छापिए।

**पटवा** नहीं नही जोशीजी सात्विक है, कभी कभी राजसी हो जाते है तामसिक नहीं लिखते।

घडी पर नजर डाली तो रात्रि के ग्यारह बज चुके थे। भोजन समाप्त हो चुका था। मुलाकात अतिम क्षणो मे थी। सगीत की बात चल पडी। मुख्यमत्री कहने लगे अभी पिछले दिनो अमजद भोपाल मे आया था। उससे वायदा हुआ है कि वह भोपाल आए और कुछ सुनाए। उसे भोपाल मे सुनाए कई साल हो गए है। अशोक वाजपेयी ने उसे भोपाल मे आने ही नही दिया। भारत भवन के साथ झगडा हो गया था। मैने अमजद से कहा कि भैया तुम्हारे लिए अब मैन रास्ता खोल दिया है। अमजद ने वायदा किया है कि वह अपने दोनो बच्चो को लेकर भोपाल आएगा।

***जोशी*** *कोई गीत याद है?*

**सुन्दरलाल पटवा** अरे नहीं भाई। मै तो इस सरकार के जगल मे खो गया हूँ। मेरा बस चलता तो राजनीति मे आता थोडे ही, मै कही और होता। पिछले दिनो कवि-सम्मेलन मे पाच घटे बिताए।

***जोशी*** *अब क्या इच्छा होती है?*

**सुन्दरलाल पटवा** इच्छा क्या कल्पना की बात है। जो कुछ हो गया है वह अच्छा है। लिखने की इच्छा जरूर होती है।

***जोशी*** *आपने आम खिलाया, मिष्ठान्न खिलाया। आपकी सगीत मे दिलचस्पी है।*

*कविता में दिलचस्पी है। पर बात क्या है कि लोग आपको काफी रूखा कहते हैं ? क्या बात है?*

**सुन्दरलाल पटवा** . आपको क्या मैं रूखा लगता हूँ?

***जोशी*** . *इस समय मुझे तो नहीं लग रहे, पर सामान्य धारणा यही है कि आपमे मिठास नहीं है।*

**सुन्दरलाल पटवा** . *(जोर से हँसते है।)* सबका अपना-अपना स्वभाव है। मुझे सज्जनो का दास रहने मे मजा आता है, पर दुर्जनो के साथ कोई विनम्रता नहीं बरतता *(हँसते हुए)* मै प्रहार मे कोई मिठास नहीं दिखाता। जो होगा, देखा जाएगा। ईश्वर और पार्टी ने मुझे सब कुछ दे दिया है। मै पूरी तरह सतुष्ट हूँ। अब जो काम मिला है, उसे करना है। मै तो यही कर सकता हूँ। 'हानि-लाभ-जीवन-मरण, यश अपयश हरि हाथ।'

**19 जुलाई, 1992**

# रथ के संग-संग

यह इत्तफाक था। भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष लालकृष्ण आडवाणी की रथयात्रा कीचड भरे रास्ते मे गुजर रही थी। जबलपुर-दमोह मार्ग पर एक स्थान पर आकर झटके से रुक गई, कुछ राहगीर श्रद्धालुओ की वजह से कुछ कादे की वजह से। अपनी कार छोड लपका, माजरा जानने के लिए। खैर! रथ के पहिए फिर खिसके। लौटने को ही था कि रथ के काफिले मे पीछे चल रही एक सफेद कार का दरवाजा खुलता है "आइए, जोशीजी!" कार के अदर से आवाज आती है। झॉकता हूँ, पिछली सीट पर मुख्यमत्री सुदरलाल पटवा बैठे हुए है। पिछली रात सिवनी से जबलपुर लौटते समय मार्ग मे वे एक बडी दुर्घटना का शिकार होते बाल-बाल बचे थे। इस सौभाग्य की जानकारी रथयात्रा के साथ चल रहे पत्रकारो को मिल चुकी थी। बातचीत का सिलसिला इमी के साथ शुरू हुआ।

"सुबह मालूम हुआ आपकी कार टकराते-टकराते बची ?" मैंने पूछा।

"अरे क्या बताऊँ," एक राहत की सॉस छोडते हुए पटवाजी कहने लगे, "समझ लो बच गया। बस कल तो मर ही गया था। पुलिया की दीवार नहीं होती, तो कार नीचे थी। पैर मे मामूली चोट आई है। अब ठीक हूँ। कुछ उपचार हो गया है।"

दूसरा जन्म मिला, ऐसी चमक उनके चेहरे पर उभरी। दोनो ओर खेत, बीच मे कादे भरी सडक मे से कार गुजरी जा रही है। बातो का सिलसिला आगे बढता है। रथ की तैयारी पर बात चली।

"पिछले दो दिनो से कैसा अनुभव हो रहा है, आपको?" उन्हे कुरेदने की मैं कोशिश करता हूँ।

"मैं तो रोमांचित हो उठा हूँ," एक पल खोए बिना मुख्यमत्री बोले और किसी अर्ध-विराम के बिना कहने लगे, "मै अपने जीवन मे पहली बार ऐसा देख रहा हूँ। किसी मुद्दे पर इतना समर्थन! आश्चर्यजनक नहीं है! काश, दिल्लीवालो का हाथ जनता की नब्ज पर होता! यह आडवाणीजी की रथयात्रा नही है यह रामभक्ति राष्ट्रभक्ति की यात्रा है। राष्ट्र को तोडनेवाले तत्वो को यह सशक्त जवाब है।" इसके बाद मुख्यमत्री पटवा अपनी पुरानी थीम पर लौट आए। वही विवादास्पद थीम, जिसे उन्होने *नई दुनिया* परिसर मे फिल्म विशेषाक 'परदे की परियाँ' के विमोचन के अवसर पर उठाया था, देशभर मे जिसका बावेला मच गया था भारत के मुसलमान बाबर की औलाद नहीं है। बाबर आक्रमणकारी था। रामजन्म मदिर हिन्दुओ का ही नहीं मुसलमानो का भी है। लेकिन इस थीम पर अब कोई तूफान खडा नहीं होता। रथयात्रा के सूत्रधार आडवाणीजी के सार्वजनिक भाषणो मे हर रोज इसकी गूँज होती है। बल्कि वे और पुरजोर ढग से इसे जनता के सामने रखते है। पटवाजी भी इसे और बुलद आवाज मे कहने लगे है। सागर की विशाल सभा मे उन्होने कहा था—'हम सब राम की सतान है। मैं कहता हूँ बाबर से नाता तोडो राम से नाता जोडो।' मुझे याद है जब उन्होने *नई दुनिया* परिसर मे यह थीम सामने रखी थी। आज भाजपा इस थीम में पूरे भारत को ही गूँथने जा रही है। इसका चमत्कार देखिए—धनी रात तेज बरसात और कीचड-कादे के बावजूद हजारो लोग रथ-दर्शन के लिए खडे हुए।

मै गलत नही कह रहा हूँ। अब देखिए हमारे राज्यपाल कुवर महमूद अली के पूर्वज हिन्दू थे। पिछले दिनो दशहरा उत्सव के समय उनसे मिलने राजभवन गया हुआ था। उनके हिन्दू व मुसलमान रिश्तेदार पास बैठे हुए थे। उन्होने अपने परिवार के भाट से भी परिचय कराया। भाट के पास कुँवर साहब की कई पीढियो का लेखा-जोखा है। इसीलिए मै कहता हूँ हम सबके पूर्वज राम थे।

पर पटवाजी इस वैज्ञानिक युग मे रक्त की पवित्रता की बात करना कहाँ तक उचित है?" मैने उन्हे उकसाने की कोशिश की "भारत मे कितनी जातिया आई है शक हूण यूनानी तुर्क मगल न जाने कितनी। कौन जानता है कि किसका रक्त किसम बह रहा है?

अरे भाई ये जितनी भी जातिया आई भारत ने उन्हे आत्मसात कर लिया। भारतीय सस्कृति की यही विशेषता है पटवाजी ने तर्क दिया रक्त की पवित्रता का सवाल नहीं है यहाँ की हिन्दू-सस्कृति का सवाल है। खुद ही सोचिए हमारे पुरखे मुसलमान नहीं हो सकते बाबर नही हो सकता।' मुख्यमत्री कुछ क्षण के लिए पॉज देते है। 'लेकिन क्या बताएँ राजनीति ने सब कुछ धूमिल कर दिया है। पिछले चालीस सालो मे वोटो की खातिर सच्चाई को अनदेखा किया गया है,

बहुसंख्यक समाज के हितो को अनदेखा किया गया है, वोटो के लिए तुष्टीकरण की राजनीति की गई है। धर्मनिरपेक्षता की यही विकृति है। अब आपके सामने एक उदाहरण रखता हूँ, पिछले दिनो दौगला मे ईसाई अध्यापिकाओ के साथ बलात्कार किया गया। पूरे देश मे तूफान मच गया। केंद्र और प्रदेश के नेता वहाँ दौडे। जबकि बलात्कार की घटनाएँ और भी होती है। कश्मीर मे हिन्दू औरतो के साथ बलात्कार किया जाता है। पंडितो को वहा से बाहर किया जा रहा है। तब शोर क्यो नही मचता? मै यह नही कहता कि बलात्कार पर शोर नहीं मचना चाहिए। मेरा विरोध इस बात पर है कि इसे किसी समुदाय के साथ नही जोडा जाना चाहिए। अल्पसंख्यक महिला के साथ होता है तो वह बलात्कार है, बहुसंख्यक महिला के साथ ऐसा होता है तो खामोशी! इस दोहरे मापदंड को छोडना होगा।'

"मगर पटवाजी आखिर यह उन्माद ले कहा जाएगा? कल यदि रथयात्रा के बल पर भाजपा को दिल्ली की सत्ता मिल जाती है और बहुसंख्यक समुदाय माँग करता है कि भारत को एक हिन्दू-धर्मप्रधान राष्ट्र घोषित किया जाए तो उस स्थिति मे आप क्या करेगे?

मै नही समझता कि हिन्दू ऐसा करेगा। उसके रक्त मे ऐसा नही है। हिन्दू तो सभी को साथ लेकर चलने मे विश्वास रखता है। हमारी समाज-व्यवस्था बहुत उदारवादी है। भारत को कभी भी धार्मिक राष्ट्र नही बनाया जाएगा। मुख्यमंत्री ने भरोसा दिलाने की कोशिश की।

वैसे धर्म पर आधारित देशो के अनुभव अच्छे भी नही रहे है। पाकिस्तान इसकी मिसाल है। मुस्लिम देश होने के बावजूद उसकी क्या दुर्दशा बनी हुई है यह किसी से छुपा नही है। मैने उनकी ओर थाह लेने की कोशिश की।

मै ऐसा नही मानता कि भारत मे हिन्दू धर्म कभी राज्य-धर्म बनेगा। वैसे यह सही है कि गर्व अहंकार का रूप न ले इसका ध्यान रखना होगा। लेकिन हिन्दू होने पर गर्व होता है तो यह बुरी बात नही है। हमे सकारात्मक ढग से गर्व का उपयोग करना होगा उन्होने तर्क दिया।

इस मुद्दे पर उनके साथ मेरी असहमति बनी रहती है। मै उनसे कहता हूँ-' पटवाजी जिस समतावादी हिन्दू समाज-व्यवस्था या मूल्य-व्यवस्था की आप बात कर रहे है वह विषमतावादी है। क्या आप इससे इकार कर सकते है कि तथाकथित व्यवस्था की वजह से ही लाखो करोडो लोगो को अछूत घोषित कर दिया गया ? आज भी उन्हे गॉव के अतिम सिरे पर या मनुष्य के चरण की तरफ रखा जाता है। यदि ये ही लोग धर्म-परिवर्तन करते है मुसलमान या ईसाई बनते है, तो इसमे दोष किसका है?"

"कुछ समस्याएँ जरूर हैं हिन्दू समाज में," तनिक अनमने भाव से स्वीकार करते हुए मुख्यमंत्री कहने लगे, "पहले जन्म के आधार पर जातियाँ नहीं थीं। कालांतर में ऐसा हो गया है। यह भी सच है कि अस्पृश्यता की वजह से लोगों ने धर्म बदला है। पर भाई, समाज को सुधारने में पीढियाँ लग जाती हैं। याद रखिए, समाज-सुधार का कार्य राजनीति नहीं है। भारत में ही क्यों, अमेरिका और योरप के विकसित राष्ट्रों में भी जातीय या नस्ली समस्या है। इतनी वैज्ञानिक तरक्की करने के बावजूद, अमेरिका में नीग्रो लोगों को श्वेतों की बस्ती में नहीं बसने दिया जाता।" एक तसल्ली उनके चेहरे पर झलकी।

"इसका यह अर्थ तो नही है कि हम जाति-व्यवस्था की तथाकथित सामाजिक वैधता को स्वीकार कर लें। आपने सामाजिक सुधार की बात कही है, जहाँ विश्व हिन्दू परिषद और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संध अयोध्या में रामजन्मभूमि मंदिर बनवाने के लिए मरे जा रहे हैं। सवाल किया जा सकता है कि इन संगठनो ने अस्पृश्यता जैसी हिन्दू धर्म की कुरीतियों के खिलाफ क्या सघर्ष किया ? कोई सशक्त प्रतिवाद तक दर्ज नही किया। ऐसा क्यो ?" पटवाजो को फिर से कठघरे में खडा करने की मैंने कोशिश की।

"ऐसा नहीं है।" बचाव की मुद्रा में वे बोलने लगे, "संघ में ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं है। सभी जातियों के लोग एक साथ खाते-पीते हैं।"

"मैं इससे सहमत नहीं हूँ," मैंने प्रतिवाद किया। "आप संघ-पृष्ठभूमि के हैं। कुछ संपर्क मेरा भी रहा है। ऊँची जाति के लोगों का इसमें वर्चस्व है; हरिजन और पिछडी जाति के लोगों का प्रतिशत नाममात्र है। उनकी बस्तियों में शाखाएँ तक नहीं लगाई जातीं। इसी प्रकार विश्व हिन्दू परिषद के नेतृत्व में कितने हरिजन या पिछडे लोग हैं ? आपके संगठनो में ऊँची जातियों का ही वर्चस्व है।" वे उबल पड़ें, यह मेरी कोशिश थी, पर नाकाम रही। मुख्यमंत्री संयत रहे। कहने लगे–"मैंने पहले ही आपसे कहा है कि सामाजिक सुधार के काम मे कई-कई पीढ़ियाँ खप जाती हैं। इसी दृष्टि से संघ को देखा जा सकता है।"

"कभी-कभी बड़ा घालमेल लगता है। एक तरफ आप देश के लिए अत्याधुनिक एवं विकसित तकनीक की माँग करते है, दूसरी तरफ समाज को मध्ययुगीन अवस्था में ले जाना चाहते हैं। धर्म के नाम पर कम पाखंड नहीं फैल रहा है।" मैंने कहा।

"मैं ऐसा नहीं सोचता। मेरे विचार में तो हिन्दू दर्शन से ही नए अंतर्विरोधों का समाधान हो सकता है। आज जबकि साम्यवाद और पूँजीवाद धराशायी होते जा रहे हैं, ऐसी स्थिति में हिन्दू दर्शन ही एकमात्र विकल्प बचा है।" अर्ध-दार्शनिक और अर्ध-राजनीतिक मुद्रा थी उनकी।

"पटवाजी, समझ में नहीं आता, आपको उपभोग भी चाहिए और अपरिग्रह भी। वर्तमान व्यवस्था टीवी, रेडियो, अखबारों के माध्यम से उपभोक्तावादी संस्कृति को प्रोत्साहित कर रही है, इधर आप धर्म की बात कर रहे हैं। भयानक अंतर्विरोध है दृष्टि में।" मैंने अभी तक हथियार नहीं डाले थे · "अब आप देखिए, जैन धर्म का सिद्धांत है अपरिग्रह। लेकिन, आज जैन समुदाय के पास सबसे अधिक धन है। इसी तरह से ब्राह्मण समुदाय भी दोहरे मापदड का शिकार है। ईश्वर की सबसे उत्तम कृति–मनुष्य–को उसने वर्ण के खानो मे विभाजित किया। एक परिश्रमी मानवता को उसने समाज की तलछट करार दे दिया। आपको यह सब एब्सर्ड नहीं लगता?" मैंने एक और वार किया।

"अपरिग्रह का अर्थ अपनी सपत्ति को समाज की संपत्ति के रूप में देखना है। निश्चित ही अपरिग्रह के पालन में विकृतियाँ आई है, इन्हें दूर करने की आवश्यकता है। यही स्थिति ब्राह्मण की है। पर, ब्राह्मण को कोसने से काम नही चलेगा। हमारे समाज ने विश्वामित्र, वशिष्ठ, द्रोणाचार्य, चाणक्य जैसो को ही सच्चा ब्राह्मण माना है, जिन्होंने फकीरी का जीवन जिया और राजा को नचाया। ब्राह्मण कर्म से होता है, न कि जन्म से। मै पूछ सकता हूँ, हमारे शकराचार्यो या साधु-संतों की आए दिन आलोचना की जाती है, पर कभी आपने पोप, मुल्ला, इमाम आदि की भी आलोचना की? यह जानने की कभी कोशिश की कि ये लोग कितने धनी हैं? जहाँ तक पाखड का सवाल है, आप यह क्यो भूल जाते है कि लोकतंत्र में भी पाखंड होता है। आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था के भी खतरे है। इदिरा गाँधी ने आपातकाल लगाया था, यह भी एक किस्म का खतरा है।" वे गौर से मेरी ओर देखने लगे।

मैंने मन में कहा–जब राजनीति या राज्य पर धार्मिक या सांस्कृतिक उन्माद हावी हो जाता है तब उसके अजाम आपातकाल से भी भयानक होते हैं। तानाशाही और फासीवाद राज्य के स्थायी वर्ग-चरित्र बन जाते है। कुछ देर के लिए हम दोनों खेतों की ओर झाँकने लगते हैं, ताकि वातावरण हल्का बन जाए।

"हरे-भरे खेतो, पहाडों को देखकर कैसा लगता है आपको? कभी गुनगुनाने की इच्छा नहीं होती?" बातचीत को दूसरा मोड देते हुए मैंने पूछा।

"अरे बहुत इच्छा होती है गुनगुनाने की। पिछली बार राखी पर अपने गाँव गया था।" पटवाजी का फ्लैशबैक चलता है, "कुकड़ेश्वर गाँव में पुरानी भजन मंडली बैठी हुई है। पुराने यार लोग बैठे हुए हैं। रोक नहीं पाता, अपने को। मैं भी उनमें शामिल हो जाता हूँ। उस रात जागरण में मैंने खूब गाया। लंगोटिया मित्र भी बेहद खुश थे। उस रात मैं भूल गया कि मैं मुख्यमंत्री हूँ। बस मुझे दोस्त और गाना याद रहे।" पटवाजी का फ्लैशबैक टूटता है। "बहुत इच्छा होती है कि मैं अपना बोझ हल्का करूँ। कुछ किया भी है। शुरू में मैं एक प्रयोग करना चाहता था। मैं चाहता

था कि मंत्रिगण सरकार चलाएँ और मैं मंत्रियों को चलाऊँ। मैं अपने पास कम से कम अधिकार रखना चाहता था। इस संबंध में मैंने अपने कुछ सलाहकारों से बातचीत भी की थी। लेकिन, उनकी सलाह थी कि वर्तमान परिस्थितियों में ऐसा प्रयोग करना ठीक नहीं रहेगा। जब समय परिपक्व होगा, तब करूँगा।"

"आपके प्रेरणा-पुरुष कौन हैं?" मैंने सवाल किया।

"गुरुजी स्व गोलवलकर ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया है। इसके बाद दीनदयाल उपाध्याय का मेरे जीवन पर काफी प्रभाव पडा है। राजनीतिक असहमति होने के बावजूद मै गॉधीजी से भी प्रभावित हूँ। उनमें गहरी दृष्टि थी-समाज को समझने की। सरदार वल्लभभाई पटेल उनके सच्चे उत्तराधिकारी थे। लेकिन इतिहास को कुछ और स्वीकार था। पर इतना कहूँगा, पंडित जवाहरलाल नेहरू लोकतंत्रवादी थे। इंदिराजी में वह बात भी नही थी।" मुख्यमंत्री का जवाब था।

"किस-किस तरह की पुस्तकें पढते हैं? लेनिन, माओ, हो-ची मिन्ह जैसे नेताओं ने भी इस शताब्दी को प्रभावित किया है। क्या आपने कभी इन्हें भी पढा है?" मुझे कुछ शैतानी सूझी।

"बिल्कुल नहीं। विश्व-नेताओं में गॉधीजी के अलावा मै दूसरो से प्रभावित नहीं हूँ। और पढने के लिए समय ही नहीं मिल पाता है।" मुख्यमंत्री ने अपनी सीमाएँ सामने रखीं।

इस पडाव को यहीं समाप्त करते हुए, मैं आगे बढा "क्या इस रथयात्रा का आपको राजनीतिक लाभ नहीं मिलेगा? पचायत-चुनावो पर भी इसका अनुकूल प्रभाव पडेगा।" मैंने बातचीत को वापस राजनीतिक पटरी पर लाने की कोशिश की।

"इसका राजनीतिक लाभ मिलेगा। पार्टी की शक्ति बढेगी। पचायतों के चुनावों पर इसका असर पडेगा। आपका यह अनुमान सही है कि रथयात्रा के साथ-साथ सामाजिक धरातल पर हमारी शक्ति का निर्माण होता जा रहा है। पर, इसमें मैं क्या कर सकता हूँ? यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।" कुछ रुककर मुख्यमत्री फिर बोलने लगे–"एक बात और भी है। रथयात्रा के साथ-साथ हमे ऋणमुक्ति का भी लाभ मिलेगा। प्रदेश के दो करोड से भी अधिक लोग ऋणमुक्ति कार्यक्रम से लाभान्वित हुए हैं। 664 करोड रुपए के कर्ज अब तक माफ किए जा चुके हैं।"

मैंने अपने निजी अनुभव सामने रखते हुए कहा, "हो सकता है आप सही कह रहे हैं। लेकिन मुझे कुछ और ही सुनने को मिला है। छिंदवाडा, सिवनी और जबलपुर के कुछ गाँवों में सरसरी पूछताछ की है। कुछ लोगों को शिकायत थी कि उनके कर्जे अभी तक माफ नहीं किए गए हैं; उन्हें कोई प्रमाणपत्र नहीं मिले हैं।"

"तब उनकी राशि दस हजार से अधिक की रही होगी?" मुख्यमंत्री ने कहा।

"नही, दस हजार के नीचे ही है। आप चैक करवा लें। कुछ गॉवो मे असंतोष है।" मेरा जवाब था।

"हो सकता है। मैं चैक करवा लूँगा।" उन्होंने आश्वासन दिया।

"मडल आयोग का तूफान अभी रुका नही है।" मैने मुख्यमत्री को टटोलने की कोशिश की।

'दस बरस से यह रपट ठडे बस्ते मे बद थी, न जाने प्रधानमत्री वि प्र सिह ने इसे क्यो निकाल दिया। उन्होने इसमे चतुराई दिखाई है। चालबाजी के नतीजे अच्छे नहीं निकलते। कोई विश्वास नहीं करता कि पी एम ने पिछडो की भलाई के लिए इसे लागू किया है। उन्हे चुनावो के लिए मतदाता चाहिए इसलिए यह चक्कर चलाया गया है। विश्वनाथजी शेर की सवारी कर रहे है। उतरते है तो मुश्किल, बैटे रहते है तो भी।" मद-मद मुस्कराते हुए वे बोले, "आरक्षण विरोधी आदोलनकारी ही क्या, अब तो चन्द्रशेखर ही उन्हे नहीं छोड़ेगे।"

**11 नवम्बर, 1990**

# सत्ता पर खुरदुरे हाथों की दस्तकें

शरद यादव। छियालीस बसंतों का साक्षी। नाटा कद, जुझारू व्यक्तित्व। 1974 में जबलपुर लोकसभाई उपचुनाव में 'लोकसभा उम्मीदवार' के रूप मे विजेता बनकर राजनीतिक क्षितिज पर उभरनेवाले तब के महाविद्यालयी शरद यादव ने आज राष्ट्रीय फलक पर स्वयं को स्थापित कर लिया है।

जनता दल 'आइडोलॉग' के रूप में चर्चित शरद यादव ने अपने सफर में पीछे मुड़कर कभी नहीं देखा। लोहिया-चितन से लैस होकर होशंगाबाद जिले के इस युवक ने 1967 से अपनी सघर्ष यात्रा की शुरूआत की। कभी जेल के अंदर, कभी बाहर, यह सिलसिला बरसों तक चलता रहा। आपातकाल के भी शिकार बने। आपातकाल की अवधि बढाए जाने के विरोध में उन्होंने लोकसभा से भी इस्तीफा दिया। खानदानी हुकूमत के खिलाफ लड़ाई का जुनून शरद यादव पर हमेशा सवार रहा है। इसी जुनून ने उन्हे 1982 में अमेठी के उपचुनाव में राजीव गॉधी से भिड़वा दिया। इससे पहले वे सेठ गोविन्द दास के 'वंशवाद' से टक्कर ले चुके थे। आज वे जातिगत वर्चस्व के खिलाफ देश के कोने-कोने में अलख जगा रहे हैं। एक प्रकार से शरद यादव 'मंडलमय' बन चुके हैं। वे मंडल-चिंतन में वर्ण-सामंतवाद से भारत की मुक्ति का स्वप्न देख रहे हैं; एक प्रतिबद्ध पथिक हैं लंबी यात्रा के।

पिछले दिनों शरद यादव ने एक लडाई और जीती। पार्टी के अंदर। जनता दल की संसदीय पार्टी के नेता चुने गए। उनके मुकाबले में थे प्रखर व प्रख्यात समाजवादी और श्रमिक नेता जार्ज फर्नांडीस! इस जीत ने उन्हें एक दफा फिर से 'चर्चा का केंद्र' बना दिया है। पक्ष और विपक्ष में तर्क दिए जा रहे हैं, पर इतना जरूर है कि यादव की इस जीत से जनता दल व पिछड़ों की लड़ाई में एक नया आयाम जुड़ा है। इसके परिणाम अभी नहीं, भविष्य में दिखाई देंगे। प्रस्तुत है उनके

निवास पर हुई बातचीत के जरूरी अंश :

***जोशी*** *. वर्षान्त तक मध्यप्रदेश, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश में मध्यावधि चुनाव होने जा रहे हैं। आपकी पार्टी यानी जनता दल का इन चारों हिन्दी-राज्यों में एक स्थान रहा है। 1989 और 1990 में आपके और भारतीय जनता पार्टी के बीच एक समझदारी थी। इसका लाभ दोनों पक्षों को मिला। 1991 में यह समझदारी टूटी। आज 1993 में भी इन राज्यों में भाजपा एक मुख्य चुनौती बनी हुई है। अत. ताजा राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में चुनावों की द ष्टि से आपके दल की क्या रणनीति होगी?*

**शरद यादव** : देखिए जनता दल मूलत: जन-आधारित पार्टी है। हमारी राजनीति मुद्दों पर आधारित है। मुद्दागत राजनीति को लेकर हम जनता के बीच जाते हैं, उसे संगठित करते हैं, आंदोलित करते हैं। सत्याग्रह, आंदोलन, संघर्ष आदि के जितने भी तरीके होते हैं, उन्हें हम अपनाते हैं। अत: चुनावी रणनीति के तहत हमने फैसला किया है कि इन चारों राज्यों में स्थानीय जरूरत के मुताबिक मुद्दों पर फोकस किया जाए, जनता को जाग्रत किया जाए। पर हम इन राज्यों में अपने परंपरागत प्रभाव-क्षेत्रों पर खास ध्यान देना चाहेंगे। मिसाल के तौर पर मध्यप्रदेश का केस लें। मध्यप्रदेश में जो समाजवादियों के प्रभाव-क्षेत्र रहे हैं, वे ही आज जनता दल के बन चुके हैं। हम यह कभी दावा नहीं करते हैं कि संपूर्ण मध्यप्रदेश में समाजवादियों या जनता दल का प्रभाव रहा है। हमेशा से 'पॉकेट्स' रहे हैं। विंध्य, बुंदेलखंड, ग्वालियर व मालवा के कुछ क्षेत्र, छत्तीसगढ़ के कुछ क्षेत्र आदि स्थानों पर हम अपनी ताकत केंद्रित करेंगे। इन्हीं क्षेत्रों में कार्यक्रम चलाएँगे। राजस्थान में भी पुराने समाजवादी आधार वाले क्षेत्र जनता दल के साथ हैं। लोक दल के प्रभाव-क्षेत्र भी जनता दल के साथ हैं। पर मैं यह भी कहना चाहूँगा कि इन राज्यों के दलित वर्ग जनता दल की राजनीति के साथ हैं। यदि चुनावों में दलितों व अल्पसंख्यकों को लगा कि जनता दल खड़ा हुआ है तो निश्चित ही उसे वोट मिलेंगे। एक बात और स्पष्ट कर दूं। यदि अजितसिंह जनता दल के साथ पूरी तरह से आ जाते हैं तो काफी लाभ मिलेगा। जनता दल और अजितसिंह के बीच वार्ता जारी है। उनसे सकारात्मक संकेत मिल रहे हैं। दोनों के एक होने से हम एक बड़ी शक्ति के रूप में उभर सकते हैं; विशेष रूप से किसान-प्रभावी क्षेत्र में जनता दल की शक्ति काफी बढ सकती है। राजस्थान में हम प्रभावशाली भूमिका निभा सकते हैं। अब रहा उत्तरप्रदेश का मामला, तो पिछले एक-डेढ वर्ष के दौरान हम लोगों ने उत्तरप्रदेश को ही सबसें अधिक पाला-पोसा है, उस पर विशेष ध्यान दिया है।

आप जानते ही हैं कि उत्तरप्रदेश में हमारा एक व्यापक प्रभाव-क्षेत्र है। राज्य के चौंतीस जिलों में हमने सामाजिक न्याय का अभियान चलाया है। किसानों का

*राम-कोला आदोलन भी इसी प्रदेश मे चलाया गया।*

हमारे वोटो का आधार-क्षेत्र दलित वर्ग, पिछडा वर्ग और अल्पसख्यक वर्ग हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि पार्टी मे टूट की वजह से इन क्षेत्रो मे कमजोरी आई है, हमारी शक्ति घटी है। इस कमजोरी को दूर करने के लिए अजितसिहजी के साथ बातचीत जारी है, वे स्वय भी यह महसूस करते हैं कि टूट की वजह से यह कमजोरी पैदा हुई है, अत इसे दूर किया जाना चाहिए। आशा है कि इसके अनुकूल नतीजे निकलेगे। मुलायमसिह के साथ भी हमारे सहयोगी वामपथी दल के लोग बातचीत कर रहे है। उन्हे समझाने की कोशिश की जा रही है कि विगत से सबक लेकर इस बार वोटो का विभाजन न होने दिया जाए। उम्मीद की जा सकती है कि इस मामले मे मुलायमसिह समझदारी से काम लेगे। हालॉकि अभी तक कोई सकारात्मक नतीजा नहीं निकला है, लेकिन मै यह कह सकता हूँ कि उप्रदेश मे चारो तरफ से जनता का दबाव बढ रहा है। मुलायमसिह इस सच्चाई को समझेगे। आज हम सभी जानते हैं कि देश मे प्रमुख खतरा साप्रदायिकता का है। इसका मुकाबला सगठित शक्ति से ही किया जा सकता है, अलग-अलग रहकर नहीं। अत मैं कह सकता हूँ कि देर-सबेर मुलायमसिह जनता के दबाव और वक्त की मॉग को समझेगे। वैसे इस दबाव को मैं वाजिब भी मानता हूँ। अरे भाई, जब लोकतत्र ही नहीं रहेगा तो राजनीति कहॉ रहेगी?

अत मैं जनता के इस दबाव के आधार पर विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि मध्यावधि चुनाव मे भाजपा को उत्तर-प्रदेश मे हराया भी जा सकता है। हम सभी मानते हैं कि इन चारो राज्यो मे हम सभी के लिए उत्तरप्रदेश क्रूसियल है, क्योकि पिछले 2-3 सालो मे प्रदेश मे साम्प्रदायिक उन्माद पैदा किया.गया है। अत हमारा मकसद इस चुनौती का मुकाबला करना है। यदि इस उन्माद का सामना कर लिया जाता है तब कोई चिता की बात नहीं है, स्थिति काबू मे रहेगी। इसलिए हमने अपना पूरा ध्यान व शक्ति उत्तरप्रदेश पर केद्रित कर रखी है। प्रदेश मे पार्टी को नए सिरे से मजबूत किया जा रहा है। विश्वनाथ प्रताप सिह और पार्टी के अन्य वरिष्ठ नेताओ के कार्यक्रम भी इसी प्रदेश मे चल रहे है। मै स्वय भी वहॉ जा रहा हूँ। बिहार के मुख्यमत्री लालू यादव, रामविलास पासवान और अन्य बडे नेता भी पूर्वी उत्तरप्रदेश मे विशेष रूप से सक्रिय होगे। हमारी कोशिश रहेगी कि बिहार और पूर्वी उत्तरप्रदेश मे पार्टी की तगडी ताकत पैदा की जाए।

मैं लगे हाथ यह भी स्पष्ट कर दूँ कि शेष भारत मे हमारी स्थिति मे तेजी से सुधार हो रहा है चाहे वह दक्षिण का क्षेत्र हो या उत्तर-पूर्वी। इन क्षेत्रो मे नए ढग से पार्टी को सगठित किया जा रहा है, नए राजनीतिक समीकरण तैयार किए जा रहे है। राष्ट्रीय मोर्चा पूरी तरह से सक्रिय है। लेकिन उत्तरप्रदेश मे निश्चित ही समस्या है। आज हमारी सपूर्ण ताकत वोटो के विभाजन को रोकने मे लगी हुई है।

*है। इसे केद्र मे रखकर राजनीतिक तालमेल की प्रक्रिया चलाई जा रही है।*

***जोशी** : मान लीजिए कि आपके दल और मुलायमसिह के बीच कोई समझौता नही हो पाता है, तो उस स्थिति मे क्या होगा?*

**शरद यादव** उस स्थिति मे भी जनता दल एक मजबूत शक्ति के रूप मे उभरेगा। मेरे खयाल से चुनावो के बाद जनता दल सबसे बडे दल के रूप मे सामने आएगा। भाजपा का रथान दूसरा रहेगा। भाजपा किसी भी कीमत पर 1990 का इतिहास नही दोहरा सकेगी। 1990 मे उसकी जीत के कई कारण थे। आज वे कारण बदल चुके है।

***जोशी** पर अयोध्या का कारण तो रहेगा। क्या बाबरी मस्जिद को तोडने का लाभ भाजपा को नही मिलेगा? उत्तर भारत मे विशेष रूप से उत्तरप्रदेश मे मस्जिद के टूटने से भावनात्मक स्तर पर भाजपा की स्थिति पहले से अधिक मजबूत हुई है।*

**शरद यादव** नही नहीं ऐसा नही है। बल्कि इससे उसका साप्रदायिक चेहरा और उजागर हुआ है। हिन्दुओ का एक उदारवादी वर्ग भाजपा से कटा है। मुझे अच्छी तरह से याद है कि मस्जिद के टूटने से पहले चारो तरफ जय श्रीराम के नारे लगते थे। अब उत्तरप्रदेश मे ही यह नारा पृष्ठभूमि मे जा रहा है। मेरी यात्राओ मे यह नारा कही सुनाई नहीं देता है। 1991 मे जनता दल की हार और भाजपा की जीत के दो-तीन प्रमुख कारण थे। एक तो यह कि हम लोकसभा के चुनावो मे विभाजित थे। दूसरी वजह यह थी कि लोगो मे मडल को लेकर गुस्सा भरा हुआ था। तीसरी वजह थी,केद्र मे हमारी विफलताएँ। इन तमाम कमजोरियो का फायदा भाजपा ने उठाया। लेकिन इस बार हर स्तर पर हमारी तैयारी 1991 से बेहतर है।

***जोशी** कहा जा रहा है कि इन चारो राज्यो के सवर्ण वर्ग भाजपा के साथ हैं। इसके साथ ही भाजपा ने पिछडो को लुभाने के लिए कल्याणसिह जैसे पिछडे वर्ग के नेताओ को मैदान मे उतारा है। विनय कटियार, उमाश्री भारती जैसे सासद भी इन्ही वर्गो का प्रतिनिधित्व करते है। पिछडो पर जनता दल की जो मोनोपली है, भाजपा ने इसे तोड दिया है। इस चुनौती का सामना कैसे करेगे?*

**शरद यादव** आपने इसका काफी सामान्यीकरण कर दिया है। लेकिन जमीनी सच्चाई ऐसी नही है। मिसाल के लिए मध्यप्रदेश की ही ऊँची जातियाँ भाजपा के साथ नहीं है। राजस्थान मे भी यह मामला नही है। उत्तरप्रदेश मे यह स्थिति जरूर है कि सवर्ण भाजपा के साथ है। पिछली बार ऊँची जाति के लोगो ने इस पार्टी को वोट दिया था। पर अब ऐसा नही रहा है। ब्राह्मण स्वय विभाजित है। उदारवादी ब्राह्मण भाजपा के साथ नही है। उत्तरप्रदेश का ब्राह्मण यह भी सोचने लगा है कि

वह भाजपा के साथ जाकर राजनीतिक दृष्टि से जीवित नहीं रह सकता, क्योंकि मुसलमान और दलित वर्ग इससे कटे हुए हैं। अत: ब्राह्मण जानते हैं कि विशाल वर्ग की उपेक्षा करके राज्य में राजनीति नहीं की जा सकती। अत. जितनी तेजी से ब्राह्मण भाजपा की ओर झुके थे, वे अब लौट भी रहे हैं। इस बार जनता दल के ब्राह्मण उम्मीदवारों को निश्चित रूप से वोट मिलेंगे। कुल मिलाकर ऊँची जातियों में पुनर्विचार और सुलह का रुख अपनाया जा रहा है। पर मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि हमारी पार्टी में भेदभाव जैसी कोई चीज नहीं है। चुनावों में मुद्दे निर्णायक भूमिका निभाएँगे। यह सच है कि कल्याणसिंह, कटियार आदि की वजह से पिछड़ों के वोट कट सकते हैं। पर वे यह भी जानते हैं कि भाजपा की सोच फासीवादी है; उनका रास्ता प्रतिक्रियावादी है। अपने फासीवादी विचारों को फैलाने के लिए उन्होंने पिछडों के बीच घुसपैठ करने की कोशिश की है। लेकिन मेरा यह मानना है कि भाजपा पिछडो को कुछ वक्त के लिए 'चीट' कर सकती है, हमेशा के लिए नहीं। हमारा जब आंदोलन चलेगा तो स्थिति बदलेगी। नवंबर या चुनाव तक स्थिति में काफी बदलाव आ जाएगा; भाजपा की ओर जो झुके हैं उनका मोहभंग हो जाएगा। इसकी एक वजह यह है कि पिछड़ों में भी जो पिछडे हैं–जैसे कोली, मल्हा, लुहार, गडरिया आदि – वे समझ चुके हैं कि मंडल-शक्ति का अर्थ क्या है। इन जातियों के बीच जनता दल पहुँच चुका है। पिछड़े वर्ग समझ चुके हैं कि उनके लिए कौन-सा दल संघर्ष कर रहा है। जाहिर है इस लड़ाई में भाजपा कहीं भी नहीं टिकती है।

**जोशी** : *क्या भाजपा को हराने के लिए जनता दल और कांग्रेस के बीच चुनावी गठबंधन संभव है?*

**शरद यादव** : देखिए इस मामले में हम बिल्कुल स्पष्ट व दृढ़ हैं कि कांग्रेस ने सांप्रदायिकता को फैलाने में कम काम नहीं किया है। कांग्रेस को सभी दृष्टियों से देखना होगा। साप्रदायिकता के साथ-साथ कांग्रेस की आर्थिक नीति, किसान नीति, औद्योगिक नीति आदि के संबंध में भी सोचना होगा। भ्रष्टाचार के मामले में तो कांग्रेस बिल्कुल बेशर्म हो गई है। साप्रदायिकता के मामले में भी ये खरे नहीं उतरते हैं। कांग्रेस शासन में ही अयोध्या में ताला खोला गया, दरवाजे खोले गए, मंदिर का शिलान्यास कराया गया, मस्जिद टूटी। कुल मिलाकर कांग्रेस सांप्रदायिक मुद्दों का इस्तेमाल करती रही है। देश को इस सीमा तक पहुँचाने में कांग्रेस का प्रमुख हाथ रहा है। कांग्रेस और भाजपा के बीच मिला-जुला खेल चलता रहा है। अब कांग्रेस पार्टी के चरित्र में कोई सुधार होनेवाला नहीं लगता है। हम दोनों से ही समान दूरी बनाए रखने के पक्ष में हैं। समझौता तो दूर, हम तो स्थानीय तालमेल भी नहीं चाहते। इससे हमारे कार्यकर्ताओं और मतदाताओं पर गलत असर पड़ेगा। यदि हम

मध्य प्रदेश या राजस्थान में भाजपा को हराने के लिए कांग्रेस से कोई स्थानीय किस्म का तालमेल करते भी हैं तो इससे हमारा वोट-आधार ही खिसक जाएगा। अलबत्ता कांशीराम से हमे कोई परहेज नहीं है। यह जरूर देखना होगा कि जनता दल के सिद्धांत और विचारधारा के खिलाफ कोई बात न जाए।

***जोशी** : भाजपा ने 'जनादेश-यात्रा' शुरू की है। इस चुनौती का मुकाबला आप कैसे करेंगे?*

**शरद यादव** : इस चुनौती का सामना हम पहले भी करते आए हैं और आज भी करेंगे। हमारा यह मानना है कि यह लडाई राजनीतिक है। इस बार भाजपा की यात्राएँ पार्टी की यात्राएँ हैं। दूसरे शब्दों में, पार्टी कार्यकर्ताओ के अलावा अन्य लोग इसमें शामिल नही होंगे। एक तरह से ये यात्राएँ चुनावी तैयारियों का एक हिस्सा हैं। मेरा विश्वास है कि इन यात्राओं को पहले जैसा व्यापक जन-समर्थन नहीं मिलेगा। 1990 में आडवाणीजी की रथयात्रा को इसलिए समर्थन मिला था क्योंकि लोग मंडल से नाराज थे। अब तो भाजपा भी मंडल की बात करने लगी है। इसलिए पिछडा वर्ग उनकी यात्राओं में क्यों शामिल होगा? जनता जानती है कि मंडल-चेतना की सूत्रधार कौन-सी पार्टी है।

***जोशी** : आप यह नहीं मानते कि जनादेश यात्राओं मे अयोध्या-मुद्दा जमकर उभारा जाएगा, धर्म का इस्तेमाल किया जाएगा ?*

**शरद पवार** : देखिए, देश में भाजपा के उभार के बारे में जो विश्लेषण हुआ है वही गलत हुआ है। मेरा मानना है कि धर्म की वजह से भाजपा का उभार नहीं हुआ है। असलियत यह है कि 'सामाजिक टकरावों' की वजह से भाजपा को लाभ हुआ है। आप स्वयं देख लीजिए, जिन क्षेत्रों में सामाजिक टकराव तेज हुए हैं और मंडल-चेतना पैनी हुई है, वहीं भाजपा का प्रभाव बढ़ा है। उत्तरप्रदेश इसकी मिसाल है। दक्षिण में उसका प्रभाव नहीं बढा है। कर्नाटक में भाजपा ने हमारी कमजोरी का फायदा उठाया है। यदि जनता पार्टी या जनता दल वहाँ विभाजित नहीं होता तो भाजपा को कोई लाभ नहीं मिलता। दूसरी बात यह भी है कि कर्नाटक में हमारी पार्टी का आधार भी ऊँची जाति का था। ऊँची जातिवाला आधार ही खिसका है।

मध्यप्रदेश का मामला देख लीजिए। 1991 के लोकसभा चुनावों में भाजपा बुरी तरह से हारी है। कांग्रेस जीती है। 1990 की जीत को भाजपा की शुद्ध जीत के रूप में नहीं देखा जा सकता है। सवाल उठता है कि 1991 में राम-लहर कहाँ चली गई? इसका एक ही जवाब है कि कांग्रेस भी उन्हीं वर्गों की पार्टी थी जिन वर्गों की भाजपा

***जोशी** : क्या राम-लहर समाप्त हो चुकी है? मध्यावधि चुनावों में वह अपना कमाल*

*नहीं दिखाएगी?*

**शरद यादव** : मैं सोचता हूँ कि राम-लहर का कोई मामला नहीं है। असली मुद्दा सामाजिक न्याय का है। भाजपा हमेशा से प्रतिक्रिया का फायदा उठाती आई है। जब दलित वर्ग अपने हक की मॉग करते है तो उसके विरोध में ऊँचे वर्गों की प्रतिक्रिया होती है। भाजपा की कोशिश इसी प्रतिक्रिया को भुनाने की रहती है। लेकिन यह भी ज्यादा दिन नहीं चलेगा। हिन्दुस्तान के सामाजिक अंतर्विरोध तेज हो रहे हैं। लेकिन इसका यह कतई अर्थ नहीं है कि ये अंतर्विरोध सांप्रदायिक बन जाएँगे। देश की ऊँची जातियों का एक बडा वर्ग मंडल-चेतना व मंडल-आंदोलन को न्यायोचित मानता है और इसकी अगुवाई मे वह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ज्यादातर सामाजिक सुधारक तो सवर्णो में से ही थे। सवर्ण हिन्दुओं का एक हिस्सा यह महसूस करता है कि हिन्दुस्तान की सबसे बडी कमजोरी जातिव्यवस्था है। जातिव्यवस्था की समाप्ति से देश की कई कमजोरियॉ दूर हो सकती हैं।

***जोशी** : वि प्र के दिल्ली से आत्म-निर्वासन के बाद जनता दल के लोग अनाथ-सा अनुभव कर रहे हैं। कई सांसदो ने कहा है कि वि प्र पार्टी को मझधार में छोड़कर चले गए हैं। इस संबंध मे आपकी क्या प्रतिक्रिया है?*

**शरद यादव** : मैं नहीं समझता कि इस बात मे कोई दम है। देखिए, इतिहास के लंबे दौर में व्यक्ति कभी निजी हैसियत से फैसले लेता है और कभी पार्टी के स्तर पर कदम उठाता है। मुख्य सवाल है कि व्यक्ति या नेता किन मुद्दों से जुडा हुआ है। वि प्र सिंह हमेशा मुद्दो से जुडे रहे हैं, इसीलिए वे आलोचना का शिकार भी रहे हैं। मडल-मुद्दे से जुडने के बाद तो एक वर्ग उन पर किसी न किसी बहाने से बराबर आक्रमण करता आ रहा है। आज वे फिर मडल अभियान पर निकले हैं। देखिए, यह जान लीजिए, वि प्र सिह सरकार की सैद्धांतिक बेईमानी के खिलाफ देश में अलख जगाने के लिए निकले हैं। मंडल-सिफारिशों और सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के संदर्भ मे देश को यह समझना होगा कि सामाजिक उत्थान एवं आर्थिक उत्थान मे अंतर है। आर्थिक दृष्टि से विकसित होने का यह मतलब कतई नहीं है कि वह सामाजिक रूप से विकसित हो चुका है। आरक्षण व्यक्ति के सामाजिक उत्थान के लिए पहले है, आर्थिक उत्थान के लिए बाद मे। इसी फर्क को वि.प्र सिह समझाना चाहते है। अत. वि प्र सिंह एक वैचारिक सघर्ष के लिए दिल्ली से निकले हैं, देश मे बाहर नहीं गए हैं। यह जरूरी नहीं है कि पद पर रहकर ही कोई व्यक्ति काम करे। किसी को अनाथ महसूस करने की आवश्यकता नहीं है। वैसे मैं यह नहीं समझता कि कोई सांसद ऐसा सोच भी रहा है। और यह भी जान लें, हमारी पार्टी में नेतृत्व को लेकर कोई विवाद नही है। पार्टी के कामो में सिंह पूरी तरह से सक्रिय हैं। वे बैठकों व कार्यक्रमों में भाग ले रहे हैं। वैचारिक अभियान

के माध्यम से वे जनता को गोलबद कर रहे है जिससे कि दलित व पिछडों का हक न मारा जाए।

*जोशी पिछले दिनो आपको जनता ससदीय दल के नेता के रूप मे निर्वाचित किया गया। यह एक ऐतिहासिक घटना है। इसे आप किस दृष्टि से देखते हैं?*

**शरद यादव** मै इसे घटना के रूप मे नहीं देखता। किन परिस्थितियो मे नेतापद का चुनाव हुआ इसे जानना जरूरी है। सबसे पहले हमारी कोशिश थी कि वि प्र सिह ही नेता बने रहे। लेकिन जब उन्होने अतिम रूप से इकार कर दिया तब भागदौड शुरू हुई। बीजू पटनायक, लालू यादव जयपाल रेड्डी, मुफ्ती मोहम्मद सईद आदि सभी नेता महसूस करने लगे कि बगैर स्थायी नेता के दिल्ली मे काम नही चलेगा। पार्टी मे चारो तरफ दबाव बढने लगा सासद कहने लगे। चूँकि मैं जनसगठन का आदमी रहा हूँ सबसे मेरा जीवत सपर्क रहा है, इन नेताओ का भी भावनात्मक लगाव मुझसे रहा है, तो इन्होने सोचा कि यदि मै दिल्ली मे बैठा भी रहूँगा तो भी चल जाएगा, फैसले मजबूती से लिए जा सकेगे। मैने दिन मे 10 बजे फार्म भरा। मुझे मालूम नही था कि जार्ज साहब भी फार्म भर रहे हैं। वैसे मैंने उनसे कसल्ट भी कर लिया था। लेकिन जार्ज साहब ने शाम को 4 बजे फार्म भरा। लोगो ने आकर मुझे बताया। उन्होने पहले कहा था कि यदि आम राय से चुनाव नहीं हुआ तो मैं नहीं खडा होऊँगा। लेकिन स्थिति बिल्कुल बदल गई। मेरे समर्थको का मत था कि मैं मैदान से पीछे नही हटूँ। हम आखिर तक यही सोच रहे थे कि जार्ज साहब चुनाव लडनेवाले नही है। यह चुनाव मेरी इच्छा से हुआ है, ऐसी बात नहीं है। लेकिन हालात ही ऐसे पैदा हो गए कि चुनाव से बचा नहीं जा सकता था। लेकिन चुनाव और उसके नतीजे को लेकर मेरे और उनके बीच कोई कटुता नहीं है। जार्ज साहब मेरे वरिष्ठ नेता है। हम दोनो का एक लबा साथ है। मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि यह पद मिलने के पहले जिस ढग से मै काम करता था, आज भी उसी तरह मे करूँगा। मै हमेशा से मुद्दागत सियासत करनेवाला आदमी रहा हूँ। मेरा पहला प्रयास होगा कि ससद मे जनता दल एक टीम के रूप मे उभरे।

*जोशी दलित और पिछडे वर्गों की सियासत की दृष्टि से आप अपनी नई जिम्मेदारी को किस रूप मे लेना चाहेगे?*

**शरद यादव** इस जिम्मेदारी से निश्चित ही पिछडो की सियासत व चेतना मे नया आयाम जुडा है। चुनाव के बाद देशभर से जैसा 'रिसपास' मुझे मिल रहा है उससे जाहिर है कि लोग आदोलित हुए है 10-12 हजार तार हजारो चिट्ठियाँ आदि प्राप्त हुई है। पहली दफे देश की तीसरी सबसे बडी पार्टी का नेता पिछडे वर्ग से बना है। मेरे चुनाव से दलितो व पिछडो मे मजबूती आई है, पार्टी के प्रति रुझान बढा है। पिछडो के लिए लडाई लडने के कारण ही पार्टी के तबको ने मुझे वोट

दिया है।

***जोशी*** *: मडल की लडाई आप लोग जीतने के कगार पर है। पर आरक्षण को लेकर कुछ आशकाएँ हैं। अब तक के अनुभव रहे है कि अनुसूचित जातियो और जनजातियो मे आरक्षण का लाभ उन्ही वर्गो को अधिक हुआ है जो पहले से ही आगे थे, जरूरतमद वर्ग वचित रहे है। पिछडे वर्गो मे आरक्षण को लागू करते समय ऐसे अनुभव नहीं होगे, इसकी क्या गारटी है?*

**शरद यादव** सुप्रीमकोर्ट के फैसले ने ऐसी विसगतियो को दूर करने की व्यवस्था की है। आरक्षण के लाभो के समान वितरण के लिए एक स्थायी बोर्ड के गठन का प्रावधान रखा गया है। यह बोर्ड इस बात पर निगरानी रखेगा कि सभी आरक्षित वर्गों को लाभ समरस तरीके से मिल रहे है या नहीं। पर मै यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि लाभो के असमान वितरण को लेकर आरक्षित वर्गों मे से विरोध की कोई आवाज नहीं उठ रही है। सच्चाई तो यह है कि पिछले 46 वर्षो मे अनुसूचित जातियो व जनजातियो की जनसख्या के अनुपात की दृष्टि से स्थान भरे ही नहीं गए है बल्कि स्थान रिक्त रखे गए है। यदि रिक्त स्थानो को न्यायोचित ढग से भरा गया होता तो जिस विसगति की बात आपने कही है वह आज नही होती। इसकी एक वजह यह भी रही है कि सरकार ने दलितो व शोषितो के लिए सामाजिक उत्थान के कार्यक्रम ठीक से नहीं चलाए है। फलस्वरूप दलित वर्ग आरक्षण का पूरा लाभ नहीं उठा सके। बगैर सामाजिक उत्थान के आरक्षण बेमानी है। सविधान मे यह व्यवस्था है कि आरक्षण की प्रत्येक दस वर्ष मे समीक्षा की जानी चाहिए। मेरा कहना है कि जब आरक्षण के अतर्गत उपलब्ध कोटा ही नहीं भरा जा रहा है तो समीक्षा का लाभ क्या है?

वैसे आदिवासियो मे आरक्षण की सुविधा को लेकर विषमता मौजूद है। राजस्थान मे मीणा-वर्ग को आरक्षण का लाभ अधिक मिला है, जबकि भील पिछडे हुए है। लेकिन इस विषमता की आवाज भी भील नही उठा रहे है दूसरे लोग उठा रहे है। जब तक इन वर्गो के भीतर से ही इसके विरोध की आवाज नही उठेगी, समस्या का हल नहीं निकलेगा।

***जोशी*** *ऐसा क्यो नहीं हो रहा है? इसकी क्या वजह है?*

**शरद यादव** इसकी सबसे बडी वजह यह है कि सामाजिक सुधार व सामाजिक उत्थान के कार्यक्रमो मे भ्रष्टाचार बुरी तरह से व्याप्त है। इन कार्यक्रमो के लिए जो राशि निर्धारित है, वह इन वर्गो तक नही पहुँच सकी है। सरकार को चाहिए था कि वह इन वर्गो के बच्चो को इस लायक बनाती ताकि वे आरक्षण का लाभ उठा सकते। अत यह किसका दोष है?

अब देखिए, क्रीमी लेयर या सपन्न वर्ग की बात की जा रही है । मै इस तर्क से सहमत नहीं हूँ । ऑकडे इस बात का सबूत है कि क्रीमी लेयर की दलील कितनी लचर है । देश की आबादी मे पिछडो का प्रतिशत 52 प्रतिशत है, जबकि नौकरियो मे इनकी हिस्सेदारी दो प्रतिशत से अधिक नहीं है । और इस दो मे भी पिछडे वर्ग के लोग दक्षिण भारत के है । दक्षिण भारत मे सामाजिक उत्थान का कार्यक्रम काफी सफलता से चल रहा है । लेकिन उत्तर भारत मे ऐसा नहीं है । इसलिए नौकरियो मे इधर के पिछडो का प्रतिशत बहुत कम है । और इन दो प्रतिशतो को भी पिछले 46 साल से कुछ नही मिला । आज जब ये लोग अपना हक मॉग रहे है तो तरह-तरह की दलीले दी जा रही है । मेरा यह कहना है कि पहले इस वर्ग के साथ हो रहे अन्याय को तो दूर कीजिए । इसके बाद लाभो के वितरण की समीक्षा करिए । लेकिन देने से पहले ही क्रीमी लेयर की दलीले देना किसी भी दृष्टि से न्यायोचित नही है ।

यह बात भी समझी जानी चाहिए कि आरक्षण एक निरतर प्रक्रिया नहीं है, यह कुछ समय के लिए है यह अस्थायी है । मेरा यह कहना है कि यदि कोई वर्ग आगे बढ गया है तो उसे आरक्षण के दायरे से बाहर भी कर सकते है इसका प्रावधान है । ऐसा करके आरक्षण प्रक्रिया से जनित सभावित विसगति व विषमता को दूर भी किया जा सकता है । लेकिन मै फिर इस बात पर जोर दूँगा कि समान वितरण की आवाज भीतर से उठनी चाहिए । पिछडो मे तर्क होने चाहिए कि लाभो का समान वितरण हो रहा है या नही ।

लेकिन देश का 10 प्रतिशत वर्ग क्रीमी लेयर के तर्क दे रहा है । यह वही वर्ग है जो मूलत परजीवी है । यह परिश्रम या काम करने से कटा हुआ है । यह सिर्फ बौद्धिक जुगाली पर जीवित है और इसी के बल पर सपन्न बना हुआ है ।

***जोशी*** *क्या आरक्षण की व्यवस्था से व्यक्ति या समाज मे एक किस्म की पगुता पैदा नही होती है? एक समाजवादी चिन्तक होने के नाते ऐसी व्यवस्था को आप कब तक जीवित रखना चाहेगे?*

**शरद यादव** देखिए, आरक्षण की व्यवस्था रखना हमारी मजबूरी है । लेकिन इस व्यवस्था पर चोट करने से पहले इसके कारणो की तह मे जाना जरूरी है । यदि इस देश मे जाति- व्यवस्था नही होती तो आज आरक्षण की भी आवश्यकता नहीं होती । जाति- व्यवस्था देश की सबसे बडी कमजोरी है । यह देश क्यो गुलाम हुआ? क्यो नहीं किसी बाहरी आक्रमण के विरुद्ध जीता? पिछले एक-डेढ हजार साल मे क्यो नहीं नए आविष्कार हुए ? प्रौद्योगिकी मे भारत क्यो पिछड़ा रहा है? क्या वजह है कि जो देश हमारे साथ आजाद हुए थे वे हमसे आगे हैं? गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी सब कुछ हमारे यहाँ भरी पडी है । मेरे विचार से इन सबकी जड है जाति- व्यवस्था ।

***जोशी : लेकिन जाति-व्यवस्था बजाय कमजोर होने के और मजबूत हुई है। राजनीतिज्ञों और पार्टियों ने इसका जमकर इस्तेमाल किया है। मंडल पर भी इस तरह के आरोप लगाए जा रहे है। इस सबका जवाब क्या है?***

**शरद यादव** : सबसे पहले तो मै यह मानता हूँ कि जाति-व्यवस्था की समाप्ति के बगैर नए समाज का निर्माण नहीं किया जा सकता। जब तक जाति-व्यवस्था का खात्मा नहीं होगा, आरक्षण के लिए मॉग होती रहेगी। अब आप स्वयं सोचिए, क्या सवर्णों ने जाति-व्यवस्था के माध्यम से समाज मे अपने स्थान का आरक्षण नही किया? यह आरक्षण तो हजारो साल से जीवित है। और इस आरक्षण को बनाए रखने की एक व्यवस्था भी थी। अगर सरकार ईमानदार होती तो जाति-व्यवस्था को समाप्त करने की दिशा में गभीर कदम उठाती। आरक्षण के साथ यह व्यवस्था भी लागू करती कि सरकारी नौकरियों में उन्ही लोगों को प्राथमिकता दी जाएगी जो अतरजातीय विवाह करेगे।

***जोशी** : क्या आपको विश्वास है कि अतरजातीय विवाह से जाति-व्यवस्था समाप्त हो जाएगी?*

**शरद यादव** : क्यों नही। जब आप नौकरियों का 'इसेन्टिव' देगे, तब लोग अपनी जातियॉ त्यागकर विजाति वर्ग से वैवाहिक संबंध जोडेंगे, क्योकि वे आत्मनिर्भरता महसूस करेंगे।

अब आपने सवाल उठाया है कि राजनीतिक पार्टियॉ जातिवाद का इस्तेमाल कर रही है। जैसा कि मैं कह चुका हूँ, जाति-व्यवस्था इस देश की एक 'सच्चाई' है। हजारो वर्ष से हम जातियों के खानो में बॅटे हुए है। हिंदू धर्म मे इसका महत्वपूर्ण स्थान है। तब राजनीति इससे कैसे अलग रह सकती है? पहले देश की दस फीसदी जातियॉ जीवन के हर क्षेत्र मे हावी थीं। राजनीति, सस्कृति, विज्ञान, आर्थिक क्षेत्र, साहित्य, नौकरी इन सभी पर समाज की दस फीसदी जातियों के लोग हावी थे। दूसरे शब्दों में, तब जातिवाद दस प्रतिशत लोगों तक सीमित था। आज इस स्थिति मे बुनियादी बदलाव आ रहा है। आज दलित और किसान—जिन्हें पिछडा व शूद्र भी कहा जाता है—जैसे जाति वर्ग भी आगे आ रहे हैं। सदियों से उत्पीडित जातियों के दलित व वंचित लोग समाज में अपने गरिमापूर्ण स्थान की तलाश कर रहे हैं। इनकी आकांक्षाओं एव अधिकारों का प्रतिनिधित्व करने के लिए आधुनिक राजनीतिक प्रक्रिया बाध्य है, क्योंकि इन दलित व उत्पीडित एवं पिछडी जातियो को अपना संख्याबोध हो चुका है। वे आज अपनी संख्यात्मक अस्मिता को 'एस्सर्ट' कर रही हैं। अत राजनीतिक पार्टियॉ स्थानीय सामाजिक बनावट के आधार पर चुनाव में टिकट देती हैं।

***जोशी** : आपकी बात ठीक है। पर क्या कालान्तर में कभी ऐसी राष्ट्रीय आम सहमति पैदा की जा सकती है कि राजनीति को जातिवाद से दूर रखा जाएगा?*

**शरद यादव** : मुझे नहीं लगता कि सभी राजनीतिक दल इसके लिए तैयार होंगे। ऐसी सहमति हो ही नहीं सकती। हजारों साल से जो लोग जातिवाद के नाम पर फायदा उठा रहे हैं, और हर क्षेत्र के सिरमौर बने हुए हैं, वे ही इसके लिए तैयार नहीं होंगे। और सबसे ज्यादा पार्टियॉ इन्हीं लोगो की है। आप स्वयं देख लें। पिछले 46 सालों से संसद और विधानसभाओं की अगली बैचों पर कौन लोग बैठे हुए हैं? किस जाति और वर्ग के हैं?

***जोशी** : जाहिर है, ऊँची जाति और वर्ग के हैं।*

**शरद यादव** : हॉ, 99 फीसदी लोग उन्हीं जातियों से है। 46 साल में पहली बार मेरे जैसा कोई व्यक्ति यहॉ तक पहुॅच सका है। आखिर ऐसा क्यों हुआ? इससे स्पष्ट है कि बदलाव की रफ्तार कितनी धीमी है। देश में इस पर शोध होना चाहिए कि श्रम से कटी रहनेवाली परजीवी जातियों ने समाज में कौन-कौन-सी कमजोरियॉ पैदा की है, कौन-कौन-से गुण पैदा किए हैं? इमी तरह से श्रम से जुडी रहनेवाली 90 फीसदी जातियों का अध्ययन किया जाना चाहिए। पीढी-दर-पीढी श्रम से जुडे रहने के कारण श्रम-शक्तियो का बुद्धि, सस्कृति, कल्पनाशीलता, रचनात्मकता आदि से कटाव हो गया है। कुल मिलाकर देश की विशाल प्रतिभा कुंठित हो गई है। यही वजह है कि मडल आंदोलन के दौरान समाज कितना बॅट गया था। जो लोग तर्क से सहमत भी थे, लेकिन अपने संस्कारो से मजबूर थे, उनमें सदियों से छिपे सवर्ण-सस्कार मडल का विरोध करने के लिए उन्हें मजबूर करते थे।

अब भ्रष्टाचार को ही ले लीजिए, चाहे वह चुनावी हो या अन्य किस्म का, ऊँची जाति के लोग ही इसमे ज्यादा लिप्त पाए जाते हैं। इसकी वजह यह है कि वे बुनियादी रूप से परजीवी हैं और अपनी परजीवी व्यवस्था को येन-केन-प्रकारेण बनाए रखने के लिए जाति-व्यवस्था जीवित रखते हैं। ऐसी स्थिति में विकास का सारा रास्ता अवरुद्ध हो गया है। अत. नए भारत का निर्माण करना है तो उसकी एक ही शर्त है कि समाज के 90 फीसदी लोगों को उनकी मानसिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक विकलांगता से मुक्ति दिलाई जाए।

***जोशी** : एंटी-आइडियोलोजी का युग है। स्वनिर्माण की आपाधापी मची हुई है। ऐसे माहौल में जाति-व्यवस्था के खिलाफ कैसे जग चलाई जा सकती है?*

**शरद यादव** : निश्चित ही वैचारिक समझ की आवश्यकता है। लेकिन यह लड़ाई दो दिन की नहीं है। हजारों साल की व्यवस्था के खिलाफ लडाई है, कोई मामूली बात नहीं हैं। मैं तो यह मानता हूँ कि पहले की तुलना में आज वैचारिक संघर्ष बढ

गया है। इसके अलावा कोई विकल्प नहीं है। इसलिए सामाजिक न्याय और नई आर्थिक नीति के खिलाफ लडाई साथ-साथ चलनी चाहिए। दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं। जनता भी आपके साथ तभी आएगी जब आप ईमानदारी के साथ ये दोनों लडाइयाँ लडेंगे। मंडल-चेतना के विकास के बाद लोगो को अब छला नहीं जा सकता।

**जोशी** : *क्या सामाजिक नीति के सवाल पर आपके और वामपथी पार्टियो के बीच वैचारिक समरसता है?*

**शरद यादव** : भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी तो पूरी तरह से हमारे साथ है। इसके नेता इंद्रजीत गुप्त जनता दल की सामाजिक नीति का पूरा समर्थन करते हैं, लेकिन मार्क्सवादी कन्फ्यूज्ड हैं। वह पार्टी दुविधा में पडी हुई है कि सामाजिक नीति का समर्थन करना चाहिए या नहीं, जबकि जनता दल नई आर्थिक नीति के सवाल पर दुविधा मे नहीं है। पश्चिम बगाल सरकार ने आज तक पिछडो का कोई आयोग नहीं बनाया है।

**जोशी** . *शायद मार्क्सवादी पार्टी वर्ग-दर्शन से आगे नहीं देखना चाहती?*

**शरद यादव** : यह एक वजह है। ये वर्ग को ही सब कुछ समझते है, वर्ण को नहीं, जबकि भारत की परिस्थितियो मे वर्ण महत्वपूर्ण है। मेरी नजर मे महात्मा गाँधी, डॉ लोहिया, डा अम्बेडकर जैसे लोगो के विचार अधिक प्रासगिक है।

**जोशी** : *जबलपुर से नई दिल्ली का सफर कैसा रहा?*

**शरद यादव** . देखिए, मैने पीछे मुडकर कभी नहीं देखा। मै पिछले 20 साल से इस वैचारिक लडाई मे पूरी प्रतिबद्धता के साथ हूँ। इस सफर मे मैंने कभी नफा-नुकसान नहीं सोचा। यह नही सोचा कि मै चुनाव जीतूँगा या हारूँगा। बस, जबलपुर से यहॉ तक चलता ही आ रहा हूँ। सबसे पहले 1978 मे मै लोकसभा मे उपचुनाव लडकर पहुँचा था। आज 1993 है। 1973 मे युवा आदोलन शुरू किया था। बीस वर्ष पहले शुरू की गई लडाई को और धारदार ही बनाया है। मैं यह मानता हूँ कि यह देश इतनी पेचीदगियो, विसगतियो से भरा हुआ है, इसलिए हमारी लडाई भी उतनी ही पेचीदा व लबी है।

**जोशी** . *क्या वजह है कि आज पहले जैसे युवा आदोलन नही हो रहे है?*

**शरद यादव** · यह सच है। पहले मध्य वर्ग का युवक आदोलन मे काफी सक्रिय था। कॉलेजो, विश्वविद्यालयो मे आदोलन हुआ करते थे। देश मे युवा आदोलनों का ज्वार था। आज इसमे कमी आई है। लेकिन इसके विपरीत ग्रामीण क्षेत्रों के दलित व पिछड़े वर्गों के युवको का आंदोलन शुरू हुआ है। पहले मेरे पास खाते-पीते घर

के लोग, शहरी युवक आया करते थे, आज गरीब युवक आ रहे हैं; 'अल्पसंख्यक युवक आ रहे है। एक बात और जान ले। पहले मध्यम वर्ग का आदोलन जनता को प्रेरित किया करता था, लेकिन आज नही। इसकी वजह स्पष्ट है कि मध्यम वर्ग ने मडल आंदोलन का विरोध किया है। आज जन-आदोलन है, लेकिन मध्यम वर्ग गायब है।

***जोशी*** *. यानी देश मे सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक बदलाव के लिए 'डी-क्लास्ड' के साथ-साथ 'डी-कास्ट' होने की भी आवश्यकता है?*

**शरद यादव** . बेशक बगैर 'डी-कास्ट' हुए देश मे क्राति सभव नहीं है। जाति-व्यवस्था के रहते हुए दलित-वचितो का आदोलन सफल नहीं हो सकता; उसमे कई दोष पैदा हो जाएँगे। अत सास्कृतिक क्राति की आवश्यकता है। मेरा अतिम लक्ष्य मडल नही है। मै अतिम साँस तक जाति- व्यवस्था के खात्मे के लिए लडना चाहता हूँ।

**26 सितम्बर, 1993**

# मोहम्मदपंथी हिंदू और ईसापंथी हिंदू

**भारतीय** जनता पार्टी के अध्यक्ष डॉ मुरली मनोहर जोशी की 11 दिसबर से कन्याकुमारी से कश्मीर तक की एकता-यात्रा आरभ होने जा रही है। करीब सवा वर्ष पश्चात भाजपा का यह दूसरा यात्रा-अभियान होगा। पिछले वर्ष पूर्व-अध्यक्ष लालकृष्ण अडवाणी की सोमनाथ से अयोध्या तक की रथयात्रा के बाद डॉ जोशी की एकता-यात्रा को भाजपा की दिल्ली पर आधिपत्य की रणनीति की एक अत्यत महत्वपूर्ण कड़ी के रूप मे देखा जा रहा है। सभव है केसरिया-अनुयायियो के लिए यह यात्रा एक निर्णायक कदम सिद्ध हो। श्री कोडिपाकम् नीलमेघा गोविदाचार्य से पार्टी का यात्रा-दर्शन समझने के बहाने एक सवाद स्थापित किया गया। वे पार्टी के महासचिव तो है पर औसत कद के नही है। विचारो का एक खुला फलक उनके पास है, जहॉ वे अतीत की गौरवशाली विरासत से अभिभूत है वहीं वर्तमान के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने के पक्षधर भी है। वे आधुनिक अतर्विरोधो से नावाकिफ नही है।

***जोशी*** *क्या आप ऐसा नही समझते है कि धर्मनिरपेक्षता एव तुष्टीकरण के नाम पर अल्पसख्यक वर्ग के बहुत ही सूक्ष्म हिस्से को आर्थिक-राजनीतिक लाभ पहुँचाने की कोशिश की गई है ? पुराने राव उमराव, नवाब, ताल्लुकेदार इलाकेदार जैसे लोगो को ही ऊपर उठाए रखा गया है, लेकिन आम मुसलमान एव ईसाई की ओर ध्यान नहीं दिया गया और उन्हे कट्टरपथियो के रहमो-करम पर छोड दिया गया है ? नेहरूकाल से यह सिलसिला चलता आ रहा है।*

**गोविदाचार्य** आपका कहना बिल्कुल ठीक है, क्योकि सत्ताधारियो की नीयत मे खोट है। इसका नतीजा यह निकला कि आम मुसलमान की जिदगी और दूभर हो

गई। वे अत्याचार, अन्याय, शोषण, बेरोजगारी और गरीबी के शिकार होते चले गए। इसलिए हमारा आरोप ही यह है कि राजनीतिक दलो ने अल्पसंख्यक समुदाय के लोगो को मनुष्य कम माना वोट अधिक माना है। इस नीति के तहत अल्पसख्यको मे ऐसे गलत लोगो को ही बढावा दिया गया है जिनका उनके समाज के आम लोगो के साथ कोई सवेदनशील रिश्ता नही है। वे तो सिर्फ पद पैसे और प्रतिष्ठा के भूखे है। इसलिए हम चाहते हैं कि वे और हम -सब मिलकर एक रहे एक सोचे सबकी साझी विरासत है। अलबत्ता उपासना पद्धति सबकी अलग-अलग रहे। इस सदर्भ मे हम कहते हैं कि यदि वे मुसलमान है तो रहे। ठीक है हमारे लिए वे 'मोहम्मदपथी हिन्दू' है ईसाई 'ईसापथी हिन्दू' है।

*जोशी पिछले बारह महीनो मे काफी कुछ बदला है। दो-दो सरकारो का पतन हुआ। ससद भग हुई। एक अल्प-मध्यावधि चुनाव हुआ। दो वर्षों के भीतर तीसरी सरकार कायम हुई है। इस परिवर्तित परिप्रेक्ष्य मे डॉ मुरली मनोहर जोशी की कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक की एकता-यात्रा की प्रासंगिकता क्या है?*

**गोविंदाचार्य** कन्याकुमारी स कश्मीर तक की एकता-यात्रा एक हद तक राजनीतिक हलचल पैदा करेगी मगर इससे भी कही ज्यादा कुछ राजनीतिक मुद्दो को उभारने मे सफल होगी धारा 370 कश्मीर का भारत के साथ भावनात्मक एकीकरण, बढता-उभरता आतकवाद जैसे ज्वलत प्रश्नो से जूझने के लिए भारतीय जन मे एक सामूहिक व सगठित इच्छा पैदा करने का सदेश फैलाना इस यात्रा का मूलभूत उद्देश्य है। लेकिन इससे भी कही अधिक महत्वपूर्ण यह है कि इस यात्रा के माध्यम से राष्ट्रीयता एव एकता के दर्शन का साक्षात्कार कराना है। हमारी एक-जन एक-सस्कृति है, इसकी अनुभूति कराना भी एकता-यात्रा मे निहित है।

हमारा देश राज्य के कारण एक रहा हो ऐसा नही है। यह राष्ट्र एक भू-सास्कृतिक इकाई है। इस देश को एक रखा है सस्कृति ने। सस्कारो ने मानस गढा है। एक ही प्रकार का स्पदन कन्याकुमारी से कश्मीर तक है। इस स्पदन के अतर्गत समय-समय पर विभिन्न विषयो के सबध मे समान जन-प्रतिक्रियाएँ होती आई है। यह एका हुआ कैसे? साधु-महात्माओ के द्वारा परित्याग एव एकरस की सस्कृति अविरल रूप से बहती आई है। त्यागमूलक सस्कृति ने भारतीय सस्कारो का निर्माण किया है। राज्य और शासन द्वारा प्रचारित शिक्षा राज्याश्रित व्यवस्था जैसी चीजे नही रहीं लेकिन एकरूपता व एकरसता की गगा-कावेरी कन्याकुमारी से कश्मीर तक बहती रही है और इसी सस्कृति मे यात्राओ एव उपयात्राओ का महत्व है। कॉवर-यात्राएँ, चारो धाम की यात्राएं निरतर देश मे होती रही है। सामान्यजन इन यात्राओ से परस्पर मिलता रहा है। इस अतर-क्रिया से देश मे एक समान सस्कृति का निर्माण हुआ है। साहित्य मे भी एक ही जीवनमूल्य-दृष्टि पैदा हुई है।

कला, त्योहार, पर्व आदि में यही सस्कृति गुंजित होती है। इन सबमें जीवन के उदात्तीकरण के संस्कार जीवित है। इन सबसे बनी है सास्कृतिक एकता। और इसी सास्कृतिक एकता को प्रतिध्वनित करना एकता-यात्रा का उद्देश्य है।

**जोशी** . *पिछले वर्ष अडवाणीजी की सोमनाथ-अयोध्या रथयात्रा के अवसर पर भी राष्ट्रीय एकता के प्रचार-प्रसार की बात कही गई थी। आज भी वही बात कही जा रही है। दोनो यात्राओ मे क्या गुणात्मक अतर है?*

**गोविंदाचार्य** . वैसे विचारधारा की दृष्टि मे दोनो यात्राएँ एक है, लेकिन दोनो मे अलग-अलग सूत्र है। इस देश के प्राण, देश की अस्मिता, देश की पहचान की प्रतीक थी रथयात्रा। लेकिन दूसरी यात्रा का उद्देश्य इस भूमि के साथ तादात्म्य स्थापित करना है। भूमि और जन और वो जन जो इस भूमि को माँ के समान अनुभूत करता है, उसके महत्व को स्थापित करना है। भूमि, जन, सस्कृति और एकता के भावो को अलग-अलग ढग से पुष्ट करने के लिए यात्राएँ की जा रही है। रथयात्रा के उद्देश्य को एक कदम और आगे बढाने के लिए ही एकता-यात्रा की जा रही है।

**जोशी** *एक दृष्टिकोण और है। राम जन्मभूमि मदिर निर्माण की क्षमता सीमित है। यह एक सीमा से अधिक भाजपा के राजनीतिक उद्देश्यो की पूर्ति नही कर सकती। लेकिन कश्मीर का मुद्दा ज्यादा व्यापक गैर-साप्रदायिक और प्रभावशाली है। क्या यह सच नही है कि अध्यक्ष डॉ जोशी की एकता-यात्रा भाजपा की रणनीति का ही एक महत्वपूर्ण हिस्सा है?*

**गोविदाचार्य** भारतीय जनता पार्टी अपनी गतिविधियो को चुनावी गणित के पैमाने से सयोजित नही करती है। भाजपा राजनीति मे रमनेवाला एक राजनीतिक घटक नही है। यह सामाजिक-राजनीतिक जीवन मे बदलाव का एक प्रक्षेपण है। इसलिए ये यात्राएँ भाजपा का चुनावी उपकरण नही है बल्कि इनका सबध बुनियादी मुद्दो से है। हम सगठन, कार्यपद्धति और विचारधारा के स्तर पर औरो से भिन्न हैं।

जहाँ तक अयोध्या मे मदिर-निर्माण का प्रश्न है केवल सकीर्ण राजनीतिक दायरे मे इसे सोचा जा रहा है। राजनीतिक दलो ने इसे अल्पसख्यक वोट बैंक के ही दायरे मे सोचा है। लेकिन इन दलो की इसे सीमित दायरे मे घसीटने की कोशिश असफल रही है। राम, राष्ट्रीय पहचान, राष्ट्रीय अस्मिता का विषय था। भाजपा ने राम को एक व्यापक क्षितिज पर देखा है। राष्ट्रीय अस्मिता एव पहचान के सदर्भ मे राम को भाजपा ने राजनीतिक दृष्टि से उभारा था, वोट की राजनीति के तहत नहीं। जिन लोगो ने राम को साप्रदायिकता की दृष्टि से देखा है, वे धारा-370 या कश्मीर के सवाल को भी इसी दृष्टि से देखते है। इनकी दृष्टि देश की एकता, अखडता तथा अन्य बुनियादी विशेषताओ की ओर जाती ही नहीं है। ये लोग पीलिया के

**मरीज के समान है जिसे हर वस्तु पीलियाग्रस्त दिखाई देती है। यदि बुनियादी बदलाव के लिए उभारे गए भाजपा के प्रेरणास्पद मुद्दो को भी वे इसी दृष्टि से देखते है तो मुझे कोई आश्चर्य नही है।**

***जोशी*** *. क्या आप इससे इकार कर सकते है कि एकता-यात्रा और कश्मीर के प्रश्न से भाजपा को राजनीतिक लाभ मिलेगा?*

**गोविदाचार्य** देखिए इस राष्ट्र की आत्मा से जुडे प्रश्नो को जो भी उठाएगा, उसका आधार निश्चित ही विस्तृत एव मजबूत होगा। उसकी ग्राह्यता समाज मे बढेगी। भाजपा राष्ट्रवाद का प्रतीक है। इस देश के राष्ट्रवाद का राजनीतिक क्षेत्र मे यह अभिव्यक्तीकरण है। राष्ट्रवाद से जुडे प्रश्नो को उठाते हुए भारतीय जन के बीच पार्टी बढे मजबूत हो और उसकी ग्राह्यता बढे-- यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।

***जोशी*** *क्या चुनाव के दौरान इसका प्रत्यक्ष एव परोक्ष लाभ पार्टी को नहीं मिलेगा?*

**गोविदाचार्य** आप ठीक कहते है। बाकी की पार्टियॉ विकृत सैक्यूलरवाद की नीति अपनाती है। इसे दखते हुए भारतीयजन का झुकाव भाजपा की ओर हो और वोटो मे भी बढोतरी हो, यह स्वाभाविक परिणाम भाजपा के लिए प्राप्त तो होगा। लेकिन, मै फिर यह चाहूँगा कि अन्य दल अपनी सोच मे तब्दीली लाऍ। यह उनके राजनीतिक हित मे भी होगा कि वोट की निहित स्वार्थी दृष्टि से ऊपर उठे कुछ बुनियादी मुद्दो पर एक होकर काम करे।

***जोशी*** *गैर-भाजपाई पार्टियॉ आप पर साप्रदायिकता का आरोप लगाती है, और आप उन पर तुष्टीकरण का आरोप लगा रहे है। इस आरोप-प्रत्यारोप से स्थिति और पेचीदा होती जा रही है। समस्या का हल नहीं निकल रहा है।*

**गोविदाचार्य** इस पहलू पर निश्चित रूप से गहराई से बहस छिडना उपयोगी है और आवश्यक भी है। धर्मनिरपेक्षता की पुनर्समीक्षा की जानी चाहिए। वस्तुत राष्ट्र की सकल्पना के बारे मे बहस निहायत जरूरी है। बिना इसके सही स्वरूप को समझे, देश के विकास की दिशा और पैमाने का निर्धारण होना कठिन है। हुआ यही है कि हमने पश्चिमी सोच और पश्चिमी मानक, भारत जैसे पुरातन देश पर लागू करने की कोशिश की है। यह एक भूल है। अॅगरेजी गुलामी की मानसिकता की शिकार मेधा ने इस प्राचीन राष्ट्र, प्राचीन समाज की विकसित व्यवस्थाओ को नकारने की कोशिश की है और पश्चिमी मूल्य और मानक इस देश के जन पर थोपने की कोशिश की है। इसी वजह से कई भ्रातियॉ पैदा हुई है।

उदाहरण के लिए, एक राष्ट्र है, एक जन है एक सस्कृति है। इसके विषय मे तो

कई लोगों ने यह दृष्टि अपनाई कि भारत एक बहु-उपराष्ट्रीय महाद्वीप है। यह एक राष्ट्र नही है। वामपंथी पार्टियो मे से तो किसी ने सत्रह संविधान सभाएँ बनाने की वकालत की थी। उनका तर्क था कि यहाँ सत्रह राष्ट्रीयताएं है। कुछ का कहना था कि यह नया बनता हुआ राष्ट्र है। कुछ का कहना था यह राष्ट्र 15 अगस्त 47 को पैदा हुआ है। लेकिन हमारी सोच एक-राष्ट्र, एक-जन और एक-सस्कृति की है। भारत, एक प्राचीन राष्ट्र है। इस राष्ट्र के राष्ट्रीयत्व का आधार, यदि उसे कोई सज्ञा देनी हो, तो वह है हिंदुत्व। फिर मुझे क्षमा करेगे– हिंदुत्व का अर्थ 'हिंदूइज्म' नही है, हिंदुत्व का असली अनुवाद है 'हिंदूनैस'।

एक दिक्कत और आती है–सप्रदाय। सप्रदाय का राष्ट्र के विकास मे अतर्विरोध क्यो होना चाहिए? सस्कृति देश को अगर जोडती है-- विरासत सबकी एक है, पूर्वज सबके एक है, यह राष्ट्र पुराना है– तो संप्रदाय कोई भी हो, हम किसी की भी पूजा करे, इबादत करे, हिंदुत्व की पहली शर्त यही है कि हम पूजा-पद्धति को क्यो ज्यादा तरजीह दे? सिवाय इसके कि वह 'मैन एड मेकर' यानी मनुष्य और विधाता के बीच संबध स्थापित करने की कडी है।

***जोशी*** . *आप स्वीकार करे या न करे, हिंदुत्व शब्द बहुसख्यक समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी सचाई यह है कि मुस्लिम, ईसाई सिख जैसे अल्पसख्यक समुदायो की एक धार्मिक, सास्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक अस्मिता बन चुकी है। ये समुदाय अपनी अस्मिता को भुलाकर हिन्दुत्व को स्वीकार कर लें, ऐसी अपेक्षा रखना क्या व्यावहारिक होगा? हिन्दुत्व का जो अर्थ प्रचलित हो चुका है, क्या उसे झुठलाया जा सकता है?*

**गोविंदाचार्य** : अपनी अस्मिता को भुलाने की आवश्यकता नही है। पर मैं यह समझता हूँ कि मुसलमान हो या ईसाई हो, उनकी इतिहास-दृष्टि को दो सौ-चार सौ साल तक नहीं, बल्कि उससे भी पीछे हजारो साल तक ले जाने की जरूरत है। चूँकि राजनीतिक दलो ने राष्ट्रीय नीति नही अपनाई है, इसलिए मुसलमान समुदाय कटा-कटा-सा रह गया है। आज पाकिस्तान मे पाणिनि को अपना पूर्वज मानने से इंकार नहीं किया जाता। वे तो इस्लामावलंबी नहीं थे। मुस्लिम देश इंडोनेशिया ने भी प्राचीन संस्कृति के साथ साझा रिश्ता बना रखा है। इस देश में भी औरंगजेब के बाद 1890 तक हिन्दू-मुस्लिम दगे तो नही हुए। 1857 की लडाई तो हिन्दू-मुसलमान ने मिलकर ही लडी थी। उस समय तो मजहब आडे नहीं आया था। आम मुसलमान और आम ईसाई में अपने पूर्वजों के साथ जुडने में कोई परहेज नहीं है। यह तो सब सियासतदानों का खेल है।

***जोशी*** : *आपने अभी साझी विरासत की बात कही थी। क्या आप अमीर खुसरो,*

*रहीम, कबीर, जायसी आदि को साझी विरासत के हिस्से मानते हैं? यह भी एक ऐतिहासिक सच्चाई है कि पिछले एक हजार साल में भारत में एक विशिष्ट प्रकार की साझी विरासत एवं साझी संस्कृति का निर्माण हुआ है। क्या इसे झुठलाया जा सकता है?*

**गोविंदाचार्य** : आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। अब्दुर्रहीम खानखाना, अमीर खुसरो, कबीर, जायसी आदि को सूर, मीरा, तुलसी, बिहारी, केशव के समान मन में धारण क्यों नहीं किया जा सकता? वे भी इस देश के महापुरुषों की श्रेणी में हैं। अब्दुल हमीद भी हैं। इसीलिए मै फिर से यह कहता हूँ कि इस देश का आम जन चाहे किसी भी संप्रदाय का हो, उसे सांप्रदायिक कठमुल्लों के शिकजे से मुक्त कराया जाए, सामान्य जन का 'इन्टरेक्शन' बढता चले, उसी से इस देश की राष्ट्रीयता पुष्ट होगी। इस देश के जन में इतने बडे हिस्से (अल्पसंख्यक) को न काटकर अलग रखा जाना चाहिए, न ही उसे नेस्तनाबूद करने की मंशा को सहन करना चाहिए। न यह उचित है, न ही संभव है।

***जोशी** : आप साझी विरासत की बात तो करते हैं, पर क्या व्यवहार में इसका पालन किया जाता है ? 1857 की लडाई में हिंदुओं और मुसलमानों ने समान शिरकत की थी। यह शानदार परंपरा आगे भी चली। बिस्मिल के साथ अशफाक भी शहीद हुए। लेकिन आर एस एस, भाजपा, विश्व हिंदू परिषद् के कार्यालयो में सिर्फ हिंदू वीरों—महाराणा प्रताप, शिवाजी आदि के ही चित्र हैं, किसी मुस्लिम का चित्र दिखाई नहीं देता है। ऐसा क्यो?*

**गोविंदाचार्य** : संघ के कार्यालयों में हजारो साल के पर्व और विरासत को महत्व दिया गया है। इस द ष्टि से महज एक हजार साल के इटरेक्शन का काल बहुत कम है। मगर इस छोटे कालखड के बावजूद मैं यह मानता हूँ कि जहाँ रामप्रसाद बिस्मिल का नाम आएगा, वहाँ अशफाक उल्ला खाँ का नाम भी अवश्य लिया जाएगा।

***जोशी** : पर सघ के कार्यालय में मुस्लिम शहीदों के चित्र नही दिखाई देते हैं। चाहे मानें या न मानें, यह एक सच्चाई है।*

**गोविंदाचार्य** : जिन परिस्थितियों में सघ बना, सब जानते हैं। उस समय किस तुष्टीकरण की नीति थी? किस तरह की आवश्यकताएँ थीं? सघ ने किस प ष्ठभूमि में अपना काम शुरू किया, इसे समझना जरूरी है। हम ऐसा मानते हैं कि तथाकथित हिन्दू समुदाय के 85 प्रतिशत लोगों को ही परिशुद्ध करना होगा। इस समुदाय के दकियानूसीपन, अवैज्ञानिकता, अंधविश्वास, छुआछूत, जातिवाद आदि को दूर करना होगा। यह पहली शर्त होगी दूसरो को समाहित करने की। पर मैं यह जरूर कहना चाहूँगा कि संघ का स्वयंसेवक हिन्दू-मुसलमान का भेदभाव नहीं

पालता है। मोरवी बॉध के बहने से किसी पडित का घर उजडा हो या मौलवी का, स्वयंसेवक ने दोनो की सहायता की है। भूकप मे किसी भी सप्रदाय के व्यक्ति का घर टूटा हो, संघ ने सभी को समान रूप से सहयोग दिया है। लेकिन मैं यह मानता हूँ कि राजनीतिक परिस्थितियो ने दूरियॉ जरूर पैदा की हैं, कुत्सित प्रचार हुआ है, वातावरण बिगडा है। इससे आज हिन्दू समाज मे दूरी बढी है। इसी दूरी को कुछ लोग 'बैकलैश' कहते है। पर हम हिन्दू-बैकलैश के प्रति भी सजग है।

***जोशी** . पिछले दो-तीन दशको मे जिस तरह के सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक दबाव पैदा हुए है, क्या उनका प्रभाव सघ और भाजपा पर नहीं पडा है?*

**गोविंदाचार्य** . सामाजिक-आर्थिक दबाव से तो निश्चित ही कोई अछूता नहीं रह सकता।

***जोशी** : मेरे कहने का आशय यह था कि सघ एव भाजपा की रणनीति मे बदलाव आया है। दो दशक पहले तक तत्कालीन जनसघ मे डॉ अम्बेडकर हाशिए मे थे। आज वे यानी उनसे जुडे वर्ग भाजपा के केद्र-बिदुओ मे दिखाई दे रहे है। कार्यालयो मे डॉ अम्बेडकर के चित्र भी लगाए गए है।*

**गोविंदाचार्य** देखिए, सघ के प्रात स्मरण मे भीमराव अम्बेडकर का नाम तब भी था, अब भी है। पर जैसे-जैसे सघ की गतिविधियां बढती गई है त्यो-त्यो उनका आयाम भी बढा है। बदलते सदर्भ मे डॉ अम्बेडकर और अधिक समीचीन हुए है, वे अधिक उभरे है, इसीलिए शायद आप ऐसा अनुभव कर रहे हो। वैसे सामाजिक समरसता मच, विद्यार्थी परिषद् जैसे सगठनो के कार्यक्रमो मे डॉ अम्बेडकर को वांछित महत्व दिया जाता रहा है।

***जोशी** . आपने शुरू मे बुनियादी परिवर्तन की बात उठाई थी। बुनियादी परिवर्तन का सरोकार सामाजिक-आर्थिक जडता से है। बुनियादी परिवर्तन तभी मुमकिन है जब पूँजी और उत्पादन के साधनो का न्यायपूर्ण वितरण हो। क्या दोनो यात्राओ से ऐसा बदलाव या परिवर्तन सभव है?*

**गोविदाचार्य** आपकी स्थापना मे मै पूरी तरह सहमत हूँ। हमारे विचार मे भी वही बाते है, जिनसे सर्वागीण विकास हो। भारत के आर्थिक विकास के बारे मे विख्यात अर्थशास्त्री गुन्नार मिर्डल ने कहा था कि भारत के आर्थिक विकास की पहली शर्त यह है कि यहॉ का आम आदमी अमीर बनने के बजाय एक अच्छा इसान बनने की कोशिश करे। यह बात कोई नैतिक नेत त्व नही बोल रहा था, एक अर्थशास्त्री कह रहा था। हम भी सोचते है कि देश को अतीत से प्रेरणा लेनी चाहिए उस पर गर्व करना चाहिए, पर वर्तमान के प्रति वैज्ञानिक द ष्टि भी अपनानी चाहिए, उसका वैज्ञानिक विश्लेषण भी करना चाहिए। हमारी यही प्रक्रिया होगी। दुर्भाग्य से अँगरेजो ने हमारे अतीत की उपलब्धियो के प्रति हमारे आत्मविश्वास को ही डिगा

दिया। बस हमे ऐसा लगा कि जो कुछ पश्चिमी है, उसके प्रति शरणागत हो जाया जाए। हमने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सरचना पश्चिम से आयातित की है। चाहे-अनचाहे मे, उसी का कुफल हम आज भुगत रहे हैं। इसलिए मैंने बुनियादी बदलाव की बात की। इग्लैड से आयातित वेस्टमिस्टर शासन-ढॉचे की बजाय स्वदेशी विकेद्रीकरण और जनसहभाग आवश्यक है भारत के विकास के लिए।

अब देखिए विसगति कहॉ है। इगलैड मे ८9 प्रतिशत आबादी शहरी है। इसलिए यातायात के सहज सुलभ साधन है। स्कूल कॉलेज की पर्याप्त व्यवस्था है। शिक्षक समय से आते है चले जाते है। न्याय- व्यवस्था के सबध मे भी यही बात है। वारदात कही होगी, अदालत कही बैठेगी, वकील कही रहेगे, लेकिन वक्त पर आएँगे और चले जाएँगे। साम्राज्यवादी एव उपनिवेशवादी रणनीति के अनुरूप बडे पैमाने पर उत्पादन प्रक्रिया चलाई गई और इसी तरह के ढॉचे को हम पर थोप दिया गया। ॲगरेजो के कई कानून आज भी जारी है। इसीलिए 'देसी मुर्गी' विलायती बोलकर यहॉ स्थापित हो गई। स्वदेशी शासन-दृष्टि को भुला दिया गया। हमारे यहॉ पचायती राज था, उसे बिसरा दिया गया। अब इन सबमे बदलाव लाना है। इसलिए यह मानना चाहिए कि हमारे पुरखो की कुछ उपलब्धियॉ थी हमारा अतीत गौरवशाली था। इस सदर्भ मे राम का महत्व है। विश्व का सिरमौर बनना तभी सभव है जब हम राम जैसे राष्ट्रनायको पर गर्व करे, इसके साथ ही स्वदेशी को युगानुकूल और विदेशी को स्वदेशी के अनुकूल बनाकर ग्रहण करे। इसे ही हम पुनर्निर्माण की सज्ञा देते है।

***जोशी*** *आपने अभी वर्तमान के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की बात कही है। लेकिन भाजपा की रणनीति मे कई अतर्विरोध दिखाई देते है। मिसाल के तौर पर, एक तरफ प्रौद्योगिकी एव उपभोक्ता सस्कृति का विस्फोट हुआ है, विश्व मे एकल ध्रुवीय शक्ति-तत्र अस्तित्व मे आया है, सी एन एन जैसी विदेशी कपनियो के माध्यम से पश्चिमी-अमेरिकी सस्कृति घर-घर मे पहुंच चुकी है और गरीब देशो पर कर्जभार बढा है दूसरी तरफ आप रथयात्राएँ निकाल रहे है? क्या मध्ययुगीन दृष्टि से नई चुनौतियो का सामना किया जा सकता है?*

**गोविदाचार्य** . वास्तविकता और यथार्थ के आपके चित्रण से मै सहमत हूँ, वस्तुस्थिति से अनभिज्ञ भी नही हूँ। अतीत से प्रेरणा लेने का अर्थ अतीत मे जीने से नहीं लिया जाना चाहिए। लेकिन वर्तमान मे इति मान लेना भी पुरुषार्थ के लिए उचित नहीं है। मेरा यह अर्थ कतई नहीं है कि पश्चिम मे सब कुछ नकारात्मक है। पश्चिम के साथ इटरेक्शन से कुछ सकारात्मक बाते भी आई हैं, यातायात, सूचना-सचार आदि की उपलब्धि हुई है। लेकिन नशीले पदार्थो का सेवन, डांस, डिस्को, ड्रिक्स आदि अनुकरणीय है क्या? उपभोक्तावाद, विकृतियॉ, यौनाचार,

एकाकीपन, विलगाव आदि भी हमे पश्चिम से मिले हैं। क्या इन्हे अपनाया जाना चाहिए? यह सच है कि इनमे से कई बातो से हम बच नही सकते, लेकिन इन्हे कम करने के लिए विचार जरूर करना पडेगा। यदि हममे आत्मविश्वास है तो हम पश्चिम मे भी हवा के रुख को पलट सकते है। इसलिए हम चाहते है कि स्वदेशी ढग से उत्पादन हो न्यायपूर्ण वितरण हो और उपभोग सयमित हो। इस त्रिसूत्री का विचार सभी के लिए उपयोगी होगा। हम पश्चिम के लिए सस्ता श्रम कच्ची वस्तुएँ और बाजार ही नही है कुछ और भी हैं– यह सदेश उन्हे देना होगा। हम अपने को कम न आँके।

आप जो कह रहे है यूनी पोलर वर्ल्ड–एक ध्रुवीय विश्व का खतरा बढा है ठीक कह रहे हैं। इससे अगर निपटना है तो भारत जापान जर्मनी और आसपास के देशो को एक ध्रुव के नाते खडा होना होगा। हमारे पास इसके ठोस आधार भी है। इस देश की जनसख्या को बोझ न माने। हमारे लिए यह एक निधि भी है। इस सदर्भ मे ही हमने रणनीति तैयार की है। इसमे टैक्नालॉजी की बात भी शामिल है। मै आपको बतला दूँ हम बैलगाडी के युग की टैक्नालॉजी मे नही जाना चाहते कतई नहीं जाना चाहते है। हम लोगो की आधुनिक ललक को स्वीकार करते है। लेकिन इसके प्रति विवेकशील भी होना पडेगा। इसलिए हमे आर्थिक लक्ष्य अपने ढग से निर्धारित करने पडेगे पश्चिमी मानको को सामने रखकर नही। विदेशी कर्ज अर्थव्यवस्था का सार्वभौमीकरण द्वार खोलना जैसे शब्दो के छलावे मे फॅसने से बचना चाहिए। हमने उनके लिए विदेशी राष्ट्र यूरो-अमेरिकी शिविर के लिए अपने को पूरा-पूरा समर्पित कर दिया तो भी रास्ता नहीं है। याद रखिए कोई भी हमे हमारे बढावे के लिए उदारतापूर्वक कर्ज नही दिया करता। विश्व उतना सहृदय, मानवीय, सवेदनशील आज नही है। बिहार मे कहावत है–'कमजोर की लुगाई गॉव की भौजाई'। आज वही कहावत यहाँ चरितार्थ होती है। इसलिए हमे अपने पैर पर ही खडा होना पडेगा। इसमे भारतीय मेधा भारतीय जन सक्षम हैं, केवल उनको उद्दीप्त करने की आवश्यकता है। इन सब सदर्भों मे राम का विषय हो या एकता-यात्रा का हम इसकी गहराई देख सकते है।

***जोशी*** *क्या आप इससे सहमत है कि आज धार्मिक के स्थान पर आर्थिक राष्ट्रवाद के पुनरुत्थान की आवश्यकता है?*

**गोविदाचार्य** राष्ट्रवाद को एक खाँचे मे बद नहीं किया जा सकता। राष्ट्रवाद एक समग्र भावना है, जो जीवन के अलग-अलग क्षेत्रो मे प्रतिबिम्बित होती है। आर्थिक क्षेत्र मे भी वही बात है। इसीलिए आर्थिक क्षेत्र मे भी राष्ट्रवादी सोच को सबल करना होगा। जैसे कोरिया का उदाहरण ले, वहाँ के जन ने आत्मनिर्भर होकर विकास किया। इसीलिए दूरगामी दृष्टि को सामने रखकर आर्थिक रणनीति तैयार

करनी पडेगी। यदि लगातार कर्ज लेते रहे, तो हम उसमे फॅसते चले जाएँगे। चार्वाक की सोच है कि जब तक जियो, उधार लेकर भी घृत पियो, जब तक जियो, सुखी जियो। यह तात्कालिकता की सोच हमारे लिए आत्मघाती सिद्ध होगी।

**जोशी** *क्या राजनीतिक नेतृत्व से किसी प्रकार के गुणात्मक परिवर्तन की उम्मीद की जा सकती है? क्योकि जिस ढग का नेतृत्व हाल के वर्षो मे उभरा है, वह भी बेहद बौना है।*

**गोविदाचार्य** ईश्वर की कृपा से राजनीतिक दल इस देश के नियता नहीं बन सके है। देश की पचवर्षीय योजनाओ के दायरे के बाहर सत्तर फीसदी अर्थव्यवस्था जीवित है। यही कर्ज की अर्थनीति का बोझ सहन कर रही है और उसे टिकाए हुए है। और मुझे भरोसा है देश के युवा वर्ग पर। सामान्यतया युवा नि स्वार्थी है देशभक्त है राष्ट्रवादी है सवेदनशील है और सक्रिय है। पिछले दो दशको मे कम से कम ऐसे बारह-तेरह हजार दल सक्रिय हुए है जिनमे हजारो नौजवान अपने जीवन की चिन्ता किए बगैर कार्यरत हुए। ये युवा सामान्य जन के बीच अपनी जिदगी गुजारने के लिए दस साल बीस साल लगाए चले जा रहे है। किसी की प्रेरणा ईसा होगे किसी की प्रेरणा मार्क्स होगे किसी की प्रेरणा गॉधी होगे और शायद किसी की प्रेरणा डॉ हेडगेवार होगे। इसलिए जमीन से जुडे इन सोशल एक्शन दलो के योगदान को हम कम न ऑके। पिछले पॉच-दस साल की अवधि पर नजर डाले, तो देखेगे कि राजनीतिक दलो से बाहर कई तरह की कार्रवाइयॉ हुई है। उदाहरण के लिए बोफोर्स का मुद्दा गैर-राजनीतिक लोगो ने उठाया। विपक्ष की भूमिका अखबारो ने ही निभाई। इस तरह ससदीय राजनीति की सीमाएँ और उजागर हुई है। राष्ट्रीय स्तर की राजनीतिक पार्टियो को और ज्यादा काम करना चाहिए था, लेकिन नही कर सकी। इसलिए छोटे-छोटे एक्शन ग्रुप राजनीतिक परिधि से बाहर रहकर काम करना श्रेयस्कर मानने लगे है। इसलिए मुझे ज्यादा भरोसा इस देश के नौजवान युवक-युवतियो पर है। यदि राजनीतिक दल उनकी सारी भावनाओ एव अभिलाषाओ के साथ तालमेल बिठा सके तो ठीक है, वरना ये दल अप्रासगिक हो जाएँगे। फिर भी देश का बढना जारी रहेगा, पर ससदीय लोकतत्र के स्थान पर नए-नए प्रयोग सामने आएँगे। ससदीय व्यवस्था अतिम नहीं है। मनुष्य की प्रयोग-यात्रा निरतर चलती रहती है, एक बेहतर व्यवस्था की तलाश मे।

**8 दिसम्बर, 1991**

# भय, आतंक और धर्मान्धता के बीच सभी अपने धर्म को पालें

"मेरे भ्राता बनना है, मेरे वीर बनना है मरद बनना है तो डरो मत। खडे हो जाओ। वचन पूरा करो। मेरे साथ चलो। अगर मै लुच्चा-लफगा हूँ तो मुझसे बात मत करो।

"वीर नही बनना, बीविया-औरते बनना है तो माग भर लो केश सजा लो, कघी करा लो चूडियाँ पहन लो। घर बैठो। मेरे पास मत आओ।

ये शब्द है मिली-जुली सिख धार्मिक व राजनीतिक उग्रवादिता एव आतकवादिता के केंद्रबिन्दु सत भिडरांवाले के। स्थान अमृतसर के स्वर्ण मदिर परिसर मे स्थित नानक निवास की तपती छत समय मई के पहले हफ्ते की दुपहरी।

सतजी की इस अक्खडी बातचीत का सिलसिला सिख-भक्तो के साथ चल रहा है। करीब दो सौ से अधिक सिख जमा है, सब-के सब किसान। कुछ औरते भी है। वस्त्रो एव बातचीत से लोग निम्न मध्यमवर्ग के और अनपढ लगते है। सतजी और भक्तो के चेहरो और जुबान दोनो पर खुरदुरापन, अटपटापन और बेखौफी। बातचीत करीब-करीब एकतरफा है। एक कनात के तले लगे तख्त पर भिडरावाले लेटे-लेटे सिख किसानो से बाते करते है। बाते सिखो के खिलाफ हो रहे अन्याय, सिख किसानो के शोषण, सिख धर्म के अपमान सिख कौम की अखडता आदि के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। भक्तगण कभी सत् श्रीअकाल कभी सतजी की जय, कभी खालसा की जय बोलते है कभी जोर से हँसते हैं और बीच-बीच मे सतजी के चरण स्पर्श करते रहते है। बातचीत के बीच-बीच मे किसान चवन्नी से लेकर दस रुपए तक सतजी के चरणो मे चढाते है। सतजी फटाक से चढावे को अपने कुर्ते की जेब

में ठूँस लेते हैं। कुछ भक्त अन्न की बोरियाँ भी चढाने की घोषणा करते हैं।

"देख ले, यही है मेरी गोला-बारूद।" सतजी इस प्रतिनिधि को सबोधित करते है, "सरकार कहती है कि मैने हथियार जमा कर रखे है, गोला-बारूद का जखीरा है। क्यो प्राहो, बोलो, तुमने मुझे क्या दिया–चवन्नी अठन्नी अनाज का दाणा?"

आह्रो जी! सत्श्री अकाल जो बोले सो निहाल। भक्तगण सतजी के सुर मे सुर मिलाते है।

भिडरॉवाले बोलते है, "नोट कर लो रिपोर्टर साब सत कितना आतकवादी है, कितना उग्रवादी है? उस दिल्लीवाली इदिरा बीबीजी को भी बतला देना।" फिर गे बातचीत का दौर शुरू होता है।

"सुनो सिखो! सब प्राहो बन जाओ। एक साथ मिल कर रहो। निरकारी और सरकार मे डरना नहीं। डट जाना। मर जाना। पीछे मत हटना। तुम्हारे गाढे पसीने की कमाई है। गॅवाना नही है। पानी (रावी-व्यास) छोडना नही है। पर तुमको शराब छोडनी है, नशा छोडना है। पक्का सिख बनकर दिखाओ तब इदिरा और दरबारा से टक्कर लोगे गुरु गोविदसिहजी के प्यारे बनोगे।"

इसी तरह की बातचीत आधे घण्टे तक चलती रही। सत कई बार एक बात को दोहराते है परतु सिख किसान बगैर किसी आपत्ति के उनकी बाते सुनते रहते है। आधा-पौन घटे के बाद कहते है 'हमारी बातचीत तो दिनभर ऐसे ही चलती रहेगी। यहाँ तो खुला दरबार है किसी से कोई छिपा नहीं है। अब तूझे जो सवाल पूछना है–पूछ ले। कल दिल्ली से कुलदीप नैयर भी आया था। वो भी मेरा चेला बनकर गया है। उसने अपने को आतकवादी माना है। अब वो मेरा पक्का चेला है।" सतजी जोरो से हॅसते है साथ मे उनके शिष्य भी। एक विजय की मुस्कान उनके चेहरो पर होती है। एक पत्रकार को तो फतह कर लिया दिल्ली को न सही!

भिडरॉवाले से करीब डेढ-दो घटे तक बेतरतीब ढग से बातचीत होती रही। सतजी के साथ कोई बातचीत सिलसिलेवार ढग से करना बहुत मुश्किल काम है। उनके तर्को मे कोई तारतम्यता नही होती। उनकी सबसे बडी शर्त रहती है उनकी ही बाते सुनी जाएँ, विरोध मे दलील न की जाए। तथ्य गलत-सलत हो तो भी चपचाप लिखते रहिए। अगर प्रतिवाद किया तो सतजी अपनी रट ही जारी रखेगे। यह सही है कि वे गुस्सा नहीं होगे, उखडेगे भी नही परन्तु हॅसते हुए सब टालते रहेगे। वे अपने एक ही वाक्य मे धार्मिक और राजनेता दोनो का रोल अदा करना चाहते है। शायद, यही विशिष्टता उनकी सफलता का सबसे बडा राज है। उनका यह रोल सिखो को बेहद प्यारा है। एक औसत सिख की दृष्टि मे भिडरॉवाले बहादुर अकाली नेताओ के लिए 'अडियल', कुछ के लिए 'चालाक व धूर्त' और कुछ के मूल्याकन मे 'कांग्रेसी दलाल' है।

कुल मिलाकर भिडरॉवाले को एक बहुरगी और विवादग्रस्त व्यक्तित्व माना जाता है। कहा जाता है कि जितने कम समय मे सिख राजनीति मे भिडरॉवाले ने जितनी लोकप्रियता और प्रसिद्धि अर्जित की है इससे पहले और किसी ने नहीं की। हालत यह है कि कोई भी अकाली नेता भिडरॉवाले की खुलेआम आलोचना करने की शक्ति नही रखता। मतभेदो के बावजूद अकाली दल उनकी उपेक्षा नही कर सकता। भिडरॉवाले अकाली दल की मजबूरी और अपनी सफलता को भुनाना भी जानते है। इसलिए पूरे आत्मविश्वास के साथ नानक निवास मे अपने पूरे दल बल सहित जमे हुए है और ठाट के साथ जो जी मे आता है बोलते है। सबसे पहल प्रेस पर सतजी के पहार के साथ बातचीत का दौर शुरू होता है।

**सतजी** पजाब मे दगा-फसाद के लिए पजाब की महाशय पेस जिम्मदार है।

***जोशी*** *कौन-सी महाशय प्रेस ?*

**सतजी** जालधर की महाशय प्रेस। पजाबी हिन्दुओ के हिन्दी-पजाबी अखबार। नाम गिनाऊगा तो तुम लोगो को बुरा लगेगा। तुम उसी बिरादरी के हो न! अखबारवाले भी हो- हिन्दू भी हो। जालधर की महाशय प्रेस को केशधारी सिख अच्छे नही लगते। वे जानबूझकर मनगढत अफवाहे उडाते रहते है हिन्दू और सिखो के बीच फूट पैदा करते रहते है। दिल्ली के हिन्दू अखबार भी मुझे उग्रवादी घोषित करते है परतु सिखो की समस्या को समझना पसद नही करते। हिन्दू अखबार अफवाहे फैलाते रहते है कि सिखो मे फूट पडी हुई है लोगोवाल और भिडरॉवाले अलग-अलग है। ऐसी फूट महाशय अखबारो मे है हमारे बीच नहीं।

***जोशी*** *कहा जाता है कि आप पजाब को खालिस्तान बनाना चाहते है सिखो को हिन्दुओ से एक अलग कौम मानते है?*

**सतजी** हम खालिस्तान नही चाहते और न ही बनाना चाहते है। परतु लगता है दिल्ली सरकार खालिस्तान बनाना चाहती है।

***जोशी*** *आप अपनी बात खुलासा करके बतलाएगे ?*

**सतजी** इदिरा बीबी से कहो सिखो की माग मान ले समस्याओ का जल्दी से हल कर दे खालिस्तान नही बनेगा। हम तो हिन्दुस्तान मे ही रहना चाहते है अलग नही होना चाहते। अब तो दिल्ली मे बैठी हिन्दुओ की सरकार से पूछो कि वो हम लोगो को साथ रखना चाहती है या नही? तुम लिख लो आसार कुछ और ही दिखाई दे रहे है। इदिरा बीबी हमे साथ नही रखना चाहती।

***जोशी*** *आप यह बात किस आधार पर कह रहे है?*

**सतजी** तुम ही देख लो। सिखो के साथ दोगला बर्ताव किया जा रहा है, उनके साथ लगातार अन्याय हो रहा है। जब से देश आजाद हुआ है हर कदम पर सिखो को

कुर्बानी देनी पडी है। पंजाबी सूबा बनाने के लिए भी सिखों की जाने गई, हजारो लोग जेलो मे ठूँसे गए, फायदा हुआ हिन्दुओं को। बगैर किसी आदोलन के हिन्दुओं के लिए पजाब को काटकर हरियाणा बना दिया गया। पजाब के हिन्दुओ ने भी पजाब के साथ विश्वासघात किया; अपनी मातृभाषा हिन्दी लिखाकर पंजाबी के साथ दगा किया, अगर पजाब का हिन्दू अपनी मातृभाषा पजाबी लिखाता तो पजाब का कभी बॅटवारा नही होता। एक पजाबी-हिन्दू घर मे और घर से बाहर पजाबी बोलता है, गुरुमुखी लिखता-पढता है, परतु मतगणना के समय मातृभाषा हिन्दी लिखाता है। यह अपनी मॉ (मातृभाषा) के साथ गद्दारी नही है तो क्या है?

सिखों को दूसरे दर्जे का नागरिक बना रखा है। इस देश मे सिख अभी तक गुलाम है जबकि 1947 से आज तक हर कुर्बानी देने मे सिख को आगे रखा जाता है। परतु, सिखो को धार्मिक और राजनीतिक मॉगो के मामले मे सबसे पीछे रखा जाता है। अगर कोई सिख धार्मिक मॉग को लेकर हवाई जहाज 'हाईजेक' करता है तो उसे देशद्रोही करार दिया जाता है। परंतु, हिन्दू-नेता इदिरा बीबी को जेल से छुडाने के लिए हाईजेक करनेवालों को यू पी विधानसभा का एम एल ए बना दिया जाता है। यह दोहरा, दोगला कानून क्यो?

इसके बाद सतजी बगैर विराम और प्रति-तर्क सुने अपना भाषण शुरू कर देते है। उन्हे इसकी कोई चिता नही है कि वे कहॉ गलत बोल रहे है, कहॉ सही। करीब पौन घटे तक सिख-निरकारी एव सिख-पुलिस मुठभेडो का बारीकी से ब्यौरा देते है। हर हालत मे सिख आदोलनकारियो को सही ठहराते हुए कहते है कि पुलिस मुठभेडो मे सैल्कडो सिखो को भूना गया है, जेलो मे ठूॅस-ठूॅसकर उन्हें अनेक प्रकार की यातनाऍ दी गई है, पुलिस ने जिस तरह का बर्बर व्यवहार नक्सलपथियों के साथ किया था वैसा ही सिख-आदोलनकारियो के साथ भी किया; उन्हे शहर से दूर जगल और खेतो मे ले जाकर मारा गया। इसी तरह की और भी अनेक घटनाऍ सुनाईं। अत मे कहा--"पानी की एक घूॅट के लिए सिखो को खून का गिलास बहाना पडता है। अगर ये सारी बातें झूठी साबित हो तो मै सब कुछ छोडने को तैयार हूॅ। मेरे पास सबके सबूत है।"

इस विषय को यही समाप्त करते हुए भिडरॉवाले किसानो की कृषि समस्या की ओर मुडते है। उनकी बातचीत से लगता है कि सतजी छोटे और मझोले किसान सिखों के हितो का प्रतिनिधित्व करते है। उन्होंने बडे किसानों के बारे मे एक शब्द भी नहीं कहा, परतु सीमात सिख किसानो की भूमि और मडी की समस्याओं की चर्चा की। वे इस बात के प्रति सतत सजग दिखाई दिए कि सिखों के किस वर्ग के हितो के संबंध मे अधिक बात करनी चाहिए और किसके संबंध में कम। संक्षेप में, भिंडरॉवाले ग्रामीण पंजाब के सिखो की परपरावादी चेतना के विभिन्न रूपो के सशक्त प्रवक्ता के रूप में अपने को पेश करते हैं। इसलिए वे सिख परिवार और

**भूमि का बिखराव बर्दाश्त नहीं कर सकते। वे इस बिखराव की समस्या और आधुनिकता के दबाव को हिंदू राष्ट्रवाद से जोड देते हैं। यह उनकी 'पेटेंट थीम' है। सतजी की दलील है–**

भारत मे शामिल होने और हिंदुओ के शासन के अधीन रहने से ही आज सिखो का सबसे अधिक नाश हो रहा है। हिंदुओ का उत्तराधिकार कानून लागू होने से सिखो की जमीन चोपट होती जा रही है उसकी जमीन के टुकडे-टुकडे होते जा रहे है। लडकी को हक मिलने के कारण सिख अपनी जमीन को साबुत नहीं रख पाता। एक सिख 17 एकड से अधिक जमीन नही रख सकता। सिखो को विरासत का टैक्स सरकार को देना पडता है हिंदुओ को नही देना पडता। पजाब मे सिखो का बहुमत है फिर भी उन्हे खेती की कमाई पर टैक्स देना पडता है। सिख अपने प्रदेश क मालिक है जैसा चाहे वैसा उन्हे करने की छूट होनी चाहिए। अब हिंदू लोग सिखो की जमीनो पर भी धावा बोल रहे है पजाब की खेती मे घुसपैठ करके जमीने हथिया रहे है। हिंदू व्यापारी अपना ब्लैक मनी खेती मे लगाते है और उसे व्हाइट कर लेते हे। ये ब्लैक मनी पजाब क शहरो से कमाते है और खेतो मे लगा देते है। आम सिख गॉव और शहर दोनो जगह लुट रहा है। दिल्ली की हिन्दू सरकार ने सिखो का नाश कर दिया है सारी कौम खराब कर दी है।

***जोशी*** *वो कैसे ?*

**सतजी** देखते नही सारे अमृतसर मे शराब की दुकाने चल रही हे। हिंदू सरकार ने ही तो लाइसेस जारी किए है।

***जोशी*** *मगर सतजी मैने तो देखा है कि अमृतसर की शराब की कई दुकानो पर सिख भी बैठे रहते है बारो मे बैठकर बीयर भी पीते रहते है। आप उनका सामाजिक बहिष्कार क्यो नही करते?*

**सतजी** अगर सरकार लाइसेस जब्त कर ले तो कोइ सरदार दुकान नही चलाएगा। अमृतसर को धार्मिक शहर घोषित करना चाहिए। सिखो का राज होता तो यहॉ शराब की कोई दुकान खुली न होती। शराब बेचने और खरीदनेवाले सिखो का बॉयकॉट करने से कोई फायदा नही। सरकार को ही चाहिए कि शराब की दुकाने बद कराए।

सतजी घूम फिरकर फिर से आतकवाद की चर्चा करने लगे। करीब आधा घटे तक यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते रहे कि वे आतकवादी नही है समाज-सुधारक है सिखो को अधर्म से बचाना चाहते है। आतकवाद या उग्रवाद की परिभाषा करते हुए सतजी बोले महाशय अखबार मुझे आतकवादी बतलाते है उग्रवादी कहते हे। अब तुम खुद देख लो यहॉ किसी तरह का कोई डर तुम्हे लग रहा है ? कोई तुम पर हमला कर रहा है? देख लो यहॉ कितने लोगो के पास हथियार है? सबके पास

छोटे-छोटे कृपाण हैं। अब तो इंदिरा बीबी उसे भी छीन लेना चाहती हैं, क्योंकि हम हिंदू नहीं, सिख हैं।

कल जब दिल्ली का एक अखबारवाला कुलदीप नैयर आया था, उसे भी मैने बताया था कि मैं कैसा आतंकवादी हूँ। मेरी बात सुनकर वह भी आतकवादी बन गया है, मेरा चेला हो गया है। मेरी बात सुनोगे तो तुम भी आतकवादी बन जाओगे। सरकार तुम्हें गिरफ्तार कर लेगी।

***जोशी*** *: आपका आतंकवाद है कैसा, पहले उसे तो बतलाइए।*

**संतजी** : मैं सिख, हिंदू और मुसलमान तीनों को यही कहता हूँ कि अपने-अपने धर्म-मजहब का पालन करो। सिखों से कहता हूँ—कृपाण रखो, केश रखो, नशा छोडो, गुरुवाणी का पाठ करो, नियम से गुरुद्वारे जाओ, अपने को स्वर्ण मंदिर से जोडो, सब को सतगुरु की शरण में लाओ, सिखों की बहू-बेटियों की इज्जत की रक्षा करो, अपने कौम की अखंडता की रक्षा करो।

*(संतजी ने इसके साथ-साथ उपस्थित सिखों को इन सभी कर्मो का नियमित रूप से पालन करने की शपथ दिलाई। सिखों ने हाथ उठाकर और जयजयकार के साथ शपथ ली।)*

इन सिखों से पूछ लो मैं इन्हें किस तरह के आतंकवाद की शिक्षा दे रहा हूँ। यही है मेरा उग्रवाद। मैं तो हिंदू से भी कहता हूँ—वो चुटिया रखे, जनेऊ धारण करे, रोजाना मंदिर जाया करे, गंगाजल का पान करे, गीता का पाठ करे, शिवलिंग की पूजा करे, उपवास रखे। मुसलमान को भी चाहिए कि वो पॉच वक्त नमाज पढ़े, रोजा रखे, कुरान पढे। जो जिस धर्म में पैदा हुआ है, उसी में रहकर उसका ईमानदारी से पालन करे। यही है मेरा आतंकवाद। नैयर की तरह तुम भी अपने को आतंकवादी मान लो। मेरे शिष्य बन जाओ।

***जोशी*** *: जैसा कि आप कहते हैं नैयरजी आपके शिष्य हो गए हैं, आपको बधाई। परंतु मैं आपकी बात से पूरी तरह सहमत नहीं। जिस दिन आप सामाजिक और आर्थिक विषमता समाप्त करने के लिए धर्म को हथियार बनाएँगे, उस दिन. .।*

**संतजी** : गरीबी-अमीरी कर्मो का फल है। पिछले जन्म में जिसने जैसा बोया है, वैसा काटेगा। अब हमारी लडाई गरीबी के खिलाफ भी है। तुम कहते हो तो लड़ाई और तेज कर देंगे। अब तो मेरे पंथ में आ जाओ।

मगर मैंने बचने के लिए कह दिया : असली लडाई शुरू करने का ऐलान तो करो।

## प्रणव मुखर्जी से साक्षात्कार - 1

# 'तरक्की के लिए जोखिम जरूरी'

***जोशी** : आपके विचार में क्या पंचवर्षीय योजनाएँ अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में सफल रही हैं? नेहरू-काल से लेकर राव-शासन तक, क्या इन योजनाओं के माध्यम से निर्धनता, सामाजिक-आर्थिक असमानता और क्षेत्रीय असंतुलनों को समाप्त किया जा सका?*

**प्रणव मुखर्जी** : कुल मिलाकर हमारी योजनाओं को सफलता मिली है, मैं ऐसा मानता हूँ। यह सच है कि योजनाओं की शुरूआत में हमने जो लक्ष्य निर्धारित किए थे, वे शत-प्रतिशत पूरे नहीं हुए हैं। लेकिन संपूर्णता की दृष्टि से योजनाओं की उपलब्धियों को देखें तो निश्चित ही कुछ क्षेत्रो में हमें सफलता मिली है। आपको याद होगा, भारत जब आजाद हुआ था, तो हमारे पास मामूली किस्म का औद्योगिक ढॉचा था। आज स्थिति इसके विपरीत है। एक सुदृढ़ औद्योगिक आधार हमारे पास है। कृषि क्षेत्र को ही लें। खाद्यान्नों के आयात पर भारत जीवन बसर करता था। आज हमने आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है। बल्कि, सीमित मात्रा में हम खाद्यान्न का निर्यात भी करते हैं। मानव संसाधन के विकास में भी भारत पीछे नहीं है। योजनाओं की वजह से आज हमारे देश में पर्याप्त मात्रा में प्रबंधक, इंजीनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिक तथा विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ हैं। यह सच है कि सामाजिक क्षेत्र में भारत को अपेक्षित सफलता नहीं मिली है; सौ फीसदी साक्षरता का लक्ष्य आज भी अधूरा है; जनसंख्या को नियंत्रित नहीं किया जा सका है। तो भी मृत्यु-दर कम हुई है। जीवन-दर बढ़ी है। संक्रामक रोगों की रोकथाम की गई है। कई तरह की जानलेवा बीमारियों को नियंत्रित किया गया है। यह सब योजनाओं का कमाल है।

आर्थिक क्षेत्र को ही लें। योजनाओं के प्रारंभ में भारत को उत्पादन के क्षेत्र में

प्रशसनीय सफलता नहीं मिली थी। तब की विकास दर साढे तीन प्रतिशत थी। लेकिन आठवें दशक में विकास दर पॉच प्रतिशत तक पहुँच गई। इसलिए मेरा यह मत है कि योजनाओं के क्रियान्वयन से देश आगे बढा है, अर्थव्यवस्था मे गतिशीलता आई है। इसका यह कतई मतलब नहीं है कि अब विकास, प्रगति और सुधार के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रह गई है।

***जोशी** : प्रथम प्रधानमत्री प जवाहरलाल नेहरू तथा उनके उत्तराधिकारियों ने नागरिको के जीवन मे गुणात्मक परिवर्तन लाने की अनेक घोषणाएँ कीं, पर देश के परंपरागत रूप से उत्पीडित और वंचित वर्गो के जीवन मे अपेक्षित गुणात्मक परिवर्तन नही आया है। इसकी क्या वजह है, और क्या-क्या बाधाएँ हैं?*

**प्रणव मुखर्जी** : स्पष्ट रूप से सबसे बडी बाधा पर्याप्त मात्रा मे ससाधनो का अभाव है। दूसरी बडी बाधा है उच्च जनसंख्या दर। जब योजना-निर्माताओ ने पहली योजना लागू की थी, उस समय भारत की जनसंख्या 30-35 करोड थी, आज 89 करोड से अधिक है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक 24 घंटे मे करीब 59 हजार की दर से जनसख्या में वृद्धि हो रही है। तीसरी वजह यह भी है कि भारतवासी बदलाव के प्रति जरा धीमे रहते हैं, आधुनिक आवश्यकताओ के अनुसार स्वयं को ढालने के मामले मे उत्सुकता नहीं दिखाते।

***जोशी** : यह आप कैसे कह सकते है ?*

**प्रणव मुखर्जी** देखिए, भारत एक राष्ट्र के रूप मे चीजो के प्रति धीरे-धीरे रेसपोंड करता है। हमारा सास्कृतिक ईथोस ही कुछ ऐसा है। आपने देखा कि हमारा स्वतत्रता सग्राम रूस, चीन, क्यूबा, विएतनाम, बंगलादेश आदि देशो से भिन्न है। हमने इन देशो के समान सशस्त्र संघर्ष नहीं किया। करीब सौ वर्ष तक शांतिपूर्ण ढग से राष्ट्रवाद का निर्माण करते रहे और अंतत भारत को स्वतंत्र कराकर छोडा। इस पृष्ठभूमि मे एक सामंती समाज को आधुनिक, लोकतांत्रिक एवं औद्योगिक समाज मे रूपातरित करने में वक्त तो लगता है। हमारे नेता एव योजना-निर्माता भी यह नहीं चाहते थे कि परपरागत व्यवस्था को कोई बहुत बडा झटका लगे।

***जोशी** : भारत अपनी आजादी की आधी सदी पूरी करने जा रहा है। आप समझते हैं कि कृषि-भारत में सामंती उत्पादन संबंधों में बुनियादी बदलाव आ गया है?*

**प्रणव मुखर्जी** : मै ऐसा नहीं कहूँगा कि सामंती उत्पादन-संबध पूरी तरह से बदल चुके हैं। कुछ क्षेत्रो मे ये आज भी जीवित हैं।

***जोशी** : हिंदी-क्षेत्र में स्थिति बहुत बुरी है, सामंती मूल्य-व्यवस्था काफी सक्रिय है।*

**प्रणव मुखर्जी** : हिंदी-क्षेत्रों में भी जमींदारी व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया है। यह सच है कि भूमि-सुधारों को प्रभावशाली ढंग से लागू नहीं किया गया है, लेकिन दूसरे राज्यों में भूमि-सुधारों को सफलतापूर्वक लागू किया गया है। इसलिए स्थिति के प्रति एक संपूर्ण दृष्टि अपनानी पड़ेगी। मेरा यह मत है कि जिन क्षेत्रों में भूमि-सुधारों को तेज रफ्तार के साथ लागू किया गया है वहाँ विकास-गति भी अच्छी रही है। इस मामले में पश्चिम बंगाल और केरल के उदाहरण दिए जा सकते हैं।

**जोशी** : *क्या यह माना जाए कि भूमि-सुधारो की वजह से प्रति-व्यक्ति आय बढ़ी है?*

**प्रणव मुखर्जी** : मैं सिर्फ प्रति व्यक्ति आय-वृद्धि की बात नहीं कर रहा हूँ। मेरा यह मत है कि प्रगति और विकास की कसौटी सिर्फ आय-वृद्धि नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए हरियाणा और पंजाब में प्रति व्यक्ति आय पश्चिम बंगाल और केरल से बहुत अधिक है। लेकिन, विकास-दर को समझने की आवश्यकता है। केरल में सौ फीसदी साक्षरता है, जबकि हरियाणा में स्थिति भिन्न है। जीवन की गुणवत्ता को ध्यान में रखने की जरूरत है।

**जोशी** : *यह देखने में आया है कि राष्ट्र के उच्चस्तरीय लक्ष्यो तथा सामान्य नागरिक की बुनियादी आवश्यकताओ के बीच खाई कम नहीं, चौडी हुई है। आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान किस तरह से इस खाई को पाटा जा सकता है?*

**प्रणव मुखर्जी** : खाई पाटने की प्रक्रिया शुरू से ही चल रही है। इसीलिए चंद हाथों में आर्थिक शक्ति के एकत्रीकरण पर रोक लगाई जाती है। भूमि की हदबंदी भी इसी प्रक्रिया का एक हिस्सा है। समाज के कमजोर वर्गों को सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की राहतें उपलब्ध कराना भी खाई पाटने के उपायों में से एक है। इस तरह के उपायों से समाज के विभिन्न वर्गो में व्याप्त विषमता कम भी हुई है। आठवीं योजना में हम जहाँ युवकों को रोजगार उपलब्ध कराना चाहते हैं, वहीं इसका भी ध्यान रखना चाहते हैं कि ऐसे रोजगारो का निर्माण किया जाए, जिनसे हितग्राहियों को निरंतर आय मिलती रहे। हम इन युवकों को तकनीकी सहायता, ऋण व्यवस्था, क्रय व्यवस्था और प्रबंध क्षमता से लैस करना चाहते है।

हम चाहते हैं कि देश में लोक-पहल मे वृद्धि हो। जब तक लोग स्वयं पहल नही करेंगे, कोई कार्यक्रम या योजना सफल नहीं होगी। इसलिए स्वयंसेवी सस्थाओं को हर क्षेत्र में प्रोत्साहित करना चाहते हैं। देश में सांस्थानिक परिवर्तन के लिए यह जरूरी है। जीवन-स्तर में सुधार और आय-वृद्धि के लिए समन्वित दृष्टि भी जरूरी है।

इसी संदर्भ में मैं एक बात और स्पष्ट करना चाहूँगा कि पिछले बीस सालों में सरकार ने संगठित क्षेत्रों में कार्यरत व्यक्तियों की न्यूनतम आय को सुरक्षित किया

है। जब कोयला-खनिक निजी क्षेत्र मे थे, तब उनकी स्थिति कितनी खराब थी। आज यह नहीं कहा जा सकता। खनिको को निश्चित वेतन मिलता है। लेकिन सगठित क्षेत्रो को सरक्षण देने का परिणाम यह भी निकला कि असगठित क्षेत्र विभिन्न लाभो से वचित रह गए। दूसरे शब्दो मे असगठित क्षेत्र की कीमत पर सगठित क्षेत्र को सरक्षण दिया गया। इससे दोनो क्षेत्रो के बीच विकृति पैदा हो गई है। अब इस विकृति को दूर करने की आवश्यकता है। देखिए कितनी दु खद स्थिति है। जैसे ही महँगाई बढती है सगठित क्षेत्र के लोग शोर मचाना शुरू कर देते हैं। तुरत ही उनका महँगाई भत्ता बढ जाता है। लेकिन असगठित क्षेत्र के श्रमिको की स्थिति तो निरतर दयनीय रहती है। मै जो कहना चाहता हूँ वह यह है कि आज विषमता ग्रामीण एव शहरी और सामती एव गैर-सामती समाज के बीच नहीं है बल्कि सगठित और असगठित क्षेत्रो के बीच विषमता है। छठी योजना से ही असगठित क्षेत्र के लोगो की स्थिति मे सुधार की कोशिश की जा रही है। चूँकि इस क्षेत्र की सख्या अधिक है इसलिए समस्या भी उतनी ही गभीर है। परिणामस्वरूप इस क्षेत्र की स्थिति मे सुधार के लिए विभिन्न स्तरो पर जो भी कदम उठाए जाते है, उनका प्रभाव तत्काल दिखाई नही देता है।

***जोशी*** *देश मे जाति व्यवस्था की जडे काफी गहरी है। आप ऐसा नही मानते कि समाज मे बहुआयामी गतिशीलता पैदा करने मे जातिवाद बहुत बडी बाधा है? ग्रामीण भारत मे इसके प्रभाव साफ दिखाई देते है।*

**प्रणव मुखर्जी** ग्रामीण भारत का मतलब सिर्फ उत्तरप्रदेश और बिहार नहीं है। केरल और बगाल के बारे मे भी सोचिए। इन प्रदेशो मे जातिवाद जैसी कोई चीज नहीं है।

***जोशी*** *आप ऐसा नही मानते कि ये दोनो राज्य भारत मे अपवाद है?*

**प्रणव मुखर्जी** बिल्कुल नही है। ये राज्य भी अन्य राज्यो की तरह है। आजादी की लडाई मे सभी जातियो ने अपना-अपना योगदान दिया था। तब किसी ने जातिवाद की बात नही की थी। लेकिन जैसे-जैसे योजनाएँ लागू होती रहीं, समृद्धि आती गई त्यो-त्यो लोगो ने जातिवाद का नारा लगाना शुरू कर दिया। जातिवाद का नारा उछालने मे लोगो का निहित स्वार्थ भी है। लेकिन बुनियादी समस्या आर्थिक है, जाति की नही है। एक समस्या यह भी है कि हमारे देश मे ऐसी सस्थाओ की कमी है, जिनके माध्यम से योजनाओ के लाभो को समाज के उत्पीडित वर्गों के दरवाजो तक पहुँचाया जा सके।

***जोशी*** *पिछले वर्षो मे यह भी अनुभव हुआ है कि योजनाओ से समाज मे जो सरप्लस पैदा हुआ है समृद्धि आई है, उससे कुछ ही क्षेत्र लाभान्वित हुए हैं। लेकिन*

*इसका दूसरा परिणाम यह भी निकला है कि विषमता बढ़ी है और वंचित लोगों की महत्वाकांक्षाओं ने करवटें ली हैं। इस चुनौती का सामना आप कैसे करेंगे?*

**प्रणव मुखर्जी** : ऐसा होना स्वाभाविक है। इसकी सबसे बड़ी वजह यह है कि अँगरेजों के जमाने मे ही कुछ ऐसे क्षेत्र थे, जो अपेक्षाकृत अधिक विकसित थे, लेकिन ज्यादातर क्षेत्र पिछडे हुए थे। जब विकास की प्रक्रिया शुरू की गई, तो पहले से ही उन्नत क्षेत्र और अधिक उन्नत बन गए। इससे विषमता और गहरा गई। लेकिन पिछली योजनाओं के दौरान हमारी कोशिश यही रही है कि क्षेत्रीय विषमता को कम किया जाए। इस दृष्टि से पिछड़े प्रदेशों को अधिक केंद्रीय सहायता दी गई, औद्योगिक क्षेत्रों का विस्तार किया गया। पिछडे क्षेत्रो में उत्तरी-पूर्वी राज्यों को विकास की दृष्टि से विशेष श्रेणी में रखा गया। इन राज्यों के विकास का संपूर्ण खर्च केंद्रीय सरकार द्वारा वहन किया जा रहा है। इसमें 90 प्रतिशत सहायता तथा 10 प्रतिशत कर्ज के रूप में दिया जाता है। हमारी व्यवस्था ही इस प्रकार है कि उसमें पिछडे क्षेत्रों को आगे बढने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हैं। लेकिन इसमें समय लगता है और फिर देश के पास साधनों की भी कमी है। हमारी विशेषता यह भी है कि हम स्वयं के साधनो से ही सब कुछ कर रहे हैं। देखिए, पाँचवें एवं छठे दशक में अनेक देशों ने बाहरी कर्ज एव सहायता से विकास किया, जबकि हमने इसके विपरीत रास्ता अपनाया। हम चाहते भी नहीं थे कि विदेशी सहायता पर निर्भर रहकर प्रगति करें। छठी योजना में बाहरी मदद दस प्रतिशत से भी कम थी। हमने जो भी बाहरी मदद ली है, वह भुगतान-संतुलन बनाए रखने के लिए ली है। सातवीं योजना में बाहरी मदद दस प्रतिशत थी। आठवीं योजना में हम इस प्रतिशत को घटाना चाहते हैं। यद्यपि ऊपरी तौर पर क्षेत्रीय विषमता दिखाई देती है, लेकिन वास्तव में योजना-दर-योजना विषमता में कमी आ रही है।

***जोशी*** *: प्रणवजी, अब देश में एकदलीय शासन का युग लद गया। आज राज्यों में विभिन्न दलों की सरकारें हैं। ऐसे में योजनाओं के क्रियान्वयन में अंतर्विरोधों का पैदा होना स्वाभाविक है। आप इनका समाधान कैसे करेंगे?*

**प्रणव मुखर्जी** : देखिए, पुडिंग का स्वाद तो खाने में है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि केंद्र सहित सभी राज्य सरकारें अपनी शक्ति संविधान से प्राप्त करती हैं। इसलिए लोकतांत्रिक व्यवस्था में विभिन्न दलों के विचारों एवं कार्यक्रमों को एडजस्ट करना पडता है। विचारों एवं कार्यक्रमों में अतर के बावजूद, सबका विकास और कल्याण हम सभी को बाँधे रखता है। जब विकास और कल्याण को प्राथमिकता दी जाती है, तो अंतर्विरोधो का हल करने में विशेष दिक्कत नहीं होती है और मैं तो यह कहता हूँ कि यह कहना भी गलत है कि एकदलीय शासन में कोई मतभेद पैदा ही नहीं होते। संघीय व्यवस्था में विचार, दृष्टि, कार्यक्रम और

प्राथमिकता में मतभेद होना स्वाभाविक है। मुझे अच्छी तरह याद है जब तत्कालीन काबीना मंत्री टी टी कृष्णमाचारी ने इस्पात के मामले में कुछ नई नीति लागू करनी चाही, तो बिहार और बगाल के मुख्यमंत्रियों ने सख्त विरोध किया था। दोनों ही जगह कांग्रेस की सरकारे थी। बी सी राय और श्रीकृष्ण सिन्हा, दोनों मुख्यमंत्री ही नहीं थे, बल्कि काग्रेस के दिग्गज नेता भी थे। इसी तरह असम के मुख्यमंत्री गोपीनाथ बारदोलाई ने भी पेट्रोल की रॉयल्टी के सवाल पर केद्र से अपना मतभेद जाहिर किया था। दुनिया की किसी भी सघीय व्यवस्था में इस तरह के मतभेदों का होना स्वाभाविक है। आवश्यकता इस बात की है कि जब मतभेद हो जाएँ तब संवाद के माध्यम से उन्हे सुलझा लिया जाए। जहॉ तक योजना का प्रश्न है, मुझे कांग्रेसी और गैर-काग्रेसी मुख्यमत्री के साथ बातचीत करने मे कोई दिक्कत नहीं होती। मेरा आग्रह यह जरूर रहता है कि कोई भी मुख्यमंत्री रहे, उसकी योजना संसाधनों की उपलब्धता के दायरे मे रहनी चाहिए। हम हमेशा यह कहते है कि हमारे पास पर्याप्त धन नहीं है। हर प्रदेश का मुख्यमंत्री चाहता है कि उसे अधिक से अधिक राशि मिले। इन मतभेदो के बीच रास्ता निकालना पडता है। इसमे कौशल की आवश्यकता होती है।

***जोशी** : पिछले दिनों जनता दल शासित उडीसा के मुख्यमंत्री बीजू पटनायक ने वित्तीय स्वायत्तता की गुहार लगाई है। इस संबध में आपका क्या कहना है?*

**प्रणव मुखर्जी** : हॉ, उनकी मॉग जरूर है। आप जानते ही है, सरकारिया आयोग का गठन किया गया था। आयोग की कुछ सिफारिशों को लागू भी किया जा रहा है, कुछ पर विचार चल रहा है। यह एक सामान्य प्रक्रिया है।

***जोशी** : वो तो ठीक है, पर पटनायक की मॉग बिल्कुल अलग है। वे आर्थिक मामलों मे केंद्र की पाबंदियॉ बिल्कुल पसंद नहीं करते।*

**प्रणव मुखर्जी** : मुझे मालूम है उनकी मॉग। आज वे मुख्यमत्री हैं, तो ऐसी बात कर रहे हैं; जब वे केद्र मे मंत्री थे, तब उन्होने ऐसी बात नहीं की थी। जो कुछ वे कह रहे हैं, उसे उसी रूप में नहीं लेना चाहिए। केद्र से ज्यादा अधिकारों एवं स्वतत्रता की मॉग करना, यह एक संघीय चरित्र है। कनाडा, जर्मनी, अमेरिका में भी ऐसी ही समस्याएँ व्याप्त हैं।

***जोशी** . यह आई सी ओ आर क्या है? आज इसका प्रतिशत क्या है?*

**प्रणव मुखर्जी** : इसे इन्क्रीमेंटल कैपीटल आउटपुट रेशो (वृद्धीय पूँजी उत्पादन अनुपात) कहते हैं।

***जोशी** : सो तो ठीक है। लेकिन भारत में इसका ताजा प्रतिशत क्या है?*

**प्रणव मुखर्जी** : हमने 4। प्रतिशत का अनुमान लगाया है।

***जोशी** : लेकिन 4.1 प्रतिशत क्या अच्छी स्थिति है?*

**प्रणव मुखर्जी** : ठीक नहीं है। इसे घटाया जाना चाहिए। आठवीं योजना के दौरान, हमारा अनुमान है कि हम इसे कम कर सकते हैं। हमारी कोशिश है कि विकास दर 5.6 प्रतिशत तक पहुँचे। जब विकास दर मे वृद्धि होगी, तो जाहिर है कि आई सी.ओ आर के प्रतिशत में गिरावट आएगी। इसे 4.1 प्रतिशत से घटाकर 3 6 प्रतिशत पर लाया जा सकता है। हमारी तमाम कोशिशें इस दिशा में हैं। एक जमाने में तो इसका प्रतिशत 5 तक रहा है।

***जोशी** : आजकल उदारीकरण की आँधियाँ चल रही हैं। आत्मनिर्भरता के लक्ष्य के संदर्भ में आर्थिक उदारीकरण की भूमिका के बारे में आपका क्या कहना है?*

**प्रणव मुखर्जी** : आत्मनिर्भरता के लक्ष्य का यह अर्थ कतई नहीं है कि हम ककून में बंद रहें। आत्मनिर्भरता का अर्थ है स्वयं की अर्थव्यवस्था को सुदृढ करना। इससे प्रतिस्पर्धा का विस्तार होगा। कालांतर में इससे अर्थव्यवस्था मजबूत होगी और आत्मनिर्भरता का लक्ष्य पूरा होगा।

***जोशी** : जिस ढंग से बहुराष्ट्रीय कंपनियों को छूट दी जा रही है, क्या इससे हम अपने लक्ष्य की रक्षा कर सकेंगे? क्योंकि इन कपनियों का आर्थिक आधार कई गुना मजबूत है। इसकी तुलना मे हमारा आर्थिक ढाँचा काफी पिछड़ा हुआ एवं कमजोर है। किस ढंग से हम अपने आर्थिक एवं राजनीतिक हितों की रक्षा कर सकेंगे?*

**प्रणव मुखर्जी** : खतरे जरूर है। लेकिन, इनसे बचा भी नहीं जा सकता। मानव सभ्यता का विकास भी जोखिम मोल लेकर ही हुआ है। जब तक हम नई एवं उच्च प्रौद्योगिकी को नहीं अपनाएँगे, तरक्की नहीं होगी। यदि ऐसा नहीं करेंगे, तो धीरे-धीरे हम लुप्त होते चले जाएँगे, जंगलों में खो जाएँगे। उदाहरण के लिए, राजपूत काफी लडाकू और योद्धा थे, लेकिन बाबर ने नई प्रौद्योगिकी की सहायता से उन्हें पराजित कर दिया। इसलिए हमें तय करना होगा कि नई प्रौद्योगिकी अपनाएँ या अपने ही ककून मे कैद रहें।

***जोशी** : तो भी कही न कही सुरक्षात्मक उपायों की जरूरत पड़ेगी ही।*

**प्रणव मुखर्जी** : आपको सुरक्षा क्यों चाहिए? शुरूआती अवस्था में सुरक्षा की आवश्यकता पडती है। तीस-चालीस साल तक सुरक्षा प्रदान की गई। इस लंबी अवधि के बाद भी सुरक्षा चाहिए तो इसका औचित्य क्या है? दूसरा प्रश्न यह है कि जब तक आप अपने दरवाजे खोलेंगे नहीं, तब तक आपको उत्तम प्रौद्योगिकी हासिल कैसे होगी? जब हमने इंदिरा-सरकार के दौरान फेरा कानून बनाया था तब प्रौद्योगिकी प्राप्त करने की कोशिश की थी। लेकिन हमें सफलता नहीं मिली। हमसे कहा गया कि जब तक हमें बाजार नहीं मिलेगा तब तक उच्च प्रौद्योगिकी नहीं देंगे।

उस समय हमारी रणनीति स्वदेशी उद्योगों यानी अर्थव्यवस्था को संरक्षण प्रदान करने के साथ-साथ उच्च प्रौद्योगिकी प्राप्त करने की थी। इसमें असफलता मिली। अब सवाल यह है कि हम बदलें या नहीं बदलें? यह बुनियादी सवाल है। जब आप संरक्षण के वातावरण में जीते हैं, तो चुनौतियों का सामना करने की इच्छा, प्रतियोगिता में भाग लेने का साहस, उत्पादित वस्तु में गुणवत्ता पैदा करने का संकल्प आदि सभी को भुला दिया जाता है। अब ऑटोमोबाइल उद्योग को ही लें। ऑटोमोबाइल उद्योगपतियों ने 40 साल तक एकाधिकार भोगा। क्या इन्होंने अपने माल में कोई सुधार किया? क्या इन्हें कभी ग्राहक की चिंता हुई? हम संरक्षण या आत्मनिर्भरता के नाम पर किसके हितों की रक्षा करना चाहते हैं? अब मौका है। हम बदलें। दुनिया के सभी हिस्सों में होड लगी हुई है। हमें भी नई चुनौतियों का सामना करना चाहिए। मैं नहीं समझता कि हमारे नव-उद्यमी किसी से पीछे हैं।

***जोशी*** *: आप नहीं समझते कि शुरूआती दौर में थोड़ा-बहुत 'चैक्स एंड बैलेन्स' होना चाहिए?*

**प्रणव मुखर्जी** : चैक्स एंड बैलेन्स क्यों होना चाहिए? इसकी कोई जरूरत नहीं है। इसका तो मतलब यह हुआ कि उदारीकरण की नाक में नकेल बाँधकर उससे कहा जाएगा कि तीन मीटर आगे जाओ, और दो मीटर पीछे आ जाओ। इससे कोई फायदा नहीं होगा। आप पूरी छूट दीजिए। यदि नहीं दे सकते तो पूरा कंट्रोल रखिए। आधे-अधूरे ढंग से कोई काम मत करिए। देखिए, संरक्षण के नाम पर निजी क्षेत्र ग्राहकों को लूटते हैं। मैं पूछता हूँ कि निजी क्षेत्र ने रोजगार के कितने अवसर पैदा किए हैं ? वैसे आज निजी क्षेत्र भी संरक्षण नहीं चाहता। वह कहता है कि हमें मुक्त वातावरण दीजिए अब हमने उन्हें मुक्त अवसर प्रदान कर दिए हैं। लेकिन संवेदनशील क्षेत्रों को सुरक्षित रखा है, जहाँ सरकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता रहती है। इन क्षेत्रों में रक्षा, परमाणु ऊर्जा आदि को शामिल किया जा सकता है।

***जोशी*** *: क्या बहुराष्ट्रीय कंपनियों को जीवन बीमा जैसे सर्विस-सेक्टर में जाने की इजाजत दी जाएगी?*

**प्रणव मुखर्जी** : नहीं। देखिए, उदारीकरण कोई नारा नहीं है। उदारीकरण की मुख्य कसौटी राष्ट्रहित एवं अर्थव्यवस्था का सुदृढ़ीकरण है। यदि हमें लगा कि उत्पादन क्षेत्र या सर्विस-सेक्टर में उदारीकरण से लाभ होता है, तो हम निश्चित ही करेंगे। सब कुछ हमारी आवश्यकता और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की इच्छा पर निर्भर है।

***जोशी*** *: क्या आपको पक्का विश्वास है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हमारी अर्थव्यवस्था*

*को अस्त-व्यस्त नहीं करेगी? लातीनी एव पडोसी देशो के अनुभवो की कहानी सुखद नहीं कही जा सकती।*

**प्रणव मुखर्जी** देखिए, मै ऐसा नही मानता। उन देशो मे और हमारे देश मे गुणात्मक अतर है। पाकिस्तान सहित लातीनी देशो का राजनीतिक नेतृत्व इसके लिए जिम्मेदार है। सपूर्ण दोष बहुराष्ट्रीय कपनियो का है यह सही नही है। सब कुछ राजनीतिक नेतृत्व और लोक-चेतना पर निर्भर करता है। हमारा देश लोकतात्रिक है। लोग जागरूक है।

***जोशी** : इसका अर्थ यह निकला कि हमे चिंतित होने की आवश्यकता नही है?*

**प्रणव मुखर्जी** मै यह नही कहता कि चिता करने की जरूरत नही है सावधान रहना होगा।

**26 जुलाई, 1992**

# 'वे खिलाडी हम प्यादे'

"हमे यह समझ लेना चाहिए कि वर्तमान स्थिति मे अमेरिका तथा अन्य विकसित राष्ट्र गैट-खेल के खिलाडी है और हम सिर्फ प्यादे है। क्योकि सोवियत सघ के पतन के बाद एकलध्रुवीय शक्ति-व्यवस्था अस्तित्व मे आ गई है। यह कुछ समय तक रहेगी हमे इस सच्चाई के साथ जीना है। लेकिन यह तय है कि स्थिति बदलेगी।'

केद्रीय वाणिज्य मत्री प्रणव मुखर्जी ने ये विचार एक विशेष, साक्षात्कार मे व्यक्त किए। प्रस्तुत है गैट-समझौते के ताजा परिप्रेक्ष्य मे हुए उस सवाद के अश

***जोशी*** *क्या आप गैट के तहत नई बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था के सभी पक्षों से सहमत एव सतुष्ट है?*

**प्रणव मुखर्जी** जहॉ तक गैट व्यवस्था का प्रश्न है किसी भी व्यक्ति के लिए यह कहना मुश्किल है कि वह इससे पूरी तौर पर सतुष्ट है या असतुष्ट। इसकी वजह साफ है। गैट व्यवस्था से 117 राष्ट्र जुडे हुए है। सभी राष्ट्र अपने अपने राष्ट्रीय हितो की रक्षा करना चाहते है। गैट-वार्ता के दौरान सभी राष्ट्रो ने अपने-अपने हितो की रक्षा करने के लिए हरसभव कोशिश भी की। इस प्रक्रिया मे कोई भी देश यह नही कह सकता कि उसे 100 फीसदी उपलब्धि हुई है। अत कहा जा सकता है कि कुछ क्षेत्रो मे सतोष प्राप्त हुआ है और कुछ मे असतोष।

***जोशी*** *वे कौन-से क्षेत्र है जो भारत की दृष्टि से असतोषजनक है?*

**प्रणव मुखर्जी** पहले मै सतोषजनक क्षेत्रो की बात करूँगा। सर्वप्रथम तो यह है

कि भारत को अंतरराष्ट्रीय बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था मे पैर जमाने का अवसर प्राप्त हो गया है। अब एक नियम के तहत व्यापार हो सकेगा। सीमा शुल्क और गैर-सीमा शुल्क जैसी बाधाओ से मुक्ति मिली है। इसका सीधा लाभ यह हुआ कि विकसित देशो के बाजार मे विकासशील देश प्रवेश कर सकेगे। विकासशील देशो के बाजार विकसित देशो के बाजार का स्तर प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। आज हम विकसित बाजारो से कई वस्तुओ का आयात कर रहे है। इसके जरिए हम अपने बाजार का भी आधुनिकीकरण कर रहे है। पहले यह होता था कि विकसित देशो के बाजार मे घुसने के लिए अनेक बाधाओ का सामना करना पडता था। अब हम आयात के साथ-साथ उन बाजारो को अपने माल का निर्यात भी कर सकेगे। अब निर्यात का रास्ता सहज-सरल हो गया है। यह एक सकारात्मक उपलब्धि है।

एक बात हमे साफ-साफ समझनी होगी। इस विषमतावादी विश्व मे जो शक्तिशाली राष्ट्र है वे कमजोर देशो का शोषण करने की कोशिश करते है। द्विपक्षीय व्यापार व्यवस्था का यह सबसे बडा दोष है, शक्तिशाली देश अपनी मनमानी शर्ते कमजोर देशो पर थोपते रहते हैं। इस प्रक्रिया मे कमजोर व गरीब देश की लेन-देन की शक्ति क्षीण होती जाती है। लेकिन बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था के तहत मनमानी पर अकुश लगाया जा सकता है, विकासशील देशो की लेन-देन की शक्ति स्थिर रहती और बढ जाती है, आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से शक्तिशाली देशो की शक्ति कम हो जाती है। मिसाल के तौर पर शक्तिशाली देश ऐसे व्यापारिक कानून-कायदे बना सकते हैं जो गरीब देशो के हितो के खिलाफ हो। लेकिन गैट जैसी अतरराष्ट्रीय विवाद-समाधान व्यवस्था के तहत उनके लिए ऐसा करना सभव नहीं होगा। इस सदर्भ मे अमेरिका का विशेष-301 का कानून उल्लेखनीय है। यदि अमेरिका कोई कदम उठाता है तो हम गैट का सहारा ले सकते है और द्विपक्षीय विवाद का हल करा सकते है। इस तरह की सुविधाए गैट के अतर्गत विकासशील देशो को उपलब्ध है। इसके साथ ही एक बडा लाभ और है। यदि विश्व व्यापार का विस्तार होता है तो भारत को भी उसका लाभ मिलेगा।

***जोशी*** *अब हम असतोषजनक या अलाभकर क्षेत्रो की बात कर ले।*

**प्रणव मुखर्जी** जहॉ तक अलाभकर क्षेत्रो का प्रश्न है इसमे प्रतिस्पर्धा का तत्व महत्वपूर्ण है। गैट व्यवस्था के तहत सभी सदस्य देशो को प्रतिस्पर्धा का सामना करना पडेगा। यदि आप मे बाजार मे खडे होने की क्षमता नहीं है तो आपके धीरे-धीरे लुप्त होने का खतरा हमेशा बना रहेगा।

कुछ क्षेत्रो मे विकासशील देश लाभ प्राप्त करना चाहते थे। लेकिन ऐसा नही हुआ। मिसाल के लिए भारत जैसे देश चाहते थे कि वस्त्र व्यापार के मामले मे विकसित देशो के बाजार मे प्रवेश की छूट मिल जाए। यह हमारी बहुत पुरानी मॉग है। काफी

बहस के बाद विकसित देशों ने 10 वर्ष बाद की छूट दी है। पहले वे 15 वर्ष रखना चाहते थे। बेहतर होता कि यह अवधि और कम हो जाती। एक असंतोषजनक बात यह भी है कि हमें इस अवधि की समाप्ति के बाद ही लाभ प्राप्त होगा।

लेकिन मेरा यह मत है कि इस हानि से परेशान नहीं होना चाहिए, क्योंकि विकसित देश तो अपने बाजार मे प्रवेश की छूट ही नही दे रहे थे। प्रारंभिक गैट-वार्ताओं में अमीर देशों ने साफ मना कर दिया था कि कपडा व्यापार को गैट व्यवस्था का अंग नहीं बनाया जा सकता। विकसित देशों मे वस्त्र उद्योग लॉबी बहुत शक्तिशाली है। वह हमेशा गैट वार्ताओ पर दबाव डालती रही है। जब लॉबी ने देखा कि कोई चारा नहीं रह गया है तो उसने 15 वर्ष की अवधि तय कर दी। लेकिन विकासशील देशों के दबाव के बाद इसे घटाना पडा। अब इस पर संतोष व्यक्त किया जा सकता है कि कम से कम 10 वर्ष के बाद वस्त्र व्यापार की कोटा प्रणाली समाप्त हो जाएगी और विकसित देशों के बाजार में हमारा कपडा आसानी से पहुँच सकेगा।

***जोशी** : लेकिन 15 से 10 वर्ष करने की एवज मे भारत को वस्त्र आयात के मामले में अमेरिका को रियायत भी देनी पडी है। अमेरिका को 17 वस्त्र उत्पादों में 45 प्रतिशत आयात शुल्क की रियायत दी गई है। इसके बाद ही अवधि कम की गई है। इस संबंध में आपका क्या कहना है?*

**प्रणव मुखर्जी** : द्विपक्षीय आधार पर इसका निर्धारण किया जाएगा। लेकिन 10 वर्ष की अवधि के दौरान हमें अपना बाजार विकसित देशों के लिए खोलना पड़ेगा। इससे लाभ भी प्राप्त कर सकते हैं। शुरू-शुरू में कुछ हानि दिखाई दे सकती है। लेकिन विकसित बाजार में पैर रखने की जगह प्राप्त होने के बाद इसकी क्षतिपूर्ति की जा सकती है। पर द्विपक्षीय आधार पर दस वर्ष के दौरान भी अनुकूल स्थिति पैदा की जा सकती है। एक हानि यह भी है कि अब हमें दवाओं के मामले में औषधि उत्पाद की पेटेंटी करनी पडेगी। पहले ऐसा नहीं था। पेटेंट की अवधि 20 वर्ष की होगी। तदनुसार हमे अपने कानून में संशोधन करना पड़ेगा। इससे दवाओं के मूल्यों में वृद्धि हो सकती है। परंतु हमने इसकी रोकथाम के उपाय भी सोचे हैं।

***जोशी** : क्या आप यह मानते हैं कि गैट व्यवस्था के तहत दवाइयाँ महँगी हो जाएँगी ? जीवन-रक्षक दवाइयाँ आम आदमी की पहुँच से बाहर हो जाएँगी?*

**प्रणव मुखर्जी** : देखिए, दवाइयों के मामले में प्रत्येक देश को यह अधिकार होगा कि वह अपना कानून बनाए। यदि उसे लगता है कि दवाइयों की ऊँची कीमतों से सामान्य या गरीब आदमी प्रभावित हो रहा है या उसके स्वास्थ्य कार्यक्रमों पर प्रतिकूल असर पड़ रहा है तो वह उचित कदम उठा सकता है, दवाइयों के दाम

निर्धारित कर सकता है। हमें यह बात भी जान लेनी चाहिए कि नई दवाओं के मूल्यों में ही वृद्धि होगी, बाजार में पहले से मौजूद दवाओं के मूल्यों में वृद्धि नहीं होगी। मैं यह भी बताना चाहूँगा कि आज जितनी दवाओं का हम प्रयोग कर रहे हैं, उनमे से 15 प्रतिशत दवाएँ ही ऐसी हैं जिन्हें पेटेंट के योग्य कहा जा सकता है। बाकी 85 प्रतिशत दवाओं का पेटेंट कराने की कोई जरूरत नही है। जहॉ तक जीवन-रक्षक दवाओ का प्रश्न है, इसके लिए सरकार को मूल्य नियत्रण प्रणाली अपनानी पडेगी। कई को यह गलतफहमी है कि दवाओं के दामों मे तत्काल वृद्धि हो जाएगी। ऐसा नही है। सात-आठ वर्ष के बाद ही इनके मूल्य बढेंगे।

***जोशी*** *प्रणवजी, राजनीतिक दृष्टि से गैट-व्यवस्था के संबंध में कई तरह की गंभीर आशकाएँ व्यक्त की जा रही है। कुछ विश्लेषको का मत है कि इसके जरिए श्वेत राष्ट्रो द्वारा नवीनतम व अति उन्नत किस्म का साम्राज्यवाद ईजाद किया जा रहा है। क्या आप इससे सहमत है?*

**प्रणव मुखर्जी** : इसका उत्तर पाने के लिए हमें गैट व्यवस्था की वैचारिक पृष्ठभूमि समझनी होगी। गैट का कुल मतलब है 'मुक्त बाजार-व्यापार व्यवस्था'। यदि आपको उदारीकृत अर्थव्यवस्था स्वीकार्य नहीं है तो गैट व्यवस्था भी स्वीकार्य नहीं है। बुनियादी रूप से गैट, मुक्त पूँजीवादी व्यवस्था का एक अभिन्न हिस्सा है। अत: पहले इसे वैचारिक स्तर पर स्वीकार या अस्वीकार करना पडेगा।

दूसरी बात यह है कि मुक्त अर्थव्यवस्था में जो देश शक्तिशाली हैं, उनका विश्व अर्थव्यवस्था पर दबदबा निश्चित तौर पर रहेगा। जब आप गैट को स्वीकार करते हैं तो मुक्त अर्थव्यवस्था या मुक्त पूँजीवादवाले देशो के प्रभाव को भी स्वीकार करते हैं। और यह भी सच है कि गैट व्यवस्था से उन्ही देशो को अधिक लाभ प्राप्त होगा जो पहले से ही ताकतवर व विकसित है। गैट का समाजवादी या नियंत्रित अर्थव्यवस्था के साथ कोई लेना-देना नहीं है।

***जोशी*** *: इसका अर्थ तो यह हुआ कि यह असंतुलन हमेशा बना रहेगा। गैट से भी विषमता दूर नहीं की जा सकेगी?*

**प्रणव मुखर्जी** : हमें यह समझना चाहिए कि हम लोग उन्ही के साथ व्यापार करते हैं जिनमे खरीदने-बेचने की क्षमता है। आखिर विकासशील देश अपना माल कहॉ बेचें? विकासशील देशों के बाजार इतने विकसित नही हैं कि वे अपना माल खपा सकें। इसलिए विकसित देशो के बाजारो को तलाशना पड़ रहा है। अत. गरीब व विकासशील देशो के हित में यही है कि वे अपना माल विकसित देशों में बेचें।

इसके अतिरिक्त हमें टैक्नोलॉजी भी चाहिए। यह हमें किसी गरीब देश से मिल नहीं सकती। इसके लिए तो हमें विकसित व उन्नत देशो के पास ही जाना पड़ेगा। उससे

हमे कच्चा माल, पूँजीगत मशीनरी, टैक्नोलॉजी आदि का आयात करना पड़ेगा।

मैं जानता हूँ, विकसित व विकासशील देशो के बीच यह एक असमान स्तर की जंग है। यह ससार ही असमान है। एक गरीब देश को क्या चाहिए? पूँजीगत माल, पूँजी, टैक्नोलॉजी, बाजार आदि और यह सब उपलब्ध है विकसित देशो के पास।

*जोशी आप समझते है कि विकसित देश गरीब देशो को स्वय के बराबर आ जाने देगे? क्या गैट मे विषमता समाप्त की जा सकती है?*

**प्रणव मुखर्जी** देखिए, विकसित राष्ट्रो के पास भी विकल्प सीमित है। उन्हे भी अपना माल बेचना है। इसलिए विकासशील व गरीब देशो के बाजारो को शक्तिशाली बनाना भी उनकी एक मजबूरी है। यह सच है कि कई क्षेत्रो मे उन्हे हमसे अधिक फायदा होगा। मिसाल के लिए, आज वे भारत क्यो आना चाहते हैं? जाहिर है अपना माल बेचने के लिए। लेकिन वे यह भी जानते है कि भारत के 90 करोड लोगो मे क्रय क्षमता होनी चाहिए। अत वे यहॉ आकर हम पर कोई अहसान नहीं कर रहे है। भारत की क्रय क्षमता बढाने के लिए यहां की खेती, उद्योग, टैक्नोलॉजी जैसे क्षेत्रो को विकसित करना पडेगा, पूँजी लगानी पडेगी। इस प्रक्रिया का फायदा भारत उठा सकता है। देखिए, इस ससार मे सबको अपनी लडाई खुद लडनी पडती है। गैट-व्यवस्था के तहत एक सीढी प्राप्त की जा सकती है, लेकिन चढना तो स्वय को पडेगा।

विश्व मे आप स्वय को काटकर तो नही रख सकते। अपने मकान की खिड़कियॉ कब तक बद रख सकते है? आपको अपना माल बेचना भी है, और दूसरे का खरीदना भी है। आज चीन जैसा देश भी गैट मे शामिल होने के लिए फिर से मचल रहा है, उसे भी इसका महत्त्व समझ आ रहा है। ऐसी स्थिति मे मेरा मत तो यही है कि गैट से बचना मुश्किल था। हम अपने दरवाजे खोलकर रखे, और दूसरों के खुलवाएँ– यही एकमात्र विकल्प था, जिसे भारत ने अपनाया। और फिर दुनिया लेन-देन पर टिकी हुई है। इसलिए गैट को पूरी तौर पर घाटे का सौदा नहीं कहा जा सकता।

***जोशी** . हालॉकि पडोसी देश चीन गैट की सदस्यता पाने के लिए उत्सुक है, लेकिन उसकी स्थिति हमसे मजबूत है। वह अमेरिका और दूसरे अमीर देशों को अपनी ऑखे भी दिखा सकता है।*

**प्रणव मुखर्जी** . इसके कई कारण है। उसके पास एक मजबूत आर्थिक स्थिति है। उसे अपनी भौगोलिक स्थिति का भी लाभ मिल रहा है। उसके आस-पास हागकाग, जापान, कोरिया, ताईवान जैसे समृद्ध देश है। अन्य देशो मे बसे चीनी उद्योगपति और व्यापारी अपनी पूँजी चीन मे लगा रहे है। चीन के विशाल बाजार का लाभ

**उन्हें मिल रहा है। लेकिन, भारत के इर्द-गिर्द देखिए, क्या है? पाकिस्तान, बंगलादेश, नेपाल आदि। क्या इन देशों का बाजार समृद्ध कहा जा सकता है? और कितने अनिवासी भारतीयों के पास विशाल पूँजी भंडार है? इसके साथ ही हमारा रवैया भी अजीब है। कुछ अनिवासी भारतीय, भारतीय कंपनियों में पूँजी लगाना चाहते थे। चारों तरफ हायतौबा मच गई। दूसरी तरफ चीन ने अपने अनिवासी चीनी पूँजीपतियो का स्वागत किया, उनके लिए दरवाजे खोले और उपयुक्त वातावरण तैयार किया। हमने शोर मचाने के अलावा कुछ नहीं किया है। इसलिए बस हमसे छूट गई।**

***जोशी** : विकसित राष्ट्रो की योजना हमेशा दस-पंद्रह वर्ष अग्रिम की होती है। आज उन्होंने गैट का शस्त्र अपनाया है, कल कोई दूसरी व्यवस्था विकासशील देशों के सामने रख देंगे। संक्षेप मे, श्वेत राष्ट्रो की रणनीति एशिया, अफ्रीका के गरीब देशों को विभिन्न तरीको से गुलाम बनाने की रही है। इसकी क्या गारटी है कि हम भविष्य में आर्थिक दासता मे मुक्त रहेगे?*

**प्रणव मुखर्जी** : अब गुलामी या उपनिवेशवाद का कोई अर्थ नहीं रह गया है। आज इस कठोर विश्व मे कोई किसी को गुलाम नही बना सकता। सबको स्वय अपने अपने हितो की रक्षा करनी होगी। कोई किसी की मदद नहीं करेगा। देखिए, भविष्य मे जिसकी टैक्नोलॉजी सर्वोच्च रहेगी वह बाजी मार ले जाएगा। रूस की टैक्नोलॉजी अमेरिका के सामने पिट गई, तो उसका हाल देख लीजिए। अत यह जरूरी नहीं है कि जो देश आज हमसे आगे हैं, कल भी रहेगे। इसकी ऐतिहासिक मिसाल हमारे सामने है। आज जापान और जर्मनी अमेरिका से टक्कर ले रहे है। दूसरे विश्वयुद्ध मे ये बिलकुल तबाह हो गए थे। दूसरी तरफ ब्रिटेन पिछड गया है। सर्वोच्चता कभी स्थिर नही रहती। इसका चक्र घूमता रहता है। लेकिन एक सावधानी जरूर बरती जानी चाहिए कि सबधित राष्ट्र उपलब्ध टैक्नोलॉजी का फायदा उठा रहा है या नही। यह बात भारत पर भी शत-प्रतिशत लागू होती है। टैक्नोलॉजी को मानव ससाधन से जोडा जाना चाहिए।

***जोशी** : लेकिन क्या विकसित देश हमे नई टैक्नोलॉजी प्राप्त करने या विकसित करने की इजाजत देगे? क्या वे तरह-तरह की अडचनें पैदा नहीं कर रहे है?*

**प्रणव मुखर्जी** : इजाजत देने या न देने का प्रश्न ही नही पैदा होता। आपको स्वयं यह सब कुछ प्राप्त करना होगा। दुनिया को 'खैरातखाना' मत समझिए। यदि आपमे क्षमता है, शक्ति है, तो नई व उपयुक्त टैक्नोलॉजी से आप लैस हो सकते हैं, वरना आपकी मदद करनेवाला कोई नहीं है।

अब देखिए, हमारे देश को क्या हो गया है? **संसार का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश**

है। लेकिन, आज राष्ट्र के महत्वपूर्ण मुद्दे हो गए हैं– धर्म, मदिर, मस्जिद, ईश्वर। दक्षेस के अन्य सदस्य राष्ट्रो का भी यही हाल है। पाकिस्तान, बगलादेश, भारत क्या हो रहा है इन देशो मे? इन देशो के कुछ लोग मध्ययुगीन समाज में जीना चाहते है, और साथ ही आधुनिकतम टैक्नोलॉजी की गुहार भी लगाई जाती है। यह कैसे सभव है? यह विरोधाभासपूर्ण स्थिति है। इसलिए दक्षिण क्षेत्रीय सहयोग (सार्क) सफल नहीं हो सका है। पडोसी देश एक-दूसरे की टॉग खींचने मे उलझ गए हैं। जब तक हम कट्टरपथी, पुराणपथी, धर्माधतावादी विचारो से मुक्त नहीं होगे, तब तक कुछ नहीं हो सकता। विकसित देशो को कोसने से काम नहीं चलेगा। आज के सक्रमणकालीन दौर मे भारत को खास सावधानी बरतने की आवश्यकता है। मदिर-मस्जिद-जातिवाद की राजनीति और मध्ययुगीन द ष्टि से मुक्त होने की आवश्यकता है।

**जोशी** *पर यह कैसे सभव है? आज का यथार्थ तो यही है।*

**प्रणव मुखर्जी** पर मैं इन सबको अस्थायी मानता हूँ। भारत के मतदाता जागरूक है। वे अपना भला-बुरा अच्छी तरह से समझते है। मुझे विश्वास है कि वे मध्ययुगीन भावावेश से काम नहीं लेगे।

हमे यह समझ लेना चाहिए कि वर्तमान स्थिति मे अमेरिका तथा अन्य विकसित राष्ट्र गैट खेल के खिलाडी है और हम सिर्फ प्यादे है। क्योकि सोवियत सघ के पतन के पश्चात एकलध्रुवीय शक्ति-व्यवस्था अस्तित्व मे आ गई है। यह कुछ समय तक रहेगी। हम भी इस सच्चाई के साथ जीना है लेकिन मुझे विश्वास है कि रूस फिर से उभरेगा। अमेरिका लबे समय तक शिखर पर नहीं रह सकता। क्षेत्रीय स्तर पर चीन भी एक क्षेत्रीय शक्ति के रूप मे उभर रहा है। भारत भी देर-सबेर शक्ति के रूप मे सामने आएगा। पर यह तभी सभव होगा जब हम भारत को 21वी सदी मे एक आधुनिक देश के रूप मे ले जाना चाहेगे और शक्तिशाली राष्ट्र के हित मे एक कुतुबनुमा की भूमिका निभाएँगे।

**जोशी** *कहा जाता है कि यदि किसी राष्ट्र का सुद ढ राजनीतिक नेत त्व नहीं है तो उसकी अर्थव्यवस्था भी लचर रहेगी वह कभी भी प्रभावशाली नही हो सकती। क्या गैट-व्यवस्था के सदर्भ मे यह टिप्पणी सटीक नही है?*

**प्रणव मुखर्जी** यह सच है, निश्चित ही हमारी नीतियाँ हमारी ताकत पर निर्भर करती है। पर मै यह नहीं कहूँगा कि हमारे पास मजबूत राजनीतिक नेत त्व नहीं है। दरअसल भारत ने एक मानवीय द ष्टि अपनाई है। हमारा एक ऐसा देश है जहॉ बदलाव की न्यूनतम कीमत देनी पडी है। हमे परिवर्तन के लिए न तो दुष्कर लबी मार्च से गुजरना पडा है, और न ही हिंसक क्राति से। दूसरे शब्दो मे, खून

नहीं बहाना पड़ा है। हमने समाज में समझौते के आधार पर बदलाव का रास्ता चुना है, सबको साथ लेने की कोशिश की है। इसलिए हमारी विकास-गति धीमी रही है। पर विकास की यह गति कम दर्दीली रही है। रूस और चीन से हमारी परिवर्तन की पद्धति भिन्न रही है। इसलिए तुलनात्मक द ष्टि से भारत की विकास गति तेज नहीं रही। पर हमे यह भी स्वीकार करना पडेगा कि हमने अपने संसाधनो का सही ढग से उपयोग नहीं किया है। जहाँ हमारी अकुशलता ने विकास की गति को प्रभावित किया है वहीं सरक्षणवाद ने भी नुकसान पहुँचाया है। हमने सभी क्षेत्रो को जरूरत से ज्यादा सरक्षण दिया है। सरक्षण की वजह से अनुसधान का क्षेत्र पिछडा रहा। उद्योगपतियो ने अनुसधान और विकास मे वाछित रुचि नहीं दिखाई। पूँजीपति, सगठित श्रमिक वर्ग, मध्यम वर्ग, सगठित कृषक वर्ग आदि ने अपने-अपने वर्गीय हितो को देखा, उनकी रक्षा की। किसी को एकीकृत राष्ट्रीय हितो की चिता नहीं थी। हमने समझौते कर-करके अपने वर्गीय निहित हितो पर राष्ट्रीय हितो की बलि दे दी। इससे भी विकास दर प्रभावित हुई है। अब हालत यह हो गई है कि सरकार मे इन वर्गीय हितो का बोझ उठाने की ताकत ही नहीं रह गई है। दरअसल इन ताकतवर और सगठित वर्गो ने राष्ट्र के साथ धोखा किया है।

***जोशी*** . *और अत मे, यह एक काल्पनिक सवाल है। मान लीजिए गैट व्यवस्था अर्थव्यवस्था का उदारीकरण या आधुनिकीकरण जैसी प्रक्रिया विफल हो जाती है तो उसके क्या परिणाम निकलेगे?*

**प्रणव मुखर्जी** यदि ये कदम नाकाम रहते है तो निश्चित ही हम सभी को इसकी बडी भारी कीमत चुकानी पडेगी।

**26 दिसम्बर, 1993**

# 'जन संचार : शैतान भी और देवता भी'

कहते हैं, किसी भी राज-पाट का जीना-मरना काफी हद तक उसकी साख, उसकी लोक-छवि पर टिका होता है। लोक-छवि को उजली रखने या उसे मटियामेट करने में लोक-प्रचार की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। राजशाही और लोकतंत्र दोनों ही तरह के राज-पाटों के शासकों ने इसका अपने-अपने ढंग से इस्तेमाल किया है। लोकतंत्र में तो इसका महत्व और भी बढ गया है। यह एक दुधारी तलवार है। जहाँ यह शासन की ढाल बनती है, वहीं विरोधियों पर आक्रमण भी करती है। यदि अच्छी तलवारबाजी न की जाए तो चलानेवाला भी इसका शिकार हो सकता है। इमरजेंसी के दौरान सरकारी जन-संचार माध्यम, विरोधियों के गुपचुप या कानाफूसी संचार माध्यमों के सामने पिट गए। सरकार बनने के बाद जनता पार्टी के तत्कालीन जनसंघ घटक के कतिपय नेताओं ने दिल्ली में यह स्वीकार भी किया कि उनकी अफवाहों ने आपातकाल के दिनों में कमाल के करिश्मे दिखाए। आकाशवाणी, दूरदर्शन जैसे शक्तिशाली माध्यम सरकार की लोक-छवि उजली और भरोसेमंद रखने में अपंग सिद्ध हुए।

इसीलिए वर्तमान इंदिरा सरकार जन-संचार माध्यमों की उपयोगिता और प्रयोग दोनों के मामले में काफी सतर्क और गंभीर है, वह सूचना-प्रसारण मंत्रालय को काफी संवेदनशील मानती है। मंत्रालय की हर कारगुजारी पर कड़ी नजर रखी जाती है। पटरी से तनिक हटने पर उसके नटों को तुरंत कस दिया जाता है। इसीलिए 1980 से लेकर 1984 तक की अवधि में तीन सूचना प्रसारण मंत्री बने। दिलचस्प पक्ष यह है कि तीनों वरिष्ठ मंत्रियो के सहयोगी मंत्रियों को भी बदला गया। पहले काबीना स्तर के मंत्री बसंत साठे रहे, उसके बाद एन के पी. साल्वे और आज हैं एच.के.एल. भगत। प्रथम कनिष्ठ मंत्री थीं सुश्री कुमुद बेन जोशी।

इसके बाद आए आरिफ मोहम्मद खान। आज भगत के सहयोगी हैं गुलाम नबी आजाद। श्री साठे के पश्चात इस मंत्रालय को काबीना स्तर का मंत्री कभी नसीब नहीं हुआ।

सुना जाता है कि इस मंत्रालय का हर मंत्री काफी फूँक-फूँककर कदम रखना चाहता है। जहॉ उसकी कोशिश विरोधियों के प्रचार का मुकाबला करने और सरकार की साख खरी रखने की रहती है, वहीं उसके वक्त का बडा हिस्सा एक-सफदरजंग (प्रधानमंत्री निवास) की नब्ज बराबर टटोलते रहने में जाता है। कहा यहॉ तक जाता है कि नब्ज के इधर-उधर होते ही सूचना मंत्रालय में खतरे की घंटी बज जाती है। तुरत-फुरत भागदौड शुरू हो जाती है। जहाँ गडबडी हुई, उसे आनन-फानन में दुरुस्त कर दिया जाता है। इसलिए इस मंत्रालय को हमेशा चौकन्ना और चुस्त रहना पड़ता है। चुनावों से पहले सरकार की लोक-छवि किस प्रकार शिखर पर बनी रहे, इसकी व्यूह-रचना इस मंत्रालय को ही करनी होती है। दूरदर्शन का काफी धूमधडाका है। अक्टूबर के अंत तक देश में औसतन हर दिन कहीं न कहीं एक रिले ट्रांसमीटर खुलता रहेगा। टी.वी केन्द्रों का जाल बिछाकर कांग्रेस ने सरकारी स्तर पर विरोधियों के खिलाफ चुनावी हमला बोल दिया है। दूरदर्शन के पर्दे पर इंदिरा गॉधी और राजीव गाँधी दोनों की तस्वीरें छाई रहती हैं। दूरदर्शन विस्तार कार्यक्रम ऐसे ही आरोपों-विवादों का शिकार हो गया है। संसद में भी इस मुद्दे पर काफी हंगामा हो चुका है।

पिछले दिनो केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री भगत से इन आरोपों-विवादों के बहाने सरकार की ताजा जन-संचार व्यूह-रचना पर खुलासा ढंग से बातचीत की गई। जवाब उनके बेबाक भी थे, औंर कुछ बेबसी लिए हुए भी। कुछ सवालों पर वे खामोश रहे। तो भी यह कहना पडेगा कि उन्होंने काफी खुले मन से सवालों के जवाब दिए।

मेरे आरंभिक प्रश्न के उत्तर में श्री भगत ने कहा कि सरकारी प्रचार माध्यमों के दुरुपयोग का आरोप बेबुनियाद है। विपक्ष के आरोप राजनीति से प्रेरित हैं। आँकड़ों से यह बात साबित की जा सकती है कि विरोधी दलों को शासक दल से अधिक समय आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर मिला है। यह बात भी गलत है कि राजीव गाँधी को दूरदर्शन पर अधिक महत्व दिया जा रहा है, उनकी छवि जरूरत से अधिक चमकाई जा रही है। प्रधानमंत्री का प्रश्न है, उन्हें प्रमुखता मिलेगी ही। दूरदर्शन और आकाशवाणी पर सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों को भी प्राथमिकता दी जाएगी। परंतु, मैं विपक्ष के इस सुझाव से भी सहमत नहीं हूँ कि आकाशवाणी-दूरदर्शन को एक स्वतंत्र निगम में बदल दिया जाए। सही बात तो यह है कि इन प्रचार माध्यमों का गलत इस्तेमाल कांग्रेस ने नहीं, विरोधी दलों ने किया है। जनता शासन के

दौरान इसका मनमाने ढग से इस्तेमाल किया गया। हम ऐसा नहीं कर रहे हैं। जनता पार्टी ने इस माध्यम को इतना तोडा-मरोड़ा कि इंदिरा गॉधी के खिलाफ मुकदमा दर्ज किए बगैर उसको आकाशवाणी पर प्रसारित किया गया।

श्री भगत ने जन-सचार माध्यमो के विभिन्न अगो और उसके उद्देश्यों पर प्रोफेसराना अदाज मे बातचीत की। उन्होने तीसरी दुनिया मे इसकी भूमिका पर चचा करते हुए भारत के सदर्भ मे इसकी बहु-आयामी भूमिका पर विशेष प्रकाश डाला। उन्होने कहा "इस तरह के विवाद सच्चाई से परे है कि दूरदर्शन का विस्तार केवल आगामी चुनाव जीतने की गरज से किया जा रहा है। जो लोग ऐसा कहते है, वे जन-सचार के दर्शन और लोकतत्र मे उसकी बहुआयामी भूमिका से अपरिचित है।"

उन्होने कहा "मेरे मन मे जन-सचार रेडियो, टी वी सिनेमा और प्रेस की सामूहिक भूमिका पर टिका हुआ है। इस इलेक्ट्रानिक युग मे इसका महत्व और रफ्तार दोनो ही बढ गए है। देश के विकास मे यह एक सीमा तक खाद का काम करता है। शिक्षा, ज्ञान और मनोरजन– तीनो ही इससे जुडे हुए हैं। तीनो में तालमेल बनाए रखना जरूरी है। भारत जैसे विशाल और पिछडे देश मे जन-संचार माध्यमो का महत्व और भी बढ गया है, क्योकि ये माध्यम परिवर्तन के वाहक भी हैं। मगर, जनसचार माध्यम– विशेष रूप से टेलीविजन– 'शैतान और देवता' दोनो की भूमिका एक साथ निभाते हैं, इसलिए काफी सावधानी की आवश्यकता रहती है।"

टेलीविजन के विस्तार की चर्चा चलने पर भगतजी काफी खुश हुए। उनके चेहरे के भावो से प्रतीत होता था कि दूरदर्शन का विस्तार कार्यक्रम उनके लिए एक तरह से अश्वमेध के समान है- देश के अज्ञान, पिछडेपन और साम्राज्यवादी देशों के कुत्सित प्रचार के विरुद्ध एक अभियान। उन्होने कहा "टेलीविजन का विस्तार हमारा महाभियान है। इससे अज्ञान ही दूर नहीं होगा, बल्कि गरीबी हटाने में भी मदद मिलेगी। दूरदर्शन के माध्यम से ही तकनीकी ज्ञान का फैलाव होगा, जिसका सीधा फायदा आम लोगों को मिलेगा।"

उन्होंने कहा "आप जानते हैं कि देश में दूरदर्शन की शुरूआत उस समय हुई, जब इंदिराजी शास्त्री-सरकार में सूचना-प्रसारण मंत्री थीं। उन्होने इसको तेजी से आगे बढाया। आज फिर इदिराजी के नेतृत्व में इसका बहुआयामी विस्तार किया जा रहा है। अब यह विलासिता की वस्तु नहीं, बल्कि आम आदमी की एक जरूरत हो गया है। यह बात सही है कि देश की 50 प्रतिशत से अधिक आबादी गरीबी की सीमा के तले है। परतु, हमारी कोशिश रहेगी कि इसके कार्यक्रम अमीर वर्ग के लिए न हों। मुख्यमंत्रियों को पत्र लिखे गए हैं कि कम्युनिटी 'टेलीविजन सेट गाँवों में

निर्धन वर्गों को उपलब्ध कराए जाएँ। सातवीं योजना में भी व्यवस्था की जा रही है। श्वेत और श्याम सेट पहले ही सस्ते किए जा चुके हैं। रंगीन टेलीविजन भी जल्दी ही सस्ते कर दिए जाएँगे। इस संबंध में निजी कंपनियों से बातचीत जारी है। एक साल में 20 लाख सेटों के निर्माण का लक्ष्य है।

"इस साल के अंत तक देश की करीब 70 प्रतिशत आबादी दूरदर्शन की गिरफ्त में होगी। तब तक इस सारे कार्यक्रम पर करीब 233 करोड़ रुपए खर्च किए जाएँगे। अगले वर्ष उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रों में भी दूरदर्शन विस्तार की विशेष योजना बनाई गई है। इस पूरे विस्तार कार्यक्रम में कम से कम कल-पुर्जे आयात किए गए हैं, ज्यादातर देशी सामानों को ही उपयोग में लाया गया है। इतने बड़े विस्तार कार्यक्रमों को देखकर अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा सभी चकित हो गए हैं। सच बात तो यह है कि इंदिराजी के नेतृत्व में 'असंभव भी संभव' बन जाता है।"

फिर बातचीत चली कार्यक्रमों की कथावस्तु और उनकी प्रासंगिकता को लेकर; इसके साथ-साथ सही ढंग के लोगों को नियुक्त किए जाने के संबंध में भी। इस मामले में भगतजी के कुछ मत बिलकुल स्पष्ट हैं। उन्होंने कहा . "यह सही है कि अच्छी योजना अगर अच्छे हाथो में न हो तो वह पिट जाती है। पहले तो मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि सरकार दूरदर्शन को क्या बनाना चाहती है। हम दूरदर्शन को भारतीय रखना चाहते हैं, किसी आयातित तर्ज पर चलाना नहीं चाहते। यह भी सच है कि दरवाजे हमारे खुले रहेंगे। सच पूछा जाए तो टेलीविजन एक तरह से भूखा जानवर है। इसे हमेशा भूख रहती है। इसलिए युद्ध स्तर पर कार्यक्रम तैयार कराए जा रहे हैं, अलग-अलग भाषाओं में बनाए जा रहे हैं।

"मैं मानता हूँ कि वर्तमान कार्यक्रमों में काफी सुधार की आवश्यकता है, इसलिए कार्यक्रमों के निर्माण का विकेन्द्रीकरण किया गया है। नई-नई कंपनियों से बातचीत चल रही है। फिल्मवालों से भी बातचीत की गई है। इसके अलावा देश के बुद्धिजीवी वर्ग से भी संपर्क रखा जा रहा है, उनका सक्रिय सहयोग प्राप्त किया जा रहा है। सरकार यह भी चाहती है कि दूरदर्शन कार्यक्रमों पर केवल शहरी कलाकार ही हावी न रहे। इसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों की प्रतिभाओं का पता लगाने और उन्हें वांछित स्थान देने के संबंध में अलग से एक विस्तार कार्यक्रम बनाया जाएगा। इस सिलसिले में विशेषज्ञों और विभिन्न भाषाओं के आंचलिक साहित्यकारों एवं कलाकारों का भी सहयोग लिया जाएगा।"

"मैं आपके इस सुझाव से सहमत हूँ कि देश की परिस्थितियों को देखते हुए दूरदर्शन का इस्तेमाल काफी सावधानी से करने की आवश्यकता है। इसके लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित दूरदर्शन काडर की आवश्यकता है। यह सुझाव काफी माकूल है कि टी.वी. जैसे जनसंचार माध्यमों से जुड़े अधिकारी, कर्मचारी और कलाकार वर्गों में

प्रतिबद्धता हो, देश की विविधता और समस्याओं का उन्हें अच्छा ज्ञान हो।"

"टी.वी. पर अच्छे और मनोरंजक के साथ-साथ संदेश देनेवाले कार्यक्रम दिखाए जाएँ, इसके लिए दिल्ली, मद्रास, बम्बई, कलकत्ता जैसे महानगरों के थिएटर ग्रुपों से संपर्क किया गया है। इसके अलावा मजदूर, किसान, शिक्षक जैसे वर्गों के लिए खास कार्यक्रम बनाए जा रहे हैं। नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य से जुड़े विषयों पर भी अनेक कार्यक्रम बनाए जा रहे हैं। यह सुझाव भी अच्छा है कि भूमि-सुधार, ऋण उन्मूलन, बँधुआ प्रथा की समाप्ति, साक्षरता जैसे बुनियादी मुद्दों पर कार्यक्रम दिखाए जाएँ, ताकि कमजोर वर्गों में सरकार द्वारा उनके फायदे के लिए बनाए गए कानूनो के प्रति जागरूकता पैदा हो।"

"सरकार की कोशिश यह भी है कि जनता में देश के इतिहास के प्रति आदर की भावना पैदा हो। इसके लिए विशेष रूप से 1857 से 1947 तक चले स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित महत्वपूर्ण घटनाओं पर टी वी फिल्म बनाने की योजना बनाई जा रही है। इस योजना को लागू करने के लिए एक संपादकीय बोर्ड बनाया गया है। इस बोर्ड में सभी विचारधाराओं के इतिहासज्ञों को शामिल किया गया है। बोर्ड के अध्यक्ष पूर्व गृहमंत्री उमाशंकर दीक्षित हैं। केन्द्र सरकार ने प्रदेश सरकारों से कहा है कि वे अपने संबंधित राज्यों में चले क्षेत्रीय स्वतंत्रता आंदोलनों पर एक-एक वृत्तचित्र बनाकर दिल्ली भेजें, जिससे कि उन्हें 14 भाषाओं में डब कराकर दूरदर्शन पर दिखाया जा सके। इससे राष्ट्रीय एकता मजबूत करने में काफी सहायता मिलेगी। हमारी तो कोशिश यह भी है कि स्वतंत्रता संग्राम पर बननेवाली टी.वी. फिल्मों में उन क्षेत्रों को भी शामिल किया जाए, जो आज पाकिस्तान में हैं। इस संबंध में मैंने अपनी पाक-यात्रा के दौरान वहाँ के लोगों से बातचीत भी की। आगे भी चर्चा जारी है। कुल मिलाकर करीब 125 विषय छाँटे गए हैं, जिन पर कार्यक्रम तैयार कराए जाएँगे।"

"वैसे भारतीय दूरदर्शन के कार्यक्रम तेजी से लोकप्रिय होते जा रहे हैं। सीमित मात्रा में कुछ देशो को कार्यक्रम निर्यात भी किए गए हैं, जिनमें कनाडा भी एक है।"

पंजाब कार्रवाई के दौरान प्रेस-मीडिया की भूमिका पर भी सरसरी तौर पर बातचीत हुई। भगतजी ने अपने विचार काफी संयत ढंग से व्यक्त किए। उन्होंने कहा . "कुल मिलाकर पंजाब में सैनिक कार्रवाई के दौरान भारतीय प्रेस की भूमिका सहयोगी और रचनात्मक रही। परंतु, सरकार को अनुभव भी खूब हुए हैं। विदेशी प्रेस का रवैया पक्षपातपूर्ण रहा है। आमतौर पर देखा यही गया है कि साम्राज्यवादी सचार माध्यम तीसरी दुनिया के प्रति बुनियादी रूप से पूर्वाग्रहों से जकडे रहते हैं। पंजाब के मामले में भी भारत की सही तस्वीर नहीं दर्शाई गई। इसलिए ताजा अनुभवों को ध्यान में रखकर सरकार दूरदर्शन सहित अन्य जन-संचार माध्यमों

को भी प्रभावशाली और मजबूत बनाने के संबंध में सोच रही है। इस नई जन-संचार व्यूहरचना के क्रांतिकारी परिणाम आनेवाले समय मे दिखाई देंगे। अब इसमें संदेह नहीं है कि विश्व के जन-सचार मानचित्र पर भारत ने अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है।"

**22 अगस्त, 1984**

# आँखों में झूलते बेशुमार स्वप्न

कुछ मंत्रियों की नियति हमेशा तलवार की धार पर चलने की रहती है। इनमें शामिल हैं ग हमंत्री, वित्तमत्री, सूचना और प्रसारण मंत्री और रेलमंत्री। विवाद की आग में कब कौन झुलस जाए और उसे अपने पद की बलि देनी पडे, इस द ष्टि से चारों मंत्रियों में से कोई अपवाद नहीं है। कुछेक ही ऐसे नेता हुए हैं जिन्होंने इन मंत्रालयों में चैन से पॉच वर्ष का कार्यकाल पूरा किया हो, वरना, इंदिरा गाँधी से लेकर विश्वनाथ प्रतापसिंह की सरकारों तक, इन मंत्रालयों के मंत्री जब तक रहे, बेहद विवादास्पद बने रहे, हमेशा उनके सिरों पर बर्खास्तगी की तलवार लटकी रही। बर्खास्तगी नहीं हुई तो तबादले होते रहे। इनमे सूचना और प्रसारण मंत्री की स्थिति सबसे नाजुक बनी रहती है, क्योंकि यह मंत्री हमेशा जनता एवं मीडिया के फोकस मे रहता है। कभी इसे अखबारों की मार सहनी पड़ती है, कभी सांसदों की लताड, और कभी जन-आक्रोश का सामना करना पड़ता है। जरा-सा कवरेज कम मिले तो विरोधी दल, मंत्री के खिलाफ प्रदर्शन शुरू कर देते हैं इस्तीफे की मॉग शुरू हो जाती है।

वर्तमान सूचना और प्रसारण राज्य मंत्री अजित कुमार पांजा भी इसके अपवाद नहीं हैं। पिछले एक वर्ष मे उन्हें कई दफे विवादों की चपेट मे आना पडा है। पहले वे अपनी कनिष्ठ मत्री डॉ गिरिजा व्यास के साथ अनबन की चर्चा के शिकार हुए; संसद के तकरीबन हर सत्र में उनकी खिचाई हुई। प्रधानमंत्री नरसिंह राव ने स्वयं दूरदर्शन के कार्य पर एक बार असंतोष जाहिर कर दिया। विदेशी टी वी का आक्रमण, केबल टीवियों के जाल, मंडी हाउस मे धारावाहिक कांड आदि को लेकर पांजा की आए-दिन खिंचाई होती रहती है। कई दफे उनसे इस्तीफे की भी माँग की गई। लेकिन उनमें बला की सर्वाइवल इन्सटिंक्ट है। वे कहते हैं, वे अब तक इस तरह के नौ झटकों का सामना कर चुके हैं। इन झटकों में उनके मंत्री-पद

**की जान जाते-जाते बची है। राजीव गाँधी की सरकार मे भी वे इसी मंत्रालय में राज्यमंत्री थे। तब भी वे विवादों का निशाना बने थे।**

**अबकी दफे झटका जरा ज्यादा गहरा है। पटियाला आकाशवाणी केंद्र के इजीनियर एम.एल. मनचंदा की हत्या ने संपूर्ण मंत्रालय और इसके अधीनस्थ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया संसार – दूरदर्शन एवं आकाशवाणी – को हिलाकर रख दिया है। आकाशवाणी और दूरदर्शन के कर्मचारी सघों ने पांजा के इस्तीफे की माँग कर डाली। जनता दल के नेता एवं पूर्व प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रतापसिंह ने भी इसका समर्थन किया है। हालाँकि, पश्चिम बगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु ने सिह की माँग से असहमति जताई है। पांजा के भविष्य को लेकर एक बहुआयामी ड्रामा प्रधानमंत्री सचिवालय, ग ह मंत्रालय, सूचना-प्रसारण मंत्रालय और आकाशवाणी-दूरदर्शन कर्मचारी संघों के बीच खेला गया है। देखनेवालों की उत्सुकता यह है कि इस झटके से बचने के लिए पांजा किस चमत्कार का प्रयोग करते हैं? इन्हीं सवालों को लेकर पेश है श्री पांजा के साथ हुई मुलाकात के जरूरी अश .**

***जोशी : मनचंदा हत्याकाड को लेकर आपसे इस्तीफे की मॉग की गई है। क्या आप नैतिक आधार पर इस्तीफा देकर एक उदाहरणीय कदम उठाना पसद करेंगे?***

**पांजा** . मैं इसी वक्त इस्तीफा देने के लिए तैयार हूँ। लेकिन एक गारटी मुझे देनी होगी कोई मुझे इसका यकीन दिला दे कि मेरे इस्तीफा देने से भविष्य में किसी भी दूरदर्शन या आकाशवाणी के कर्मचारी की हत्या नहीं होगी। कोई यह गारंटी देने के लिए कम से कम आगे तो आए।

***जोशी : कर्मचारी सघों का आरोप है कि आपके मत्रालय ने सवेदनशील क्षेत्रों में तैनात कर्मचारियो को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान नहीं की। इस मामले मे विशेष रूप से आपको जिम्मेदार ठहराया जा रहा है।***

**पांजा** : यह कहना गलत है कि सुरक्षा के कदम नहीं उठाए गए। ग ह मत्रालय से पूरा तालमेल रखा गया है, इस समय भी रखा जा रहा है। मनचदा के अपहरण के तत्काल बाद जो भी मुनासिब उपाय सभव थे, किए गए।

(इसके बाद श्री पाजा ने 19 मई से लेकर 27 मई के बीच उठाए गए सुरक्षात्मक कदमो और ग ह मत्रालय के साथ तालमेल का ब्यौरा दिया और यह साबित करने की कोशिश की कि उन्होने मनचदा के मामले मे एकनिष्ठता से काम किया है।)

उनकी जान बचाने के लिए कोई कसर बाकी नहीं छोडी गई। इसके बाद भी उन्हे मेरा इस्तीफा चाहिए, तो मै तैयार हूँ। पर वे भविष्य की गारटी दे।

***जोशी : क्या ऐसी गारटी देना किसी के लिए सभव है?***

**पांजा** : तब इस्तीफा माँगने और देने का कोई औचित्य भी नहीं है। मेरे इस्तीफे से यही संकेत मिलेंगे कि सरकार, कर्मचारी संघों के सामने नहीं बल्कि उग्रवादियों के समक्ष झुक गई। इससे लोकतांत्रिक व्यवस्था की कमजोरी ही जाहिर होगी।

***जोशी** : कांग्रेस सरकार को सत्ता में आए एक बरस बीत रहा है। पिछले साल आपने कहा था कि प्रसार भारती विधेयक को जल्दी ही संसद में रखा जाएगा। अभी तक उसने दिन का उजाला नहीं देखा है। क्या बात है?*

**पांजा** : प्रसार भारती विधेयक को लेकर मैं भी उतना ही चिंतित हूँ जितना कि मीडिया के लोग। लेकिन, कुछ बुनियादी अड़चनें हैं जिन्हें अभी तक दूर नहीं किया जा सका है। आशा है कि इन अडचनों को जल्दी ही दूर कर दिया जाएगा।

***जोशी** : क्या उम्मीद की जाए कि वर्षाकालीन या शीतकालीन सत्र में इस विधेयक को संसद में रख दिया जाएगा?*

**पांजा** : मैं इस संबंध में कोई निश्चित तारीख नहीं दे सकता क्योंकि विश्वनाथ प्रतापसिंह की सरकार ने इस विधेयक को पुख्ता नहीं बनाया है। इसमें कई ऐसी खामियाँ रह गई हैं जिन्हें दूर किया जाना बेहद जरूरी है। मिसाल के तौर पर, आकाशवाणी और दूरदर्शन की बुक-वैल्यू लगभग 12 हजार करोड रु से अधिक है, मार्केट वैल्यू इससे कई गुना ज्यादा है। विधेयक में इस संपत्ति की रक्षा का कोई प्रावधान नहीं है। विधेयक के अस्तित्व में आ जाने के बाद नए संचालक इस संपत्ति को लीज पर दे सकते हैं जबकि इस संपत्ति में सरकार यानी जनता का पैसा लगा है। वित्त मंत्रालय ने निर्देश दिया है कि इस संपत्ति की मार्केट वैल्यू आँकी जाए। यह संपत्ति सरकार के पास रहनी चाहिए। सरकार को ही अधिकार होगा कि वह इसे लीज या किराए पर दे या नहीं। दूसरी समस्या कर्मचारियों के संबंध में है। आज आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के 50 प्रतिशत कर्मचारी सरकार में रहना चाहते हैं जबकि शेष 50 प्रतिशत प्रसार भारती के अंतर्गत काम करना चाहते हैं। प्रस्तावित विधेयक में इस द ष्टि से उपयुक्त प्रावधान नहीं है। ऐसी ही कुछ और खामियाँ हैं। इन्हें तेजी से दूर किया जा रहा है। इसके बाद ही सदन में इसे रखा जाएगा।

***जोशी** : देश मे आजकल केबल टीवी का जाल फैल गया है। ये निजी केबल टीवीवाले जो चाहे, वो करते हैं। क्या सरकार इनके संबंध में कुछ सोच रही है?*

**पांजा** : सबसे पहले तो मैं यह साफ कर देना चाहता हूँ कि इन पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता क्योंकि इससे हजारों लोगों को रोजगार भी मिल रहा है। लेकिन, सरकार चाहती है कि इन्हें कानून-कायदे के तहत लाया जाए। केबल टीवी के संबंध में केबीनेट ने एक नोट तैयार किया है जिसे कानून मंत्रालय के पास भेजा

गया है। उसकी सिफारिशों को वापस केबीनेट के पास भेजा जाएगा। केबीनेट की मंजूरी मिलते ही एक विधेयक संसद में लाया जाएगा। सरकार चाहती है कि इन्हे बेलगाम न छोड़ा जाए। आज सरकार को केबल टीवीवालो से एक पाई भी नहीं मिल रही है जबकि यह बिजनेस खूब फल-फूल रहा है। कुकुरमुत्ते की तरह यह गली-कूचे-बस्ती मे फैल गया है। सरकार चाहती है कि इसका स्वस्थ विकास हो। इस पर बाकायदा टैक्स लगाया जाएगा। लेकिन इसकी कुछ श्रेणियॉ की जा रही हैं। उसी हिसाब से टैक्स वसूली होगी। इसमे कार्यरत लोगो की सेवाओ को भी नियमित कराने की व्यवस्था की जा रही है। केबल टीवी पर दिखाए जानेवाले विज्ञापनों पर भी कर लगेगा। शिकायतें मिल रही है कि कुछ केबल टीवीवाले गलत किस्म की फिल्म भी दिखाते रहते हैं। विधेयक बन जाने के बाद इन पर भी सेंसर के नियम-कानून लागू होंगे।

केबल टीवी वाले अधाधुंध ढंग से तार बिछाते हैं। इससे बिजली एव टेलीफोन के तार प्रभावित होते हैं। व्यवस्था अब यह होगी कि तार बिछाने की जिम्मेदारी स्थानीय प्रशासन को सौंप दी जाएगी। राज्य सरकारो को अधिकार दे दिया जाएगा कि वह अपने विभाग से केबल लगवाने की व्यवस्था करें। केबल टीवीवाले को सिर्फ आवेदन करना पडेगा।

***जोशी** : आज देश मे तेजी से विदेशी सूचना-साम्राज्यवाद बढता जा रहा है। सी एन एन, स्टार टीवी, बीबीसी जैसी विदेशी टीवी कपनियों के कार्यक्रम तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं। इस चुनौती का सामना करने के लिए आपके मत्रालय की क्या रणनीति है?*

**पांजा** : सबसे पहली बात यह है कि इसे रोका नही जा सकता, और न ही यह उचित है। पर मूक दर्शक की तरह खडे रहें, यह भी ठीक नही है। इसलिए विदेशी टीवी का सामना करने के लिए दूरदर्शन के कार्यक्रम और तकनीक मे क्रांतिकारी सुधार की बेहद आवश्यकता है। इससे प्रतियोगिता पैदा होगी। वैसे मैं यह स्वीकार करता हूँ कि वर्तमान में दूरदर्शन तथा बीबीसी या स्टार टीवी के बीच असमान प्रतियोगिता है। तैयारी की द ष्टि से दूरदर्शन काफी पीछे है। इसलिए कार्यक्रमो के निर्माण एवं संयोजन की नई रणनीति बनाई जा रही है। समाचारों का कवरेज बढाने तथा ज्यादा से ज्यादा फुटेज या स्पॉट कवरेज का प्रयोग करने के सबध में सोचा जा रहा है। दूरदर्शन-प्रशासन में भी सुधार किया जा रहा है। दूसरी तैयारी यह की जा रही है कि निजी क्षेत्रों को टेलीकास्टिंग-राइट दिए जाएँगे। निजी प्रसारणकर्ताओं से उम्मीद की जाएगी कि वे ऐसे कार्यक्रम बनाएँ जो कि विदेशी टीवी कार्यक्रमों का मुकाबला कर सके, स्वदेशी दर्शकों में लोकप्रिय बन सकें और अपनी विश्वसनीयता पैदा कर सकें। सबसे पहले महानगरों में निजी क्षेत्र द्वारा प्रसारण की व्यवस्था की

जाएगी। दूरदर्शन और निजी क्षेत्र के बीच समय का विभाजन कर दिया जाएगा। लेकिन फिलहाल अलग मे चैनल देना सभव नहीं है। इसके लिए काफी धन की आवश्यकता है।

विदेशी टीवी कपनियो से उत्पन्न चुनौतियो को ध्यान मे रखकर केबीनेट ने एक नोट भी तैयार किया है। इस नोट को राय के लिए विभिन्न मत्रालयो के पास भेजा है वित्त मत्रालय से विशेष राय मॉगी है। मत्रालय की राय प्राप्त होने के बाद एक व्यापक व पुख्ता रणनीति तैयार की जाएगी। वैस मै यह विश्वास दिला सकता हूँ कि इस मुकाबले मे भारत पिछडेगा नही। अपने इस विश्वास के समर्थन मे भारतीय फिल्मो का उदाहरण दिया जा सकता है। आज भारत का फिल्म उद्योग विश्व के फिल्म उद्योग से टक्कर ले रहा है। विकसित देश भी भारतीय फिल्म निर्माताओ, निर्देशको और कलाकारो का लोहा मानते हैं। यह स्थिति तभी सभव हो सकी जब फिल्म उद्योग को प्रतिस्पर्धात्मक बनाया गया, उसकी तकनीक मे सुधार किया गया, निजी क्षेत्रो का पूँजी नियोजन हुआ। यही बात टी वी क्षेत्र पर लागू होती है। अत विदेशी टी वी की चुनौतियॉ एक तरह से भारतीय टी वी के लिए वरदान का काम करेगी।

***जोशी*** *कुछ अनुभव ऐसे भी है कि विदेशी टी वी प्रसारण भारत की छवि ठीक तरह से प्रस्तुत नही कर रहे है। भारतीयो मे सस्कृति एव विकास को लेकर हीनता के भाव पैदा किए जा रहे है। इस सबध मे आपका क्या कहना है?*

**पाजा** आपका कहना सही है। इस तरह की कुछ घटनाएँ हमारे नोटिस मे आई हैं। बीबीसी और स्टार टीवी से इन घटनाओ की शिकायत भी की गई है। तद्नुसार इन्होने कुछ सशोधन भो किया है। मै यह मानता हूँ कि यह एक दिन का मामला नही है। रोजाना ही विकासशील देशे को ऐसी घटनाओ का सामना करना पडता है और पडता रहेगा। इसलिए इसका स्थायी हल जरूरी है। इस सिलसिले मे भारत ने यूनेस्को के अध्यक्ष को लिखा है कि विकसित देशो की टीवी कपनियो द्वारा भारत सहित अन्य विकासशील देशो के खिलाफ किए जा रहे दुष्प्रचार को रोकने के लिए अतरराष्ट्रीय स्तर पर कोई कारगर कदम उठाए।

***जोशी*** *भारत के सीमात इलाको मे पाकिस्तानी टीवी एव रेडियो के सास्कृतिक हमले तेज हो रहे है। इसका प्रभाव भी हो रहा हैं। आपके मत्रालय ने इसका जवाब देने के लिए क्या रणनीति तैयार की है?*

**पांजा** पाकिस्तानी सास्कृतिक आक्रमणो का मुकाबला करने के लिए एक व्यापक योजना तैयार की गई है। पाकिस्तान के अलावा दूसरे पडोसी देशो से लगे सीमात क्षेत्रो के लिए भी प्रसारण रणनीति तैयार की गई है। यह एक वृहद योजना है, इस पर फिलहाल विस्तार से चर्चा नही की जा सकती।

***जोशी : सूचना-प्रसारण मंत्रालय का कार्यभार सँभाले फिलहाल आपका एक वर्ष पूरा होने जा रहा है। कामकाज को लेकर आपके मत्रालय की तीखी आलोचना हो चुकी है। विशेष रूप से धारावाहिको के स्केडल ने आपकी मडी हाउस (दूरदर्शन प्रशासन कार्यालय) को हिला दिया है। आप स्वय भी इस विवाद से नहीं बच सके हैं। अनियमितताओ के सबध मे आपका क्या कहना है?***

**पांजा** आप जानते ही हैं कि धारावाहिको को पास कराने के सबध मे व्याप्त अनियमितताओ की जॉच का काम सी बी आई को सौंप दिया गया है। एक कार्यक्रम नियत्रक को निलबित किया गया है। सी बी आई की जॉच जारी है। जो नतीजे सामने आएँगे उस हिसाब से कार्रवाई की जाएगी, फिलहाल यही कहा जा सकता है। जहॉ तक मत्रालय की उपलब्धियो का प्रश्न है, इससे सबधित विभागो ने पूरी कुशलता के साथ कार्य किया है।

पिछले एक वर्ष मे आकाशवाणी और दूरदर्शन ने अपने प्रसारण क्षेत्रो का विस्तार किया है। आज देश के 85 प्रतिशत भूभाग और करीब 96 प्रतिशत लोगो तक आकाशवाणी पहुँच चुका है। 125 रेडियो केंद्र कार्यरत है। 169 भाषाओ और बोलियो मे समाचारो एव टिप्पणियो का प्रसारण किया जा रहा है।

आपने देखा कि आकाशवाणी के समाचार प्रसारण मे क्रातिकारी परिवर्तन किया गया है। समाचार प्रभात और मॉर्निंग न्यूज श्रोताओ मे काफी लोकप्रिय हुए है। हिन्दी क्षेत्रो मे समाचार प्रभात को काफी पसद किया जा रहा है। देश मे प्रसारण की भावी आवश्यकताओ को देखते हुए आठवी पचवर्षीय योजना मे 10 हजार 800 करोड रुपए की राशि का प्रस्ताव रखा गया है। सातवीं पचवर्षीय योजना मे सिर्फ 1524 करोड रुपए की व्यवस्था थी। आठवी योजना मे सिर्फ दूरदर्शन के विस्तार व सुधार के लिए ही 7437 करोड रुपए का प्रस्ताव है।

मेरे कार्यकाल की एक सबसे बडी उपलब्धि ससद की कार्रवाई का प्रसारण रही है। आप जानते ही हैं कि दूरदर्शन पर दोनो सदनो के प्रश्नोत्तरकाल की कार्रवाई दिखाई जा रही है। इसके अलावा महत्वपूर्ण भाषणो को रिकॉर्ड कर उनका भी प्रसारण किया जाता है। ससद की कार्रवाई का प्रसारण एक अच्छा प्रयोग रहा है। लेकिन इसमे सुधार की गुजाइश है। जब कोई नया काम किया जाता है तो विवादो और आलोचनाओ का शिकार होना ही पडता है। लेकिन इसके भय से कोई काम तो नहीं रोका जा सकता।

**10 अक्तूबर, 1993**

# 'यात्रा-अधूरी है'

***जोशी** : एक राजनेता के रूप में आप स्म तियों को किस द ष्टि से देखते हैं?*

**प्रणव मुखर्जी** : स्म तियाँ, केवल विगत की जानकारी-भर नहीं है अपितु एक कल्पना है, एक चिन्तन हैं। विचार एव संवेदनशीलता के धरातल पर इन्हें जीवित रखा जाता है। विभिन्न प्रकार से ये जीवन मे प्रतिबिम्बित होती रहती हैं। सामान्यत. इन्हे घटनाओं से संबंधित माना जाता है पर मै इन्हें अपने अनुभव और चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में देखता हूँ।

***जोशी** : कभी आपके जी में नॉस्टलजिया की हुडक उठती है? वर्तमान से विश्राम पाकर अतीत के साथ खेलने लगूँ, ऐसा मन होता है कभी ?*

**प्रणव मुखर्जी** : एक हद तक यह सही है। कभी नॉस्टलजिक बनने की तीव्र इच्छा होती है। स्म तियो का रेला उमड आता है। उन सभी घटनाओ, संबंधों और पात्रों के साथ जीवन्त क्षण बिताने की इच्छा होती है जो मुझसे जुडे रहे है। ऐसे क्षण अच्छे लगते है। इन क्षणो से मुझे अनूठा आनद प्राप्त होता है।

***जोशी** : कौन-सी स्म तियॉ हैं जो आपको सबसे अधिक झकझोरती हैं?*

**प्रणव मुखर्जी** : सबसे अधिक स्म तियॉ मुझे बचपन की अच्छी लगती हैं। पिताजी के साथ बीतने वाले दिन। स्कूल के दिन। अध्यापक के साथ अनुभव। इन सभी को याद करके बहुत सुख मिलता है। विशेष रूप से 6-7 वर्ष से लेकर 15-16 साल की अवधि की स्म तियो की मुझ पर गहरी छाप है।

***जोशी** : तब की कोई सबसे दिलचस्प घटना?*

**प्रणव मुखर्जी** : दिलचस्प घटना तो खैर क्या है। देखिए, घर में मैं सबसे छोटा

था। इसका मुझे हमेशा लाभ मिलता था। माता-पिता दोनो का मै लाडला हुआ करता था। पिताजी राजनीति से जुडे हुए थे। आजादी की लडाई मे उन्हे कई वर्ष जेल में रहना पडा। वे अक्सर जेल आया-जाया करते थे। जब मैं 6-7 वर्ष का था तब उन्हे गिरफ्तार किया गया था। व ए आई सी सी के सदस्य थे। उन्होने हमारे क्षेत्र में काग्रेस की स्थापना की थी। 1929 से वे निरतर सक्रिय रहे। मुझे एक घटना याद है। वे बबई अधिवेशन मे भाग लेकर लौटे थे। एक रात को मॉ ने मुझसे कहा कि पिताजी आ गए है। मै और सभी बहन-भाई बिस्तर से उठ खडे हुए। इसमे हमारा एक स्वार्थ था। हमे आशा थी कि वे इस बार भी हमारे लिए जरूर कई चीजे लाए होगे। हर दफे वे ऐसा ही किया करते थे। जब भी बाहर जाते, हमारे लिए जरूर कुछ लाया करते थे। लेकिन हमारी उत्सुकता जल्दी ही ठडी पड गई। पिताजी ने कहा कि वे इस बार हमारे लिए कुछ नही लाए है। बबई से उन्हे कही और जाना पडा। वहॉ उन्हे काफी कडी मेहनत करनी पडी। वे काफी थके दिखाई दिए। कुछ देर रुकने के बाद वे दुबारा चले गए। फिर वे गिरफ्तार कर लिए गए। इससे पहले भी वे गिरफ्तार हो चुके थे। और उस दिन हमे बगैर किसी चीज के सब्र करना पडा। लेकिन तबके राजनीतिक परिवारो की यही कहानी, यादे हुआ करती थीं।

स्कूली शिक्षा मैने गॉव मे प्राप्त की। कॉलेज की शिक्षा मैने जिला कॉलेज मे पाई। कॉलेज के दिनो का एक पात्र मुझे सबसे अधिक याद रहता है। और वे है मेरे प्रधानाचार्य। वे एक अनूठे शिक्षक ही नही थे विद्वान भी थे। उन्होने मुझे यह सिखाया था कि किस प्रकार एक अच्छा स्पीकर बना जा सकता है। स्नातक स्तर तक मै बडा शर्मीला छात्र था। लेकिन उन्होने मुझे उकसा-उकसाकर इससे मुक्ति दिलाई। वाद-विवाद प्रतियोगिता मे मुझे प्राय झोक दिया जाता था। एक घटना मुझे याद है। एक दफा मै बेहद नर्वस हो गया। चारो तरफ लडकियॉ थीं और मैं घबरा गया। समझ मे नहीं आ रहा था कि मुझे क्या बोलना चाहिए। मेरे बारे मे ये लडकियॉ क्या सोचेगी। होस्टल का जीवन भी मुझ बेहद पसद था। सादा जीवन था लेकिन सब मिल-जुलकर रहा करते थे। बडा मजा आता था।

**जोशी** *कॉलेज का जीवन रोमास के लिए हमेशा चर्चित रहता है। तब आपके साथ कोई सुखद या दुखद घटना घटी?*

**प्रणव मुखर्जी** . जरूर घटी। जब मैने बी ए पास किया तो तत्काल ही मै प्रेम के चक्कर मे पड गया। बस यह पहला और अतिम प्रेम था। जिससे प्रेम किया उसके साथ शादी कर ली। शिक्षा पूरी करने से पहले ही हम लोगो की शादी हो गई। यह अतरजातीय विवाह था। मेरी पत्नी कायस्थ परिवार से है और मै ब्राह्मण घर से।

**जोशी** *उस जमाने मे इसका विरोध नही हुआ?*

**प्रणव मुखर्जी** नही। दोनो के परिवार एक-दूसरे से परिचित थे। मेरे बडे भाई

का विवाह ब्राह्मण परिवार में ही हुआ है। मेरी बहनों ने भी दूसरी जाति में विवाह किया है। अपनी पसंद का। इस दृष्टि से मेरा परिवार हमेशा से प्रगतिशील रहा।

*जोशी : इस दृष्टि से आप भाग्यशाली रहे।*

**प्रणव मुखर्जी** : बिल्कुल।

*जोशी : विद्यार्थी जीवन में आपका क्या स्वप्न था?*

**प्रणव मुखर्जी** : वास्तव में मेरा स्वप्न एक शिक्षक बनने का था। मैं अपने प्रधानाचार्य से काफी प्रभावित था। इसलिए मेरी इच्छा कॉलेज का प्रधानाचार्य बनने की रहती थी। यही मेरा स्वप्न था। यही मेरी महत्वाकाक्षा थी। और एक दिन मेरा स्वप्म भी साकार हुआ। मै एक डिग्री कॉलेज का प्रिंसीपल भी बना। लेकिन, नियति को कुछ और ही स्वीकार था। घटनाऍ मुझे कहॉ से कहॉ ले गईं।

*जोशी : आपने राजनीति का जीवन कब आरभ किया?*

**प्रणव मुखर्जी** : ईमानदारी से कहूँ तो मुझे राजनीति से लगाव नहीं था। मैं अपने पिताजी की व्यस्तता से परिचित था। वे हमेशा लोगों से घिरे रहा करते थे। हम बच्चो के लिए उनके पास समय ही नही था। अत ऐसे जीवन से मुझे चिढ थी। लेकिन राजनीति पर नजर जरूर रखा करता था। पिताजी से इस पर तर्क-वितर्क भी किया करता था। लेकिन 1962 मे चीनी आक्रमण ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई मेरे जीवन में। मैंने सोचा कि हमारी स्वतंत्रता छिन सकती है। क्योंकि मैं पिताजी के त्याग को देख चुका था, आजादी की लडाई के दौरान हमारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई थी, अत· चीनी आक्रमण को देखकर मैने कॉलेज और विश्वविद्यालय के छात्रो को संगठित किया। जवानों को सहायता पहॅुचाने के लिए आदोलन चलाया। उसी दौरान मैं एक वरिष्ठ अध्यापक डॉ पी सी चदर के सम्पर्क में भी आया। आगे चलकर डॉ चंदर केन्द्रीय मंत्री भी बने। डॉ चंदर के कहने पर मैंने गैर-वामपंथी छात्र सगठन का गठन किया। बाद मे इस सगठन से प्रियरंजन दासमुंशी, सुब्रतो मुखर्जी जैसे युवा नेता निकले। बाद मे यही सगठन कांग्रेस की छात्र शाखा मे परिवर्तित हो गया। छात्रों को सगठित करने के लिए मैं जान-बूझकर अपना छात्र-जीवन लंबा करता रहा। पहले मैने राजनीति विज्ञान में एम ए किया। इसके बाद लॉ किया। इसके साथ ही इतिहास में एम ए की परीक्षा दी। सक्रिय राजनीति की शुरूआत 1966 में हुई जब अजय मुखर्जी ने बगला काग्रेस की स्थापना की। मैं इस पार्टी में शामिल हो गया। 1969 में मै राज्यसभा के लिए चुन लिया गया। तब से मैं पूर्णकालिक राजनीतिज्ञ बन गया।

*जोशी : आपने किस स्वप्न के साथ राजनीतिक् जीवन की शुरूआत की?*

**प्रणव मुखर्जी** : आपको बतला ही चुका हूँ कि मेरी राजनीति में अरुचि थी। मैं एकेडेमिक जीवन जीना चाहता था। प्रिंसिपल बनने के बाद वह सपना पूरा हो गया। लेकिन जब अजय बाबू को काग्रेस से निकाल दिया गया तो मुझे गहरा दुख हुआ। मैने इसका विरोध करने का फैसला किया। लेकिन जैसे-जैसे मै राजनीति में सक्रिय होता गया मेरा स्वप्न भी स्पष्ट होता चला गया। इतिहास का छात्र होने के नाते मै जानता था कि एक मजबूत भारत के लिए एकता की आवश्यकता है और मानता था कि अकेली काग्रेस ही यह एकता, सुदृढता देश को प्रदान कर सकती है। इस स्वप्न को साकार करने के लिए मै सक्रिय हो गया। आज भी सक्रिय हूँ। मै भारत को विश्व की एक 'महाशक्ति' बनाना चाहता हूँ। आर्थिक और सैन्य दोनो ही दृष्टियो से भारत को महाशक्ति बनाने का स्वप्न है।

***जोशी*** *किस दार्शनिक और राजनेता ने आपको सबसे अधिक प्रभावित किया ?*

**प्रणव मुखर्जी** दोनो ही भारतीय है। एक दार्शनिक के रूप मे गौतम बुद्ध ने और नेता, राजनेता एव शासक के रूप मे अशोक ने सबसे अधिक प्रभावित किया। इसके बाद समुद्रगुप्त ने।

***जोशी*** *आधुनिक काल मे आप सबसे अधिक किससे प्रभावित हुए है?*

**प्रणव मुखर्जी** . जहॉ तक दार्शनिक का प्रश्न है मै महात्मा गॉधी से प्रभावित हूँ। राजनेता के सदर्भ मे मै खुद को इदिरा गॉधी से प्रभावित मानता हूँ।

***जोशी*** *. आपने श्रीमती गॉधी के साथ काफी समय तक काम किया है। उनके समय की कोई अनूठी स्मृतियॉ?*

**प्रणव मुखर्जी** : अनेक रोचक घटनाऍ है। यहॉ मैं एक-दो घटनाओ का उल्लेख करूँगा। उन्हे अपने देश पर अपार गर्व था। इसकी एक घटना याद आती है। एक बार भारत ने विश्व क्रिकेट प्रतियोगिता जीती। तब मैं दिल्ली से बाहर था। शायद यह 1982-83 का किस्सा है। मै तब गौहाटी मे था। मुझे इदिराजी ने फोन किया। फोन पर उनका विजयोल्लास फूट रहा था। उन्होने मुझे बताया कि भारत ने विश्व मैच जीत लिया है, मै ये आनद और विजय के क्षण तुम्हारे साथ बॉटना चाहती थी। दूसरी घटना 1978 की है। काग्रेस का विभाजन हो चुका था। वे विभाजित काग्रेस की अध्यक्ष चुनी गई थी। उस दिन मैं उनके साथ कार मे बैठकर राजपथ से गुजर रहा था। तभी अमेरिकी राष्ट्रपति कार्टर भी उधर से गुजरनेवाले थे। जाहिर है हमारी कार रोक ली गई। ऐसे क्षणो मे उन्होने भावुक होकर कुछ कहा। एक तरह से यह उनकी सॉलीलॉकी (स्वकथ्य) थी। वे कहने लगीं कि यह पहला अवसर है जब वे एक विदेशी अतिथि का स्वागत नहीं कर रही हैं वरना 1947 से उन्होंने हमेशा विदेशी अतिथियो का स्वागत किया है। यह सच भी था। आजादी के बाद प

नेहरू की पुत्री के रूप मे उन्होने विदेशी अतिथियो का स्वागत किया। इसके बाद वे प्रधानमत्री के रूप मे स्वागत करती रही थीं। लेकिन ऐसे विडबनापूर्ण क्षणो मे भी वे प्रसन्न थीं। उनमे अपूर्व धैर्य और महान देशभक्ति थी। मेरा यह मत है कि उनसे अधिक दूसरा कोई देशभक्त नही था। इस सदर्भ मे मुझे तत्कालीन अमेरिकी मत्री किसिजर की टिप्पणी याद आती है। वे इदिराजी के बारे मे कहा करते थे कि इदिरा गॉधी उग्र रूप से भारतीय है। मेरा कहना है कि इदिरा गॉधी उग्र रूप से देशभक्त थी।

***जोशी*** *आपको किस तरह की पुस्तके पसद है?*

**प्रणव मुखर्जी** मुझे उपन्यास सबसे अधिक पसद है। मै समझता हूॅ कि मै तकरीबन सभी बगला उपन्यास पढ चुका हूॅ। कॉलेज के दिनो मे मुझे ताराशकर बद्योपाध्याय विभूतिभूषण बनर्जी और शरदेन्दु बनर्जी बेहद प्रिय थे। शरत बाबू मुझे प्रिय थे। रवीन्द्रनाथ के उपन्यास भी अच्छे लगते हैं। समकालीन उपन्यासकारो मे सुनील गागूली सिरशेन्दु समरेश बोस आदि मेरे प्रिय लेखक है। विदेशी कथाकारो मे मुझे मोपासॉ बेहद प्रिय है। पर्लबक, हेमिग्वे, इरविन वैलेस आदि को भी पढता रहता हूॅ। कविताओ मे मुझे रवीन्द्रनाथ का काव्य सबसे अच्छा लगता है। ॲगरेजी मे मै विक्टोरिया युगीन कविताऍ पसद करता हूॅ। हिन्दी मे मुझे प्रेमचद पसद है। गुजराती मे मुझे उमाशकर जोशी पसद हैं। उडिया साहित्य के कालिन्दीचरण पाणिग्रही पसद है।

साहित्य के अलावा मुझे आत्मकथाऍ बहुत पसद हैं। सबसे अच्छी आत्मकथा मुझे गॉधीजी की 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग लगी। इसके बाद नेहरूजी की आत्मकथा भी पसद आई। स्टालिन की जीवनी भी मुझे पसद आई। इस जीवनी मे स्टालिन और हिटलर का तुलनात्मक अध्ययन है।

***जोशी*** *कहा जाता है कि एक राजनीतिज्ञ कभी रिटायर नहीं होता। आप अपनी वृद्धावस्था किस तरह से व्यतीत करना पसद करेगे?*

**प्रणव मुखर्जी** एक समय मेरे पास कोई काम नहीं था। तब कुछ कठिनाई थी। वैसे 1966 से 1992 तक मैं कम-ज्यादा सक्रिय रहा हूॅ। सरकार के अदर और बाहर सक्रियता मे जीवन बीता है। जब 1987 मे मैं काग्रेस से बाहर चला गया, तब दो वर्ष के लिए समय काटना मुश्किल हो गया था। इस दौरान मैंने खूब पढाई की। काग्रेस पर तीन पुस्तको की तैयारी की। एक आपातकालीन स्थिति पर पाडुलिपि तैयार की है।

***जोशी .*** *क्या आपातकाल के दौर का कोई रोचक सस्मरण याद है?*

**प्रणव मुखर्जी .** अनेक हैं, लेकिन एक उल्लेख उपयोगी रहेगा। आपातकाल की

घोषणा की पूर्व सध्या पर मै कलकत्ता मे था। मै अपने राज्यसभा के चुनाव की तैयारी मे व्यस्त था। मै दूसरी बार चुना जानेवाला था। मुझे रात साढे ग्यारह बजे दिल्ली से फोन पर पूछा गया कि क्या मै तुरत दिल्ली पहुँच सकता हूँ, कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ घटनेवाली है। मैने फोन पर बताया कि 25 जून को दिन मे राज्यसभा का चुनाव है मै दिल्ली कैसे आ सकता हूँ? फिर मुझसे कहा गया कि मै प्रधानमत्री इदिरा गाँधी से बात करूँ। इदिराजी को मैने बताया कि दिन मे चुनाव होगा। तब उन्होने कहा कि कोई बात नही है। चुनाव पूरा कर लो। शाम को दिल्ली पहुँचकर सीधे मुझसे मिलो। कोई महत्वपूर्ण घटना होने जा रही है। सुबह तक तुम्हे पता चल जाएगा। यह सुनकर मै दुविधा मे फँस गया। मै सोचने लगा कि क्या इदिराजी इस्तीफा देनेवाली है। उसी रात को ढाई-तीन बजे फिर किसी ने फोन किया कि देश मे मार्शल ला की घोषणा की गई है। सुबह जब हम चुनाव के लिए विधानसभा पहुँचे तो बताया गया कि सविधान रद्द कर दिया गया है। मैने ऐसे लोगो को समझाने की कोशिश की कि सविधान के रद्द होने पर राज्यसभा का चुनाव भी नही होगा। चूँकि विधानसभा बुलाई गई है और राज्यसभा की सीटो के चुनाव कराए जा रहे है इसलिए सविधान रद्द नही किया गया है। तो भी मैंने विधानसभा भवन से ही इदिराजी को फोन किया और वस्तुस्थिति के बारे मे जानकारी चाही। उन्होने कहा कि सविधान के अनुच्छेद 356 के तहत आपातकाल की घोषणा की गई है। चिन्ता की कोई बात नहीं है। दिल्ली मे नियमित एव सवैधानिक सरकार है। तुम शाम को दिल्ली पहुँच ही रहे हो। सब पता चल जाएगा। इसी बीच सिद्धार्थ शकर रे दिल्ली से कलकत्ता पहुँचनेवाले है। वे तुम्हे विस्तार से बतला देगे। घबराने की कोई बात नही है। तो मै पुस्तक की बात कर रहा था। इस पुस्तक मे मैने यह बताने की कोशिश की है कि आपातकाल के सबध मे लोगो की प्रतिक्रिया क्या थी? आपातकाल क्या लागू किया गया? हमने इसके सबध मे क्या महसूस किया? एक और पाडुलिपि तैयार की है। देश मे सवैधानिक विकास मे काग्रेस की भूमिका पर यह पुस्तक तैयार की गई है।

दुबारा काग्रेस मे आने से पहले मुझे लग रहा था कि मेरा राजनीतिक जीवन चुक गया है अब वापस अध्यापन क्षेत्र की ओर लौटना चाहिए। किसी ने मुझे अदालत मे प्रेक्टिस शुरू करने की सलाह दी। लेकिन 1989 के अत मे राजीवजी ने मुझे बुला लिया। सगठन के कुछ काम सौपे जाने लगे। इसके बाद मै फिर से सक्रिय हो गया। आशा है भविष्य मे भी सक्रिय रहूँगा।

***जोशी*** *क्या आप सिनेमा देखते है?*

**प्रणव मुखर्जी** अधिक नही। वैसे ऋत्विक घटक सत्यजित रे मृणाल सेन आदि की फिल्मे देखी है। नाटक मुझे अच्छे लगते है। मराठी का एक नाटक *घासीराम*

**कोतवाल** मुझे काफी पसंद है।

***जोशी*** *जीवन मे कोई पछतावा?*

**प्रणव मुखर्जी** हॉ। जितना करना चाहिए था उतना नही कर सका।

***जोशी*** *प्रणवदा, आप तो अनेक अतरराष्ट्रीय विभूतियो से मिल चुके है। किसने आपको सबसे ज्यादा प्रभावित किया?*

**प्रणव मुखर्जी** काउट लेम्बड्राफ के साथ मेरी मुलाकात काफी दिलचस्प रही। ये तत्कालीन पश्चिम जर्मनी के अर्थमत्री थे। एक बार मै इनका अतिथि था। इनका गॉव का घर फ्रेकफर्ट से करीब 250-300 कि मी दूर था। बातचीत मे हम इतने डूब गए कि समय का पता ही नही चला। मुझे उसी दिन दिल्ली के लिए लुफ्ताजा विमान पकडना था। लुफ्ताजा का रिकॉर्ड रहा है कि यह कभी भी विलब से नही उडा। अर्थमत्री ने कहा कि मै विमान की उडान मे तो विलब नही करा सकता लेकिन समय से पहुँचा दूँगा। उन्होने सभी यातायात के नियमो को तोडते हुए तेज रफ्तार से कार चलाई और हवाई अड्डे पर समय से पहुँचा दिया। लेकिन नियमो को तोडने के जूर्म मे मत्री महोदय को जुर्माना भी भरना पडा।

ग्रामिको के व्यक्तित्व ने भी मुझे प्रभावित किया। चेकोस्लोवाकिया के गुस्ताफ हुसाक को भी मै पसद करता हूँ। इडोनेशिया के मलिक से भी मैं प्रभावित हुआ। फिलीपींस के नेता विराटा का व्यक्तित्व भी कम आकर्षक नही रहा। मलेशिया के वर्तमान प्रधानमत्री डॉ महातिर का व्यक्तित्व भी चुम्बकीय है वे एक साफ-सुथरी दृष्टि से युक्त है। उन्होने मुझे एक बार कहा कि देखिए मैने स्वय अपनी पुस्तक पर प्रतिबध लगा दिया है। पूछने पर उन्होने बताया कि जब वे सरकार मे नहीं थे तब उन्होने एक पुस्तक लिखी थी। पुस्तक मे तर्क दिया गया था कि भू सपत्ति पर सरकार का अधिकार होना चाहिए इसी से गरीबी दूर की जा सकती है। दूसरे शब्दो मे भूमि का सपूर्ण समाजीकरण। लेकिन जब डॉ महातिर प्रधानमत्री बने तब उन्हे महसूस हुआ कि यह कदम उठाना सभव नही है। इसलिए उन्होने अपनी ही पुस्तक पर प्रतिबध लगा दिया।

पाकिस्तान के राष्ट्रपति गुलाम इसहाक खॉ से भी मै पभावित हूँ। हम दोनो समकालीन वित्तमत्री रहे है। राजनीतिक मतभेदो का छोड दीजिए लेकिन उनकी अर्थव्यवस्था क सबध मे समझदारी काफी गहरी लगी।

**दीपावली, 1992**

# नेहरू ने कहा था : "हम थक रहे हैं!"

"यह सब क्या हो रहा है, तुम्हारे सूबे मे?' कुछ बिगडते हुए नेहरूजी पूछते है।

"साहब! मै तो मध्यप्रदेश का मुख्यमत्री हूँ नहीं।' एक सहमी आवाज ने बुलद सवाल का जवाब देने की कोशिश की।

'इससे क्या हुआ?" दिल्ली स्थित सप्रू हाउस के गलियारे मे प्रथम प्रधानमत्री जवाहरलाल नेहरू बिफर पडे। और भोपाल राज्य के प्रथम मुख्यमत्री मध्यप्रदेश के तत्कालीन शिक्षामत्री एव आज के उपराष्ट्रपति डॉ शकरदयाल शर्मा हिल उठे। हिम्मत नहीं हुई कि वे सामने खडे नेहरू की ऑखो मे झॉक सके। पैर तले की जमीन खिसकती नजर आई। प्रधानमत्री थमनेवाले नहीं थे। चीखते हुए कहने लगे– "तुम चुप क्यो रहे? अपनी जान दे देते। तुम्हे दगो के बीच कूद जाना चाहिए था। तुमने ऐसा क्यो नही किया?

डॉ शर्मा के पास 'क्यो?' का कोई जवाब नहीं था। वे सिर्फ खामोश रहे। प नेहरू तूफान की तरह गुस्सा दिखाकर भीड मे खो गए। समीप खडे डॉ कैलाशनाथ काटजू भी इस अप्रत्याशित आक्रमण से अवाक रह गए। डॉ काटजू तब राज्य के मुख्यमत्री थे। डॉ शर्मा पर यह कोप प्रदेश के कुछ क्षेत्रो मे हुए साप्रदायिक दगो को लेकर टूटा। दिल्ली के बाराखम्बा मार्ग स्थित सप्रू हाउस मे काग्रेस का अधिवेशन चल रहा था। गलियारे मे डॉ काटजू और डॉ शर्मा बतिया रहे थे। इसी बीच प नेहरू हॉल से बाहर निकले और बात करते हुए दोनो को देख लिया। पडताल शुरू हो गई। इससे पहले कि मुख्यमत्री होने के नाते डॉ काटजू आक्रमण का निशाना बनते, शिकार बनना पडा कनिष्ठ मत्री डॉ शर्मा को। उपराष्ट्रपति भवन मे अपने नेहरू-सस्मरणो की श खला मे मगन डॉ शर्मा कहने लगे "वास्तव

में पंडितजी, अपना गुस्सा डॉ काटजू पर उतारना चाहते थे। क्योंकि वे मुख्यमंत्री थे, इसलिए सांप्रदायिक दंगो की जिम्मेदारी उनकी थी। चुप रहने के बजाए भूल से मैं बोल पडा। इसके पश्चात पडितजी बरस पडे। मेरे बहाने पंडितजी काटजू साहब को सुनाते रहे।"

उपराष्ट्रपति डॉ शंकरदयाल शर्मा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उस पीढी के अंतिम प्रतिनिधियों में से एक हैं, जो साक्षी रही राष्ट्रीय आदोलन की, ऐसे राजनेताओं के सान्निध्य मे बडी हुई कि जिनके जीवन का दूसरा नाम था प्रतिबद्धता और जो अग्नि-परीक्षाओ से निरंतर गुजरते रहे। तब क्यो बिसराएँ ऐसी विरासत को डॉ. शर्मा? संस्मरणो की यह विरासत आज डॉ शर्मा की पूँजी है। सस्मरण सुनाते हुए डॉ शर्मा भावविह्वल हो उठते है। एक निश्चलता, मासूमियत और आत्मविश्वास के भाव उनके मुख पर झलकते है। तब उन्हें अनुभव होता है, वे सस्मरणो के साथ नहीं, एक युग-पुरुष के साथ जीवित है। अक्टूबर के मध्य मे उपराष्ट्रपति भवन मे डॉ शर्मा ने अपनी नेहरू-यादो का सिलसिला कुछ यो शुरू किया

"कोई 1935-36 के बरस रहे होंगे। इलाहाबाद पढने गया हुआ था, शायद ग्रेज्यूएशन करने गया था। तब नेहरूजी, सज्जाद जहीर, जे ए अहमद, डॉ लोहिया, पूर्णिमा बैनर्जी आदि समाजवाद की क्लास लिया करते थे। काफी युवकों की दिलचस्पी ऐसी क्लासो मे हुआ करती थी। मैं भी दूर नहीं रह सका। हालाँकि इलाहाबाद विश्वविद्यालय में दाखिला आई सी एस बनने का ख्वाब पूरा करने के लिए लिया था पर कदम समाजवाद की क्लास की ओर मुड गए। मुझ पर ऐसी क्लासो का काफी प्रभाव पडा। पडितजी के यहीं पहली दफा दर्शन हुए थे। इसके पश्चात यह सिलसिला कभी टूटा नहीं। उनके दर्शन का ही प्रभाव मुझ पर गहरा पडा। सयोग ऐसा रहा कि इंग्लैंड प्रवास के दौरान भी उनके दर्शन हुए। पंडितजी का रुझान बुद्धिजीवी वर्ग की ओर अधिक रहता था। वे हमेशा इस कोशिश में रहे कि बुद्धिजीवी या अपने-अपने क्षेत्र के महारथी कांग्रेस में शामिल हों, एक अच्छा वातावरण बनाएँ। वे यह भी चाहते थे कि बुद्धिजीवी विश्वविद्यालयो, महाविद्यालयों और विभिन्न संस्थाओं से जुडकर अन्य लोगों को आकृष्ट करें, ताकि वे समय पड़ने पर स्वतत्रता आंदोलन में कांग्रेस को सहयोग दे सकें। वास्तव में वे चाहते थे कि कांग्रेस के कार्यकर्ता बहुआयामी, बहुमुखी बनें। हमेशा उन्हें प्रतिभाओं की तलाश रही। मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि उन्होंने मेरी जिंदगी की धारा बदल डाली थी।"

"कहा जाता है कि आपको तत्कालीन भोपाल राज्य का मुख्यमंत्री बनवाने में उनका प्रमुख हाथ रहा?" मेरा सवाल था।

"बिल्कुल उनका था। इसमें राज़ की कोई बात नहीं है। मैं आयु और अनुभव दोनों

में ही छोटा था। नेहरूजी चाहते थे कि मैं मुख्यमत्री बनूँ। तत्कालीन विधायको को यह बात मालूम थी। परतु तत्कालीन नवाब नही चाहते थे कि मैं नेतृत्व सँभालूँ। इसलिए उन्होने मॉग की कि नेतृत्व का फैसला मतदान से होना चाहिए। चूँकि नेहरूजी एक महान लोकतत्रवादी थे, वे अपना फैसला किसी पर थोपना नही चाहते थे। वे सहमत हो गए कि मुख्यमत्री पद का फैसला मतदान से होना चाहिए। सब विधायक दिल्ली पहुँच गए।

"मौलाना आजाद, रफी अहमद किदवई, बालकृष्ण शर्मा नवीन जैसे नेताओ को जब मालूम हुआ कि भोपाल राज्य के नेतृत्व का फैसला मतदान से होगा, तो उन्हे काफी दुख हुआ, क्योकि उन्हे यह मालूम था कि नेहरूजी प्रदेश की बागडोर मुझे सौपने का फैसला कर चुके है। तब यह मतदान क्यो? उन्हे इस कदम पर काफी हैरत थी। खैर! मै जीत गया और मुख्यमत्री बन गया। नेहरूजी ने बधाई दी।"

"नेहरूजी का हृदय हिम के समान था। ऊपर से ठोस, सख्त दिखाई देता था। परतु गरम हो जाने के पश्चात वे तुरत पिघलने लगते थे। सप्रू हाउस मे डॉटने के पश्चात उन्हे कुछ बेचैनी हुई। कुछ देर बाद आए। मेरे कधे पर हाथ रखकर मुझे अदर ले गए और पूछने लगे

'तो मै कब आऊँ मध्यप्रदेश की यात्रा पर?'

"उनके इस सवाल से मै अवाक् रह गया। पहचान नहीं पा रहा था कि ये वे ही नेहरूजी है, जिन्होने कुछ क्षणो पहले मुझे मुख्यमत्री के सामने डॉट पिलाई थी। कायदे से उन्हे मध्यप्रदेश के दौरे के सबध मे मुख्यमत्री डॉ काटजू से बात करनी चाहिए थी। मगर उन्होने प्रोटोकोल की परवाह नही की। दरअसल, सबके समक्ष मेरे कधे पर हाथ रखकर बातचीत करते हुए वे यह दर्शाना चाहते थे कि मुझसे उन्हे कोई नाराजी नही है। यदि वे ऐसा नहीं करते तो मुख्यमत्री डॉ काटजू सहित प्रदेश के अन्य काग्रेसी मेरे और पडितजी के सबधो को लेकर कोई भी गलत अर्थ निकाल सकते थे।"

"वास्तव मे उन्हे अपने पद की चिता कभी नहीं रही। वे सबधो, ईमानदारी, लोक-निष्ठा सहयोग आदि को बहुत महत्व दिया करते थे। मैं देश मे उस समय भोपाल राज्य का सबसे युवा मुख्यमत्री था। जब मुख्यमंत्री बनने के सबध मे नेहरूजी ने मुझे सकेत दिए, तब मैने उनसे कहा था कि मुझे सरकार चलाने का कोई अनुभव नहीं है। कैसे करूँगा शासन? उनका जवाब था कि चिता मत करो। उन्होने एक सीख दी 'बस एक बात का ध्यान रखना, बदले की भावना से कोई निर्णय मत लेना। यहॉ तक कि अफसरो के मामले मे भी खुले दिमाग से निर्णय करना। हालॉकि ज्यादातर अफसर ॲंगरेजी सरकार में काम कर चुके है। हमे

बगैर किसी पूर्वाग्रह या दुराग्रह के इस नौकरशाही से ही काम लेना है।' इस संबंध में मुझे पडितजी का एक निर्देश याद आता है। भोपाल राज्य के आई जी पुलिस एस एन आगा ने पडितजी को गिरफ्तार किया था। देश आजाद हुआ, उन्हे भोपाल का आई जी बनाने की बात चली। लोगों ने कहा कि इस पुलिस अफसर ने नेहरूजी को गिरफ्तार किया था। इस पोस्टिग के सबध मे पंडितजी से भी चर्चा की गई, परतु उन्होने आगा के प्रति कोई दुर्भावना प्रदर्शित नही की। बल्कि मुझसे कहा कि इनकी पोस्टिग मे कोई अडचन नही आनी चाहिए।

"मै तो यह कहूँगा कि मुझे उन्होने राजनीति और सरकार चलाने की पूरी बारहखडी सिखाई। मेरे प्रति सदैव स्नेह व उदारता का भाव रखा। मुझे अच्छी तरह याद है, मैने किस प्रकार भोपाल मे मेडिकल कॉलेज खोलने के सबध मे नेहरूजी से सहयोग प्राप्त किया। किस्सा यह था कि योजना मे कॉलेज का कोई प्रावधान नही था। प्रदेश और केद्र के नेताओ ने इसमे सहयोग करने से साफ इंकार कर दिया था, और मै किसी भी प्रकार भोपाल मे मेडिकल कॉलेज खुलवाना चाहता था। हुआ यह कि मेने दिल्ली जाकर नेहरूजी से चर्चा की कि भोपाल मे मेडिकल कॉलेज नही है। नेहरूजी ने तुरत कहा कि होना चाहिए। मैने उन्हे अपनी दिक्कत बताई। उन्होने कहा कि इसकी तुम चिता मत करो। काम आरभ कर दो। ऐसा ही हुआ और उन्होने कॉलेज के उद्घाटन के लिए स्व लालबहादुर शास्त्री को भी भेज दिया। इसपर चुटकी लेते हुए शास्त्रीजी ने कहा था कि इलाहाबाद मे मेडिकल कॉलेज नहीं बन सका, परंतु शर्माजी ने भोपाल मे बनवा लिया।'

'वे मुझसे प्राय कहा करते थे कि अगर तुम पानी मे उतरोगे नही तो तैरोगे कैसे! इसलिए मै उनसे बेहिचक मार्गदर्शन प्राप्त कर लिया करता था। एक दफा उन्होने काग्रेस अधिवेशन मे जबरन बोलने के लिए खडा कर दिया। अवाडी अधिवेशन की घटना है। न जाने उन्हे क्या सूझी, उन्होने मुझे आदेश दिया कि मै आर्थिक प्रस्ताव पर बोलूँ। मैं हक्का बक्का रह गया, क्योकि मेरी कोई तैयारी नही थी। चूँकि आर्थिक प्रस्ताव समाजवादी विचारधारा से ओतप्रोत था, इसलिए मुझे बोलने में विशेष दिक्कत नही हुई।'

"वे हमेशा समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता सार्वजनिक जीवन की शुद्धता आदि को जीवन की कसौटी मानते थे। इस सबध मे वे समझौता नही करते थे। उन्होने मूल्य आधारित राजनीति को कसौटी बनाकर ही विध्यप्रदेश के लालाराम वाजपेयी और महेन्द्र कुमार मानव को दडित किया था। उनके खिलाफ कार्रवाई की गई। श्री वाजपेयी पर आरोप था कि जब वे विदेश गए तो अपने साथ एक जापानी घडी ले आए। महेन्द्र कुमार मानव पर यह आरोप था कि उनकी पी ए ने सर्कुलर जारी कर कहा कि शिक्षा-मत्री मानव का चित्र हर स्कूल मे होना चाहिए। उनके चित्र

भी बेचे गए। पडितजी इन बातो पर चिढ गए। दोनो के विरुद्ध कार्रवाई की गई। साहस बटोरकर मैंने प्रधानमत्री से कहा– 'ये लोग भ्रष्टाचारी नहीं है?' नेहरूजी की इस पर प्रतिक्रिया थी– 'यह मै भी जानता हूँ।'

'तब ' मै अपने वाक्य को पूरा नहीं कर सका। बस उनकी ऑखो मे जवाब के लिए झॉकता रहा। वे ताड गए, कहने लगे

'कुछ कदम ऐसे भी उठाने पडते है जिससे कि दूसरो को सबक मिले।' नेहरूजी यहीं नही रुके, आगे कहने लगे– 'तुम मुझे हमेशा ईमानदारी, वफादारी आदि के सबध मे कहते रहते हो। यह क्या रट लगा रखी है। अरे भाई, तुम ईमानदार हो, या वफादार हो यह भी कोई योग्यता है?" मै उन्हे नही समझ पा रहा था। उनकी बात आश्चर्यजनक लगी। उन्होने खुलासा करते हुए कहा– 'इसान मे ये बाते तो होनी ही चाहिए। ये योग्यता की नही इसान या मित्र होने की जरूरी शर्ते है। व्यक्तिगत जीवन और सार्वजनिक जीवन, दोनो पर ही ये बाते लागू होती है।' इसलिए जब उनसे कोई यह कहता था कि अमुक नेता ईमानदार है निष्ठावान है, तो उसे झिडक दिया करते थे। वे इसकी कल्पना ही नहीं कर सकते थे कि कोई व्यक्ति बेईमान या निष्ठाहीन होकर सार्वजनिक जीवन मे कार्य कर सकता है।

"इसलिए जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो वे राजनीतिक स्तर पर नहीं, भावना के स्तर पर घायल हुए। उनके तमाम विश्वासो, आस्थाओ, मान्यताओ और प्रतिबद्धताओ को गहरा धक्का लगा। वे चीन को एक देश नहीं एक दोस्त मानते थे। इसलिए चीनी आक्रमण मे उन्होने स्वय को टूटते हुए देखा। पर मै यह कहूँगा कि इस विश्वासघात के वातावरण मे भी पडितजी ने अपनी बुनियाद से इधर-उधर होना मजूर नहीं किया। भुवनेश्वर अधिवेशन मे पक्षाघात के आक्रमण से पहले आर्थिक प्रस्ताव के सबध में पडितजी का वरिष्ठ नेताओ को परामर्श था कि इसमे नैतिक मूल्यो को भी स्थान मिलना चाहिए। आर्थिक विकास नैतिक मूल्यो पर आधारित नीतिगत होना चाहिए। नेता कहने लगे कि आर्थिक प्रस्ताव मे इनकी क्या आवश्यकता है। इस पर पडितजी बिगड उठे। कहने लगे कि बगैर नैतिक मूल्यो के आर्थिक विकास की कल्पना ही नही की जा सकती।"

"रिश्तो की गभीरता का अदाज एक घटना से लगाया जा सकता है। वे मौलाना अबुल कलाम आजाद की मृत्यु के बाद स्वय को तनहा महसूस करने लगे थे। दोनो मे कितनी गहरी दोस्ती थी, यह किसी से छुपी बात नहीं है। बस, भोपाल से जुडी उनकी दोस्ती की एक सामान्य घटना याद है। मौलाना की मौत के बाद पडितजी पहली बार भोपाल गए। भोपाल मे आजाद साहब की एक छोटी बहन रहा करती थी। पडितजी भोपाल-यात्रा मे बहन के घर जाना न भूले। जब बहन से मिले तो वे भावुक हो गए। भरे गले से कहने लगे

'तुम यह मत समझना बहन कि मौलाना चला गया है। एक भाई गया है, अभी एक और भाई जिदा है।' पंडितजी इस भाई-बहन के रिश्ते को अतिम दम तक निभाते रहे। उन्होने इसानी रिश्तो को सबसे अधिक महत्व दिया। भौतिक प्रभावो को इसानी रिश्तो की गरिमा पर कभी हावी नही होने दिया।

"ये विश्वास, ये आस्थाएँ, मानवीय सबधो की ऊष्मा विरासत मे मिले थे उन्हे। इसलिए आधुनिकता के साथ-साथ गौरवमय अतीत के साथ भी जुडे रहना चाहते थे पडितजी। अपनी अतिम इदौर यात्रा के दौरान कॉलेज के छात्रो को सबोधित करते हुए नेहरूजी ने कहा था—आधुनिक तकनीक के साथ साथ गौरवशाली अतीत को भी अपनाए रखना चाहिए। इसलिए पडितजी प्राचीनता और आधुनिकता तथा अतीत एव वर्तमान के अभूतपूर्व सगम थे। वे कहा करते थे कि जो व क्ष अपनी जडे, अपनी जमीन छोड देता है, वह सूख जाता है निष्प्राण हो जाता है, और जो व क्ष ताजा हवा नहीं लेता, वह बौना रह जाता है वह भी सूख जाता है।"

इतना कहकर उपराष्ट्रपति डॉ शर्मा कुछ रुके। यादो के साथ वे भावुक हो चले थे। वर्तमान मे लौटते हुए करीब तीन कम सत्तर के डॉ शर्मा कहने लगे—"नेहरूजी को अपनी म त्यु का एक प्रकार से पूर्वाभास हो गया था। इदौर मे ही उन्होन विद्यार्थियो को सबोधित करते हुए कहा था— 'अब हम थक रहे है। अब इस मुल्क को तुम लोगो को ऊँचा उठाना है। हाथ ऊँचा उठाओ। तुम्हारे बाजुओ मे ताकत है। देश को आगे बढाओ।' अब हम थक रहे है'— उनका यह वाक्य बार-बार मेरे कानो मे गूँजता रहा और इसके साथ ही उनका यह बुलद आह्वान भी— भारत को ऊँचा उठाना है।

**दीपावली, 1988**

# "कौन कहता है नेहरू तानाशाह थे!"

एक सुहावनी सुबह। मखमली घास पर धूप खिली हुई थी। दिल्ली के अशोक होटल के एक कक्ष मे टेलीफोन की घटी बज उठती है ट्रिन ट्रिन ट्रिन। झटपट फोन उठाया जाता है। दूसरे छोर से आवाज आती है

"यह जवाहरलाल है।"

"यह हिटलर है।' कक्ष के छोर से उत्तर था।

"देखो करंजिया यह जवाहरलाल है। क्या अब तुम मुझे पहचानते हो? उस छोर ने सवाल किया।

"यस सर, मै पहचानता हूँ। आई एम सॉरी," कक्ष मे ठहरे करजिया ने विनोदी मूड के लिए खेद व्यक्त किया।

"सॉरी कहने की कोई जरूरत नही। मैं आशा करता हूँ कि तुम ठीक से व्यवहार करोगे। आज तुम ससद आ रहे हो?" उस छोर से भारत के प्रधानमत्री पडित जवाहरलाल नेहरू का पत्रकार-सम्पादक रुस्तमर्जी खुर्शेदजी करजिया से उर्फ रूसी करजिया से सवाल था।

"बिल्कुल ससद पहुँच रहा हूँ, फटकार-खाने के लिए ' करजिया ने फिर विनोदी मूड मे आत्मविश्वास के साथ उत्तर दिया।

'अब तुम ठीक तरह से पेश आओ, प्रधानमत्री ने एक बार फिर ताकीद किया।

"यकीन करिए, मै ठीक तरह से पेश आऊँगा। आप मुझे आदेश दीजिए, मेरा बर्ताव ठीक रहेगा, करजिया ने नेहरू को आश्वस्त किया।

"बहुत अच्छा। आज का दिन शुभ रहे" और इसके साथ ही प्रधानमत्री के निवास

स्थान तीनमूर्ति से आया टेलीफोन कट गया। रूसी करंजिया ने अपनी स्मृतियो की दीर्घा मे करीब तीस साल पुरानी इस घटना को एक गुलदस्ते का रूप दे रखा है।

सितबर का अतिम दिन और बबई का ब्लिट्ज कार्यालय। बाहर बरसात की झडी। अपने कक्ष मे बैठे चार कम अस्सी क हरफनमौला सम्पादक करंजिया नेहरू पर बात करते हुए यादो के गलियारे मे खो-से जाते है। बरसात की झडी और स्मृतियो की झडी वातावरण मे भावुकता पैदा कर देती है। ब्लिट्ज सम्पादक करंजिया यादो मे डूब अपनी बात जारी रखते है

'प्रधानमत्री से फोन पर बात समाप्त करने के पश्चात मै ससद भवन गया जहाँ मुझे अपनी भर्त्सना का सामना करना था। नेहरूजी को इस घटना से काफी पीडा थी। वे नही चाहते थे कि सदन मे बुलाकर मुझे फटकारा जाए परन्तु वे विवश थे। उन्होने यह जरूर सुनिश्चित किया कि मुझे अधिक परेशानी का सामना न करना पडे। इसके लिए उन्होने अपने दामाद फिरोज गाँधी हुमायू कबीर सहित कुछ प्रभावशाली सासदो को इशारा कर दिया था कि मुझे सम्मान के साथ सदन मे लाया जाए। इसलिए ससद के पॉच एड वार्ड ग्रुप से मेरा पाला नही पडा। मुख्य द्वार पर ही सासद मुझे मिल गए और सदन मे ले गए। मै बडे मजे के साथ सदन मे फटकार का सामना करता रहा। हालाँकि कुछ लोगो ने मुझे परेशान करने की कोशिश भी की पर समर्थक सासदो की भी कमी नही थी। यह जरूर था कि नेहरूजी विवश थे। वे नही चाहते थे कि मुझे ससद मे बुलाकर डाँटा जाए। इसलिए उन्होने तत्कालीन अध्यक्ष श्री अयगार से अनौपचारिक तौर पर कहा भी कि मुझे कष्ट नही होना चाहिए। पर सदन मे पडितजी सिर झुकाए बैठे रहे और मोरारजी देसाई का चेहरा चमकता रहा।

"आखिर सदन मे फटकारने की नौबत क्यो पैदा हुई?" मैने पूछा।

"मै स्व कृपलानी को लगातार कृपुलानी या किपुलानी लिखता रहा। इसलिए मुझे अपमानित करने के लिए सदन मे बुलाया गया। परन्तु नेहरूजी के प्रयासो से मै अपमानित होने से काफी बचा रहा। फटकार का दृश्य समाप्त होने के बाद मुझे चिन्ता हुई कि अब मेरे और नेहरू के सबध हमेशा के लिए समाप्त हो चुके है। नेहरू कभी नही चाहेगे कि मुझ जैसे व्यक्ति के साथ कोई रिश्ता रखा जाए। अब मै उनका कभी साक्षात्कार नहीं ले सकूँगा। ससद भवन से बाहर आते-आते मै काफी चिंतित हो उठा। मैने अपनी चिन्ताओ से तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ राधाकृष्णन को अवगत कराया। उन्होने कहा कि कोई चिन्ता मत करो। शाम को

चाय पर मेरे यहाँ आओ। शाम को चाय पर उपराष्ट्रपति के यहाँ पहुँचा। मेरे साथ मेरी पत्नी और पुत्री थी। कुछ देर बाद मैं क्या देखता हूँ कि प्रधानमंत्री नेहरू की कार उपराष्ट्रपति भवन में दाखिल होती है। चन्द क्षणों में नेहरू हमारे साथ चाय की चुस्कियाँ लेने लगते हैं; मेरी पत्नी और बच्ची से बात करते है; उनके हालचाल पूछते हैं और अंत मे मेरी ओर मुडकर पूछते हैं

" 'कैसे हो?'

" 'मैं कुछ चिंतित हूँ।'

" 'चिंतित? मगर क्यूँ?'

" 'सदन में फटकार के कारण।'

" 'वो घटना तो बीत चुकी।' नेहरूजी ने बेफिक्री से कहा।

" 'मगर इसके परिणाम,' मै चिन्ता में डूबा हुआ था।

" 'कैसे परिणाम?' तुनककर नेहरूजी ने पूछा।

" 'मेरे और आपके रिश्ते? आपके इटरव्यू? और भी कई बाते है।' मुझे आशंकाओं ने घेर लिया था।

" 'ससद की घटना से इन सब बातों का क्या वास्ता? मथाई (नेहरू के निजी सहायक) से बात कर इटरव्यू के लिए वक्त ले लो।' नेहरूजी ने आश्वस्त किया कि तीनमूर्ति के दरवाजे मेरे लिए बंद नहीं किए गए हैं। संसद की घटना के बावजूद हम दोनो के संबंधों के ताप में कमी नहीं आई। मैं उनसे नियमित रूप से इंटरव्यू लेता रहा। हर महीने उनके साथ एक इंटरव्यू तय था। यहाँ तक कि उनके निधन से कुछ पूर्व भी मैंने उनका इटरव्यू लिया था।"

"नेहरूजी के साथ रिश्तो का सिलसिला कैसे शुरू हुआ? शुरूआत दिलचस्प होनी चाहिए?" मैंने करंजिया को कुरेदने की कोशिश की।

"बेहद दिलचस्प। पहली मुलाकात क्या थी, एक अच्छी-खासी मुठभेड थी।" हवाई हमलावरी सम्पादक यादो के गलियारे में खो जाते है। दिमाग पर कुछ जोर डालते हैं। चौथे दशक की यादों मे डूब जाते है।

"बंबई के किसी जज के निवास पर पार्टी थी। मैं भी निमंत्रित था। जब मेरा परिचय कराया गया और कहा गया कि मै फलॉ चर्चित लेख का लेखक हूँ, तो यह सुनते ही नेहरूजी मुझ पर पिल पडे। आक्रामक मुद्रा में कहने लगे– 'तुम नौजवान हो। तुम्हें अभी विकसित होना चाहिए। स्वयं को चैम्पियन कहलाने से पहले कुछ

सीखो-जानो।' मैं यह सुनकर अवाक् रह गया। उनके इन तेवरों का सामना करने के लिए मै तैयार नही था। परन्तु कुछ क्षण बाद वे पिघल भी गए और दोस्ताना अदाज मे कहने लगे 'तुम कुछ अपने मे सुधार करो।' उनका यह रूप देखकर मै अभिभूत हो गया। वास्तव मे वे एक महान व्यक्ति थे।"

"नेहरूजी को एक समय दुनिया का सबसे बडा लोकतात्रिक तानाशाह कहा गया था। इस सबध मे आपका क्या अनुभव है?" मैने सवाल दागा। करजिया इस सवाल के लिए तैयार नही थे। उन्हे यह सहन नहीं था कि भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को तानाशाह के रूप मे याद किया जाए। उन्होने तुरन्त इस टिप्पणी का प्रतिवाद किया। सहारा लिया स्म तियो का

निश्चित ही वे लोकतात्रिक एव लोकतत्रवादी थे परन्तु तानाशाह बिल्कुल नही थे, यह निष्कर्ष मैने निजी अनुभव के आधार पर निकाला है। फिर यादो का एक झोका आया। करजिया कहने लगे "यह किस्सा तब का है जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया था। चारो तरफ आलोचनाओ का माहौल था। ससद के अदर और बाहर नेहरू सरकार की खिचाई हो रही थी। रक्षामत्री कृष्ण मेनन भी चारो तरफ से घिर चुके थे। कृपलानी किस्म के लोग बढा-चढाकर बाते कर रहे थे। एक जवान मरता तो सौ बताए जाते। एक इच भूमि जाने पर उसको मीलो मे दिखाया जाता। लम्बे समय से ताक मे बैठे लोगो को नेहरू पर आक्रमण करने का अवसर मिल गया था। ऐसे वातावरण मे रक्षामत्री कृष्ण मेनन ने जो कि मेरे मित्र भी थे – मुझसे कहा कि मै नेहरू से मिलूँ, प्रधानमत्री नेहरू को सुझाव दूँ कि चर्चिल की तरह वे भी भारत मे इमरजेन्सी की घोषणा कर दे। दूसरे युद्ध के दौरान प्रधानमत्री चर्चिल ने ब्रिटेन मे इमरजेन्सी लगा दी थी। ससद के सामान्य कामकाज स्थगित कर दिए गए थे। कृष्ण मेनन के बार-बार आग्रह के कारण मै डरते हुए नेहरूजी से मिला। अपना सपूर्ण साहस बटोरकर मैने प्रधानमत्री से कहा

"ऐसे वातावरण मे आप इमरजेन्सी क्यो नही लगा देते? सारे अधिकार अपने हाथो मे क्यो नही ले लेते ? ओह गॉड! वे तमतमा उठे। कहने लगे

' 'मै तुम्हे देखना पसद नहीं करता। इतने सालो मे मैने जो कुछ तुम्हे कहा, इतनी सारी बाते की, सब बेकार गई? तुम मुझसे तानाशाह बनने के लिए कह रहे हो?' नेहरूजी चीख उठे।

अपना वाक्य जारी रखते हुए कहने लगे– 'करजिया कहीं तुम पागल तो नहीं हो गए हो?'

मै घबरा उठा। समझ मे नहीं आ रहा था कि क्या करूँ। उनके साथ मै बहस नही कर पा रहा था। तर्क सूझ नही रहे थे। शब्द साथ नहीं दे रहे थे। उन्होने आखिरी

ऐलान किया। मेरे कानों मे आज भी उनके शब्द गूँज रहे हैं। द ढता के साथ बोले

" 'सुन लो, मैं ऐसा कभी नहीं करूँगा।' उनकी इस घोषणा के साथ इस द श्य का पटाक्षेप हो गया। यह द श्य गवाह है इस बात का कि पडित नेहरू कितने लोकतन्त्रवादी थे। लोकतात्रिक प्रक्रियाओ मे उनकी कितनी गहरी आस्था थी।"

"मीनू मसानी के मत मे नेहरू का विकास आजादी के बाद नही हुआ। आजादी से पहले और बाद दोनो ही कालो मे वे स्तालिनवादी एव कम्युनिस्ट थे। वे स्वय को विकसित नही कर सके। क्या इस टिप्पणी को सही कहा जा सकता है?' बातचीत को दूसरा मोड देते हुए मैने सवाल दागा। पर पाया कि करजिया हर मोड पर नेहरू के बचाव के लिए चट्टान के समान तैनात है। एक क्षण मे उन्होने मीनू मसानी की टिप्पणी को खारिज कर दिया। फैसला सुना दिया कि नेहरू को समझना मीनू मसानी के बूते की बात नहीं है। ऐसी टिप्पणी करनेवाले वे होते कौन है? एक साँस मे करजिया कह गए "नेहरू एक महान क्रातिकारी थे। एक महान जनरल थे। एक महान राजनीतिक प्रशासक थे। गॉधी और नेहरू, निश्चित ही विश्व के महानतम व्यक्तियो मे से थे।'

'कहा जाता है कि नेहरू हमेशा दुविधाग्रस्त रहे। 'क्या करूँ क्या न करूँ' के हेमलेटी कॉम्प्लेक्स के शिकार रहे। उनका व्यक्तित्व अतर्विरोधो से ग्रस्त बताया जाता है। क्या आप इससे सहमत है?' एक और सवाल दागा।

'मै समझता हू कि प्रत्येक महान व्यक्ति या महान मस्तिष्क मे अतर्विरोध होते है। कोई महान राजनेता अतरर्विरोधो से मुक्त नही रह सकता। किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए कोई भी महान मस्तिष्क समय लेगा। विश्व के महान नेता भी नेहरूजी से सलाह-मशविरा किया करते थे। इसलिए यह कहकर उन्हे खारिज कर देना कि उनका व्यक्तित्व अतर्विरोधी था गलत होगा। उनकी कार्यशैली एव चितन मे एक तारतम्यता अवश्य रहती थी।

'मूलत नेहरू एक स्वप्नदर्शी युगद ष्टा थे, समन्वयवादी थे सबको साथ लेकर चलना चाहते थे। उन्हे यह विरासत गॉधीजी से मिली थी। हालाकि गॉधीजी उन्हे अतिवादी रैडीकल यहाँ तक कि डिटो कम्युनिस्ट कहा करते थ। परन्तु नेहरू अपने विरोधियो को भी साथ लेकर चलना पसद करते थे। शायद यही वजह रही कि वे सामतवादी एव पूजीवादी तत्वो के प्रति नरम बने रहे। हालांकि व निश्चित तौर पर फासीवाद सामतवाद साम्प्रदायिकता जातिवाद आदि के सख्त खिलाफ थे। परन्तु विचारधारा के आधार पर वे देश को विभाजित नही करना चाहते थे। पूँजीवाद के विरुद्ध होने के कारण ही उनके काल मे अनेक कट्रोल्स' सरकार ने लागू किए। हालाँकि कुछ नियत्रण सनकी किस्म के है फिर भी उन्होने लागू किए।

फिर भी मैं यह कहूँगा कि वे सबको साथ लेकर चलना चाहते थे। उनकी इस आदत को लेकर मैंने उनसे एक बार सवाल भी किया 'नेहरूजी, आपने राष्ट्रमंडल की सदस्यता स्वीकार की है। इसका क्या स्पष्टीकरण है?'

" 'इसका स्पष्टीकरण है।' पडितजी कहने लगे, 'भारत अपनी भौगोलिक-ऐतिहासिक स्थिति के कारण अलगाव मे नही रह सकता। जिस तरह आज हम सयुक्त राष्ट्र सघ के सदस्य हैं उसी प्रकार राष्ट्रमडल की सदस्यता की भी एक अपनी उपयोगिता है। राष्ट्रमडल मे हिस्सा लेकर ही राष्ट्रमडल को सुधारा जा सकता है, उसे प्रभावित किया जा सकता है।' वास्तव मे नेहरूजी 'सम्पूर्ण विश्व' को अपनाना चाहते थे। वे किसी भी कीमत पर भारत को अलगाव की स्थिति मे नहीं रखना चाहते थे। उनकी विश्व-दृष्टि के कारण ही कर्नल नासिर, टीटो, सुकर्णो, एन्क्रूमा जैसे महान नेता भारत के करीब आए।"

' नेहरू के किस रोल ने आपको सबसे अधिक प्रभावित किया—एक स्वतत्रता सेनानी के रूप मे या प्रधानमत्री के रूप मे?"

"मैने उनके दोनो रोलो को करीब से देखा है। जाहिर है मैं उनके पूर्व-1947 के रोल मे अधिक प्रभावित हूँ। उस समय वे एक योद्धा थे। आजादी के बाद एक राजनीतिक प्रशासक। हालाँकि योद्धा की तरह ही वे एक नवजात स्वतत्र राष्ट्र की बेशुमार समस्याओ से जूझते रहे। फिर भी एक महान योद्धा या राजनेता की तरह नेहरू की अपनी सफलताएँ और असफलताएँ रही हैं। कई मोर्चो पर उन्हे शिकस्त मिली। गाँधीजी का अतिम व्यक्ति आज भी समाज मे अतिम इसान के रूप मे जी रहा है। धरा के अभागो के जीवन मे कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं आ सका है। परन्तु नेहरू को इसके लिए पूरी तरह दोषी नहीं ठहराया जा सकता। भारत जैसे देश की विभिन्न भीषण समस्याओ का हल इतना आसान भी नहीं है। फिर एक राष्ट्र के जीवन मे पद्रह-बीस साल कुछ नही होते। आज रूस मे क्या हो रहा है? क्या वहाँ की व्यवस्था मे पूर्णता है? स्टालिन से गोर्बाचोव तक कितना परिवर्तन आ चुका है। अत नेहरू जितने पूर्ण थे उतने ही अपूर्ण और इसी पूर्णता एव अपूर्णता के साथ-साथ उन्होने भारत को आगे बढाया है। वे निश्चित ही अपने समय मे आगे रहे।'

"यदि आज नेहरू जीवित होते, तो वर्तमान स्थितियो के प्रति उनका कैसा रवैया रहता?"

"नेहरू हर स्थिति मे नेहरू रहते। वे किसी भी स्थिति में तानाशाह नहीं बनते, न ही इमरजेन्सी लागू करते। तीसरी दुनिया के अधिकाश देशों और भारत के पडोसी देशो मे तानाशाही है, सामतशाही है। नेहरू के महान नेतृत्व के कारण ही भारत आज तक एक सुदृढ लोकतांत्रिक राष्ट्र है। मेरा यह स्पष्ट मत है कि नेहरू

तानाशाह नहीं थे, परन्तु उनकी पुत्री तानाशाह थी। संक्षेप में नेहरू भारत में सर्वसम्मति से क्रांति चाहते थे।"

मगर क्या सर्वसम्मति से क्रांति संभव है? ऐसा नहीं हो सकता, इतिहास इसका साक्षी है।" मैंने करंजिया को भडकाने की कोशिश की।

"परन्तु नेहरू यही चाहते थे। वे भारत में एक समाजवादी समाज चाहते थे। पर नौकरशाही ने सब कुछ तबाह कर डाला। शायद ईश्वर भी भारत की समस्याओं का हल नहीं कर सकता।"

साक्षात्कार अंतिम पायदान पर था। मैंने पूछा, "पंडितजी के साथ अंतिम मुलाकात को किस तरह याद करना चाहेंगे?"

करंजिया का जवाब था, "आप जानते ही हैं, मैं नेहरूजी का हर महीने इंटरव्यू लिया करता था। मेरे लगभग सभी इंटरव्यू रिकॉर्ड किए गए हैं। हर इंटरव्यू आधे से एक घंटे का हुआ करता था। उनकी मृत्यु से करीब सत्ताईस दिन पहले मैंने उनका अंतिम इंटरव्यू लिया था। जिन क्षणों उनका इंटरव्यू चल रहा था, मैंने अनुभव किया कि वे काफी कमजोर हो चुके हैं। आवाज साफ नहीं है। शब्द भी स्पष्ट नहीं हैं। ठीक तरह से चल नहीं पा रहे हैं। देह-शक्ति उनका साथ छोडती जा रही है। परन्तु दिमागी तौर पर वे जिन्दा थे। पूरी तरह चैतन्य। इंटरव्यू की समाप्ति के बाद वे बमुश्किल उठे। मेरे कंधों पर झुके रहे। वे ठीक तरह से चल नहीं पा रहे थे, इसलिए उन्होंने दरवाजे से ही मुझे विदाई दी, अन्यथा वे मुझे नीचे तक छोडने आया करते थे। उनकी वह अंतिम स्मृति मेरे जीवन का हिस्सा बन चुकी है। उनकी काया शिथिल रही हो, आवाज मंद रही हो, शब्द अस्पष्ट रह हों, परन्तु उन्होंने जीवन के अंतिम क्षणो तक हिंदुस्तान की तकदीर में, हिंदुस्तान के भविष्य में आस्था रखी।"

*दीपावली, 1988*

# "नेहरू तेलंगाना आंदोलन के खिलाफ नहीं थे!"

नेहरू और वामपंथियों के रिश्ते कभी सपाट नहीं रहे। दोनों के मध्य कभी दिसंबर-जनवरी की शीत लहरें चलीं, और कभी मई-जून की लूएँ भी। दक्षिणपंथी और वामपंथी दोनों ही क्षेत्रों में नेहरू अपने समाजवादी विचारों के लिए विवादास्पद बने रहे। मीनू मसानी जैसे घोर दक्षिणपंथी विचारक प्रधानमंत्री नेहरू को कम्युनिस्ट और वह भी स्टालिनवादी मानते रहे। वामपंथी उन्हें एक सहयात्री के रूप में देखते रहे। इसमें कोई शक नहीं कि उनके काल में ही अविभाजित कम्युनिस्ट पार्टी संसद में शक्तिशाली बनी। केरल में पहली कम्युनिस्ट सरकार अस्तित्व में आई और उसी नेहरू काल में कम्युनिस्ट सरकार के प्रथम प्रयोग की भ्रूण-हत्या हो गई। फिर भी वामपंथियों के बीच नेहरू-प्रशंसकों की कभी कमी नहीं रही, निश्चित ही सी पी आई के पूर्व अध्यक्ष और वर्तमान में विभाजित अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव श्रीपाद अम त डाँगे नेहरू-इंदिरा प्रशंसा के कारण हमेशा विवादास्पद रहे हैं। काया से शिथिल, विचारों से बुलंद और एक-कम नब्बे बरस में क्रांति का सपना सँजोए कॉमरेड डाँगे के साथ दादर में उनके निवास-स्थान पर हुई अनौपचारिक बातचीत के चन्द अंश .

**डांगे** : नेहरू और वामपंथियों के आपसी संबंधों की कोई बात नहीं है, क्योंकि वे मूलत. वामपंथी थे। पर नेहरू और कम्युनिस्ट पार्टी की राजनीतिक स्थितियाँ अलग-अलग रही हैं और यह स्वाभाविक भी है। वे कम्युनिस्ट पार्टी की आलोचना भी किया करते थे, परन्तु वे इसके खिलाफ नहीं थे। मुझे अच्छी तरह से याद है, जब हम लोगों को मेरठ षड्यंत्र कांड में फँसाया गया था, नेहरू अदालत में आया करते थे; हालाँकि हम लोग कम्युनिस्ट थे, पर वकील के रूप में वे यदा-कदा आते

रहे। जाहिर है उनकी सहानुभूति थी, इसलिए अदालत में आने की कोशिश की। नेहरू के साथ मोहम्मद करीम छागला भी आया करते थे।

उस समय नेहरू का मत था कि मेरठ षड्यंत्र का मुकद्दमा कम्युनिस्टों का ही नहीं है, जनता का है। इसलिए नेहरू खुद-ब-खुद अपनी पहल पर कोर्ट में चले आए, हम लोगों ने उन्हें बुलाया नहीं था। शुरू-शुरू में हम दोनों के बीच विशेष बात नहीं हुई, परंतु धीरे-धीरे हम लोग खुले। हालाँकि मैं आमतौर पर चुप रहा करता था, लेकिन एक दिन मैंने देखा कि वे स्वयं मेरे पास चले आए और बातचीत करने लगे। वैसे मेरठ मुकद्दमे का प्रचार भी देश-विदेश में काफी हो चुका था। इसलिए कांग्रेस को भी इसका समर्थन करना पडा। नेहरू के आने से इसे बल मिला ही।

***जोशी** : क्या आप यह कहना चाहते हैं कि वे 1948 के तेलंगाना आंदोलन के समर्थक थे? इतिहास साक्षी है, उनके काल में यह आंदोलन कुचला गया।*

**डाँगे** : नेहरू तेलंगाना आंदोलन के खिलाफ नहीं थे। तेलंगाना आंदोलन पहले एक किसान आंदोलन के रूप में शुरू हुआ था। आरंभ में यह राजनीतिक आंदोलन नहीं था, इसलिए नेहरू ने इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं किया। वास्तव में सरदार बल्लभभाई पटेल थे जिन्होंने नेहरू पर दबाव डाला कि इस आंदोलन मे हस्तक्षेप किया जाना चाहिए। पटेल ने नेहरू को यह समझाने की कोशिश की कि यदि समय रहते इसे रोका नहीं गया तो इसका प्रभाव तेजी से फैल जाएगा। ऐसा भी समय आ सकता है जब हम दिक्कत मे फॅस सकते हैं। वास्तव में तेलंगाना आंदोलन एक बहुआयामी आंदोलन था। इसे केवल किसान आंदोलन या हैदराबाद निजाम की सत्ता समाप्त करनेवाला आदोलन कहकर खारिज नहीं कर सकते। यह कई मुद्दों से जुड़ा हुआ था। इस पृष्ठभूमि में नेहरू के रोल को देखा जाना चाहिए।

***जोशी** : मीनू मसानी कहते हैं कि नेहरू कम्युनिस्ट थे, स्टालिनवादी थे।*

**डाँगे** : मीनू मसानी पागल हैं। नेहरू कभी जेन्यूइन कम्युनिस्ट नहीं रहे। अलबत्ता वे एक समाजवादी थे। समाजवादी और साम्यवादी में फर्क होता है, यह तो समझते हो ना?

***जोशी** : क्या उन्हें जेन्यूइन समाजवादी कहा जा सकता है?*

**डाँगे** : मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि वे एक जेन्यूइन समाजवादी थे। अब आप कहेंगे कि वे भारत में कोई बुनियादी बदलाव नहीं ला सके।

***जोशी** : यह एक स्वाभाविक सवाल है। समाजवादी होने के बावजूद, आजाद भारत के ढॉचे में वे बुनियादी परिवर्तन लाने में विफल रहे हैं, इससे इंकार नहीं किया जा सकता।*

**डॉंगे** . देखिए 1947 के पहले मुख्य मुद्दा था अँगरेजी राज का खात्मा, अँगरेजों को देश से भगाना, बुनियादी परिवर्तन लाने का सवाल नहीं था। जब आजादी मिली तो नेहरू को तबाही, साम्प्रदायिक दगो, अराजकता का सामना करना पडा। चारो तरफ दगो का विस्फोट हो चुका था। अँगरेजो की पूरी कोशिश थी कि भारत में कभी भी स्थिरता पैदा न होने पाए। इसमे कोई शक नहीं है कि महात्मा गॉधी और जवाहरलाल नेहरू ने इस अराजकता पर काबू पाया। एक बात याद रखिए, भारत के राजनीतिक द श्य मे नेहरू की दो भूमिकाएँ हैं। एक आजादी से पहले की और दूसरी आजादी के बाद की। दोनो की तुलना नहीं की जा सकती। आजादी से पहले वे लडते रहे, जेल जाते रहे, उनकी एक बिल्कुल अलग भूमिका थी। परन्तु आजादी के बाद की भूमिका और भी पेचीदा व कठिन थी। अनेक समस्याएँ थीं, जो अँगरेजो से विरासत मे मिली थीं। इन सबका हल आसान नही था। सामतवाद को ही ले लीजिए। आजादी से पहले और बाद मे दोनो ही कालो मे सामती ताकते मजबूत रही हैं और आज भी है। परन्तु नेहरू के सामने सामती शक्तियो के साथ लडने से बडी एक और लडाई थी। वह लडाई थी देश को स्थायित्व प्रदान करना। अँगरेज अतिम क्षणो तक भारत का राजनीतिक स्थायित्व समाप्त करने की साजिश रचते रहे। इसलिए नेहरू ने इस लडाई को अधिक महत्व दिया। सामतवाद जैसे मुद्दे प ष्ठभूमि मे चले गए। इसीलिए प्रीवीपर्स की समाप्ति जैसा सवाल भी लम्बे समय तक लटका रहा। वे इसे अपने जीवन मे समाप्त नहीं कर सके, उनकी पुत्री इंदिरा गॉधी ही कर सकीं।

यह सही है कि जिस ढग का और जिस पैमाने का भूमि-सुधार होना चाहिए था, वह आज तक नही हो सका है। बिहार का राग तो सबसे अलग है। वहॉ आज भी जमींदार किसी भी हरिजन की झोपडी मे घुसकर कुछ भी कर सकता है। नेहरू के जमाने मे भी यही प्रथा प्रचलित थी। पर जमींदारी या सामतवाद का उग्रतम रूप जरूर खत्म हो चुका है। मैं नेहरू के ऐसे आलोचको से भी सहमत नहीं हूँ, जो यह कहते हैं कि वे हर मोर्चे पर असफल रहे। सच्चाई यह है कि भारत जैसे देश के लिए नेहरू राज का काल काफी छोटा कहा जाएगा। उनके सामने गभीर समस्याओ के साथ-साथ कई गभीर सीमाएँ भी रही है। अब ये सीमाएँ महसूस होने लगी हैं। मिसाल के तौर पर वामपथी सरकार भी सत्ता मे आती है तो वह यह भूल जाती है कि वह क्या चाहती थी। देश मे वामपथी सरकार की आज सबसे बेहतर मिसाल पश्चिम बगाल की सरकार है। पश्चिम बगाल सरकार की एक रट है कि वह अपने प्रदेश मे सुधार या परिवर्तन इसलिए नहीं कर सकती क्योंकि केन्द्र राजकीय मामलो मे हमेशा हस्तक्षेप करता रहता है। मैने वहॉ की सरकार से एक बार पूछा कि भाई यह बताओ कि तुम्हारे किस प्रस्ताव को केन्द्र सरकार ने नहीं माना है। सच बात यह है कि केन्द्रीय सरकार ज्योति बसु को काम करने से रोक

नहीं रही है और न ही उनके किसी काम का विरोध करती है।

***जोशी*** *: इसका यह अर्थ निकला कि नेहरूजी एक सफल प्रधानमंत्री थे?*

**डाँगे** : निश्चित ही वे तत्कालीन परिस्थितियों और सीमाओं मे एक सफल प्रधानमत्री थे। पर यह भी सच है कि वे इन सीमाओ को तोड भी नहीं सके। उनकी सबसे बडी दिक्कत यह थी कि जिन तत्वो को वे समाप्त करना चाहते थे, उनकी सहमति भी इसमें चाहते थे। यह कैसे सभव है कि कोई सामत या जमींदार या पूँजीपति अपने ही खात्मे की इजाजत नेहरू को देता। नेहरू जीवनपर्यन्त ऐसे तत्वो की सहमति की प्रतीक्षा करते रहे। परिणाम यह निकला कि वे अनेक कठिनाइयो में धँसते चले गए।

***जोशी*** *. यदि आज नेहरूजी जीवित होते तो वर्तमान परिस्थितियो के साथ निपटने का उनका क्या तरीका रहता?*

**डाँगे** . अरे बाप रे यह सब अनुमानबाजी है। अलग-अलग परिस्थितियाँ हैं। वर्तमान प्रधानमत्री सजय गाँधी क्यो सजय है न? *(याद दिलाते हुए—नहीं राजीव गाँधी है।)* अरे हाँ, राजीव गाँधी हैं। सजय गाँधी तो मर गया ना? हाँ तो मै कह रहा था, ये राजीव गाँधी बिल्कुल अनुभवहीन हैं। समस्याएँ गभीर हैं। वे इनका सामना करने मे नर्वस हो जाते है। राजीव गाँधी को मालूम होना चाहिए कि उनका पाला दादाओ से पडा है। दादाओ से कम्युनिस्ट ही निपट सकते हैं। दादागीरी का मुकाबला दादागीरी से ही किया जा सकता है, हाथ जोडने से नहीं। पर राजीव गाँधी को दादागीरी के सब हथकडे आते नहीं है। उत्तरप्रदेश मे ब्राह्मण, कायस्थ और राजपूतो की दादागीरी राजीव की समझ से बाहर की चीज है। अलबत्ता नेहरू इस डायनामिक्स को समझ सकते थे।

***जोशी*** *तब भी नेहरू काल*

**डाँगे** देखिए नेहरू काल लगभग ठीक ही था, कोई बुरा नहीं था। यह सही है कि उनका झुकाव प्रतिक्रियावाद की ओर नहीं था। उन्हे प्रतिक्रियावादी ताकतो से नफरत थी। उन्होने उनका डटकर मुकाबला किया। राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ भारत पर प्रतिक्रियावाद लादना चाहती थी। उन्होने दोनो ही स्तरो पर ऐसी शक्तियो के खिलाफ जग की। यहाँ तक कि अमेरिकी विद्वान गैल्ब्रेथ भी नेहरू के साहसिक कदम से प्रभावित थे, वे उनकी गैर-प्रतिक्रियावादी विचारधारा एव नीतियो की आलोचना नहीं कर सके।

**दीपावली, 1988**

# असहमति के अर्थ
# 'तो पूरी तरह नंगा हो जाने दो'

किस्सा जनवरी 1971 का है। चुनाव-कवरेज के सिलसिले मे तब मैं बस्तर गया हुआ था। सुखद सयोग था, डॉ ब्रह्मदेव शर्मा से वहॉ मेरी पहली मुठभेड हुई। तब भी वे जिलाधीश या नौकरशाह कम, एक जुनूनी सोशल एक्टीविस्ट ज्यादा दिखाई देते थे। एक अवधूत की भॉति चौबीसो घटो जिले मे अलख जगाए रहते थे, रात-बिरात कही भी जीप लेकर निकल जाना, रेस्ट-हाउस से दूर रहकर थानागुडी या झोपडी मे ठहरना और सुबह-सवेरे तक आदिवासियों की चौपाले लगाए रखना। एक घनी रात, बेलाडीला के जगलो मे जीप ही उलट गई, पुलिया के नीचे गिर गई मरते-मरते बचे। यह लेखक भी जीप मे सवार था। दैवी कृपा थी, किसी को खरोच तक नहीं आई। आस-पास के गॉवो से आदिवासियो को बुलाया और जीप सीधी की गई। डॉ शर्मा स्वय स्टीयरिग सम्हाले हुए थे। ड्राइवर पीछे बैठा हुआ था। तब मै राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के पूर्णकालिक कार्यकर्ता का पत्र लेकर उनसे मिला था। बस्तर की मुठभेड एक निरतर सवाद मे बदल गई। किन्हीं बुनियादी मुद्दो पर डॉ शर्मा के साथ गभीर मतभेद भी रहे। वे मुझे उस समय एक कट्टर हिन्दूवादी, यहॉ तक कि ब्राह्मणवादी दिखाई दिए। कुछ क्षेत्रो मे उन्हें आर एस एस समर्थक कहा जाता था। लेकिन सवाद जितने गाढे होने लगे, डॉ शर्मा का मानवतावादी, उदारवादी, दलितवादी और राष्ट्रवादी रूप सामने आने लगा। आपातकाल के दौरान उन्होने मार्क्सवादियो, जनसघियो और जेपीवादियो की समान रूप से मदद की। निजी सबधो मे उन्होने वैचारिक पूर्वाग्रहो को कभी आडे नहीं आने दिया। एक ही कसौटी थी सबधो की, व्यक्ति धरा के अभागो के प्रति प्रतिबद्ध है या नहीं। आदिवासी क्षेत्रो मे किन्हीं सघर्षरत कार्यकर्ताओ को गिरफ्तारी से बचाने के लिए वे इस्तीफा देने के लिए तैयार हो गए थे। उस समय वे केंद्रीय गृह मत्रालय मे सयुक्त सचिव थे। बस्तर के कार्यकाल के दौरान ही डॉ

शर्मा एक किंवदती बन चुके थे। विदेश-नियुक्ति के कई प्रलोभन उनके सामने थे। देश में ही कम से कम उपराज्यपाल बन सकते थे। वाइस-चांसलर बनना एक सामान्य बात थी। लेकिन, डॉ. शर्मा ने आयुक्त के पद पर रहते हुए भी सरकार से सिर्फ एक रुपया लिया; अपनी पेंशन पर गुजारा करते रहे। सरकार ने दिल्ली में जो फ्लैट दिया, उसमें आदिवासी, हरिजन और सामाजिक कार्यकर्ता आए-दिन रहते रहे; आयुक्त डॉ. शर्मा ने स्वयं को एक कमरे में सिकोड़े रखा।

मुझे यकीन नहीं था, डॉ. शर्मा इस हद तक स्वयं को डीक्लास्ड कर लेंगे, लेकिन उन्होंने करके दिखाया। एक झटके में नौकरशाही छोड़ दी, दिल्ली की चमक-दमक छोड़ दी और जा बसे ठेठ बस्तर के एक गॉव में। डॉ. शर्मा जहाँ समाज और इंसान के परिवेश को आदर्शवादी व मानवीय द ष्टिकोण से देखते हैं, वहीं वैज्ञानिक चिंतन के माइक्रोस्कोप से अंतर्विरोधों को समझने एवं उनका समाधान करने में भी जुटे हुए हैं। लोकतंत्र में कार्यपद्धति से मतभेद होना स्वाभाविक है, लेकिन ईश्वर-प्राप्ति या मुक्ति पर हक जितना सगुणवादियों का है, उतना ही निर्गुणवादियों का भी है। असहमति का दमन न राजनीति को कहीं ले जा सका है, न रूहानियत को अल्लाह तक पहुँचा सका है। 'समाज की तलछट, समाज का कलश बने', डॉ शर्मा यही चाहते हैं। पिछले दिनों जगदलपुर में कथित 'असहमतों' की एक टोली ने उन्हें निर्वस्त्र करके पीटने की कोशिश की। वैचारिक असहमति के इस फासीवादी आख्यान के संदर्भ में उनसे बातचीत

***जोशी** : आप बस्तर के आला हाकिम रह चुके हैं। जिलाधीश के रूप में जगदलपुर की सड़कों पर आपकी हुकूमत रही है। बीस-इक्कीस बरस बाद वही सडके, वही नगर आपके साथ किए जा रहे वहशि.ाना व्यवहार के गवाह भी बनते हैं। ऐसे शर्मनाक क्षणों में आपके अंतर्मन पर क्या बीत रही थी?*

**शर्मा** : मैं समझता हूँ मेरे मन पर कुछ नहीं बीत रहा था। मैं यह सोच रहा था कि हो सकता है कि जिन लोगों के लिए मैं काम कर रहा हूँ वे भी यह मानें कि मेरा काम उनके खिलाफ है। इसकी एक वजह है। लोगों को भरमा दिया जाता है कि उनके विकास के लिए काम किए जा रहे हैं; वास्तविकता मे ऐसा नहीं होता है। लेकिन, भ्रम के वातावरण में जब बुनियादी लड़ाई लड़ी जाती है तो इस तरह की घटनाओं का होना अपरिहार्य है। सच बात यह है कि जिन लोगों ने मेरे साथ ऐसा सलूक किया उन पर मुझे तरस आता है।

***जोशी** : असभ्यतापूर्ण स्थिति का सामना करते हुए आपको दु:ख या पीडा हुई होगी?*

**शर्मा** : दु:ख तो बिलकुल नहीं हुआ, क्योंकि ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए

मैं मानसिक रूप से तैयार था। बात छोटी-सी है। जब आप निहित स्वार्थी तत्वों के खिलाफ आवाज उठाएँगे तो आपके साथ कुछ भी घट सकता है।

***जोशी*** *1970-71 मे बस्तरवासियो ने आपको एक गॉधीवादी ईमानदार प्रतिबद्ध और निर्भीक प्रशासक के रूप मे देखा है, और आज वे आपको एक जुझारू सामाजिक कार्यकर्ता के रूप मे देख रहे है। जब आपको सडको पर बर्बरतापूर्वक ढग से नग्नावस्था मे घुमाया जा रहा था तब जगदलपुरवासी मूकदर्शक क्यो बने रहे? उनकी इस खामोशी को विवशता कहे या मानसिक दासता या कायरता या अक्षम्य अपराध और या लोकतत्र की ट्रेजडी?*

**शर्मा** एक बात तो यह है कि बस्तर मे मेरी लोकप्रियता गॉवो मे रही है। नगर हमेशा आदिवासी शोषण के केद होते है। नगर के उच्च वर्ग ने मुझे कभी भी दिल से स्वीकार नहीं किया था। जिलाधीश कार्यकाल के दौरान मैने जितने भी काम किए उनसे इन ऊँचे तबको के हितो को चोट पहुँची लेकिन आदिवासी का हित हुआ। उदाहरण के लिए मैंने तब वन-रक्षा की बात की, लकडी की बात की इससे ठेकेदार नाराज हुए। जब व्यापारी वर्ग द्वारा किए जा रहे शोषण के खिलाफ कदम उठाया तो उनके गुस्से का निशाना बना। आदिवासियो की जमीन की रक्षा मे कदम उठाए तो भू-लुटेरे मेरे खिलाफ हो गए। इसी तरह जब बैलाडीला मे आदिवासी युवतियो के शोषण के खिलाफ आवाज उठाई और उनके देह-शोषण की रोकथाम की कोशिश की गई तो ये ही निहित स्वार्थी तत्व मेरे खिलाफ हो गए, क्योकि इन्हीं तत्वो ने अपने घरो मे आदिवासी लडकियो को रखा हुआ था। सक्षेप मे, मेरे हर कदम से किसी-न-किसी निहित स्वार्थ का अहित होता रहा है। इसलिए इन स्वार्थी वर्गो ने मुझे एक निरकुश कलेक्टर के रूप मे देखा। तो ये तत्व मेरी हुजूम से क्यो रक्षा करते? इतना ही नहीं, जिला प्रशासन खामोशी से सब कुछ देखता रहा।

***जोशी*** *देखिए आपकी बात सही है। लेकिन, एक सभ्य व आधुनिक समाज में असभ्यतापूर्ण कारनामो का दृश्य चल रहा हो, नगर के निचले व मध्य वर्ग के लोग खामोशी से सब कुछ देख रहे हो- इस सबको आप क्या कहेगे?*

**शर्मा** इस स्थिति की असली वजह समाज का विखडन है। आज व्यक्ति स्वय में समाता जा रहा है। समाज के बिखराव के दौर मे सामूहिक मुद्दो पर त्वरित प्रतिक्रिया नहीं हो पाती है। और जो यह पढा-लिखा वर्ग है, यह तत्काल प्रतिक्रिया से घबराता है, यह सोचने लगता है। इसीलिए जब न्यूयार्क की सडको पर बलात्कार किया जाता है तो लोग अपनी खिडकी से चुपचाप देखते रहते हैं। यह बुद्धिवादी, तर्कशील, विवेकशील समाज की नियति है। जब हम भावना से विवेक की ओर जाते हैं, तब ऐसा होता है, दूसरे शब्दो मे, एक निश्छल व निर्मल प्रतिक्रिया लुप्त हो जाती है।

एक वजह यह भी थी कि मेरे जैसे व्यक्ति के साथ ऐसा हो सकता है तो इसका प्रतिकार करनेवाले सामान्य व्यक्तियो के साथ क्या नहीं हो सकता, यह भय भी उनमे रहा होगा। मैं यह भी कहना चाहूँगा कि इस तरह की घटनाओ से सकेत मिलते हैं कि फासीवादी ताकतो का तेजी से उदय हो रहा है।

**जोशी** . *आपको ऐसा नही लगता कि यह स्थानीय या जगदलपुर स्तर की कायरता कल राष्ट्रीय स्तर पर भी दिखाई दे, और जैसा कि आप कह रहे है, कल फासीवादी ताकते राष्ट्रीय स्तर पर उभरती है तो उनका कोई प्रतिवाद ही न हो? क्या जगदलपुर नगर की कायरतापूर्ण तटस्थता को सभावित राष्ट्रीय कायरता के लक्षण के रूप मे नहीं देखा जाना चाहिए?*

**शर्मा** कायरता ही क्यो ले? मैं तो समझता हूँ कि जब राष्ट्रीय स्तर पर फासीवाद उभरेगा तब इस कायरता को सही भी माना जा सकता है। हिटलर के जमाने मे क्या हुआ? हिटलर ने प्रतिदिन बीस हजार लोगो को खत्म करने के कारखाने या गैस-चैम्बर बनवाए थे, आदमी की खाल के बटुए बनाए गए। फासीवाद मे एक खास किस्म का माहौल पैदा करके आदमी को इतने नीचे गिरा दिया जाता है, सही आदमी को गलत करार दे दिया जाता है, सही बात कहने पर दण्डित और विकास-विरोधी घोषित किया जाता है– जैसे मुझे किया गया – और एहसास कराया जाता है कि विकास विरोधियो की यही दुर्गति होनी चाहिए। मूर्ति-भजक घोषित किया जाता है। मदिर-मस्जिद की लडाई मे यह तो नहीं देखा जाता कि इसान की हत्या की जा रही है या किसी अन्य की। चूँकि विकास की नई मूर्तियाँ बनाई जा रही है अत जो इनका विरोध करेगा उसे मूर्ति-भजक कहा जाएगा। और मैं मूर्ति-भजक हुआ, इसलिए मुझे सजा मिलनी चाहिए।

**जोशी** . *फर्ज कीजिए, आप बस्तर के प्रशासक होते, और किसी को नगा घुमाया जा रहा होता तब आप क्या करते?*

**शर्मा** मै व्यक्तिगत रूप से पीडित व्यक्ति की रक्षा करता, और मैने अनेक बार ऐसा किया भी है। जगदलपुर मे ही एक बार सिनेमा मे दगा मच गया था, मै अपने बगले से निकला और सिनेमा हॉल मे पहुँच गया। इसके बाद प्रशासनिक प्रक्रिया शुरू हो गई। मेरे ही प्रशासन के दौरान बैलाडीला मे आदिवासियो पर पुलिस के अत्याचार हो रहे थे। मैं सीधा घटनास्थल पर पहुँच गया। इससे स्थिति बदल गई। जब प्रशासन का मुखिया असदिग्ध ढग से न्याय व पीडितो के साथ खडा हुआ दिखाई देता है तो उसके मातहत भी वैसा ही करने लगते हैं। जब मै मध्यप्रदेश का डी पी आई था और परीक्षा मे नकल बद करवा रहा था तब लडको ने मुझे घेर लिया और पीटने लगे। मैंने कहा कि तुम मुझे मारो लेकिन मै पुलिस नहीं बुलाऊँगा। यह देखकर अध्यापक और कुछ लडको ने ही मेरी रक्षा की, मुझे सुरक्षा दी। यह

पिपरिया की घटना है।

***जोशी** : मान लीजिए, आपके स्थान पर कोई औरत होती और उसके साथ भी ऐसा अमानुषिक व्यवहार हो रहा होता, तब भी क्या जनता और प्रशासन खामोश रहता?*

**शर्मा** अब यह तो हाईपोथेटिकल सवाल है।

***जोशी** : जी नही, ऐसा हो चुका है। एक दूसरे भाजपा शासित प्रदेश राजस्थान मे भी एक स्वयसेवी महिला भॅवरी बाई के साथ इससे भी घृणित व्यवहार हो चुका है। इसलिए यह काल्पनिक सवाल नही है।*

**शर्मा** तो उसके साथ भी यही घटना घट सकती थी। उसे भी समाज-विरोधी और विकास-विरोधी करार दे दिया जाता।

***जोशी** जब आप प्रशासक थे, आपके तबादले लगातार होते रहे। प्रत्येक राजनीतिक शासक को आपसे कम ज्यादा शिकायत रही। इसकी क्या वजह है?*

**शर्मा** राजनीतिज्ञो के साथ जो मेरे सबध रहे हैं उनके सदर्भ मे मैं एक बात साफ कर देना चाहता हूॅ। अपने सपूर्ण प्रशासनिक जीवन मे व्यक्तिगत स्तर पर किसी भी राजनीतिज्ञ के साथ मेरे कटुता के सबध नही रहे। मुझे इस बात का फख्र है कि मुझे हर स्तर पर हर किस्म के राजनीतिज्ञो से पर्याप्त सम्मान मिला है। लेकिन मेरे जो विरोध हुए है वे नीतिगत प्रश्नो और नीतिगत कार्यो पर हुए हैं।

तो ऐसा है कि मेरा नजरिया शुरू से ही जनवादी रहा है। हर राजनेता मुझसे खुश रहा है। वे मुझसे सिद्धात बनवाते थे, योजना बनवाते थे। जब तक आप इन दोनों बातो तक सीमित रहते है, किसी के निहित हित प्रभावित नहीं होते। लेकिन जब नीतियो पर अमल किया जाने लगता है, तब हित प्रभावित होते हैं, तब कहा जाता है कि भाई इससे अधिक नहीं होना चाहिए क्योकि कार्यान्वयन की प्रक्रिया मे व्यक्ति और वर्ग दोनो के हितो को चोट पहुॅचती है। बस यही से मतभेद शुरू हो जाते हैं। मै नाम नहीं लूॅगा, एक दफे एक मत्री बहुत रेडीकल बोल रहे थे। मैंने उनसे कहा कि मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूॅ। आप जो नीति व कार्यक्रम घोषित करेगे, मै उस पर चलने लगूॅगा, लेकिन बीच मे ही पीछे हटने को कहेगे तो वह नहीं होगा। प्रशासक की हैसियत मे भी मेरी एक छवि है। ऐसी ही स्थिति पी सी सेठीजी के साथ पैदा हो गई थी, अध्यापको को भोपाल से बाहर भेजने पर। उनके ही निर्णय को जब लागू करने की कोशिश की गई तो कतिपय लोगो की व्यक्तिगत समस्याऍ पैदा होने लगी। तब मैंने साफ कह दिया था कि हस्तक्षेप स्वीकार्य नही।

देखिए, कुछ दूर तक तो हमारी व्यवस्था जनवादी नीतियो को स्वीकार करती है। चूॅकि वह अपने मूल चरित्र को बदल नहीं पाती है इसलिए किसी खास मुकाम पर पहुॅचकर अपनी ही चीजो का विरोध करने लग जाती है। तगडे निहित स्वार्थ हावी

हो जाते हैं। नीतिगत सवालो को लेकर तीन मुख्यमंत्रियों– श्यामाचरण शुक्लजी, सेठीजी और अर्जुनसिंहजी– ने मेरे तबादले किए। मैंने कभी बुरा नहीं माना। तीनों ही स्थितियों मे मैने विरोध में एक शब्द भी नहीं कहा। जब मुझे बस्तर से हटाकर भोपाल लाया गया था तब वहॉ के सभी ग्यारह विधायको ने राज्यपाल से मुझे वापस भेजने का अनुरोध किया था। इन विधायकों मे आज के भाजपा मत्री श्री बलिराम कश्यप भी तो शामिल थे। राज्यपाल सत्यनारायण सिन्हा ने मुझसे कहा भी कि यदि मै चाहूँ तो वापस बस्तर जा सकता हूँ, तबादला रद्द किया जा सकता हैं। मैने विनम्रतापूर्वक इकार कर दिया था। मुख्यमत्री श्यामाचरण शुक्ल ने वक्तव्य भी दिया था कि सरकार को शिक्षा विभाग मे सुधार के लिए डॉ शर्मा की जरूरत है। इससे मेरा मान ही बढा था।

मैंने हमेशा यह माना है कि तबादला करने का अधिकार राजनीतिक शासको का है। जब अर्जुनसिहजी ने मेरा तबादला किया तो मैं छुट्टी चला गया। लेकिन तबादला करने के उनके अधिकार को मैने कभी चुनौती नही दी। सेठीजी के अधिकार को भी चुनौती नहीं दी। इसलिए मै कह सकता हूँ कि किसी राजनेता ने मुझे सिद्धात के विरुद्ध गलत बात करने या कहने के लिए कहा तक नहीं। मैं समझता हूँ यह मेरी सबसे बडी सफलता है। यदि किसी राजनेता को मै पसंद नहीं आया तो उन्होने अधिक से अधिक मेरा तबादला ही किया। चूँकि राजव्यवस्था उनको चलानी है इसलिए तबादला करने या न करने का अधिकार भी उनका है। एक नागरिक प्रशासक इसको चुनौती नहीं दे सकता।

***जोशी** : सामाजिक जवाबदेही को लेकर राजनीतिक शासक और नौकरशाहो के बीच मुठभेडें चलती रहती है। आपकी दृष्टि में इसके लिए कौन दोषी है?*

**शर्मा** : मैं समझता हूँ कि जवाबदेही के मामले में प्रशासन की ज्यादा जिम्मेदारी है। प्रत्येक प्रशासक संविधान की शपथ लेता है। राजनेता भी यही करता है। यदि कानून का पालन नहीं होता है तो यह प्रशासक का फर्ज है कि वह राजनेता को संविधान की स्थिति से अवगत कराए। मिसाल के तौर पर, बरगी बॉध की घटना लें; मछली-शिकार को लेकर हमारा शासन से झगडा चल रहा है। कानून स्पष्ट रूप से कहता है कि स्वयं के उपभोग के लिए आदिवासी मछली मार सकते हैं। लेकिन प्रशासन ने जो नीलामी का नोटिस जारी किया उसमें इसका कहीं जिक्र तक नहीं है। सिर्फ मत्स्य-आखेट की नीलामी कहा गया है। राज्य की नीति है आखेट को ठेकेदारी पर देना। इस पर हमने आयुक्त से कहा कि जो आपने नोटिस जारी किया है उसमें आदिवासी के अधिकार का उल्लेख तक नहीं है, आपका कर्तव्य है कि इसे आप राज्य सरकार के ध्यान में लाएँ। इसी तरह की कई और विसंगतियाँ हैं। नीलामी तक संविधान-प्रदत्त अधिकारों के विरुद्ध है, क्योंकि नीलामी से

आदिवासियों की जीविका प्रभावित होती है। अत: आयुक्त को चाहिए था कि इन विसंगतियो की ओर राज्य शासन का ध्यान खीचते। लेकिन ऐसा नहीं किया गया। यहॉ तक कि एक मत्री के पुत्र को ही ठेका दे दिया गया, क्योंकि उसने सबसे अधिक बोली लगाई थी। मै इस पर कोई टिप्पणी नहीं कर रहा हूँ। सिर्फ यह कह रहा हूँ कि हमे समझना चाहिए कि इसके पीछे कौन-सी ताकत काम कर रही है। अब यहीं प्रशासक को चाहिए था कि वह स्टेंड लेता।

बस्तर मे जब मै जिलाधीश था तब मैने किसी भी निजी क्षेत्र की माईनिग-लीज पर दस्तखत नहीं किए थे। मेरी एक ही आपत्ति रहती थी कि खदान निजी क्षेत्र में नहीं होनी चाहिए, स्थानीय लोगो की इसमे हिस्सेदारी होनी चाहिए, सहकारी समिति होनी चाहिए। आबकारी नीति के मामले में भी यही हुआ। मैंने राज्य शासन की बात स्वीकार नही की। मैने सविधान और कानून की रोशनी में राज्य शासन की नीतियों को देखा व परखा। विसगतियॉ दिखाई दीं तो अपनी टिप्पणियों के साथ फाइल भोपाल भेज दी।

***जोशी*** *: आपके समय से लेकर आज तक प्रशासक के मूल्य-ससार मे किस तरह के परिवर्तन आपको नजर आते है?*

**शर्मा** . मै समझता हूँ कि शुरू मे प्रशासक मे विकास के लिए उत्साह था। देश आजाद हुआ था, सभी युवा प्रशासक विकास के लिए संकल्पबद्ध थे। दायित्वबोध भी ज्यादा था। आज इसका अभाव दिखाई देता है। कैरियर-दृष्टि ज्यादा पनप रही है। इसकी एक वजह यह भी है कि राजनीतिक हस्तक्षेप बढ गया है। मत्री और निचले स्तर की नौकरशाही के संबध गाढे होते जा रहे हैं। पटवारी नायब तहसीलदार, थानेदार आदि के तबादलो में शिखर स्तर के राजनीतिक शासक हस्तक्षेप कर रहे है। इससे प्रशासक का मनोबल प्रभावित हो रहा है। अस्तित्व रक्षा के लिए वह जवाबदेही से जी चुराने लगा है। कैरियरवादी मूल्य उस पर हावी होता जा रहा है।

***जोशी*** *: आपकी जनकल्याण एव विकास को लेकर खास दृष्टि रही है। लेकिन यह दोष-रहित नहीं दिखाई देती। उदाहरण के लिए, आपने बैलाडीला में अनेक आदिवासी युवतियों को बाहरी लोगो के शोषण से बचाय , लेकिन उनकी नियति क्या रही? उनका पुनर्वास ठीक ढग से नहीं हो सका। उनके पतियो ने उन्हे छोड दिया। दतेवाडा के महिला निराश्रित आश्रम में कई ऐसी युवतियॉ रह रही हैं। बॅधुआ श्रमिकों की मुक्ति व पुनर्वास के संबध में भी यही समस्या है। बॅधुआ श्रमिक मुक्ति अभियान के नेता स्वामी अग्निवेश भी इस समस्या से जूझ रहे हैं। इस संबंध में आपका क्या कहना है?*

**शर्मा** : सबसे पहले तो मै यह कहूँगा कि दृष्टि साफ होनी चाहिए। लड़कियों का

ही प्रश्न लें। मैंने आदिवासी युवतियों को पत्नी का एक कानूनी दर्जा दिलवाया। अब प्रशासन को चाहिए था कि मेरे जाने के बाद जो व्यक्ति युवतियों को रखने के लिए तैयार नहीं, उनसे जीवनयापन-भत्ता दिलवाया जाता। मैंने सिर्फ यह किया था, आदिवासी लडकी जिसके साथ रह रही थी उसे वह अपना पति समझती थी, जबकि बाहरी आदमी उसे अपनी रखैल समझ रहा था। मैंने लडकी को एक कानूनी पत्नी का दर्जा दिलवा दिया था। बस। इससे ज्यादा कुछ नहीं किया। कमजोर वर्गो की रक्षा की जिम्मेदारी भी तो प्रशासक की होती है। अब बँधुआ मजदूरों को ही लीजिए। इसमें तीन पक्ष हैं—बॅधुआ मजदूर, उत्पादन के साधन और जमींदार। विसगति यह है कि आपने श्रमिक को मुक्त तो करा दिया, लेकिन भूस्वामी और उत्पादन के साधन के संबंधों में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं किया। दोनों के संबंध यथावत रहे। ऐसी स्थिति मे मुक्त मजदूर का स्थायी पुनर्वास कैसे किया जा सकता है ? मेरा शुरू से यह मानना है कि मालिक और उत्पादन के साधन के बीच जो गलत रिश्ता है उसे पहले खत्म करो। उत्पादन के साधन और मजदूर के बीच खाई मत डालो। मेरा तो यह कहना है कि जो ईट के भट्टे हैं या गिट्टी की खदानें हैं, उन पर बॅधुआ मजदूरों का हक जमवा दीजिए।

***जोशी** : लेकिन जमीन या भट्टी में जिसकी पूँजी लगी है वह*

**शर्मा** : देखिए, मैं पूँजी को नहीं मानता। पूँजी भी तो शोषण से पैदा होती है। और आज की स्थिति में तो वह भी नहीं है। मार्क्सवादी विचार मे तो गरीबो के शोषण से पूँजी का निर्माण होता है और वह पूँजीपति के हाथ में जाती है। लेकिन अब यह स्थिति भी बदल चुकी है। अब तो पूँजी तिकडम या मैनीप्यूलेशन से बन जाती है। हर्षद मेहता इसका सबसे बडा उदाहरण है। आज की तिकडमी अर्थव्यवस्था है, जिसमे मेहनत या नियोजन की भी जरूरत नहीं है। आप रातो-रात करोडपति बन सकते है। पूँजीपति की पुरानी अवधारणा बदल चुकी है।

इसलिए मैं यह मानता हूँ कि भूमि पर जोतनेवाले का हक होना चाहिए। ईट भट्टों पर बॅधुआ श्रमिकों का अधिकार होना चाहिए। कालीन उद्योग पर बाल-श्रमिकों एव उनके माता-पिता का अधिकार होना चाहिए। बिचौलियों और गैर-मौजूद जमींदारों को समाप्त किया जाना चाहिए।

इसलिए मैं हमेशा से यह कहता आ रहा हूँ कि आदिवासी-विकास तभी सफल हो सकता है जब आदिवासी को शोषण से मुक्ति दिलाई जाए, सिर्फ राहत देने से कोई भला होनेवाला नहीं है। एक घडा है जिसका पेंदा टूटा हुआ है, उसमें कितना पानी डालो, रुकनेवाला है नहीं। यही स्थिति आदिवासी एवं हरिजन समाज की है।

आप जानते ही हैं कि भारत की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है। देश के 70 फीसदी लोग जल, जंगल और जमीन से जुड़े हुए हैं। इन संसाधनो पर आदिवासियों का

हक अँगरेजो ने खत्म कर दिया था। अँगरेजी-शासन का अन्याय आज तक चल रहा है, बल्कि और गहरा हुआ है। इसी वजह से आज की अर्थव्यवस्था विभाजित हो गई है। देश के 5 10 प्रतिशत लोग कानून-व्यवस्था के तहत इन ससाधनो पर अपना हक जमाए हुए है। इसी प्रवृत्ति के तहत एक सेठ बस्तर मे आकर चार करोड रुपए लगाकर जगल जमीन और अन्य सपदाओ पर अपना हक जमा लेगा, आदिवासी अपने ही घर मे बेघरबार और लावारिस हो जाएँगे। दो-चार लोगो को नौकरी मिल जाएगी। इन नौकरीवालो को मेरे खिलाफ कर दिया गया है।

***जोशी*** *आज विश्व-स्तर पर जिस तरह की अर्थव्यवस्था की प्रक्रिया चल रही है, भारत भी उसकी चपेट से बच नहीं सकता। उदारीकरण भी उसी का एक नतीजा है। अब आप किस प्रकार इन दबावो का सामना कर सकेगे?*

**शर्मा** पहली चीज तो यह है कि इस प्रक्रिया को सही रूप मे देखा जाए। आज बिना कहे यह कहा जा रहा है कि गरीबो की बात कहना छोड दो। अब विश्व-स्तर पर 10-20 फीसदी लोग जो ऊपर है उन्ही के लिए विकास करना है। इस व्यवस्था मे 70 80 फीसदी लोगो को कीडा मकौडा कहकर खत्म कर देना चाहते है। आज हमारी अर्थव्यवस्था की सबसे बडी विसगति यह है कि सूक्ष्म स्तर पर बहुत थोडे लोगो को स्थान देकर विशाल मानवता को मृगतृष्णा का शिकार बनाकर छोड दिया गया है। उदाहरण के लिए प्रतिवर्ष लाखो लोग आई ए एस की परीक्षा मे बैठते है। बमुश्किल एक हजार ही परीक्षा पास कर पाते है। लेकिन मृगतृष्णा का मायाजाल फैला रहता है कि कभी तो आई ए एस बनेगे। अब यह मोहभग किया जाना चाहिए और इस देश की व्यवस्था अस्वीकार की जानी चाहिए। अर्थव्यवस्था के खगोलीकरण से काम चलनेवाला नही है। विकास के मापदड भारतीय आवश्यकताओ के अनुरूप होने चाहिए। भारत चीन जैसे देशो मे ससाधन सीमित है और आबादी अधिक है जबकि योरप एव अमेरिका मे आबादी कम है और ससाधन अधिक है। इस बुनियादी अतर को ध्यान मे रखने की आवश्यकता है।

देखिए पिछडे क्षेत्रो के आतरिक उपनिवेशीकरण की वजह से आदिवासी क्षेत्रो की ललाई तरुणाई लुप्त दिखाई दे रही है। 1970-71 मे आदिवासी युवक-युवतियो के चेहरो पर जो कांति मैने देखी थी आज वह नजर नही आती क्योकि उत्पीडन व वचन की प्रक्रिया तेज हो गई है। आज वे चूसे दिखाई देते हैं। इस कगालीकरण की प्रक्रिया को रोका जाना चाहिए।

***जोशी*** *क्या औद्योगीकरण से कगालीकरण की प्रक्रिया को रोका नही जा सकता?*

**शर्मा** नही, इसकी वजह है। औद्योगीकरण की धुरी कौन होगा? आदिवासी तो हाशिए पर ही रहेगे ना। रॉची भिलाई, बैलाडीला क्षेत्रो के अनुभव इसके गवाह

*हैं। दुखद स्थिति तो यह है कि हमारी सरकार के सामने यह ऑकड़े तक नहीं हैं कि औद्योगीकरण से कौन वंचित हुआ है। पड़ोसी राज्य उड़ीसा के कोरापुट जिले में भयानक तबाही मची हुई है। सब बाहरी लोगों का दबदबा हो गया है। आदिवासी खदेड़ दिए गए हैं। अब बस्तर में भी यही होने जा रहा है।*

**जोशी** *: ऐसी स्थिति में विकास की प्रक्रिया क्या होनी चाहिए? आपको विकास-विरोधी माना जा रहा है, जबकि आप इससे इंकार करते हैं। तब विकास कैसे किया जाए?*

**शर्मा** : विकास में यह देखना होगा कि इसका असली लाभ किसको मिलेगा। देखिए, अब तक तो सार्वजनिक क्षेत्र पनप रहे थे। लेकिन, अब पिछड़े व आदिवासी क्षेत्रों मे निजी क्षेत्रों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसके साथ यह भी कहा जा रहा है कि जिसने धन लगाया है, उसको लाभ मिलेगा। इसलिए निजी क्षेत्र की कोई सामाजिक जवाबदेही भी नहीं रह गई है।

**जोशी** *: सो तो ठीक है। लेकिन बस्तर के विकास के लिए कुछ उद्योग-धंधे तो लगाने ही पड़ेंगे। इसलिए कौन-सी जुगत निकले जिससे विकास भी हो और आदिवासियों का शोषण भी न हो सके?*

**शर्मा** : देखिए, सबसे पहले तो मैं यह बतला दूँ कि मैं विकास-विरोधी नहीं हूँ। पिछले 40 सालों से हमने कभी यह सोचा ही नहीं कि आदिवासी को विकास-प्रक्रिया में केंद्र बिंदु बनाया जाए। बस यही सोचा कि विकास करते रहो, सब ठीक-ठाक होता जाएगा। अब देखिए, बुनियादी अंतर कहाँ है? केंद्रीय और उत्तरपूर्वी आदिवासी क्षेत्रों में आधारभूत अंतर दिखाई दे रहा है। नागालैंड के लोगों ने साफ शब्दों मे कह दिया कि हम उद्योग तभी लगाएँगे जब वहाँ के लड़के-लड़कियाँ प्रशिक्षित होकर तैयार हो जाएँगे। मेघालय मे रेल-लाइन नहीं बिछने दी, क्योंकि इससे बाहर के लोगो की घुसपैठ बढ़ जाएगी, जब आंतरिक तैयारी हो जाएगी तब उद्योग लगाने व लाइन बिछाने की इजाजत दे देंगे। मिजोरम का पूरा व्यापार मिजो लोगो के हाथों मे है। लेकिन केंद्रीय आदिवासी क्षेत्रों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। आदिवासी संसार के दो भिन्न अनुभव हमारे सामने हैं। पूर्वी क्षेत्रों में शिक्षा पहले गई, विकास बाद में, जबकि केंद्रीय क्षेत्रों में विकास पहले और शिक्षा बाद में। हमारे यहाँ शिक्षा पर ध्यान ही नहीं दिया गया। इसीलिए मैंने जब ट्राइबल सब-प्लान बनाया तो पहला उद्देश्य शोषण से मुक्ति रखा। दूसरा था स्थानीय समाज को सक्षम बनाना। तीसरा था–परंपरागत अर्थव्यवस्था को सुदृढ करना और चौथा था–नई अर्थव्यवस्था को उसमें जगह देना। इसलिए 1978 में सखलेचा सरकार के दौरान ही मैंने आदिवासी शिक्षा को प्राथमिकता दी। इन्हीं बलिराम कश्यपजी के समय ही रिकॉर्ड भवनो का निर्माण शुरू कराया; 800 छात्रावासों के निर्माण की

योजना बनाई थी। उस समय विधानसभा में कश्यपजी के बयान इसकी गवाही दे सकते हैं। 1978 मे बस्तर की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध समाजशास्त्री श्यामाचरण दुबे की अध्यक्षता मे एक कमेटी गठित की थी। उक्त कमेटी ने एक समकक्ष विश्वविद्यालय (डीम्ड युनीवर्सिटी) की सिफारिश की थी।

आदिवासी उपयोजना मे भी शोषण से रक्षा सबधी कई प्रावधान स्वय मैने किए थे, विशेष रूप से आदिवासी क्षेत्रो से कच्चे माल की निकासी को लेकर। जब साल-बीज का ठेका दिया जा रहा था तब मैने इसका विरोध किया था और कहा था कि बस्तर मे ही इसका तेल निकालने का कारखाना लगाया जाए, बीज को बबई भेजने से आदिवासी को क्या लाभ मिलेगा? आपको विश्वास नही होगा, साल-बीज को खरीदकर उसे हिंदुस्तान लीवर को देने-भर मे ही बिचौलियो ने करोडो रुपए कमा लिए। फर्जी तेल-सयत्र लगाए गए। बस्तर मे ही वन-आधारित उद्योग लगाने की मॉग तब से करता आ रहा हूँ।

अब जब सार्वजनिक क्षेत्र नही आ रहे है और निजी क्षेत्रो को प्रोत्साहित किया जा रहा है तो रक्षा की नई व्यवस्था भी विकसित की जानी चाहिए। सहकारी जैसी सस्थाओ की रचना की जाए। आदिवासी को 51 प्रतिशत हिस्सेदारी दी जाए। आदिवासी क्षेत्रो को एक लोकक्षेत्र की आवश्यकता है जो कि सार्वजनिक और निजी क्षेत्रो से अलग होगा। आदिवासी क्षेत्रो मे लगनेवाले उद्योगो पर समाज का नियंत्रण होना चाहिए। श्रम के आधार पर श्रमिको की हिस्सेदारी होनी चाहिए।

***जोशी*** *दिल्ली और भोपाल का जो सत्ता प्रतिष्ठान है उसके चरित्र से तो यह नहीं लगता कि वह आपकी विकास की अ- गरणा के अनुरूप कार्य करेगा।*

**शर्मा** देखिए, लडाई तो इस समय सत्ता, व्यवस्था और लोगो के बीच की है। इसलिए बदलाव के लिए लोकशक्ति का निर्माण करना होगा।

***जोशी*** *आपका आशय समझ गया। लेकिन दिक्कत यह है कि पिछले 40 सालो मे परिवर्तन के क्षेत्र मे जो-जो प्रयोग किए गए, एक मुकाम पर पहुँचकर वे अप्रासगिक हो गए। इस सदर्भ मे विनोबाजी, जयप्रकाश नारायण, लोहिया और यहाँ तक कि नक्सलवादियो के अनुभवो को देखा जा सकता है। ये प्रयोग इन सीमित क्षेत्रो में ही सफल रहे, राष्ट्रव्यापी नहीं बन सके। ऐसा क्यो?*

**शर्मा** : भारत जन-आदोलन की कोशिश यही है कि अब तक के प्रयोगो से सबक लेकर आगे बढे और परिवर्तन की रणनीति तैयार करे। हम वोट की राजनीति से दूर रहना चाहते है। जे पी आदोलन का हश्र हम देख चुके हैं। वोट की राजनीति से आप सत्ता पर कब्जा कर लेते है, व्यवस्था-परिवर्तन नहीं कर पाते हैं। बल्कि सत्ता आपको संचालित करने लगतीं है। अत व्यवस्था मे बुनियादी

बदलाव के लिए लोकशक्ति की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, देश के एक लाख गॉव यह फैसला करें कि हम किसी भी जनविरोधी कानून को नहीं मानेंगे। निश्चित ही इसका प्रभाव सत्ता प्रतिष्ठान पर पड़ेगा। वह लोकहित के कानून बनाने के लिए बाध्य होगा, जैसे मछली मछुआरे की, ठेकेदार की नहीं। आज के कानून में वह ठेकेदार की है।

***जोशी** : आज उपभोक्ता संस्कृति की मार दिल्ली से लेकर जगदलपुर व दंतेवाडा तक फैली हुई है। दूरदर्शन, रेडियो और पत्र-पत्रिकाओं के जरिए यह संस्कृति तेजी से फैल रही है। इससे उत्पीडित वर्गों की मिलीटेंसी प्रभावित भी हो रही है। यह सस्कृति मृगतृष्णा को यथार्थ मे बदलती हुई दिखाई दे रही है। यह समस्या मार्क्स. लेनिन, माओ, होची मिन्ह और गॉधी के सामने नहीं थी। आज इसका विस्फोट हो चुका है। आप इसका सामना कैसे करेंगे?*

**शर्मा** : देखिए, मै यह मानता हूँ कि हर व्यवस्था में उसके विनाश के बीज होते है। विनाश के बीज यही हैं कि आज झुग्गी-झोंपडियों में टीवी के माध्यम से पॉच सितारा होटल की संस्कृति प्रस्तुत कर रहे हैं। कुछ देर तक उसको इल्यूजन रहेगा। लेकिन एक न एक दिन वास्तविकता से उसकी मुठभेड होगी ही। दूसरी बात यह है कि हमारे देश में पश्चिमी सभ्यता का जो भारतीय उपभोक्ता सस्कृति संस्करण है वह सार्वभौम नहीं हो सकता। इसकी प्रमुख वजह यह है कि हमारे पास साधन नहीं हैं।

***जोशी** : कुछ समय तो पूँजीवाद इन लोगों को भरमाकर रख सकता है। अपने अस्तित्व के लिए पूँजीवाद समय-समय पर, नए-नए हथियार ईजाद करता आया है। जब लोगों का भरम टूटेगा तो नया हथियार मार्केट में आ जाएगा।*

**शर्मा** : उसकी भी एक सीमा है। आज जब ओजोन की परत मे छेद होने लगे है तो पूँजीवाद कहॉ बचेगा? अब तक यह माना जाता था कि साधन निस्सीम हैं। लेकिन, अब यह धारणा समाप्त हो चुकी है। विकास के साधन सीमित हैं। साधनों की सीमा काल व स्थान की दृष्टि से निर्धारित करनी पड़ेगी। अमेरिका की अलग होगी, भारत की अलग और उसमें भी बस्तर या सरगुजा की अलग रहेगी। लेकिन दस प्रतिशत लोग इस सीमा को स्वीकार नहीं करेंगे, जबकि निचले स्तरों का दबाव बढ़ेगा। इससे अंतर्विरोध पैने होंगे।

***जोशी** : क्या यह माना जाए कि बदलाव की दृष्टि से राजनीतिक पार्टियों की क्षमता चुक गई है?*

**शर्मा** : मेरे ख्याल से आप सही कह रहे हैं। इन पार्टियों ने विकास के नए प्रतिमान के संदर्भ में सोचा ही नहीं है। इसके ऐतिहासिक कारण हैं। पश्चिमवालों ने शिक्षा

के माध्यम से भारतीय बुद्धिजीवियो को अनुकूलित कर दिया है। आजादी के दौरान के बुद्धिजीवी—चाहे गॉधीजी रहे हो या नेहरूजी, पश्चिम मे शिक्षित होते हुए भी यहॉ की जमीन से जुडे हुए थे। लेकिन आज ऐसा नही है। पश्चिमी बुद्धिजीवियो से हमारा राजनीतिशास्त्र समाजशास्त्र दर्शन आदि सभी पटे पडे है। गॉधी, लोहिया, जेपी आदि को हाशिए पर रखा हुआ है। इसलिए आज का बुद्धिजीवी जो सत्ता मे आ गया है वह अपने ही देश की चुनौती को समझ नही पा रहा है। उसके सामने पश्चिम के मॉडल है। इसलिए राजनीतिक पार्टियो के ऊपरी नेतृत्व को नई विसगतियॉ दिखाई नहीं दे रही है।

***जोशी*** *तब क्या राजनीतिक पार्टियो की भूमिका ही नही रह गई है?*

**शर्मा** ऐसा नहीं है, भूमिका है और रहेगी। लेकिन जन-आदोलन को भी समानान्तर आधार पर विकसित करना होगा और पार्टियो के नजरिए को बदलना होगा आदोलन को वोट की राजनीति से अलग रखना होगा। एक तरह से आदोलन और पार्टियॉ परस्पर पूरक है। लेकिन मै यह स्पष्ट कर दूॅ कि मै या मेरे सक्रिय साथी कभी चुनाव नहीं लडेगे।

***जोशी*** *आपके सबध मे प्रचारित किया जा रहा है कि आपके सबध नक्सलपथियो से है। क्या नक्सलपथियो के साथ स र्क रखना गैर-सवैधानिक है?*

**जोशी** देखिए जब मै अनुसूचित जाति-जनजाति आयुक्त था तब भी मैंने अपनी रपट मे लिखा था कि यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारे देश मे जो काम शासन, राज्यपाल, मुख्यमत्री आदि को करना चाहिए था वह उन्होने नही किया। निचले स्तरो पर आदिवासियो को राहत नही मिली े शोषण व उत्पीडन को लेकर एक प्रक्रिया शुरू हुई, उसे आप नक्सलवाद कहे या कुछ और लेकिन उसने आदिवासियो को राहत दिलाई यह एक सच्चाई है। जब मै आयुक्त के रूप मे आदिवासी क्षेत्रो मे गया था तब चेतना मडल नामक सस्था ने एक ज्ञापन दिया था कि गरीबो की झोपडियॉ न जलाई जाऍ। क्या यह मॉग असवैधानिक है? चेतना मडल ने लोगो मे चेतना पैदा की है। जहॉ तक सबध का प्रश्न है, हम लोग एक ही क्षेत्र मे काम करते है, आदोलनो मे भाग लेते है। ऐसी स्थिति मे किसी को नक्सलवादी कहना कठिन है। क्या पहचान है ? हो सकता है कि एक व्यापक नक्सलवादी नीति के तहत कोई दिल्ली मे काम कर रहा हो, पीपुल्स वार ग्रुप का प्रतिनिधि हो और वो मुझसे बात कर रहा हो, तब कैसे उसकी पहचान की जाए कि वह नक्सलपथी है ? 25 हजार के आदोलन मे कौन भाग लेता है हम कैसे पहचान कर सकते हैं?

***जोशी*** *आप पर मूर्ति-चोर, लकडी-चोर होने के आरोप लगाए जा रहे हैं। इस सबध मे आपका क्या कहना है?*

**शर्मा** . अब देखिए, ऐसा है कि मैं 25 साल पहले बस्तर मे कलेक्टर था। इसके

बाद स्थानांतरण हुआ। तबादले को रोकने के लिए भाजपा के नेता कश्यप सहित 11 विधायक राज्यपाल के पास गए थे। इसके बाद मैं भोपाल में रहा। काम के आधार पर इंदिराजी ने मुझे दिल्ली बुलवाया। बुलानेवालों में के सी पंत और डॉ नूरुल हसन भी शामिल थे। उस समय तक भी कोई बात नहीं थी। इसके बाद मैं वापस भोपाल गया। सखलेचाजी के शासन में सचिव व आयुक्त पद पर काम किया। कश्यपजी उस समय आदिवासी कल्याण मंत्री थे, तब उन्होंने मेरा स्वागत किया था। इसके बाद पटवाजी भी कुछ समय के लिए मुख्यमंत्री रहे। फिर अर्जुनसिंहजी का शासन आया। इसके बाद दिल्ली मे मैं संवैधानिक अधिकारी बना। राज्यमंत्री का दर्जा मिला। इस पूरे कार्यकाल मे किसी ने भी इस तरह के सवाल नहीं उठाए। आपको आश्चर्य होगा यह जानकर कि, सभी कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों से मेरे नीतिगत मतभेद हुए हैं जबकि भाजपाई या जनसंघी मुख्यमंत्रियों से मेरे कभी मतभेद ही नहीं हुए, किसी एक बिंदु पर उनसे मेरी टकराहट नहीं हुई। उनके लोग तो मुझे जनसंघी ही मानते रहे।

जब मैंने जबलपुर मे आदिवासी हरिजनों की मिलन मढई कराई थी उस समय मुख्यमत्री के रूप में सखलेचाजी आए थे, जशपुर स्थित कल्याण आश्रम के कर्ताधर्ता मिश्रीलालजी आए थे। तब कहा गया था कि मिलन मढई आर एस एस की प्रक्रिया है। कांग्रेस की जब सरकार आई तो उसने इसे समाप्त कर दिया। एक पब्लिक मीटिंग में इनके ही एक मत्री ने मुझे आई ए एस गॉधी की उपाधि दी थी।

अब इतने लबे कार्यकाल के बाद कोई बातें उठती है तो भी मैं जॉच के लिए तैयार हूँ। 1981 में मैंने आई ए एस से स्वेच्छा से सेवानिवृत्ति ली। प्रश्न उठता है कि मेरे खिलाफ विभागीय जॉच क्यो नही कराई गई ? क्यो मुझे पदोन्नति दी गई ? फिर भी मैं सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश या सी बी आई से जॉच के लिए तैयार हूँ। हालॉकि रिटायरमेट के 10 वर्ष बाद कोई जॉच नहीं की जा सकती, फिर भी इस तथ्य को भुला दिया जाए और न्यायाधीश के तहत मेरे व्यक्तिगत जीवन और कार्यकाल की जितनी भी बातें हैं सबकी जॉच के आदेश दे दिए जाएँ। मैं जॉच का सामना करने के लिए तैयार हूँ। जॉच की दृष्टि से संवैधानिक सरक्षण एव तकनीकी औपचारिकता को भी त्यागता हूँ। अब जो मुझे जगदलपुर में भाजपाइयो ने नंगा किया है तो मुझे पूरी तरह नंगा हो जाने दो, जिससे कि सभी गंदगी-धूल दूर हो जाए। मैं एक नई पारदर्शिता के साथ उत्पीडितों और दलितों की लडाई लड़ सकूँ, अब यही महत्वाकांक्षा है।

**15 नवम्बर, 1992**

# आदिवासी कल्याण का सपना सबका अपना-अपना

आदिवासी विकास एक महत्वपूर्ण और विवादास्पद विषय है। मध्यप्रदेश में पिछले कुछ वर्षो के दौरान आदिवासी कल्याण के क्षेत्र मे राज्य शासन ने कई कदम उठाए हैं। 1985 मे प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने मध्यप्रदेश के विभिन्न आदिवासी अचलो का भ्रमण करके वहाँ आदिवासियों की समस्याओं का जायजा लिया था। मुख्यमत्री श्री मोतीलाल वोरा स्वय उन गॉवो का दौरा कर चुके हैं, जहाँ प्रधानमंत्री गए थे। आदिवासी-समाज के उत्थान के बारे मे उनका अपना स्पष्ट चितन है, कल्पना है। वे चाहते है कि आदिवासियो मे जो बुराइयॉ है, कुरीतियाँ हैं, अंधविश्वास है, उनसे आदिवासी समाज को मुक्ति मिले, यह समाज स्वस्थ और शिक्षित बने। उन्होंने भोपाल मे एक भेंटवार्ता में ये बाते स्पष्ट कीं।

इसके पूर्व इस प्रतिनिधि ने मध्यप्रदेश के दो पृथक्-पृथक् आदिवासी क्षेत्रों—बस्तर और झाबुआ के प्रतिनिधियों से आदिवासी-कल्याण के विषयों पर नई दिल्ली में चर्चाएँ कीं। इस प्रतिनिधि ने मध्यप्रदेश के सरगुजा तथा शहडोल जिले के आदिवासी क्षेत्रों की यात्राएँ भी कीं तथा वहाँ आदिवासी जनो से उनकी समस्याएँ जानी-समझीं। मुख्यमंत्री श्री वोरा से हुई चर्चा की पृष्ठभूमि में यही यात्राएँ तथा श्री भूरिया व श्री नेताम से हुई चर्चाएँ। वे समग्र रूप से यहाँ प्रस्तुत हैं। जगह-जगह घूमते हुए एक टेलीविजन कैमरे की तरह विषयो, मुद्दो और कथनों को पकडकर एक जगह लाया गया है।

**मुख्यमंत्री** : आदिवासियों से मेरा प्रथम साक्षात्कार बस्तर में 1958-59 में हुआ था।

**उस समय वहाँ कोई** आदिवासियों का **सम्मेलन** था। **मैं बस्तर के पूर्व सांसद श्याम शाह के साथ गया था।** वहाँ आदिवासियों **की समस्याओं पर एक ज्ञापन तैयार कर** पं. **नेहरू को भेजा** जानेवाला था। तब से लेकर आज तक **आदिवासियों की स्थिति में परिवर्तन** आया है।

**उस समय** आर्थिक संपन्नता उनसे कोसों दूर थी। बस्तर के **अबूझमांड में** 'शिफ्टिंग **कलटीवेशन'** हुआ करती थी। दूसरे क्षेत्रों में भी **मैंने आदिवासियों को समीप से देखने** की कोशिश की थी।

**अरविंद नेताम और भूरिया** : हम भी स्वीकार करते हैं कि आदिवासियों की स्थिति में परिवर्तन हुआ **है**। सुधार भी हुआ है। पर समस्याएँ

**मुख्यमंत्री** : मुख्यमंत्री होने के नाते मेरी हमेशा यह कोशिश रहती है कि **आदिवासियों** की समस्याओं को गहराई के साथ समझूँ। इसलिए मेरी सरकार ने **आदिवासी क्षेत्रों** में कार्यरत प्रशासनिक सेवाओं को चुस्त बनाया है। आदिवासियों **को शासन** तंत्र में स्थान भी दिया है। उनकी आर्थिक उन्नति और कृषि एवं शिक्षा **के क्षेत्र** में विकास के लिए विशेष योजनाएँ बनाई गई हैं।

**नेताम एवं भूरिया** : आदिवासी उत्थान के लिए मौजूदा प्रशासनिक तंत्र उपयोगी **नहीं है**। आदिवासी क्षेत्रों के लिए अलग से एक 'आदिवासी केडर' बनाने की **आवश्यकता** है।

**नेताम** : वास्तव में नए ढंग की सोच की आवश्यकता है। प्रतिबद्ध अधिकारियों का **एक** पैनल बनाया जाना चाहिए। इसी प्रकार संवेदनशील कर्मचारी होने चाहिए।

**भूरिया** : मेरा तो यह मत है कि जिन शासकीय अधिकारियो और कर्मचारियो की नियुक्ति आदिवासी क्षेत्रों में की जाती है, वे स्वयं को दंडित समझते हैं। सरकार को चाहिए कि प्रत्येक सरकारी अधिकारी व कर्मचारी के लिए आदिवासी क्षेत्रों में कम से कम तीन साल के लिए काम करना आवश्यक कर दे। बल्कि उनकी सेवा-शर्तो में इसे शामिल कर दिया जाए। मैं तो आदिवासी विकास के लिए बननेवाली योजनाओं से असहमत हूँ। इनकी प्रक्रिया गलत है। ये योजनाएँ ऊपर से बनाकर हम लोगों पर थोप दी जाती हैं। इनमे आदिवासियों की किसी भी स्तर पर हिस्सेदारी नहीं है। यह जरूरी है कि इनमें हम लोगों को विश्वास में लिया जाए।

***जोशी*** : *सरकार बाकायदा आदिवासी समाज को विश्वास में लेती है। आदिवासियों के विकास के लिए परिषदें भी गठित की गई हैं। इस संबंध में, नेतामजी, आपकी क्या टिप्पणी है?*

**नेताम** : मेरे अनुभव ठीक नहीं हैं। प्रदेश की आदिवासी सलाहकार समितियाँ

निष्क्रिय और बेजान पड़ी हुई हैं। उन्हें कोई पूछता नहीं है।

**वोराजी** : सफलता या असफलता को छोड दीजिए, आदिवासियों की समस्याओं के निराकरण में प्रदेश सरकार पूरी ईमानदारी के साथ प्रयत्नशील है। केंद्र सरकार के निर्देशों के अनुरूप प्रदेश सरकार ने विकास कार्यक्रम तैयार किए हैं। इसमे एकीकृत विकास योजनाएँ आदि शामिल हैं। सभी को राहत मिली है। वन-उपज की उपयुक्त बिक्री हो, और सही मूल्य आदिवासी को मिले, इसकी विशेष व्यवस्था की गई है। आदिवासी क्षेत्रो मे खाद्यान्न की उचित मूल्यो पर आपूर्ति होती रहे, इस दिशा में भी विशेष कदम उठाए गए है।

**नेताम** : मै इससे सहमत नहीं हूँ कि वन-उपज का पर्याप्त मूल्य आदिवासी को मिल रहा है। बिचौलिया सस्कृति पूरी तरह समाप्त हो चुकी है। सच्चाई यह है कि वन-विभाग और सहकारिता विभाग उदासीन बने हुए है, दोनो मे झगडा चलता रहता है। सहकारिता की दूकानो पर वन-उपज खरीदने के लिए पैसा नहीं रहता। इससे आदिवासियो को काफी नुकसान होता है। तेदू-पत्ते और लाख की खरीदी म भी धाँधली फैली हुई है। व्यापारी और बिचौलिए खरीदते है और आदिवासी को कम से कम दाम देते है। कभी-कभी हफ्तो पैसे के लिए टरकाते रहते है। सहकारिता विभाग की उदासीनता के कारण मुझे भी कई कठिनाइयो का सामना करना पडा। मेरी वन-उपज कई महीनो पडी रही।

**मडला जिले के बेगा चक के आदिवासी** : उचित मूल्य की दूकान नहीं है। वहाँ राशन नही है। वन-उपज की खरीदी के लिए सहकारी समिति की व्यवस्था नही है।

***जोशी** : नेतामजी ! तब क्या यह माना जाए कि सरकार पूरी तरह से विफल रही है?*

**नेताम** : मै ऐसा नही कहूँगा। पेयजल के क्षेत्र मे आदिवासियो को राहत मिली है। बस्तर मे अच्छे परिणाम निकले है। लोगो ने झरने का पानी पीना बद कर दिया है। हैण्ड पम्प का पानी पीते है।

***जोशी** : मडला के बेगा चक, बिलासपुर और सरगुजा के कई क्षेत्रों मे देखा गया है कि हैण्ड पम्प बेकार पडे हुए है।*

**नेताम** : हाँ यह शिकायते हमारे यहाँ भी है।

**नानसिंह** : *(बेगा-चक के अजगर गाव का सरपच)* अब आप ही देख लीजिए, पीने के पानी की कमी है। हैण्ड-पम्प काम नही करते, बेकार हो जाते है, महीनों ठीक करने नहीं आते है। कई बार शिकायते की। सरकारी कुएँ भी है पर पानी सूख गया है।

**भूरिया** : पर मेरा अनुभव ऐसा नहीं है। हमारे झाबुआ क्षेत्र मे शासन ने पेयजल

की समस्या का काफी हद तक समाधान किया है।

**नेताम** : पेयजल के अलावा शिक्षा, स्वास्थ्य, सिचाई, संचार आदि के क्षेत्र में भी आदिवासियों को लाभ हुआ है।

*__जोशी__ : मुख्यमंत्रीजी, प्रधानमत्री ने प्रदेश के कई आदिवासी गॉवो का दौरा किया है। आप भी करते रहते हैं। क्या आपके पास इसका कोई लेखा-जोखा है कि आप लोगो के जाने के पश्चात उन गॉवो की तस्वीर कैसी बनी?*

**वोराजी** : हम लोगो की यात्राओ से गॉववालो को काफी लाभ पहुँचा है। आदिवासियो ने प्रधानमत्री और मेरी यात्राओ को बहुत पसद किया है। उनमे कहने की हिम्मत पैदा हुई है। उन्होने नि सकोच अपनी समस्याएं हमारे सामने रखीं। मै लगातार ऐसे गॉवों के सपर्क मे रहता हूँ जहॉ प्रधानमत्री जा चुके है। पिछले दिनो मैंने खुद रायगढ के इचकेला गॉव की यात्रा की थी। पूरा जायजा लिया। प्रगति को सतोषजनक पाया। इन गॉवो के सबंध मे प्रधानमत्री सचिवालय को एक विस्त त रपट भी भेजी गई है।

*__जोशी__ : (सरगुजा के कठघोडी गॉव के सरपच नवलसिह से) कठघोडी उन सौभाग्यशाली गॉवो मे से एक है, जहॉ प्रधानमत्री पहुँच चुके है, सरपचजी। प्रधानमत्री के दौरे से आपके गॉव को कोई लाभ हुआ है?*

**नवलसिंह** : कोई खास नहीं। गॉव जैसा पहले था, वैसा ही है। कई वादे किए गए थे कुछ हुआ नहीं। हॉ, एक बात है, नलकूप लग गया है। मिडिल स्कूल खुल गया है। पर अभी तक ग्राम पचायत भवन नहीं है। सरकारी डॉक्टर नही है। मकान उदरत-फुदरत टूटे-फूटे है। औषधालय नहीं है। पद्रह-बीस कि मी दूर जाना पडता है। सस्ते गल्ले की दुकान है, पर सामान नहीं है। हमारे गॉव मे हरिजन सबसे गरीब है।

**आनंदपुर की सुकनी बाई** . (कठघोडी से कुछ दूरी पर स्थित गॉव। प्रधानमत्री इस गॉव मे भी गए थे) राजीव गॉधी आए थे, कोई फायदा नहीं हुआ। पीने का पानी नहीं मिलता। हैण्ड-पप नहीं है। आदमियों को अनाज नही है। पशुओ को चारा नहीं है।

**मुख्यमंत्री** : सरकार का मूल उद्देश्य आदिवासियो के जीवन मे गुणात्मक परिवर्तन लाना है। गरीबी की सीमा-रेखा से ऊपर उठाना है। इसके लिए यह आवश्यक है कि आदिवासी क्षेत्रो मे शिक्षा का विस्तार हो। आप जानते ही हैं पिछले दो सालो में आश्रमशालाओ की तादाद मे व द्धि हुई है। सातवीं योजना में शाला भवनो के निर्माण पर जोर दिया जा रहा है, तदर्थ शिक्षको की नियुक्तियॉ भी की जा रही है।

**गोरा कनारी के आदिवासी** : मिडिल स्कूल है, पर आश्रमशाला नहीं है। बरसात के दिनों में सात-सात बार बुडनेर नदी को पार करके बच्चों को स्कूल पहुँचना पड़ता है। प्राथमिक एवं मिडिल स्कूलों के स्वयं के भवन नहीं हैं। गोदामों में कक्षाएँ चल रही हैं।

**धुरकटा की एक अध्यापिका** : पहाडियों से घिरे इस दूरदराज गाँव में अध्यापकों की सबसे बडी समस्या आवास की है। अध्यापिकाओं के लिए और भी कठिनाई है। बालकों के आश्रम में कन्याशाला चलाई जा रही है। इस गाँव में दो अध्यापिकाएँ और आठ अध्यापक हैं। किसी के लिए रहने की व्यवस्था नहीं है।

**भूरिया** : झाबुआ मे शिक्षा की स्थिति दयनीय है। एक शिक्षकवाली शालाएँ नाम के लिए चल रही हैं। शिक्षा की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

**मुख्यमंत्री** : यह आप स्वीकार करेंगे कि आदिवासियो के जीवन में कई बदलाव आ चुके हैं। उन्होंने जो प्रगति की है, उसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। शासन की संवेदनशील द ष्टि के कारण धार, झाबुआ, बस्तर, सरगुजा, मंडला आदि आदिवासी-बहुल जिलों में ऐसे अधिकारियों को नियुक्त किया गया है जो गरीबों की भलाई चाहते हैं। आदिवासियों का शोषण रुका है। बाहरी तत्व आसानी से इन क्षेत्रों में पहुँच नहीं सकते। जिस ढंग से नक्सली तत्व बस्तर में आदिवासियों को गुमराह कर रहे हैं, उसे रोका जा रहा है। जब से इन क्षेत्रों में विकास कार्य शुरू किया गया है, तब से नक्सली गतिविधियाँ ठंडी पड़ गई हैं। हमने गाँव-गाँव में बिजली पहुँचा दी है। एक लाख से अधिक बिजली के कनेक्शन स्वीकृत किए हैं। इस रोशनी के प्रभाव मे बाहरी तत्व आदिवासियों को आसानी से भटका नहीं सकेंगे।

**नेताम** : यह सही है कि आंशिक तौर पर आदिवासियो का शोषण रुका है। बेघरों को घर मिले हैं। काफी हद तक भू-लूट भी रुकी है। परंतु आदिवासी ऊर्जा व संपदा के शोषण का स्वरूप भी बदल गया है। आज विकास के नाम पर बगैर सोची-विचारी योजनाएं हम पर लादी जा रही है। बस्तर का ही उदाहरण लीजिए। दक्षिण बस्तर में बोधघाट परियोजना लागू की जा रही है। बोधघाट बाँध बनने से करीब दस हजार आदिवासी विस्थापित होंगे। 30-40 लाख पेड डूब में आएँगे। 10 हजार हेक्टेयर भूमि और 42 गाँव डूबेंगे। दक्षिण बस्तर की अर्थव्यवस्था चौपट हो जाएगी। दिल्ली में अबूझमाड़ में पैदा खेती रोकने के लिए पाँच करोड़ रु. की योजना बनाई गई। भोपाल और दिल्ली ने स्वीकृति भी दे दी, परंतु स्थानीय लोगों को विश्वास में नहीं लिया गया।

**भूरिया** : मेरा तो ऐसा अनुभव है कि राज्य सरकार आदिवासी विकास के प्रति

**गम्भीर नहीं है। राज्य सरकार की नीति मलेरिया की तरह उपचार करने की है। जब आदिवासियो मे समस्याओ का विस्फोट होता है, तब तात्कालिक उपचार कर दिया जाता है, फिर सब कुछ शात हो जाता है। हर समय चौकसी नहीं रहती। यह सच है कि 85-86 मे अच्छा काम हुआ था एक अच्छा माहौल बना था, परतु पिछले साल यह माहौल समाप्त हो गया है। यदि किसी सरकार को आदिवासियो का विकास करना है, उनके जीवन मे वास्तविक बदलाव लाना है, तो एक लक्ष्मण-रेखा खींचनी होगी। इस लक्ष्मण-रेखा के उस पार किसी ठेकेदार, सूदखोर और अन्य बाहरी तत्वो को जाने की अनुमति नही होगी।**

**नेताम** परिवर्तन के साथ यह भी जरूरी है कि आदिवासियो की सम द्ध परम्परा की रक्षा की जाए आदिवासी आचार सहिता को लिपिबद्ध किया जाए। आज हो यह रहा है कि आधुनिकीकरण के नाम पर तथाकथित सभ्य समाजा की बुराइयाँ एव कुरीतियाँ हमारे समाज मे पहुँचती जा रही है। मिसाल के लिए दहेज की बीमारी हमारे समाज मे फैलती जा रही है। सभ्य किस्म के आदिवासी दहेज लेने लगे है हिन्दू पद्धति से विवाह करते है और दहेज माँगते है।

***जोशी*** *मुख्यमत्रीजी प ष्ठभूमि एसी ह तो बताइए कि आदिवासियो की विकासधारा कैसे बहे ?*

**मुख्यमत्री** यह सही है कि हमे हर कीमत पर आदिवासी सस्कृति की रक्षा करनी चाहिए। प्रधानमत्री श्री राजीव गाँधी भी कह चुके है। आधुनिकता के नाम पर उनकी परपराओ का अतिक्रमण न हो कोशिश यह भी की जानी चाहिए। पर इसका यह भी मतलब नही है कि वे लगोटधारी ही बने रहे दुनिया के बारे मे जाने ही नही। हम नहीं चाहते कि वे अफ्रीकी आदिवासियो की तरह बने रहे। प नेहरू श्रीमती इदिरा गाँधी और श्री राजीव गाँधी का यही दर्शन है। इन नेताओ का मत है कि आदिवासी जगल मे भटकते रहे अनजान बने रहे पाचीन बने रहे ऐसा नही होने देना चाहिए।

**13 मार्च, 1987**

# संवाद घंटाली की श्रीलता स्वामीनाथन से

राजस्थान के बांसवाडा जिले का छोटा-सा गाव घटाली और श्रीलता स्वामीनाथन एक-दूसरे के पर्याय बन चुके है। दस साल पहले तक यह गांव पटवारी के खसरा खातो मे दर्ज था। आज यह राजस्थान और उससे बाहर चर्चा का केन्द्र बना हुआ है। बडे-बडे अधिकारी श्रीलता के टापरे मे घटाली के भील आदिवासियो के साथ सवाद स्थापित कर चुके है।

ठहराव मे हस्तक्षेप का यह सिलसिला दस बरस से चल रहा है। श्रीलता और उसके साथियो के कामो की गूँज घटाली मे ही नही, बॉसवाडा, डूँगरपुर, चित्तौडगढ और उदयपुर के दूर-दराज गॉवो मे बसे 'धरा के शापितो' के बीच सुनाई देती है।

'वर्ग सघर्ष' के लिए 'स्व-वर्ग-मुक्ति यात्रा' श्रीलता की जिन्दगी का इत्तफाक नहीं है। सवर्ण परिवार के सस्कार यूरोपीय मूल्य-व्यवस्था और भारतीय वचितो के यथार्थ से जब श्रीलता का एक साथ सामना हुआ, तो उन्हे द्वद्वो ने आ दबोचा। एक अपराधबोध जन्मा। श्रीलता कहती है, "मुझे अपने वर्ग अपने वातावरण से घृणा होने लगी। मद्रास, दिल्ली और यूरोप मे चैन पाने की कोशिश की। दिल्ली मे थियेटर किया। लदन मे थियेटर किया। होटलो मे घूमी। जीन-सस्कृति मेरी जिन्दगी थी। पर जब-जब भारतीय यथार्थ से मेरा पाला पडा, सवाल तेज होते चले गए। मैने बार-बार स्वय से पूछा, क्या दैहिक सुख-सुविधाएँ ही सब कुछ है? मेरा नर्वस ब्रेक डाउन होने लगता था। मैं चीख पडती थी कि क्या खुद के लिए जीना ही सब कुछ है? मुझे नया विकल्प चाहिए। और मैं कॉन्फ्लिक्ट को हल करने के लिए दिल्ली के महरौली खेतिहर श्रमिको के बीच 1972-73 मे सक्रिय हो गई।'

जिस तरह क्राति के लिए गरीब वर्ग मे पैदा होना बुनियादी शर्त नहीं है उसी

तरह यथास्थितिवाद के लिए अमीर-वर्ग मे पैदा होना भी जरूरी नहीं है। श्रीलता ने इस मर्म को समझ लिया था। मुक्ति और नए वर्ग-आधारो का निर्माण काफी कष्टकर था, इसे श्रीलता तब समझ सकी जब आपातकाल के दौरान उन्हे जेल मे बद कर दिया गया। दस महीने जेल मे काटे। मद्रास मे नजरबद रखा गया। परन्तु वर्ग-मुक्ति की प्रक्रिया निरन्तर चल रही थी। उन्होने राजस्थान के भूमिगत क्रातिकारी चौधरी महन्द्रसिह से प्रेम-विवाह किया। आपातकाल समाप्त हुआ। विकल्प की तलाश मे वह उदयपुर पहुँची। सेवा मदिर मे कुछ समय काम किया। वहाँ की यथास्थितिवादी सस्कृति रास नही आई। अत मे राजस्थान-मध्यप्रदेश सीमा पर स्थित बॉसवाडा के सबसे पिछडे गॉव घटाली की एक डूँगरी पर एक टापरा डाल लिया।

आदिवासी स्त्रियो के बीच काम करने और उनके अस्तित्व के साथ अपने को एकाकार करने के लिए कानपुर मे दाई व प्रसूति-कर्म का प्रशिक्षण लिया।

श्रीलता को मैने तीन मोडो पर देखा है। 1972-73 की एक फर्राटेदार लडकी। अपने मे बिलकुल अलमस्त। उन्मुक्त सस्कृति की प्रतीक। दूसरे मोड पर 1978-79 मे टापरे की छॉव-तले भीलो को दवाई बॉटते, चूल्हा जलाते और डूँगरी के नीचे बहती नदी से भरी मटकी सिर पर उठाते हुए। और अब तीसरे मोड पर एक जुझारू श्रीलता को देखा जो बॉसवाडा-डूँगरपुर के भील आदिवासियो के लिए लडाई लडती है पुलिस की लाठियॉ खाती है और जेल जाती है। साथी की तरह महेन्द्रसिह उनके साथ है पति बनकर नही। पिछले दिनो श्रीलता ने आदिवासियो और खेतिहर श्रमिको को न्याय दिलाने के लिए सुप्रीम कोर्ट के दरवाजो पर दस्तक दी है। दिल्ली मे श्रीलता के साथ इस नए मोड पर हुई मुलाकात का एक ब्यौरा

**श्रीलता** मैने जीवन मे पहली बार इतने दूर-दराज के गॉव देखे थे। महरौली के गॉव तो काफी विकसित थे। जब मै इस गॉव मे पहुँची एक बिल्कुल अलग भारत मिला, जिससे मेरा कोई सरोकार नही था। घटाली गाव मे पहुँचना भी मुश्किल था। बरसात के दिनो मे यह एक टापू बन जाता था।

मुझे गॉववालो ने आरम्भ मे स्वीकार नही किया। दो-तीन साल तक मै एक रहस्य का केद्र बनी हुई थी। मुझे लेकर कई प्रकार की चर्चाएँ चलती रहीं। कोई कहता, मैं भीलो को ईसाई बनाने आयी हूँ, कोई मुझे सरकारी जासूस कहता कि मेरा काम गॉववालो पर नजर रखना है कोई जादूगरनी कहता। महाजन, ब्राह्मण, पटवारी जमींदार मेरे खिलाफ हो गए थे। आदिवासी-हरिजनो को मेरे खिलाफ

भड़काया जाता था।

अधिकारी मुझे शंका की द ष्टि से देखने लगे थे। मैं अक्सर गाँव में भीली घाघरा लूँगड़ी पहनती हूँ। एक दिन अजीब घटना हुई। मैं भील-वस्त्र पहने हुए जंगल में अकेली जा रही थी। एक वन-अधिकारी ने मुझे देखा और लपककर मेरा हाथ पकड़ लिया। मैं घबरा गई। कुछ सम्हलकर मैंने उसे अंग्रेजी में डाँटना शुरू किया। वो तो मुझसे भी ज्यादा घबरा गया था। कोई भील-औरत अंग्रेजी में जबानदराजी करे, यह वह स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था। वह पीछे हट गया और मैं भाग गई। इस मामूली घटना से अंदाज लगाया जा सकता है कि जंगलों मे आदिवासी औरतों के साथ वन व अन्य अधिकारी किस तरह का बर्ताव करते हैं। जब मैं घंटाली क्षेत्र में पहुँची थी, भील लोग गाँव के पटवारी, महाजन व सरकारी अधिकारियों से ऑखें नहीं मिला सकते थे। पटवारी व पुलिस राजा थे।

***जोशी** : कहा जाता है कि विदेशी पैसे के सहयोग से आपने घटाली में कार्य शुरू किया। क्या विदेशी पैसे से परिवर्तन लाना संभव है?*

**श्रीलता** : राजस्थान में सबसे पहले मैंने उदयपुर की सेवा मंदिर संस्था के साथ काम शुरू किया था। कुछ समय के बाद अनुभव हुआ कि अधिक समय तक पटेगी नहीं। यह सस्था मूलत. यथास्थितिवादी व समझौतावादी रणनीति से काम कर रही थी। किसी के साथ संघर्ष इनकी कार्यप्रणाली में नहीं था। आदिवासी क्षेत्रों में संघर्ष पग-पग पर है। एक दिन मैंने इस संस्था से खुद को अलग कर लिया। डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, चित्तौडगढ तथा उदयपुर जिलों में खूब घूमी और अन्त में घंटाली में डेरा डाला।

शुरू के महीनो में बकर राय की तिलोनिया सस्था से सहयोग लिया। मैं स्वीकार करती हूँ कि मुझे ऑक्सफैम से धन मिला। भारत सरकार के विभिन्न विभागों से भी मिला। परन्तु काम के दौरान मुझे अनुभव हुआ कि विदेशी सहयोग पर निर्भर रहना ठीक नहीं है। मुझे अपने ही पैरों पर खड़ा होना पडेगा, यह फैसला मैंने लिया। बंकर राय से भी मेरा रास्ता शुरू से ही भिन्न रहा है। उनकी संस्था से वित्तीय व अन्य संस्थागत सहयोग जरूर लिया था, परन्तु संस्था के बधन से मुक्त होकर मैंने काम किया। बंकर राय की कार्यप्रणाली व सोच में भी द्वंद्व व संघर्ष नहीं है। वे विशुद्ध विकासवादी हैं, एक प्रकार से सुधारवादी, जबकि मैं और महेन्द्र समाज के अन्तर्विरोधो को तेज करने के पक्ष मे हैं।

जब तक टापरा नहीं बना था, मैं एक भील-परिवार में रहा करती थी। महेन्द्र दूसरे क्षेत्रों में किसानों के बीच काम किया करते थे। भीलनी मंगला के टापरे में ही मेरी डिसपेन्सरी, प्रौढ शिक्षा और सिलाई-कटाई की कक्षाएँ लगा करती

**थीं। इसी परिवार मे रहकर मैंने ऑगन को गोबर-मिट्टी से** लीपना, चूल्हा फूँकना, घाघरा-लूँगडी बाँधना आदि सब सीखा।

***जोशी** . ठहराव मे एक हलचल कैसे पैदा की ? आपके हस्तक्षेप के क्या-क्या औजार बने रहे हैं ?*

**श्रीलता** ग्रामीण विकास समिति बनाई। स्थानीय आदिवासी इसमे सक्रिय थे। इस जन-सगठन के माध्यम से भीलो मे चेतना पैदा की। जब मैं यहॉ आई थी आदिवासी स्त्रियो के साथ बलात्कार भीलो की पिटाई, अधिकारियो द्वारा भीलो का मुर्गा-बकरा जबरन उठा ले जाना यह सब यहाँ की जिन्दगी का एक हिस्सा था। जिन्दगी एक ठहरे तालाब की तरह थी। आज उसमे कोलाहल है, विद्रोह है पुलिस अधिकारी मुझसे शिकायत करते हैं कि मैने इन भीलो को बागी बना डाला है। अब ये हमसे सीधे मुँह बात नहीं करते। क्या ये हस्तक्षेप के प्रभाव नहीं है? बाद मे इसी समिति को राजस्थान किसान सगठन मे मिला दिया। पहले यह सगठन उत्तरी राजस्थान मे सक्रिय था। अब यह दक्षिणी राजरथान के जिलो मे भी सक्रिय है। महेन्द्र इसका राज्य-सयोजक है।

इस सगठन के माध्यम से हम लोगो ने डूँगरपुर बॉसवाडा चित्तौडगढ उदयपुर आदि मे मजदूरो की लडाई लडी। बधक श्रमिको को मुक्त कराया। इसके अलावा हम लोगो ने एक नया आन्दोलन शुरू किया है आदिवासी-हरिजनो के लिए स्थानीय लोक पचायते शुरू की है। प्रत्येक रविवार को ये पचायते लगती है। इनमे स्थानीय लोगो के विवादो का निपटारा किया जाता है। आदिवासी स्वय इसके पच होते है। सरकारी अदालतो मे गए बगैर इन पचायतो मे बिना व्यय के विवाद हल कर दिए जाते हैं।

***जोशी** क्या आप कह सकती है कि आप पूरी तरह से वर्ग-विमुक्त (डीक्लास्ड) हो गई है? क्या आपने आदिवासियो के अस्तित्व के साथ खुद को एकाकार कर लिया है? क्या हस्तक्षेप की रणनीति को बिल्कुल सही मानती है?*

**श्रीलता** मेरी पूरी कोशिश रही है कि अपनी पहचान को उनकी पहचान मे गुम कर दूँ। मै इसमे काफी हद तक सफल रही हूँ। द्वद्व अब भी हे जीवन मे। पर आदिवासियो का विश्वास मैने जीत लिया है। वे कहते है कि उनके लिए पहली बार किसी ने महाजन व सरकारी अधिकारियो से लडाई लडी। मै उनके लिए जेल गई। पर कुछ विफलताएँ भी मिली है। सबसे बडी यह परेशानी हुई है कि जिन क्षत्रो मे हमारे सगठन का प्रभाव है वहॉ सरकारी अधिकारी विशेष रूप से जगलात व पी डब्ल्यू डी के काम नही करवाना चाहते क्योकि हमारे लोग निर्धारित मजदूरी मॉगते है घपले नही होने देते। किसी चीज मे मिलावट का

अवसर अधिकारियो को नहीं मिलता।

इसके अलावा एक दिक्कत और है। हमने बधक श्रमिको को छुडा तो दिया, परन्तु उनके पुनर्वास की समस्या और भी भयकर बन गई। कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि रोग से उसका निदान अधिक जोखिम भरा है। ये हमारे ताजा अनुभव हैं।

***जोशी*** . *बदलाव के मूलत दो मॉडल हमारे सामने है। सर्वोदयी और नक्सलपथियो ने अपने-अपने ढग से ठहराव मे हस्तक्षेप करने की कोशिश की है। लेकिन दोनो ही अपनी-अपनी मजिल से काफी दूर है। देश मे अपने प्रभाव-क्षेत्र का फैलाव करने मे वे सफल तो नही ही रहे है। ऐसी स्थिति मे परिवर्तन की कौन-सी रणनीति अधिक कारगर सिद्ध हो सकती है?*

**श्रीलता** एक बात समझ लीजिए। एक पॉकेट मे किसी प्रयोग से देश का विकल्प नहीं तलाशा जा सकता। देश की सगठित चेतना ही विकल्प है। देश के विभिन्न क्षेत्रो मे छोटे-छोटे प्रयोग चल रहे है। जब ये सगठित चेतना का आकार ले लेगे हम भी इसमे शामिल हो जाएँगे। राजीव गॉधी को कुर्सी पर बैठाना है या हटाना है इससे मेरा कोई सरोकार नहीं है। प्रश्न पूरी व्यवस्था का है, सिर्फ चेहरो की अदला-बदली का नहीं है।

***जोशी*** *तब क्या यह मान लिया जाए कि देश मे सही किस्म की कोई पार्टी नही है?*

**श्रीलता** मै तो सोचती हूँ कि कोई सच्ची क्रातिकारी पार्टी नही है। मैं नक्सलपथियो की 'व्यक्तिगत हत्या' की नीति मे भी सहमत नही हूँ। दोनो कम्युनिस्ट पार्टियो ने भी वर्गीय समझौते कर लिए है, सीटू और ऐटक अर्थवाद की शिकार हो गई है। ए हो सकता है कि यह दोनो पार्टियो की तात्कालिक रणनीति हो और आगे जाकर वे सही रास्ते पर चलने लगे।

***जोशी*** *पर आप भी तो आशिक रूप से सुधारक के रास्ते पर है और आशिक रूप से सघर्ष के रास्ते पर। डिसपेसरी प्रौढ शिक्षा आदि सब रचनात्मक कार्य है। क्या आप समझती है कि इन विकासवादी कार्यो से समाज के अन्तर्विरोध पैने हो सकेगे?*

**श्रीलता** क्यो नही हो सकेगे? यह आप पर है कि आप उसका इस्तेमाल कैसे करते है। शिक्षा से क्राति भी लाई जा सकती है और व्यवस्था को मजबूत भी किया जा सकता है। दवाई की गोली बॉटना सुधारवादी भी हो सकता है, और क्रातिकारी भी।

**14 सितम्बर, 1987**

# 'कानून को रहस्य न बनने दिया जाए!'

'जिसके पॉव इस्पात के, हाथ चॉदी के और जेबे सोने की हो, वही अदालतो की ऊँची सीढियाँ चढने मे कामयाब हो पाता है।' यह मुहावरे का नहीं, बल्कि हमारे सामाजिक-जीवन का कुरूप सच है जिसमे औपनिवेशिक समय के काले धब्बे अभी भी बाकायदा बरामद किए जा सकते है। लेकिन जनतान्त्रिक चेतना के विकास ने सामाजिक न्याय के प्रति जिस अधीरता को जन्म दे दिया है, उसके चलते 'सच का मुहावरा' बदलने लगा है। न्यायालय की छतो से निकलकर न्याय देनेवाला, नीली-छत के नीचे, धूप मे, सच को सच की तरह प्रतिष्ठित करने के लिए आगे आ रहा है।

कानून की दुनिया मे लोक अदालत एक ऐतिहासिक मुहावरा बन चुका है। शायद यह पहला मौका है, जब कानून और आम जनता से सरोकार रखनेवाले इस मुहावरे की पुकार नियमित अदालतो के गलियारो से बाहर महानगरो से लेकर दूरदराज आदिवासी क्षेत्रो तक एक साथ एक समान सुनाई देती है। कभी छठे दशक मे पचायती राज का नारा भी एक ऐसा ही टकसाली मुहावरा बना था। लोक अदालते, पचायती राज की एक आधुनिक विधि-सस्करण के रूप मे देखी जा रही हैं जिसमे महानगरो के पेचीदा झमेलो से लेकर गॉव के मेड-विवाद तक सिमट आए है।

न्याय के ससार मे इस टकसाली अभिनव प्रयोग के सूत्रधार श्री पी एन भगवती सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे अपनी न्याययात्रा बबई के ग्वालियर टैक से आरभ करते हैं। देश के सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश पद से हाल ही मे अवकाश ग्रहण करने वाले श्री भगवती न्याय को एकागी प्रक्रिया के रूप मे नहीं देखते। वे समाज की अतिम सतह पर स्थित खिडकियो से न्यायव्यवस्था को ऑकते हैं।

यह दृष्टि मिली उन्हे 1942 मे ग्वालियर टैक पर आयोजित गाँधीजी की एक सभा से।

श्री भगवती के न्याय-परिप्रेक्ष्य मे उनके अनुभवो और योगदान को लेकर लेखक के साथ एक अतरग बातचीत हुई, उनके निवासस्थान पर। कई साल बिताने के बाद सरकारी बॅगले को अलविदा करने की तैयारी चल रही थी और लदाई के लिए सामान बॉधा जा रहा था। सभी के चेहरो पर भागदौड थी। पर पद से मुक्ति के पश्चात भी श्री भगवती की व्यस्तता मे कमी नही दिखाई दी। सवा घटे की बातचीत मे लोक-अदालतो के लिए जगह-जगह से बुलावे उन्हे मिलते रहे। एक तनावमुक्त फुर्ती के साथ श्री भगवती अपनी न्याययात्रा और उसके सामाजिक सदर्भो की कहानी आरभ करते है

कैसे प्रेरणादायक और अद्भुत क्षण थे वे जब मैने पहली बार महात्मा गॉधी को अपनी ऑखो के सामने पाया। 8 अगस्त 1942 का दिम था। बबई के ग्वालियर टैक पर काग्रेस का अधिवेशन बुलाया गया था। तब मै एम ए का छात्र था, गणित मे एम ए कर रहा था। शुरू से लेकर अत तक प्रथम श्रेणी मे रहा। गॉधीजी ने पहले अपना भाषण हिन्दी मे दिया और बाद में अॅगरेजी मे। उनका हर वाक्य सीधा और सटीक था, हृदयस्पर्शी था। उन्होने भारत की जनता की पीडा, दर्द, शोषण, सब मार्मिक शब्दो मे सामने रखा। खामोशी के साथ जनता ने उन्हे सुना। जब मैने उन्हे सुना तब एक नया भगवती जन्म ले चुका था। मुझ पर इतना प्रभाव पडा कि मै अगले दिन 9 अगस्त को आदोलन मे शामिल हो गया। पढ़ाई छोड दी। गिरफ्तार हुआ। एक महीने जेल मे रहा। रिहाई के बाद भूमिगत हो गया। इसके बाद अच्युत पटवर्धन, श्रीमती अरुणा आसफअली के साथ काम किया। बहुत ही आश्चर्यभरे दिन थे वे। उस समग न कोई चिता थी और न कुछ और। बस एक उत्सर्ग की भावना दिलो मे थी। आजादी हमारा आदर्श थी। उस समय एक महान सपना हमने देखा था, एक ऐसे भारत का सपना, जो विश्व मे महान कहलाए, विश्व मानवता का आदर्श बने। आज जब मैं उन दिनो की याद करता हूॅ तो ऑखे नम हो जाती है। ऑसू आ जाते है। जिस भारत का सपना तब देखा था, वह आज कैसा भारत बन गया है? यह पीडा सालती है। मेरे जीवन मे एक नया मोड आ चुका था। गॉधीजी के प्रेरणामय शब्द मेरे शेष जीवन को प्रभावित करते रहे और इसी प्रभाव के कारण मेरे जीवन मे दूसरा मोड आया।

आदोलन से वापस लौटा तो मैने कानून की पढाई की। बबई मे 1948 मे प्रेक्टिस शुरू की। अच्छी चलती थी। पिताजी भी वकील थे। एक दिन मेरे सामने जज बनने का प्रस्ताव आया। मैने तुरत स्वीकार कर लिया, यह सोचकर कि प्रतिबद्ध

व्यक्तियों को जज बनना चाहिए; पैसे का मोह त्यागना चाहिए। मुझ पर माता-पिता के आध्यात्मिक संस्कारों का भी अच्छा असर पडा था। जीवन में दूसरे मोड़ की शुरूआत जज बनने के साथ होती है।

जब मैं गुजरात का मुख्य न्यायाधीश बना तब मुझे एक नए यथार्थ के दर्शन हुए। जब मैं जज था तब मैंने महसूस किया कि औसत जज परंपरावादी हैं। मुझे बताया गया था कि जज का काम केवल फैसला देना है, परिणामों में जाने की आवश्यकता नहीं है; न्याय और घटना की सामाजिक पृष्ठभूमि क्या है, यह जानना जरूरी नहीं है। परंतु गुजरात जाने के बाद एक नया यथार्थ उद्घाटित हुआ। मुख्य न्यायाधीश के पद पर रहते हुए मैं गुजरात के गॉवों में खूब घूमता। आदिवासियों व दूसरे उत्पीडित वर्गों के सपर्क में आया। जब मैं इन क्षेत्रों में गया तभी मुझे 'असली भारत' दिखाई दिया। मैंने पाया कि आदिवासी स्त्री-पुरुष बडी मुश्किल से दो जून का खाना जुटा पाते हैं। तन की लाज ढॅकने के लिए उनके पास कपडा नहीं है। मौसम की मार से बचने के लिए सिर पर छप्पर नहीं है। जब मैं उनके बीच पहुॅचा, तो उन्होंने मुझे हैरत-भरी दृष्टि से देखा।

उन्हें यह जानकर हैरानी हुई कि एक न्यायाधीश उनके बीच पहुॅचा हुआ है। वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि कोई जज उनके पास कभी पहुॅच सकता है, उनके दरवाजे पर दस्तक दे सकता है। न्याय, अदालत, जज, सबके सब उनके लिए कोरा स्वप्न मात्र थे। इस स्थिति से स्पष्ट है कि हमारा न्याय कितना खोखला है। धरा के इन दलितो, उत्पीडितों के साथ साक्षात्कार मेरे जीवन मे दूसरे मोड का कारण बना।

उन लोगों के बीच मैंने फैसला किया कि मैं कानून को इन लोगो के पास ले जाऊॅगा। मैंने महसूस किया कि एक पर्दा मेरी ऑखों के सामने है, इसे हटाना होगा, हृदय को न्याय के और उनके बीच सेतु बनाना होगा। मैंने मन बना लिया कि मैं न्याय को सामाजिक परिवर्तन का एक माध्यम बनाने की कोशिश करूँगा; न्याय की धारा को इस उत्पीडित भारतीय मानवता की सेवा में मोड़ूँगा। विश्वास करिए, इस निर्णय ने एक नया अर्थ मुझे और न्याय को दिया। मैंने न्याय को नया अर्थ देना आरंभ कर दिया। संविधान के नीति-निर्देशक सिद्धांतों के दायरे में न्याय को देखा और एक नई दिशा की शुरूआत हुई। गुजरात में रहकर गुजरात के मुख्यमंत्री से संपर्क कर कानून सहायता कार्यक्रम शुरू करवाया। मेरे सुझाव पर एक कमेटी गठित की गई और कानूनी सहायता निर्धनों को उपलब्ध कराने के संबंध में तरीका तलाशने की शुरूआत हुई। 1970 में कानूनी सहायता के संबंध में पहला प्रतिवेदम सरकार को दिया, जिसके बाद छोटे स्तर पर कार्यक्रम शुरू कर दिया। मेरी यात्रा यहीं नहीं रुकी। सर्वोच्च न्यायालय का

न्यायाधीश बनने के बाद भी मेरी यात्रा जारी रही। दिल्ली आने के बाद उसका और विस्तार हुआ, उसे राष्ट्रीय स्तर पर एक व्यापक आयाम मिला। केंद्रीय सरकार के साथ बातचीत हुई। कानूनी सहायता को लेकर मेरी अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की गई। 1977 में सरकार को प्रतिवेदन दिया गया। 1980 में इसे स्वीकार कर लिया गया। तय किया गया कि देश में एकसमान आधार पर कानूनी सहायता उपलब्ध कराई जाए। इसके अलावा इस कार्यक्रम के प्रभावी संचालन के लिए इस पर निगरानी रखने की व्यवस्था भी की गई। सही और जरूरतमंद को कानूनी सहायता उपलब्ध हो सके, इसका ध्यान रखना बेहद जरूरी है। इसके साथ ही लोगों में कानून के प्रति जागरूकता पैदा हो सके, इस दिशा में कदम उठाना भी जरूरी था। अनुभव यह है कि सामान्यत. नागरिकों में कानूनी चेतना का अभाव है। कानून नागरिकों को कई संरक्षण प्रदान करता है, परंतु जागरूकता के अभाव के कारण उन्हें इसका लाभ नहीं मिलता। कानून की प्रभावशाली भूमिका के लिए यह जरूरी भी है कि नागरिकों को अपने अधिकारों और कानूनी दायरों के संबंध में पूरा-पूरा ज्ञान हो। यदि जनता कानून को लागू करवाने में असफल रहती है, तो संपूर्ण कानूनी व्यवस्था केवल कागजी शेर बनकर रह जाएगी। इसके लिए जरूरी है कि संचार माध्यमों की सहायता ली जाए। दूरदर्शन, रेडियो, फिल्म, सम'चार-पत्र इस क्षेत्र में बहुत कुछ कर सकते हैं। इसी संदर्भ में मैं लोक-अदालत की भूमिका को बहुत ही प्रासंगिक मानता हूँ। सच पूछा जाए तो लोक-अदालत ने मेरी यात्रा को एक आयाम दिया है। देश में लोक-अदालते कितनी लोकप्रिय बनती जा रही हैं, इससे सब परिचित हैं। गुजरात में 130, राजस्थान में 150 महाराष्ट्र, कर्नाटक, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, आंध्रप्रदेश, केरल, उडीसा आदि राज्यों में कई लोक-अदालतें लग चुकी हैं। आप आश्चर्य करेंगे कि पिछले 16 महीनों मे केवल वाहन आदि से संबंधित करीब 9000 दावे लोक-अदालतों के माध्यम से सुलझाए गए हैं। दावे करीब 16 करोड रुपए के थे।

विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों में भी कानूनी सहायता प्रकोष्ठ स्थापित किए जा रहे हैं। इन प्रकोष्ठों का एकमात्र उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी वर्ग गरीबों को न्याय दिलवाने में रचनात्मक भूमिका निभाए। विधि-छात्रों को समय-समय पर गाँवों में ले जाया जाता है, ग्रामीण परिवेश से परिचित कराया जाता है। इसके साथ-साथ सामाजिक एवं कानूनी सर्वेक्षण कराए जाते हैं। इन सर्वेक्षणों का अच्छा उपयोग लोक-अदालतों में किया जा सकता है। इसके अलावा विधि-पाठ्यक्रम में 'कानून और निर्धनता' एक ऐच्छिक विषय भी लगाया गया है। हमारी कोशिश यह भी है कि सामाजिक और गैर-राजनीतिक कर्मी भी कानून की प्राथमिक शिक्षा लें; विशेष तौर पर ऐसे समाजकर्मी जो शहरी और देहाती गरीबों के बीच मानव

कल्याण के काम मे सक्रिय है। मेरा पक्का विश्वास है कि कानूनी शिक्षा से लैस होने पर समाजकर्मी तथा स्वयसेवी सस्थाएँ काफी प्रभावशाली ढग से काम कर सकते हैं। ऐसे व्यक्तियो और सस्थाओ को प्रशिक्षण देने के लिए अनुदान भी दिया जाता है। इसे अर्थ विधि प्रशिक्षण कहा जाता है। इस शिक्षण के अच्छे नतीजे निकल रहे हैं।

सर्वोच्च न्यायालय मे रहकर कई अच्छे अनुभव हुए है। न्यायव्यवस्था को राष्ट्रीय स्तर पर किस ढग से प्रभावशाली बनाया जाए और उसकी दस्तक समाज के अतिम व्यक्ति को भी सुनाई दे इसका अनुभव किया है। फिर भी मै मानता हूँ कि यह काम काफी बडा है। मेरा मत है कि भारतीय न्यायव्यवस्था को और अधिक लोकाभिमुख बनाने की आवश्यकता है, विशेष रूप से न्यायाधीशो के चितन और दृष्टि मे बुनियादी परिवर्तन की आवश्यकता है। उनकी दृष्टि सवेदनशील होनी चाहिए, जिससे कि सामाजिक न्याय की प्रक्रिया तेज हो सके। उन्हे समाज की पीडा, त्रासदी, उत्पीडन आदि सबसे सरोकार रखना होगा। उन्हे कानून को एक 'रहस्य' नहीं बनाना चाहिए। जब वे जनता के कष्ट देखे तब उनके हृदय पिघलने चाहिए। न्याय के प्रहरियो को चाहिए कि वे अपना प्रत्येक न्यायिक पग निर्धनो के आँसू पोछने के लिए उठाएँ। मेरा यह पक्का विश्वास है कि न्याय के शस्त्रागार मे जितने शस्त्र उपलब्ध है यदि एक न्यायाधीश उनको सही ढग से चलाना जानता है, तो कई परिवर्तन हो सकते है। लोकहित याचिका कानूनी सहायता, लोक-अदालत आदि ऐसे ही हथियार है। मैने अपने स्मरणीय फैसलो के माध्यम से इस दिशा मे पहल भी की है। हाल ही मे बिहार सरकार बनाम वधवा केस से एक नई मिसाल बनी है। श्रीराम केमिकल फर्टीलाइजर के गैस रिसाव के केस मे दिया गया सर्वोच्च न्यायालय का फैसला भी मै अपने जीवन का स्मरणीय फैसला मानता हूँ। मेरे न्यायिक जीवन के ये ताजा उदाहरण है। लेकिन, न्याय की यात्रा अपनी मजिल से अभी काफी दूर है। जब तक कानून भूमिहीन, आदिवासी हरिजन और अन्य गरीबों का सच्चा रक्षक नहीं बन जाता, न्याय की यात्रा अधूरी रहेगी। लेकिन यह निष्कर्ष निकालना भी गलत रहेगा कि न्याय ने अपना विश्वास बिलकुल खो दिया है। जनता का विश्वास न्याय पर से उठा नही है। वह उसे आज भी अपना रक्षक मानती है। इस विश्वास को मै राष्ट्र के जीवन मे न्याय के महान योगदान के रूप मे देखता हूँ।

**26 जनवरी, 1987**

# सामाजिक न्याय का सपना अधूरा है

**देश के** न्याय जगत में सर्वोच्च न्यायालय के अवकाश-प्राप्त न्यायाधीश श्री कृष्णा अय्यर और प्रतिबद्ध न्यायव्यवस्था एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं। देश की आला न्याय-मचान से श्री अय्यर ने हमेशा जनप्रतिबद्ध न्यायव्यवस्था की बात कही; पूरी दबंगता के साथ तमाम कानूनी निजाम को यह कहकर खारिज कर दिया कि भारत के लिए यह एक औपनिवेशिक विरासत है। जब तक नींव की ईंटें नहीं हटाई जातीं, औपनिवेशिक न्यायव्यवस्था की इमारत देश पर लदी रहेगी।

**न्यायमूर्ति अय्यर** : वर्तमान न्यायव्यवस्था के संबंध में मुझे कोई गलतफहमी नहीं है। यह ब्रिटिश राज की विरासत है, जिसे आज तक हम ढो रहे हैं। आजादी के बाद भी इसके व्यक्तित्व और आकार मे कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं आया है। हमारे संविधान के निर्माताओं ने सोचा था कि न्यायपालिका क्रांतिकारी मूल्य-व्यवस्था की पोषक सिद्ध होगी, संविधान की प्रस्तावना में जो संकल्प लिए गए हैं उन्हें यथार्थ का आकार देने का माध्यम बनेगी; देश की आखिरी परत पर चलनेवाली मैली-कुचली मानवता देश की राजनीतिक स्वामी बनेगी, राष्ट्रीय संसाधनों के आर्थिक लाभों से वह वंचित नही रहेगी।

दुर्भाग्य से यह स्वप्न अधूरा रहा, सामाजिक न्याय इस देश में चमक नहीं सका। पर इसके लिए सिर्फ न्यायपालिका को ही दोषी ठहराना भी सही नहीं है, कार्यपालिका और विधायिका भी उतनी ही जिम्मेदार हैं।

यह सही है कि भारतीय न्यायव्यवस्था बुरी तरह ॲंगरेजी अदालतों की मिसालों से ग्रस्त है। एक तरह से हमारे देश में 'ऐंग्लो-सेक्सोन न्यायप्रणाली' प्रचलित है, और यही मानसिकता कार्यपालिका व विधायिका पर छाई हुई है। दिल्ली के

नार्थ ब्लॉक, साउथ ब्लॉक, केंद्रीय सचिवालयो और, या प्रदेशो के सचिवालयो मे चले जाइए, औपनिवेशिक मानसिकता हर जगह दिखाई देगी। अँगरेजी शासको की तर्ज पर पूरी व्यवस्था श्रेणीतत्रवाद की शिकार है। हम आज तक इसे पछाड नहीं सके है। यह सपूर्ण व्यवस्था पूरी सफलता के साथ नकारात्मक है।

हम कितनी ही लोकतात्रिक या ससदीय व्यवस्था क्यो न अपना ले, पर असलियत यह है कि न्यायपालिका से लेकर विधायिका तक, कोई भी 'भारतीय जीनियस' के लिए वाछित परिवेश का निर्माण करने मे समर्थ नहीं है क्योकि कार्यपालिका और विधायिका दोनो ने बरतानिया के प्रतिमान अपना रखे है। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि लोग सोचते है, अकेली न्यायपालिका ही सब कुछ कर सकती है। यह सही नहीं है। मेरा यह द ढ मत है कि कार्यपालिका और विधायिका भी आज तक औपनिवेशिक है।

लेकिन इसका यह कतई अर्थ नहीं है कि मै न्यायपालिका को उसकी जिम्मेदारियो से मुक्त कर रहा हूँ। आप जानते ही है कि मैं वैचारिक आधार पर निरतर न्याय व्यवस्था का आलोचक रहा हूँ, और आज भी हूँ। मै आपसे सहमत हूँ कि इसकी कोई सामाजिक जवाबदेही नही है। न्यायाधीश खुद को कानून समझते हैं हालाँकि उनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे सविधान और विधि की सही ढग से व्याख्या करे उसका परिपालन कराएँ।

***जोशी*** *तब अडचने किस स्तर पर है? क्या यह माना जाए कि न्यायाधीशो मे व्याख्या करने की योग्यता नहीं हैं, या उनकी मशा नहीं है?*

**श्री अय्यर** ऐसा नही है। असली मुद्दा न्यायाधीशो के सामाजिक दर्शन का है। सामाजिक दर्शन के परिप्रेक्ष्य मे ही व्याख्या की जाती है। क्या आपने कभी सोचा है कि न्यायाधीशो का चयन कैसे किया जाता है? चयन की प्रक्रिया कैसी है? क्या हम उन वकीलो का चुनाव करते है जो नामी-गिरामी है और जिनकी प्रैक्टिस तगडी है? या सपत्तिधारी वर्ग मे से किया जाता है?

आप जानते ही हैं कि इस देश की अधिकाश जनता सर्वहारा है। हमे अभिजातवर्गीय न्यायपालिका नही चाहिए। देश की न्यायपालिका का सामाजिक दर्शन भारतीय सविधान के आधारभूत आदर्शो के विपरीत है। यद्यपि यह सही है कि न्यायाधीशो मे कई प्रतिभासपन्न और सम्मानित व्यक्ति हैं। परतु अनुभव यह है कि अँगरेजी शासक वर्ग पक्षपात के आधार पर जजो का चुनाव किया करते थे। वैसे वे स्वय को तटस्थ भी घोषित किया करते थे। आज भी वही प्रक्रिया जारी है। परिपाटी ऐसी बनी हुई है कि किसी प्रगतिशील या रेडिकल न्यायाधीश को न्यायव्यवस्था मे आसानी से प्रवेश नहीं मिल पाता है। चयन की प्रक्रिया ही दोषपूर्ण है। उच्च

**न्यायाधीश, मुख्य न्यायाधीशों और न्यायाधीशों की नियुक्तियों में कार्यपालिका के प्रमुख प्रधानमंत्री के पास 'वीटो शक्ति' रहती है। जरूरी नहीं है कि भारत के चीफ जस्टिस के सुझाव माने ही जाएँ।**

हालाँकि भारत के सर्वोच्च न्यायालय के पास अथाह शक्ति है; कई क्षेत्रों में तो वह इंगलैंड के हाउस ऑफ लॉर्ड्स और अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय से भी अधिक शक्तिशाली है, परंतु आज न्यायव्यवस्था के क्षेत्र में जो अराजकता दिखाई देती है वह न्यायाधीशों की चयन-पद्धति का परिणाम है। इस प्रक्रिया में भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, पक्षपात फैला हुआ है। इस संबंध मे मेरा स्पष्ट मत है कि न्यायाधीशों के चुनाव में उनका सामाजिक दर्शन मुख्य कसौटी होना चाहिए, यह देखा जाना चाहिए कि प्रत्याशी न्यायाधीश की जनता के प्रति कितनी प्रतिबद्धता है, संविधान के संकल्पों को लागू करने के लिए वह कितना कृतसंकल्प है, वह कितना रेडिकल है। यह भी देखा जाना चाहिए कि क्या वह अमीरो के लिए न्याय का पक्षधर है, और गरीबों को देश की 'न्यूसेंस वेल्यू' समझता है। इसके साथ ही यह भी देखा जाना चाहिए कि न्यायाधीश धर्मनिरपेक्ष है या सांप्रदायिक; समाजवादी है या पूँजीवादी; और भारतीय मूल्य-व्यवस्थावादी है या विदेशवादी। ये तमाम सवाल राज्य की मुख्य मानसिकता से जुडे हुए हैं। इसीलिए ब्रिटिश राज की कानूनी प्रक्रियाएँ और पेचीदगियाँ आज भी बराबर प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए, ब्रिटिश नकल पर बार-बार 'अपील' और 'रिव्यू' की थका देनेवाली प्रक्रिया चल रही है। पच्चीस-पच्चीस और तीस-तीस बरस तक मुकदमे चलते रहते हैं। मेरे विचार से एक से अधिक बार अपील नहीं होनी चाहिए। हमें अधिक अपीलों और समीक्षाओं की आवश्यकता नहीं है।

***जोशी** : आप न्यायव्यवस्था की आलोचना तो काफी कर चुके हैं, पर आप ही बताइए, ऐसी स्थिति में किया क्या जाए?*

**श्री अय्यर** : मेरा मत है कि न्यायप्रक्रिया को अत्यन्त सरल, सहज और सर्वगम्य बनाया जाना चाहिए। आज की विधि-भाषा मुकदमेबाजी को जन्म देनेवाली है; सामान्य व्यक्ति की समझ के परे है। अब तो विदेशी अदालतों मे भी कानून की भाषा का सरलीकरण हो गया है। दीवानी और फौजदारी अदालतो और न्यायाधीशों को अपने फैसले ऐसे ढग से देने चाहिए जिससे कि न्याय लोगो के लिए बेगाना न लगे। उलझावभरी विधि-भाषा के लिए हमारे विधिविद्, न्यायविद् और विधि आयोग जिम्मेदार हैं। इन्होंने इस क्षेत्र में कतई दिलचस्पी नहीं दिखाई है। कई दफे ऐसा भी देखा गया है कि कानून जिस उद्देश्य को लेकर बनाए जाते हैं, उसकी व्याख्या ठीक उनके विपरीत की जाती है। यह न्याय की एक 'रोगात्मक' स्थिति है। इसीलिए यह जरूरी है कि कोई कानून बनाते समय ही सरल और स्पष्ट

भाषा का प्रयोग किया जाए। फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका आदि मे सहजगम्य भाषा में कानून को ढाला जा रहा है। इसीलिए आरंभ मे ही शब्दाडम्बर से बचा जाना चाहिए। दूसरा सुधार अदालती फीस को लेकर किया जाना चाहिए। कोर्ट फीस समाप्त की जानी चाहिए। यह एक औपनिवेशिक बुराई है। समझ मे नहीं आता कि इसे जारी क्यो रखा जा रहा है?

***जोशी*** · *तब यह समझा जाए कि देश की न्यायव्यवस्था बिल्कुल पिट चुकी है? न्यायाधीश सामाजिक न्याय दिलाने मे असफल रहे हैं? न्यायव्यवस्था पर से जनता का विश्वास उठ चुका है?*

**श्री अय्यर** : ऐसा मै नही कहूँगा। हमारी न्यायव्यवस्था ने कई अच्छे कार्य किए हैं। कई न्यायाधीश निश्चित तौर पर प्रगतिशील हैं। लोकतत्र की रक्षा हुई है। देश की न्यायपालिका मे जनता का विश्वास अभी है। इसीलिए हर घटना को लेकर जॉच आयोग बैठाने और अदालतो मे जाने की मॉग की जाती है। कार्यपालिका से जब इसाफ नही मिलता तब जनता अदालतो के दरवाजे खटखटाती है। इसमे स्पष्ट है कि देश की न्यायव्यवस्था बिलकुल ही अर्थहीन नहीं बनी है, उसकी सार्थक भूमिका है। आज जब कार्यपालिका मानव अधिकारो पर नियत्रण लगा रही है और सविधान की धारा 21, 19 और 14 की धाराओ का उल्लघन हो रहा है, तब न्यायपालिका की सार्थक भूमिका की आवश्यकता और बढ गई है। अत मे यह कहना चाहूंगा कि न्यायाधीशो को सामाजिक बदलाव का 'उत्प्रेरक अभिकर्ता' बनना चाहिए उनका व्यवहार शकाओ से परे रहना चाहिए।

**26 जनवरी, 1987**

## न्यायमूर्ति श्री गोवर्धनलाल ओझा से साक्षात्कार

# 'वर्ना जनता चौरस्तों पर फैसला करेगी'

मालवा की भूमि मे जन्मे, रचे-बसे, और दिल्ली मे देश की आला अदालत तक पहुँचनेवाले न्यायाधीश श्री ओझा न्यायव्यवस्था को समाज की कठोर व खुरदरी सतह पर उतारना चाहते है। उज्जैन के अपने विद्यार्थी काल से कई स्वतंत्रता व समाजवादी आदोलनो में सक्रिय हिस्सेदारी से ढला है श्री ओझा का मानस। मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और आज सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश रहने के बावजूद, श्री ओझा की द ष्टि मे 'समाज के अंतिम लोग' ओझल नहीं हुए हैं। शिखर न्यायालय की भव्यता के बीच उनकी लोक-द ष्टि आज भी सुरक्षित है। तभी वे इंदौर व उज्जैन की गलियों के सघर्ष के दिन और उत्पीडित लोगबाग के संसार से जुडे अनुभव बेसकोच याद करते हैं। इसीलिए उनकी नजर में अदालतें गुलदस्ता नहीं है, और न ही कानून चद अभिजात लोगों की पॉकेट में टँका कोई बेशकीमती सजावटी पेन। अदालत और कानून को वे ऐसा नहीं मानते कि समाज के चद जोरावर लोगों ने जब चाहा अपना कवच बना लिया दोनो को। प्रस्तुत हैं, उनके बेबाक जवाबो के चद हिस्से।

**ओझा** . आज देश की न्यायव्यवस्था अपनी सामाजिक जवाबदेही से मुकर नहीं सकती। यह एक गुणात्मक परिवर्तन आजादी के बाद आया है। अँगरेजों ने न्यायव्यवस्था शासन करने के लिए रची थी, साम्राज्यवादी शासको की देश में बुनियादी परिवर्तन लाने में कोई दिलचस्पी नही थी। आजादी के पूर्व अदालतों का काम महज नागरिकों के आपसी मतभेद हल करने तक सीमित था, अँगरेज न्यायपालकों की समाज के प्रति कोई जवाबदेही नहीं थी।

**परंतु, अगस्त 1947 के पश्चात निश्चित ही एक रेडिकल (मूलगामी) बदलाव आया है। संविधान के अंतर्गत नागरिकों को मौलिक अधिकर मिले हैं। सविधान में नीति-निर्देशक सिद्धांत के अतर्गत सरकार की एक जिम्मेदारी निश्चित की गई है। 1947 के पहले सब यह स्वप्न था।**

पर यह मान लेना गलत होगा कि आजादी मिलने और स्वदेशी सविधान बनने से न्यायव्यवस्था मे भी बुनियादी परिवर्तन आ गया है।

सचाई यह है न्यायविद् कि स्वातत्रयोत्तर काल के नए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ को समझने मे असमर्थ रहे। वजह थी कि न्यायव्यवस्था से जुडा निर्णायक वर्ग ॲगरेजी मूल्य-व्यवस्था मे शिक्षित-दीक्षित था। न्यायव्यवस्था के हर पायदान से लेकर शिखर तक जमे इस वर्ग ने ॲगरेजी शासको का झडा यूनियन जैक उतरते व तिरगा चढते तो देखा परतु उसने अपने मन का रग बदलना स्वीकार नही किया।

यही वजह थी कि 1950 से 1970 तक देश की न्यायिक प्रक्रिया मे किसी रेडिकल बदलाव का अभाव रहा। इसके बाद ही बदलाव की प्रक्रिया शुरू हुई।

याद रहे 1969 के पश्चात देश की राजनीति मे नई गति आई। नए सामाजिक व राजनीतिक यथार्थ सामने आए। स्व प्रधानमत्री श्रीमती इदिरा गॉधी के शासन काल मे पूर्व नरेशो के प्रीवीपर्स समाप्त किए गए, बैंको का राष्ट्रीयकरण किया गया भू सघर्ष हुए और न्यायव्यवस्था को सामाजिक सदर्भो मे देखा जाने लगा।

देखिए, विकासशील देशो की विचित्र समस्या है। भारत जैसे विकासशील देश मे बडे पैमाने पर क्रातिकारी कदम उठाने की आवश्यकता हे। इस द ष्टि से हमारी न्यायव्यवरथा तैयार नहीं है। मूलत हमारी कानून-व्यवस्था रूढिवादी है, खासतौर पर कानूनी-शिक्षा तो बुरी तरह रूढिवादी है। मेरा मानना है कि यह सविधान की मूल भावना के ही विपरीत है। इसलिए चौरस्ते का आदमी न्याय का पूरा फायदा उठाने मे असमर्थ रहता है केवल ऊँचे लोग ही इसका फायदा उठा पाते है। एक और विचित्र विमगति समझ लीजिए। देश का सविधान क्रातिकारी है परतु उसे लागू करनेवाले अत्यत दकियानूस हैं।

*(इस सदर्भ मे बात चलती है तो न्यायमूर्ति श्री ओझा के खुरदरे अनुभव फूट पडते है विगत मचल उठता है बाहर आने को। वे कहने लगते है कि न्यायविद् और प्रशासक दोनो ही अतिम व्यक्ति के कल्याण के लिए वातानुकूलित कक्षो मे योजना बनाते है। मसूरी स्थित प्रशासको की लाल बहादुर शास्त्री अकादमी इस रोग से बुरी तरह ग्रस्त है।)*

अभिजातवर्गीय न्यायाधीशो, प्रशासको और वकीलो को क्या मालूम कि जिस झोपडी

**को ज्वार की रोटी भी नसीब न हो वह कैसे जान सकती है कि सरकार क्या है, अदालत क्या होती है और कानून क्या होता है**

***जोशी*** *बदल क्यो नहीं डालते ऐसी न्यायव्यवस्था को आप लोग?*

***ओझा*** सच बात यह है कि वर्तमान न्यायव्यवस्था का कोई माकूल विकल्प नहीं मिल रहा है, यद्यपि इसमे आमूल परिवर्तन की गुजाइश बहुत है। मुकदमो की प्रक्रियाएँ बिलकुल सडियल हो गई हैं। इस प्रक्रिया के कारण गरीब लोग न्याय पाने से वचित हो जाते हैं। मिसाल के तौर पर अदालती फीस का नियम बेतुका है। अरे भाई अँगरेजो ने इस देश मे न्यायव्यवस्था लागू नही की बल्कि इसकी दुकान खोली थी। यदि आपके खीसे मे अदालती फीस चुकाने के लिए पैसा है, तब अदालत आपको सुनेगी। विकसित देशो मे भी कोर्ट फीस नहीं है। समाजवादी देशो मे तो होने का सवाल ही नहीं उठता।

पूर्व विधि मत्री श्री जगन्नाथ कौशल को प्रस्ताव भेजा गया था कि इसे समाप्त किया जाए। लेकिन विरोध मे कई तरह की बेतुकी दलीले दी गई। कहा गया कि यदि फीस समाप्त कर दी गई तो अदालतो मे मुकदमो की बाढ आ जाएगी। मुफ्त का न्याय पाने के लिए कोई भी आना चाहेगा। अरे भाई जनता को झूठा मानकर क्यो चला जाए।

सच बात यह है कि सविधान ने देश को समाजवादी लोकतात्रिक भारत माना है उसी भावना के अनुरूप न्यायव्यवस्था होनी चाहिए। यदि सविधान की भावना के अनुरूप भारत को समाजवादी बनाने मे न्यायव्यवस्था सक्रिय भूमिका निभाने मे असमर्थ है तो यह एक गभीर मामला है। यदि आम आदमी न्यायव्यवस्था पर विश्वास करना छोड देगा तो वह खतरनाक दिन होगा।

अब जरा देखिए, वर्तमान न्यायव्यवस्था मे सामाजिक न्याय के तत्वो का अभाव है। उदाहरण लीजिए 19वीं शताब्दी म बने भूमि अधिग्रहण कानून के तहत अमीर व गरीब दोनो को समान क्षतिपूर्ति मिलेगी। यह गलत है। बाजार भाव से दोनो को समान क्षतिपूर्ति नही मिलनी चाहिए। सार्वजनिक कार्यो के लिए ली गई भूमि के मामले मे अमीर व्यक्ति को कोई मुआवजा नही दिया जाना चाहिए। उसको सामाजिक मान-पत्र दिया जा सकता है उसका सम्मान किया जा सकता है। परतु पैसा गरीब को ही दिया जाना चाहिए, और उसे दूसरी जगह बसाने की जिम्मेदारी भी शासन को लेनी चाहिए। परतु आज सुप्रीम कोर्ट ने ऐसे मुद्दो पर अपना नजरिया बदला है। उजडे लोगो को पुन वाछित जगह बसाने की जिम्मेदारी मे उसने दिलचस्पी दिखाई है। इसी तरह डी सी एम के गैस प्लाट के रिसाव से प्रभावित लोगो को मुआवजा दिलाने मे भी सुप्रीम कोर्ट ने ऐतिहासिक

क्रांतिकारी फैसला दिया है। आप नहीं जानते, इस मुकदमें के माध्यम से कैसी-कैसी लड़ाइयाँ लडी गई थीं; यह एक तरह से गरीब और अमीर के बीच शक्ति-परीक्षण था। निश्चित ही इस फैसले से गैस पीडितों को फायदा हुआ है।

हालाँकि हमने समान कानून और कानूनी समानता का सिद्धांत स्वीकार किया है; कानून के समक्ष सभी समान हैं, यह माना है, परंतु ऐसा होता कहाँ है। एक धनी व्यक्ति या उद्योगपति अपनी पैरवी के लिए बडे से बडा वकील तैनात करता है। आला अदालत मे अमीरों के पक्ष में महँगे वकीलों की कतार लग जाती है। परंतु, गरीब व्यक्ति कुछ नहीं कर पाता। सच्चाई यह है कि कानून के समक्ष समानता का सिद्धांत अर्थहीन है।

इसीलिए हमने कानूनी सहायता का प्रावधान शुरू किया है। सामाजिक न्याय दिलाने की यात्रा मे यह कदम महत्वपूर्ण है। इसके माध्यम से हमने कई महत्वपूर्ण फैसले किए हैं। पिछले दिनों असम हाईकोर्ट से संबंधित मामले मे भी एक ऐतिहासिक फैसला दिया है। निचली अदालत से लेकर ऊपरी अदालत तक न्यायाधीश या न्यायपालक का यह दायित्व है कि वह गरीब व्यक्ति को इसकी जानकारी दे कि सरकारी सहायता पर उसे कानूनी सहायता उपलब्ध कराई जा सकती है। उसे बताया जाना चाहिए कि वह सरकारी खर्च पर वकील कर सकता है।

इसके अलावा, भारत जैसे पिछडे और अशिक्षित देश मे निर्धन वर्ग को कानूनों के संबध मे जानकारी दी जानी चाहिए। इस क्षेत्र मे सामाजिक कार्यकर्ता, स्वयंसेवी सस्थाएँ आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है। कानून की जानकारी के अभाव में कई महत्वपूर्ण मुद्दे अदालत तक पहुँचने से रह जाते है। जन-समस्याएँ अधूरी रहती है। इस मामले मे समाजकर्मियो को आगे आना चाहिए, जन-समस्याओ को अदालतों तक पहुँचाना चाहिए। जन-समस्याएँ 'लोक-हित याचिका' या पब्लिक इन्टेरेस्ट लिटिगेशन के माध्यम से उठाई जानी चाहिए। वास्तव में कानूनी सहायता और पब्लिक लिटिगेशन न्यायव्यवस्था को समाज के करीब ले जाने के दो महत्वपूर्ण माध्यम है।

इस दिशा में तीसरा महत्वपूर्ण कदम है—लोक अदालत। सच बात तो यह है कि लोक अदालत वर्तमान अदालती व्यवस्था मे बहुत श्रेष्ठ है बशर्ते कि इसका सही उपयोग हो। लोक अदालतो की सफलता समाज के जागरूक व्यक्तियो पर निर्भर है। मेरा तो यह मानना है कि जब न्याय समाज से दूर चला जाता है तब ही विवाद पैदा होते है। इसलिए स्थानीय स्तर के मामले लोक अदालतो में निपटाए जाने चाहिए।

***जोशी :*** *आवाजे उठ रही है कि कार्यपालिका और न्यायपालिका तथा विधायिका*

**व न्यायपालिका के बीच तालमेल का अभाव है; टकराहट के नए बिंदु सामने आ रहे हैं। क्या इससे आप सहमत हैं ?**

**ओझा** : एक बात समझ लीजिए कि संविधान कानून व अहिंसा के माध्यम से देश में क्राति लाना चाहता है। परंतु, राजनीतिक व नागरिक प्रशासक उतने ही रूढिवादी है। मूलत. सरकार और अदालत के बीच कोई टकराहट नहीं है। हमने कानून के राज की अवधारणा मानी है। मुसीबत यह है कि प्रशासकों को यह बात मालूम नही है कि देश में कानून का राज है। प्रशासक कानून के मुताबिक काम नहीं करते। इसलिए कई दिक्कतें खडी हो जाती हैं। जरूरी यह है कि राजनीतिक व नागरिक प्रशासक दोनों को ही कानून का प्रशिक्षण मिले।

एक उदाहरण ले जन-प्रतिनिधि अपने भाषणों में जन-समस्याएँ सार्वजनिक मंचो पर रखते हैं; संसद एवं विधानसभाओं में रखी जाती हैं। उनके अनुसार नागरिक प्रशासक कानून बनाते हैं। संसद व विधानसभाओं में बिल रखे जाते हैं। परंतु जन-प्रतिनिधियों की असली मंशा इस बिल में आ नहीं पाती। अँगरेजी में रहने के कारण भी समस्याएँ खडी हो जाती हैं। जब कानून बन जाता है, और लागू किया जाता है, तब उसकी खामियाँ सामने आने लगती हैं। कई जन-प्रतिनिधि शिकायत करते हैं कि कानून असली उद्देश्यों के बिलकुल विपरीत हैं।

दूसरी दिक्कत कानून की व्याख्या की है। विधायिका ने कानून बना दिया। जब अदालत के समक्ष वह व्याख्या के लिए आता है, तब कई दोष उसमें दिखाई देते हैं। असलियत एक यह भी है कि अदालतों में कानून की व्याख्या अँगरेजी-मानसिकता से की जाती है, ब्रिटिश अदालतों और कानून के उल्लेख तराशे जाते हैं, ऑक्सफोर्ड शब्दकोश देखा जाता है।

कार्यपालिका स्तर पर जब बिल ड्राफ्ट किया जाता है, तब भी यही दिक्कत रहती है। बिल बनानेवाले पहले यह देखते हैं ब्रिटेन में ऐसा कोई कानून है या नहीं। यदि पहले से कोई उपलब्ध कानून है तो मामूली हेर-फेर के साथ उसका भारतीय संस्करण तैयार कर दिया जाता है। इन दोनों प्रक्रियाओं का परिणाम यह निकलता है कि कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच नाहक मतभेद उभरते हुए दिखाई देते हैं जबकि मूल में मतभेद नहीं रहता, केवल समझ का फेर रहता है। पर अब इस आदत को बदला जा रहा है। कानून की व्याख्या अँगरेजी शब्दकोश से नहीं, बल्कि सामाजिक संदर्भों से की जाने लगी है; यह देखा जाने लगा है कि किस शब्द का प्रयोग किन परिस्थितियों में किया गया है; उन परिस्थितियों का सामाजिक संदर्भ क्या है।

राजनीतिक दलों को चाहिए कि विधायिका और न्यायपालिका के बीच टकराव

न हो, इसके लिए अपने यहाँ कानून विशेषज्ञों की कमेटियाँ गठित करें। विशेष रूप से सत्ताधारी दल की जिम्मेदारी अधिक है। यदि कार्यपालिका और विधायिका पूरी सतर्कता के साथ कोई कानून बनाती हैं तो टकराव की संभावना कम रहेगी। इसी से जुडा हुआ मुद्दा है सामाजिक जवाबदेही का। देखिये सरकार या संसद प्रत्यक्ष तौर पर समाज के प्रति उत्तरदायी है, परंतु अदालत परोक्ष रूप से उतनी ही जवाबदेह है। संक्षेप में तीनों की जवाबदेही जनता के प्रति है। जैसे ही कोई न्यायाधीश संविधान की शपथ लेता है, वह जनता के प्रति जवाबदेह बन जाता है। संविधा, समाजवादी भारत बनाने के लिए प्रतिबद्ध है। यदि कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका इस यात्रा के एक तालबद्ध सहयात्री बनते हैं, तो मैं नहीं समझता कि टकराव पैदा होंगे। यदि यात्रा भंग होती है, लोगों का विश्वास अदालतों से उठता है, न्यायाधीश मकई की रोटी व लहसुन की चटनी की भाषा से अपरिचित रहते हैं, तो निःसंदेह चौरस्तों पर जनता फैसला करेगी। तब एक नई न्यायव्यवस्था का जन्म होगा।

**26 जनवरी, 1987**

# येल्तसिन : पूँजीवाद के नए-नए मौलवी

"1917 की अक्टूबर क्राति और ताजा घटनाक्रम मे बहुत फर्क है, सिर्फ महीना वही है। येल्तसिन तगडे राजनीतिक जुआरी हैं। समझ मे नहीं आता कि येल्तसिन को 'बिल येल्तसिन' कहे या क्लिटन को 'बोरिस क्लिटन'?"

'येल्तसिन और गोर्बाचोव दोनो ने देश तोडने की साजिश की थी। ताजा घटना के बाद लगता है कि येल्तसिन की विजय हुई है लेकिन सेना इस विजय की कीमत वसूलेगी। अभी मास्को मे पटाक्षेप नही हुआ है।"

"विश्व-दानव अमेरिका से मुक्ति मे ही मानव-कल्याण हेतु रूस, चीन और भारत की सयुक्त शक्ति के विस्तार की सभावना छुपी हुई है।"

रूसी मामलो के विशेषज्ञ, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय मे प्राध्यापक डॉ देवेन्द्र कौशिक से सवाद

***जोशी*** *: पिछले दिनो मास्को में जो कुछ हुआ, क्या वह स्वाभाविक था? क्या येल्तसिन-विरोधियों की हार के पश्चात सत्ता सघर्ष का पटाक्षेप हो चुका है?*

**देवेन्द्र कौशिक** : पश्चिमी मीडिया का प्रचार है कि दूसरी बोल्शेविक क्रांति टॉय-टॉय फिस हो गई, राष्ट्रपति येल्तसिन का स्थिति पर पूरा नियंत्रण है। मैं समझता हूँ कि 1917 की अक्टूबर क्रांति और मास्को की ताजा घटना में बहुत अंतर है। दोनों घटनाओं में एक ही समानता है, और वह है अक्टूबर महीना। वरना, दोनों की तुलना नहीं की जा सकती।

एक बात जरूर है कि जिन शक्तियो ने येल्तसिन की तानाशाही का विरोध किया है, उनमे साम्यवादियो की भूमिका अग्रणी रही है। लेकिन, गौरतलब है कि जिन लोगो ने ससद के समर्थन मे सबसे पहले प्रदर्शन किया, उनमे एक बडा दस्ता पादरियो का भी था। तो समर्थन मे जहॉ लाल झडा था, वहॉ आर्थोडाक्स चर्च के पादरी भी खडे थे, ऐसे लोग भी थे जिनका साम्यवादी विचारो से कोई लेना-देना नहीं था। यह ठीक है कि इस घटना ने उग्रवादी मोड लिया, लेकिन मै समझता हूँ कि इसमे भी येल्तसिन की भूमिका काफी रही है।

राष्ट्रपति येल्तसिन रूस मे 19वीं शताब्दी का मुक्त पूँजीवाद कायम करना चाहते है, और वो भी हडबडी मे। उनमे जरा भी सब्र नही है। एक नए-नए मौलवी की तरह वे पूँजीवाद की बॉग दे रहे हैं। इसके लिए वे शक्ति का भौडा प्रदर्शन करने से भी चूकते नही हैं। येल्तसिन ने जिस सविधान की शपथ ली और जिसकी वफादारी की कसमे खाते हुए राष्ट्रपति बने आज वे उसी सविधान को रद्दी की टोकरी मे फेक देना चाहते है, वे उसे बाधक मानते है। हर सविधान की एक पवित्रता वैधता होती है। सविधान बदले भी जाते है, लेकिन एक प्रक्रिया होती है उसकी भी। येल्तसिन सविधान को तोडकर चुनाव कराना चाहते है। मै यह मानता हूँ कि यदि सविधान बाधक बन रहा था तो येल्तसिन जनता मे जाते, देश मे घूम-घूमकर जनता को समझाते, ससद के खिलाफ जन-जागृति पैदा करते। वे लोगो से कह सकते थे कि किस तरह से ससद मुद्रास्फीति बढा रही है सरकार पर फिजूल के खर्चे लाद रही है।

पिछले मार्च-अप्रैल मे रूस मे मतसग्रह हुआ था, तब मै वही था। येल्तसिन घूम-घूमकर रेवडियॉ बॉट रहे थे। अधाधुध तनख्वाहे बढा रहे थे। सैनिको को घूस दी जा रही थी। इस सबसे मुद्रास्फीति बढी। रूसी बजट का घाटा बढा। इसके जो दुष्परिणाम सामने आए हैं उनके लिए वे ससद को दोषी ठहरा रहे हैं। एक बात और समझ लीजिए, ससद के जिन नेताओ ने येल्तसिन के विरुद्ध बगावत का झडा उठाया था वे राष्ट्रपति के भी सहयोगी रह चुके है। अलेक्साद्र रुत्सकोई जैसे नेता भी आर्थिक सुधार के पक्षधर है। साम्यवाद की वापसी ये भी नहीं चाहते। लेकिन सुधार ऐसा चाहते है जिससे रोगी की मृत्यु भी न हो, और उसका इलाज भी हो जाए।

लेकिन येल्तसिन कट्टरवाद के रास्ते पर जा रहे है। राष्ट्रपति बनने के बाद उन्होने घोषणा की थी कि अगले पतझर तक अर्थव्यवस्था मे ठोस सुधार हो जाएगा। उन्होने यह भी ऐलान किया था कि यदि सुधार नही हुआ तो वे रेल की पटरी पर अपना सिर रख देगे। यह गैर-जिम्मेदाराना बयान था। इस घोषणा के बाद कई पतझर व बसत आए और चले गए, लेकिन रूसियों की

हालत बद से बदतर होती चली गई। 2600 प्रतिशत की मुद्रास्फीति हुई। प्रतिमास 15 से 20 प्रतिशत मुद्रास्फीति की दर रही है। आज रूस में एक रोटी सौ रूबल की हो गई है, जबकि इसकी कीमत संपूर्ण समाजवादी दौर में 14 कोपेक से अधिक नहीं हुई। एक रूबल में 100 कोपेक होते हैं। मेट्रो-ट्रेन का किराया 5 कोपेक हुआ करता था; आज वह 10 रूबल हो गया है। यदि ऐसी मुद्रास्फीति भारत में हो जाए तो हमारा क्या हाल होगा, इसकी कल्पना सहज ही में की जा सकती है। रूस में तथाकथित आर्थिक सुधारों के दौरान निर्बल व कमजोर वर्गों के लिए राहत की कोई व्यवस्था नहीं की गई। अपंग व नि:सहाय लोग मर रहे हैं। भारत की राजसत्ता का चरित्र पूँजीवादी है, फिर भी हमारी सरकार ने भी सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से राहत का प्रावधान रखा हुआ है। लेकिन येल्तसिन ने युद्ध के वरिष्ठ सैनिकों, महिलाओं, बच्चों, विकलांगो, पेंशन-याफ्ताओं जैसे वर्गों का कोई ध्यान नहीं रखा। सभी को मुक्त मंडी के भ्रमजाल में फँसा दिया। येल्तसिन समाज के 95 प्रतिशत लोगों से उज्ज्वल पूँजीवादी भविष्य के लिए कुर्बानी की माँग कर रहे हैं। पूँजीवाद के निर्माण की जो स्वाभाविक प्रक्रिया है, येल्तसिन उसे अँगूठा दिखाकर रूस पर मुक्त पूँजीवादी व्यवस्था थोप देना चाहते हैं।

रूस में अजीब प्रक्रिया चल रही है। पूँजीवाद में उत्पादन बढना चाहिए, लेकिन रूस में वह तेजी से घट रहा है। पिछले दो-ढाई साल में 60 प्रतिशत उत्पादन गिर चुका है। यह किसी भी राष्ट्र के लिए ख़तरनाक स्थिति है। आज रूस में सटोरियों, अपराधियों का राज है। कालाबाजार में चीजों के दाम एक हजार प्रतिशत बढे हैं। जमकर मुनाफा लूटा जा रहा है। ऐसी हालत में उत्पादन बढ़ाने की फिक्र किसे है?

***जोशी** : राष्ट्रपति येल्तसिन ने हमेशा स्वयं को लोकतंत्र का मसीहा घोषित किया है। पश्चिमी मीडिया ने इसका जमकर प्रचार भी किया। तब किन विवशताओं के तहत उन्होंने लोकतंत्र के मंदिर – संसद – के खिलाफ ही टैंकों का इस्तेमाल किया? क्या उनके लोकतंत्र के नारे ढकोसला थे?*

**देवेन्द्र कौशिक** : येल्तसिन को मैंने कभी भी लोकतांत्रिक नहीं माना। उनकी कार्यशैली आरंभ से ही तानाशाही की रही है। वे कम्युनिस्ट पार्टी की नौकरशाही के अभिन्न अंग रहे हैं। उन्होंने अपने कार्यकाल के दौरान कभी किसी से सलाह-मशविरा नहीं किया। वे पार्टी तंत्र को निरंकुश ढंग से चलाते रहे; इसके लिए वे कुख्यात है। पिछले मार्च में ही उन्होंने टीवी पर राष्ट्रपति शासन और आपातकाल की घोषणा कर डाली थी। उन्होंने अपने भाषण में कहा कि इसके लिए आदेश तैयार कर लिए गए हैं। इसके बाद संसद में आलोचना हुई। संविधान

**न्यायालय ने भी फैसला दे दिया कि येल्तसिन की यह घोषणा संविधान-विरोधी है, उन पर महाभियोग चलाया जा सकता है। केवल मात्र आठ वोटों के बहुमत से वे अपने विरुद्ध महाभियोग की कार्रवाई से बचे। इसके बाद उन्होंने उस समय वह निरंकुश कदम वापस ले लिया।**

गोर्बाचोव के जमाने से ही रूस मे एक चितनधारा चली थी। रूस मे दो सिद्धातकार हैं– मिगरानियान और कल्यानकिन। मिगरानियान आज भी येल्तसिन के राजनीतिक सलाहकार है। इन दोनो पडितो ने उस समय एक थ्यौरी प्रतिपादित की थी। वे एक मजबूत राष्ट्रपति शासन प्रणाली चाहते थे। इन दोनो सिद्धातकारो का मत है कि रूस मे लोकतत्र की स्थापना और बाजार पूँजीवाद के लिए एक एकाधिकारवादी कार्यपालिका होनी चाहिए। इसके लिए इन दोनो ने पश्चिम के अनुभवो का हवाला दिया। बगैर एकछत्र सत्ता के रूस मे सुधार सभव नहीं है। ये दोनो गोर्बाचोव को एक मजबूत राष्ट्रपति के रूप मे देखना चाहते थे, लेकिन उनमे इसके गुण नहीं थे। गोर्बाचोव कमजोर साबित हुए। इसके विपरीत येल्तसिन एक तगडे राजनीतिक जुआरी है। वे बडी से बडी जोखिम उठाने के लिए तैयार रहते है। उन्होने जुआ खेला, और देखते-देखते सत्ता हथिया ली। मैने मास्को में रहकर उनके इस खेल को देखा है। सत्ता हथियाने के लिए उन्होने हर किस्म के हथकडे अपनाए। मेरा तो यह मानना है कि येल्तसिन लोकतांत्रिक नहीं है देशभक्त भी नही है। इसका मैं उदाहरण दे सकता हूँ। बेलोरूस के जगल मे बैठकर येल्तसिन और दो अन्य नेताओ ने सोवियत सघ को तोडने की साजिश रची। इसकी सूचना सबसे पहले उन्होने अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश को दी। बुश ने तत्कालीन राष्ट्रपति गोर्बाचोव को सूचित किया कि आपका सोवियत सघ तो टूट चुका है। तब गोर्बाचोव ने येल्तसिन से कहा कि मुझे देश के विघटन की सूचना बुश से मिल रही है, कितनी शर्म की बात है? कोई भी लोकतांत्रिक और राष्ट्रवादी ऐसा नही करेगा। लेकिन गोर्बाचोव ने भी इसका प्रतिवाद नही किया। उनके हाथो से कमान फिसल चुकी थी। अत मेरे मत मे बोरिस निकोलायविच येल्तसिन असवैधानिक कार्य करने के महारथी है। इतिहास उन्हे इसी रूप मे याद रखेगा। आजकल तो बोरिस और बिल का दौर है। मेरी समझ मे यह नहीं आता कि मै येल्तसिन को 'बिल येल्तसिन' कहूँ गा क्लिटन को 'बोरिस क्लिटन' कहूँ? दोनो 'राजनीतिक समलैंगिकता' से पीडित है। वाकई मै दुविधा मे पड गया हूँ इन दोनो राष्ट्रपतियो को लेकर। दोनो के बीच ऐसा ताना-बाना बुना हुआ है कि व्हाइट हाउस और क्रेमलिन के बीच फर्क करना मुश्किल है। सच्चाई तो यह है कि गोर्बाचोव और येल्तसिन, दोनो ने अपनी निजी महत्वाकाक्षाओ की पूर्ति के लिए राष्ट्रविरोधी कार्य किया, अपने विशाल राष्ट्र को तोडा।

***जोशी : इसमें कहाँ तक सच्चाई है कि येल्तसिन को जन-समर्थन प्राप्त नहीं था इसलिए उन्होंने सेना का इस्तेमाल किया?***

**देवेन्द्र कौशिक** : अगर जनता का समर्थन होता तो वे निश्चित ही फौज का इस्तेमाल नहीं करते। लेकिन वहाँ जनता काफी उदासीन है, और इस उदासीनता की वजह क्या है, इसे समझना जरूरी है। उदासीनता को टूटने में बहुत देर लग रही है। मैं समझता हूँ कि पिछले दो सालों मे रूस की जनता ने जितना बर्दाश्त किया है, वह समझ के बाहर की चीज है। आज रूसियों मे विचारधारा के प्रति 'सिनिसिज्म' पैदा हो गया है। आज वहां की जनता को न तो साम्यवाद से लगाव है, और न ही पूँजीवाद से। रूस मे आज सिर्फ 'पेटवाद' की विचारधारा का राज है। उदरवाद को छोडकर कोई भी वाद रूसियों को आकृष्ट नहीं करता है। लेकिन, मेरा यह भी मत है कि ताजा हिसक घटना से चिंगारी फूटी है। जनता की उदासीनता तिडकी है, बारूद मे आग लगी है। यह चिंगारी शोला बनेगी या नहीं, फिलहाल कुछ भी कहना मुश्किल है। इम पहले दौर में तो निश्चित ही शोले खामोश रहे हैं। लेकिन यह कम बात नहीं है कि मास्को की इंटीरियर सेना मे फूट पडी, विद्रोह हुआ। फौज ने जरूर वफादारी दिखाई। मैं समझता हूँ कि आज राष्ट्रपति येल्तसिन की जीत नहीं हुई है, रूसी सेना की विजय हुई है। सेना इसकी कीमत येल्तसिन से जरूर वसूलेगी। सेना ने एक तरह से संसद भवन पर कब्जा करके राष्ट्रपति पर कब्जा कर लिया है। आगे-पीछे उन्हें इसकी कीमत चुकानी पडेगी। रूस का वर्तमान सैन्य बजट 56 बिलियन डॉलर का है। जरा कल्पना कीजिए, इसके विपरीत जापान का 22 बिलियन, चीन का 34 बिलियन और भारत तो 6-7 बिलियन डॉलर पर ही अटका हुआ है। मुझे लगता है कि अब रूसी सेना इस विशाल बजट मे और इजाफा चाहेगी, सैन्य उद्योग मे विस्तार की मॉग करेगी। अपनी सत्ता की खातिर सेना को साथ रखने के लिए येल्तसिन को यह सब कुछ करना पडेगा। जाहिर है, इसका प्रभाव आर्थिक सुधारो पर पडे बिना नहीं रहेगा। इससे सामान्य रूसियों की हालत और बदतर होगी। इतना ही नहीं, सेना को तुष्ट करने के लिए पूँजीवाद के निर्माण का स्वप्न भी भग करना पडेगा। अत मेरी द ष्टि मे येल्तसिन की जीत नहीं, हार हुई है। अभी मास्को मे पटाक्षेप नहीं हुआ है। अभी-अभी समाप्त द श्य में जनता का सुप्त आक्रोश भडकता हुआ दिखाई दे रहा है। यह सतह से ऊपर आ गया है और सशस्त्र विरोध की शक्ल मे प्रकट हो गया है। येल्तसिन विद्रोह को कुचलने के लिए मास्को से आगे भी बढ रहे हैं। मुझे तो रूस के विघटन की आशंका हो रही है।

***जोशी : इस पूरे घटनाक्रम में अमेरिका और उसके सहयोगी राष्ट्रों का जो रोल रहा है, उसके संबंध में आपका क्या कहना है? जिस ढंग से यूरो-अमेरिकी शिविर***

*ने येल्तसिन को समर्थन दिया है, वह क्या एक किस्म का हस्तक्षेप नहीं है?*

**देवेन्द्र कौशिक** : मैं यह नहीं मानता कि अमेरिकी समर्थन की वजह से येल्तसिन को कामयाबी मिली है। और, वैसे यह समर्थन अपेक्षित था, उन्होंने इसकी बुनियाद पहले ही डाल दी थी। येल्तसिन के विदेशमंत्री कोजीरोव ने अपनी ताजा अमेरिकी यात्रा के दौरान व्हाइट हाउस को संकेत दे दिए थे कि राष्ट्रपति संसद के खिलाफ कुछ सख्त कदम उठा सकते हैं, ससद को भंग भी किया जा सकता है। बिल क्लिटन ने अपना आशीर्वाद तभी येल्तसिन को दे दिया था। अमेरिका और उसके सहयोगी राष्ट्रों ने अपने राष्ट्रीय उर्फ वर्गीय हितों को ध्यान में रखकर ही समर्थन की घोषण की। चूँकि येल्तसिन मुक्त बाजार व्यवस्था लाने के लिए कटिबद्ध हैं, इसके लिए वे ग हयुद्ध और विघटन की जोखिम तक उठाने के लिए तैयार हैं, और अमेरिका भी यही चाहता है कि रूस का और अधिक विघटन हो। अमेरिकियो की दिलचस्पी सिर्फ गैर-कम्युनिस्ट या लोकतांत्रिक रूस मे ही नहीं है बल्कि वे यह भी चाहते है कि भविष्य मे रूस एक महाशक्ति और प्रतिद्वंद्वी के रूप मे न उभरे। यह तभी सभव है जब रूस खड-खंड हो जाए। रूस के देशभक्त लोग अमेरिकियो के इन मंसूबों को समझ भी रहे है। रूसी मे एक कहावत है कि वहाँ का कृषक तब तक प्रार्थना नहीं करता जब तक आसमान से बिजली न कौंधने लगे। जैसे ही बिजली कडकने लगती है, वह घबराकर प्रार्थना करने लगता है कि वह उसके घर पर न गिर जाए। इस घटना से बिजली कौंधी है, देशभक्त जागने लगे है, प्रार्थना शुरू हो गई है। फिलहाल तो यही कहा जा सकता है कि हम देखे और प्रतीक्षा करें।

***जोशी*** *: मान लीजिए रविवार और सोमवार के हिसक सघर्ष में येल्तसिन हार जाते, सेना संसद का समर्थन कर देती, तो उस स्थिति मे अमेरिकी शिविर का क्या रवैया रहता?*

**देवेन्द्र कौशिक** : मैं नहीं समझता कि उस स्थिति मे अमेरिका और उसके मित्रराष्ट्र रूस मे कोई सैनिक हस्तक्षेप करते। यह सभव नहीं है। रूस की जलवायु में नेपोलियन, हिटलर तक के छक्के छूट गए थे, तो अमेरिकी क्या चीज है? एकमात्र महाशक्ति होने के बावजूद अमेरिकी यूगोस्लाविया में नहीं घुस पा रहे हैं, सोमालिया में उनके सैनिक मारे जा रहे हैं। रूस आज भी एक परमाणु शक्ति है, अमेरिका इस तथ्य की अनदेखी नही कर सकता। अमेरिका यह भी जानता है कि यदि उसने खुला हस्तक्षेप किया तो रूस के देशभक्त जाग जाएँगे, रूसी सेना उसका साथ नहीं देगी। अलबत्ता अमेरिका ने कूटनीतिक हस्तक्षेप जरूर किया है। अमेरिका यह भी जानता है कि येल्तसिन टिकाऊ नहीं हैं, उन्हें देर-सबेर सत्ता से हटना पडेगा। लेकिन वे येल्तसिन से रूस का

विघटन जरूर करा लेना चाहते हैं।

*जोशी : इन तमाम घटनाओं का भारत जैसे विकासशील देशों पर क्या प्रभाव पडेगा?*

**देवेन्द्र कौशिक** : देखिए, कुछ सच्चाइयॉ कुछ मजबूरियॉ हैं, जिन्हें हमें स्वीकार करना पडेगा। भारत मे इतनी हिम्मत तो है नहीं कि वह फिर से द्वि-ध्रुवीय शक्ति-विश्व का निर्माण कर दे। एकल ध्रुवीय शक्ति-व्यवस्था की सच्चाई को सामने रखकर ही सोचना पडेगा। गुटनिरपेक्ष आंदोलन मृतप्राय है। जब वह जीवित था, हम उससे फायदा उठाते थे। अब तो अमेरिकी महाप्रभु की हॉं में हॉ मिलानी पडती है। मैं इस संदर्भ में चीन की प्रशसा करूँगा। उसकी प्रतिक्रिया थी कि यह रूस का आतरिक मामला है और इस समस्या का उपयुक्त समाधान होना चाहिए। चीन ने यह भी नहीं कहा कि इसका शांतिपूर्ण समाधान होना चाहिए। उन्होने 'उपयुक्त समाधान' पर जोर दिया था। भारत को भी ऐसी ही प्रतिक्रिया व्यक्त करनी चाहिए थी। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। इसकी एक वजह है कि हम मानसिक रूप से गुलाम हो चुके है, हमारा शासक वर्ग स्वतंत्र ढग से सोच ही नहीं सकता। चीन तो धौंस के साथ पूँजी लेता है। वह अमेरिकी कृपा पर आश्रित नहीं है। वह तो भूमिगत परमाणु परीक्षण भी करता है और उसके यहॉ अमेरिकी पूँजी भी लगाते हैं। साम्यवादी होते हुए भी चीन ने अपना राष्ट्रवाद नहीं छोडा। यहॉ तक कि संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन ने अमेरिका की खुलेआम भर्त्सना की। भारत का शासक वर्ग ऐसा नहीं कर सकता। हमने अमेरिका को खुश करने के लिए येल्तसिन के पक्ष मे समर्थन व्यक्त किया, यह हमारे दीर्घकालीन राष्ट्रीय हित मे नहीं है।

मैं समझता हूँ कि रूसी ससद की जीत में भारत का हित निहित था। उदाहरण के लिए, क्रायोजेनिक सौदे के मामले मे रूस के विदेशमत्री कोजीरोव ने भारत का साथ नहीं दिया बल्कि इसका विरोध किया; और जब कोजीरोव क्रायोजेनिक इंजन के सौदे का विरोध कर रहे थे, रूस की संसद भारत का समर्थन कर रही थी। अत. यदि संसद की जीत होती तो तीसरी दुनिया का पलडा भी भारी होता। येल्तसिन के रहते हुए यह संभव नहीं है। यह व्यक्ति गोर्बाचोव से भी ज्यादा यूरो-अमेरिकोन्मुख है।

इस सबंध में एक नाटक की घटना याद आती है। 1992 मे प्रावदा में 'बिलियर्ड' नाम का एक नाटक छपा था। इसमें दो खिलाडी होते है और तीसरा व्यक्ति गेद उठानेवाला होता है। इस नाटक पर गोर्बाचोव और येल्तसिन दोनों ने ही पाबदी लगा दी थी। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने बडी चतुराई के साथ गोर्बाचोव और येल्तसिन को षड्यत्रकारी के रूप मे चित्रित किया था। नौकर

के रूप में तीसरा पात्र जाहिरा तौर पर गूँगा-बहरा है, इसलिए दोनों खिलाड़ी खेलते समय षड्यत्र की बातें करते हैं। नौकर जो कि वास्तव में गूँगा-बहरा नहीं था, इन दोनो खिलाडियो के सवाद चुपचाप नोट करता रहता है। यह नाटक 1991 मे अगस्त-विद्रोह के पहले लिखा गया था। इसको पढने के बाद किसी को यह सदेह नहीं रह जाता कि दोनो खिलाडी खेलते-खेलते साजिश रच रहे थे। खिलाडी एक-दूसरे से कहते हैं कि किस तरह से बगावत होगी, इस बगावत से किसको फायदा पहुँचेगा। एक खिलाडी कहता है कि इस बगावत के बाद मेरा रोल समाप्त हो जाएगा, आपको खेल जारी रखना है। साकेतिक ढग से कह दिया गया था कि यूरो-अमेरिकी शिविर का खेल कैसे जारी रखना है। और आप जानते ही हैं कि अगस्त 1991 मे विद्रोह हो गया था। उक्त नाटक अगस्त से पहले लिखा गया था। लोकतत्र के रक्षक होने का दावा करनेवाले येल्तसिन ने इसके मंचन की इजाजत नहीं दी और अगस्त-विद्रोह के पहले गोर्बाचोव ने भी मचन की इजाजत नहीं दी। उस समय गोर्बाचोव सोवियत सघ के राष्ट्रपति थे, और येल्तसिन रूसी गणराज्य के राष्ट्रपति थे।

मेरे विचार मे अगस्त-विद्रोह वास्तविक विद्रोह नहीं था, वास्तविक विद्रोह करने के लिए एक बहाना बनाया गया था। असली विद्रोह तो दिसबर मे होता है जब सोवियत सघ का विघटन किया जाता है। अब मै एक सवाल पूछ सकता हूँ कि अगस्त-विद्रोह मे भी टैंको को निकाला गया था, लेकिन कोई भी गोली नहीं चली। जनता उस समय भी येल्तसिन के समर्थन मे सडको पर खडी थी, लेकिन टैंको की तोपो ने मुँह नही खोले। तब आज येल्तसिन के टैंको ने आग क्यो उगली? कम्युनिस्टो को तानाशाह कहा जाता है। अगस्त-विद्रोह मे तो कट्टरपथी कम्युनिस्ट शामिल माने जाते है, उन्होने अपने टैंको, फौजो को आदेश क्यो नहीं दिए कि येल्तसिन की इमारत को ध्वस्त कर दिया जाए? दूसरी तरफ लोकतात्रिक होने के नाते येल्तसिन को अधिक जिम्मेदार, उदारवादी, सहनशील होना चाहिए था, पर उन्होने बिल्कुल फासीवादी तरीके से टैको से गोले बरसाने के निर्देश दिए। ससद के समर्थन मे जनता अब भी सडको पर खडी थी। उन्हे क्यो मारा गया? अगस्त-विद्रोह मे येल्तसिन के टेलीफोन तक नहीं काटे गए थे, जबकि आज ससद का पानी-बिजली तक काट दी गई थी। अगस्त मे येल्तसिन अपने कार्यालय से बाहर निकलकर टैक पर चढते रहे, बुश से फोन पर बात करते रहे, किसी ने उन्हे गिरफ्तार नहीं किया। लेकिन आज ससद के नेताओ को मारा गया, उन्हे गिरफ्तार करके जेलो मे ठूँस दिया गया है। इसलिए मेरे मत मे अगस्त-विद्रोह वास्तविक नहीं था, किसी षड्यत्र का एक हिस्सा था। लेकिन उसकी ओट मे असली विद्रोह दिसबर मे किया गया। 'बिलियर्ड' नाटक मे इस षड्यत्र को एक्सपोज किया गया है।

***जोशी : पिछले दिनों अमेरिकी राष्ट्रपति ने कश्मीर को ग हयुद्धग्रस्त क्षेत्रों में शुमार किया है। इस संबंध में आपका क्या कहना है?***

**देवेन्द्र कौशिक** प्रतिक्रिया मे एक शे'र याद आता है इब्तदा-ए-इश्क मे रोता है क्या, आगे-आगे देखिए होता है क्या! जब यह कहा जा रहा था कि अमेरिका पाकिस्तान को आतकवादी देश घोषित करने जा रहा है तो हम झूम उठे थे, इसे भारत की कूटनीतिक विजय के रूप मे देखा जा रहा था। तब मैने कहा था कि खुशी मनाने के बजाय प्रतीक्षा करो और देखो। अमेरिका यह कभी नहीं चाहेगा कि रूस, भारत और चीन मे कोई शक्ति-केद्र उभरे। लेकिन यह ऐतिहासिक नियति है कि रूस भारत और चीन की सयुक्त शक्ति ही विश्व-महाप्रभु की आपराधिक शक्ति को चुनौती दे सकती है। इसके लिए एक शर्त है कि रूस को येल्तसिनवादी नहीं, राष्ट्रवादी होना पडेगा। चीन को अधराष्ट्रवाद छोडकर उदार राष्ट्रवादी और भारत को दासत्वभाव छोडकर देशभक्त व राष्ट्रवादी होना पडेगा। इन तीनो की सयुक्त ताकत मे ही विश्व-दानव से मुक्ति और मानवता के कल्याण की किरण छुपी हुई है।

**10 अक्टूबर, 1993**

# आत्म-तर्पण, आत्म-पाखंड भी है

कॉफी-हाउस और अस्सी साला विष्णु प्रभाकर, एक-दूसरे के पर्याय बन चुके हैं। दिल्ली की उपभोक्ता सस्कृति का हृदय—कनाट प्लेस, इसके एक किनारे पर खडी बिल्डिंग मे बसा है इडियन कॉफी-हाउस। ऑधी हो या तूफान, प्रभाकरजी की हर शाम इसी मे गुजरती है। पुरानी दिल्ली की तग गलियो से गुजरते, रिक्शा-ठेलो से टकराते, तॉगेवालो, टेम्पोवालो की चेतावनियॉ सुनते-सुनाते हुए वे अँगरेजो के बसाए इस वैभवशाली बाजार मे दाखिल हो जाते है, और फिर मोहनसिह प्लेस की सीढियॉ चढते-चढते कॉफी-घर पहुॅच जाते है। जैसे-जैसे शाम ढलने लगती है, सभी ब्राण्डो एव उम्र के लेखको का जमघट इर्द-गिर्द लगने लगता है। राजकुमार सैनी, मस्तराम कपूर रमेश उपाध्याय, भगवानसिह काति मोहन, अरुण प्रकाश, अरविद जैन, असगर वजाहत, पकज बिष्ट हमराज रहबर डॉ सक्सेना, डा शैलेन्द्र श्रीवास्तव आदि — क लबी फेहरिस्त है— के साथ दुनिया भर के मुद्दो को लेकर बहस शुरू हो जाती है। उपन्यासकार रमाकात नही रहे, उनके सभ्य साहित्यिक नोक-झोक का रग ही कुछ और हुआ करता था। विष्णुजी को सभी से बेपनाह सम्मान और प्यार मिलता है।

कॉफी-हाउस के साथ विष्णुजी का नाता आज का नहीं है पुराना है। कनाट प्लेस के कई कॉफी-हाउसो एव टी-हाउसो का उत्थान एव पतन उन्होने देखा है। वे बताते है कि किसी जमाने मे कॉफी-हाउस सस्था एक स्वस्थ सस्कृति का प्रतीक हुआ करती थी। उन्होने पुराने कॉफी-हाउसो मे डॉ राम मनोहर लोहिया प्रो रगा, जैनेन्द्र, मोहन राकेश सहित अनेक दिग्गजो के बेबाक सवाद देखे हैं, खूब बहसे हुआ करती थीं, लेकिन दिलो मे मलाल नहीं रहता था, दुराग्रह और पूर्वाग्रह से मुक्त वातावरण था। विष्णुजी की पीडा है—आज सब कुछ बदल चुका

है। यह स्वस्थ संस्था बीमार हो चुकी है। बहसों में से ऑब्जेक्टिविटी समाप्त हो चुकी है। बहस में सब एक-दूसरे को ऊँचा-नीचा करने की कोशिश करते रहते हैं। कॉफी की चुस्कियाँ चढाते हैं, लेकिन मन में एक-दूसरे को लेकर क्लेश पाले रहते हैं।

विष्णुजी ने दिल्ली को कई रंगों में देखा है। वे पहली बार 1924 में दिल्ली आए थे। तब वे 12 वर्ष के थे। कॉफी की चुस्कियों के साथ उनका नॉस्टेलजिया उमड़ता है। वे बताते हैं : उस समय दिल्ली एक बडा गॉव लगता था; बेहद शांति थी। तब घंटाघर, नई सडक एक आबाद इलाका था। चाँदनी चौक में इक्की-दुक्की पुरानी दुकानें रह गई हैं। घंटेवाला हलवाई उनमें से एक है। उस जमाने में चावड़ी बाजार में वेश्याएँ रहा करती थी। इक्के-तॉगे-ट्राम हमारी सवारी हुआ करती थीं। करौलबाग बसने लगा था। अजमेरी गेट से बाहर जाने में डर लगता था। रास्ते में ताँगे, गाड़ी, रिक्शा जाया करते थे। आज का भव्य नई दिल्ली स्टेशन बहुत मामूली किस्म का हुआ करता था। आज का प्रेस एरिया जंगल हुआ करता था। इंडिया गेट तक में उजाड़ का आलम था। मेरे सामने राष्ट्रपति भवन बना। कनाट प्लेस भी ऊँघता हुआ-सा लगता था। इक्की-दुक्की इमारतें थीं। संसद भवन के आस-पास भी सन्नाटा हुआ करता था। लेकिन, पुरानी दिल्ली में हमेशा चहल-पहल रहा करती थी, वह मशहूर हुआ करती थी। गर्मियों में ककड़ियाँ बेची जाती थीं, आवाज लगाकर--लैला की उंगलियॉ ले लो, मजनू की पसलियाँ ले लो। उस जमाने में हिन्दुस्तानी बोली जाती थी। जामा मस्जिद के क्षेत्र में कारखानदाजी बोली बोली जाती थी, जैसे—अबे, कहॉ जारिया है? अब दिल्ली की जुबान में काफी बदलाव आ गया है। उस जमाने में मश्की धूमा करते थे, कटोरे में पानी पिलाया करते थे। किस्सागो हुआ करते थे। मदारी हुआ करते थे। बिसातियों की अलग अदाएँ हुआ करती थीं। उस समय दिल्ली की गलियॉ– 'जागो मोहन प्यारे' से गूँजा करती थीं। इस भजन के साथ हम सब उठ जाया करते थे। हम सब यमुना स्नान के लिए तट पर पहुँच जाया करते थे। अब यह परिवेश समाप्त हो चुका है।

आपको आश्चर्य होगा यह जानकर कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को हम दिल्ली की गलियों में ले आए थे। कुंडेवालान में उनका कार्यक्रम हुआ। हम लोगों ने उनसे कविता सुनाने का आग्रह किया, लेकिन वे चुप रहे। इसी बीच भारत-कोकिला सरोजिनी नायडू आ गईं। उन्होंने पूछा—क्या बात है? हमने कहा कि हम गुरुदेव से कविता सुनना चाहते हैं, ये सुना नहीं रहे हैं। इस पर तुनककर सरोजिनी नायडू ने कहा—वाट डू यू थिंक आई—आई एम नाइटएंगल आफ इंडिया। आई विल ऑस्क एंड ही विल रिसाइट। इसके बाद गुरुदेव ने अपनी तीन कविताएँ मुस्कुराकर सुना दीं।

**1946 से मुझे कॉफी-हाउस का चस्का लगा। सबसे पहले कनॉट प्लेस के ही एक रेस्तरॉ मिल्क बार मे बैठा करता था। इसके बाद सन्नी कॉफी-हाउस, जनपथ के कॉफी-हाउस मे बैठना शुरू किया। यहॉ बडे-बडे नेता आया करते थे। दिल्ली-पजाब के पूरे साहित्यकार इस कॉफी-हाउस मे आया करते थे। इसके बाद टी-हाउस मे बैठना शुरू किया। टी-हाउस मे बहस भी हुआ करती थी, झगडे भी होते थे। एक बार किसी ने आत्महत्या भी कर ली। लेकिन एक बात थी उस जमाने मे, यदि किसी टेबल पर मै बैठा हूँ तो उसका बिल मै ही दिया करता था। जहा मै बैठता था उसे विष्णु प्रभाकर की टेबल कहा जाता था। औरो के साथ भी यही बात थी–लेकिन आज हम सब अपना-अपना बिल अदा करते हैं। समझ सकते है, यह व्यक्तिवादी प्रव त्ति का द्योतक है।**

प्रभाकरजी का नॉस्टेलजिया तब टूटता है जब उनके लेखक-साथी आना शुरू कर देते हैं।

प्रस्तुत है उनके साथ एक आत्मीय बातचीत के जरूरी अश–

***जोशी*** *जीवन के अस्सी बरात देख चुके है आप। इन्हे किन-किन रूपो मे देखा? आज आप जीवन के जिस पडाव पर खडे है क्या कोई रिगरेट है आपको?*

**विष्णु प्रभाकर** यदि आपका आशय इससे है कि मै साहित्यिक जगत मे सफल रहा या असफल तो इसका उत्तर मै नही दे सकता, समीक्षक ही इसका उत्तर देगे। इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मै असतुष्ट नहीं हूँ। जो कुछ कर पाया, उससे और अधिक करने की इच्छा है। पर मै यह नहीं जानता कि अस्सी वर्ष पूरे करने के बाद कितना जीवन और शेष है? कितना और कर पाऊँगा या नहीं? अगर जीवन शेष है तो मै निश्चित ही निरतर लिखता रहूँगा। लिखने की कुछ योजनाएँ भी हैं। साहित्य की बात मैने इसलिए की थी कि इसमे इतनी विचारधाराएँ है दल है लेकिन मैं किसी एक से जुडा नही रहा। कुछ दिन के लिए प्रगतिशील आदोलन के साथ जरूर जुडा था, वैसे अब तक जुडा हुआ हूँ। लेकिन उतने जोर-शोर के साथ सक्रिय नही हूँ। मै आज भी प्रगतिशील विचारधारा को मानता हूँ, पर अपनी विचारधारा भी साथ लेकर चलता हूँ।

जीवन के आठ दशक जीने के बाद मै इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि अतिम कुछ भी नहीं है। हमारे सामने मार्ग है। इस खोज के मार्ग पर निरतर चलते चले जाना है। मनुष्य ने प्रगति भी की है मै यह भी मानता हूँ। लेकिन मेरी यह

मान्यता भी है कि मनुष्य की मूलभूत प्रव त्तियो मे कोई विशेष अंतर नहीं आया है। सारी प्रगति के बावजूद ईर्ष्या, द्वेष, प्रेम, प्यार जैसी प्रव त्तियों मे कोई बदलाव नहीं आया है। हम एक साथ बैठकर भी एक नहीं रह पाते हैं। समान विचारधारा के लोग जुलूस निकालते है, प्रदर्शन करते हैं, तो भी वे मन से एक नहीं हो पाते हैं। मै व्यक्ति की बात कर रहा हूँ।

***जोशी*** *सभव है आप सही हो। परतु मानव-इतिहास का अनुभव यह भी है कि जब व्यक्ति की प्रव त्तियो को व्यापक परिप्रेक्ष्य मे रखकर सामूहिकता या सामाजिकता मे रूपान्तरित किया जाता है तब निश्चित ही परिवर्तन आते है, पुरानी व्यवस्थाएँ ढहती है नई व्यवस्थाएँ अस्तित्व मे आती है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्य की यात्रा पर ही विराम लग जाए।*

**विष्णु प्रभाकर** मैने आपसे पहले ही कहा है कि हम निरतर आगे बढते हैं। लेकिन मेरा कहने का अर्थ यह है कि मनुष्य की बेसिक इस्टिक्ट मे कोई अतर नहीं आया है। यदि कोई अतर आया है तो सिर्फ यह कि पहले भेडिए के पजे हमारे सामने होते थे आज वे अतर मे छिप गए है। ये विचारधाराओ मे दिखाई देते है। अब मै आपको एक उदाहरण देता हूँ। नारी को मनुष्य दबाकर रखता है। कहने के लिए हिन्दू धर्म मे नारी को शक्ति माना जाता है, लेकिन पति के रूप मे पुरुष नारी पर कि स-किस तरह के अत्याचार करता है। आज क्या अखबार नारियो को जलाने की खबरो से भरे नही रहते? यही विरोधाभासपूर्ण स्थिति अछूत के प्रति है। सविधान मे एक पक्ति लिखकर अरप श्यता समाप्त कर दी गई। पर वास्तविकता इसके विपरीत है। आज अछूतो की रिथति क्या है? इस वर्ग के बहुत कम लोग ही ऊपर उठ सके है।

***जोशी*** · *जब आप किशोर थे, तब से आज तक कोई अतर नहीं आया ?*

**विष्णु प्रभाकर** इस सबध मे मै आपको एक उदाहरण देना चाहूँगा। मैंने मिस्र की पॉच हजार वर्ष पुरानी एक पुस्तक देखी है। उस पुस्तक मे भी यही भाषा है कि कैसा समय आ गया है कोई किसी को समझता नहीं है सारे मूल्य बिखर गए है, हम कहा से कहाँ पहुँच गए है? आज जो हम बीसवी सदी मे सोच रहे है, वही बात पाच हजार साल पहले कही जा रही थी। लेकिन मै ऐसा नहीं कहता कि कोई अतर ही नहीं आया। फिर भी यह सही है कि नारी के प्रति पुरुष के व्यवहार मे कोई अतर नहीं आया है। आज नारी प्रधानमत्री बनती है, दफ्तरो मे बैठती है उसने ढेर सारी प्रगति की है पर स्त्री-पुरुष के सबधो मे बुनियादी अतर नही आया है। नारी कितनी भी आधुनिक हो जाए वह आज भी पुरुष के प्रति आकर्षित होती है वह मॉ बनना चाहती है। मेरे उपन्यास *अर्धनारीश्वर* की यही थीम है। पुरुष या स्त्री अपनी स्वतत्र पहचान बनाए रखना चाहते हो

भले ही, पर वे अलग होते हुए भी एक हैं, एक-दूसरे मे समाहित हैं। लेकिन कभी-कभी अहम टकराते हैं। विशेष रूप से उच्च वर्ग मे इस अहम को हम सबलीमेट नहीं कर पाए हैं।

**जोशी** *सक्षेप मे मनुष्य की अपनी निम्न प्रव त्तियो का सबलीमेशन नहीं हो पाया है?*

**विष्णु प्रभाकर** जी हॉ, वैसे कोशिश की जा रही है।

**जोशी** *लेकिन पूर्णता की प्राप्ति मे मनुष्य की यह निरतर प्रक्रिया नही है?*

**विष्णु प्रभाकर** इसीलिए मैं किसी अतिम नतीजे पर नहीं पहुॅचना चाहता। मेरा रास्ता खुला है। मेरे उपन्यास की नायिका भी यही कहती है कि मैं निरतर आगे बढ रही हूॅ, मैं पराजय स्वीकार नहीं कर रही हूॅ। महापुरुषो के जीवन से भी यही प्रतिध्वनित भी होता है। मार्क्स, महात्मा गॉधी, डॉ अम्बेडकर जैसे महापुरुषो का राजनीतिक जीवन छोड दीजिए, मैं इनके व्यक्तिगत जीवन से बहुत प्रभावित हूॅ। इनकी यात्रा मनुष्य की पूर्णता की यात्रा है। महर्षि दयानद की कम आलोचना नहीं की जाती। मार्क्सवादी मित्र तो उनके कटु आलोचक है। पर इस यात्रा मे उनका कितना योगदान है। पिछली सदी महापुरुषो से भरी पडी है और इस सदी मे एक भी महापुरुष नही है।

**जोशी** *यह आप कैसे कह सकते है? इस सदी के नायको मे लेनिन माओ, गॉधी, होची मिन्ह जैसे इतिहास-पुरुषो को शामिल किया जा सकता है?*

**विष्णु प्रभाकर** ये सब पिछली सदी के हैं।

**जोशी** *आप यह कह सकते है कि इनका कर्म-काल पिछली सदी से आरभ होता है और वर्तमान सदी को स्पर्श करता है*

**विष्णु प्रभाकर** मैं यह मानता हूॅ कि राजनीतिक लडाई से पहले सामाजिक सघर्ष की लडाई शुरू की जानी चाहिए। इस द ष्टि से राजा राममोहन राय दयानद सरस्वती जैसे महापुरुषो ने सामाजिक क्राति मे अपना योगदान दिया। दयानद ने जहॉ वेद की बात कही है वही उन्होने इस पर भी जोर दिया है कि सोलह वर्ष की आयु मे विवाह किया जाना चाहिए। नारी और शूद्रो की शिक्षा के वे समर्थक थे। वे वर्ण व्यवस्था को कार्य विभाजन की द ष्टि से देखते थे। लेकिन बाद मे कार्य विभाजन की अवधारणा का डीजेनरेशन हुआ। भारत मे 1857 की पहली आजादी की लडाई की पराजय के बाद एक हताशा का वातावरण फैला हुआ था। अत सामाजिक आत्म-मथन की प्रक्रिया शुरू हुई। फलस्वरूप सामाजिक सुधारक क्षितिज पर उभरे। जातिवाद के विरुद्ध लड़ाई, सामाजिक सुधार का ही

एक हिस्सा थी। रानाडे, महात्मा फुले जैसे सुधारकों ने दोषपूर्ण सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन लाने की कोशिश की। देश के किसी भी कोने के ये सुधारक रहे हो, लेकिन उद्देश्य के मामले में सगठित एक आत्मा थे। उदाहरण के लिए, जब दयानंद बगाल पहुँचे, तो उन्हे वहाँ के सुधारकों का सक्रिय सहयोग मिला। केशवचद्र, विद्यासागर देवेन्द्रनाथ ठाकुर जैसे सुधारको ने दयानद को स्वीकार किया। जबकि गुजरातवासी दयानद को अँगरेजी का एक शब्द भी नहीं आता था, तब इन नेताओ के बीच सामाजिक मुद्दे को लेकर वैचारिक समानता थी। ये लोग नारी-मुक्ति के पक्षधर थे। आज हम जिस युग मे जी रहे है, उस अंधे युग की कल्पना ही नही कर सकते।

जब सामाजिक लडाई और राजनीतिक लडाई की बात होती है तो हिसा और अहिंसा का प्रश्न उठना स्वाभाविक है। हमने दोनो के संबध मे गलत सोच से काम लिया। हमने यह मान लिया कि अहिसा का मतलब हथियार डालना या आत्मसमर्पण करना है। इसी तरह से हथियार चलाना या बम डालना हिसा है। सचाई यह है कि हिसा मन से होती है। अहिसा के साथ भी यही बात है। क्या हम परिवार मे हिसा से रहते है? इसी तरह से गॉधीजी ने आवश्यकता पडने पर हथियार उठाने से भी इकार नही किया है। मेरे पास एक चेक विद्वान का पत्र सुरक्षित है। यह पत्र तब लिखा गया था जब रूस ने चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण किया था। चेक विद्वान ने अपने पत्र मे मुझे स्मरण कराया था कि जब हिटलर ने उसके देश पर आक्रमण किया था गॉधीजी चेकोस्लोवाकिया के साथ खडे थे। लेकिन आज जब रूस हमारे देश पर आक्रमण कर रहा है, तब इदिरा गॉधी हमारे साथ नहीं है। यह चेक विद्वान की वेदना थी।

मै गॉधीवादी हूँ लेकिन मेरे सारे सबध मार्क्सवादियो से है। मै उनके कार्यक्रमो में भाग लेता हूँ, अपनी बात उनके सामने रखता हूँ। एक दफे एक रूसी विद्वान ने मुझसे कहा कि हम आपको इसलिए साथ रखते हैं क्योंकि आप कम्युनिस्ट नहीं हैं। इसकी वजह यह थी कि उनके और मेरे बीच एक आधारभूत पुल है और वह यह है कि मै सामतवाद, साम्राज्यवाद और साप्रदायिकता के खिलाफ हूँ। धर्मनिरपेक्षता का पक्षधर हूँ। इसी प्रकार मै किसानो और श्रमिको के हक का समर्थक हूँ। अलबत्ता, हम वहाँ नहीं मिलेगे जहाँ से घ णा एवं हिंसा की बात शुरू होती है। वैसे मै पजाब मे भगतसिंह और उनकी नौजवान सभा से जुडा रहा हूँ। सरकारी नौकरी करते हुए सक्रिय रहा हूँ। मेरे घर की तलाशी ली गई है।

***जोशी** : हम इस सदी की अतिम दहलीज पर खडे हैं। आपने अभी समग्र द ष्टि की बात कही। क्या आप समझते हैं कि इन वर्षो में इस द ष्टि में बिखराव आया है?*

**विष्णु प्रभाकर : निश्चित ही इसमे बिखराव आया है। लेकिन, मैं इसे स्वाभाविक मानता हूँ। देखिए, प्रगति की रेखा कभी सीधी नहीं रही। यह बिजली की तरह चलती है। हम पीछे नहीं हटे हैं।** लेकिन, **बीच-बीच मे ऐसे बिखराव आते है कि हम दिग्भ्रमित हो जाते है।** आज देखिए, तमाम राजनीतिक पार्टियाँ **बिखरी हुई है। जनता दल से काफी उम्मीदे थीं। आज क्या हाल है उसका? टुकडे-टुकडे हो चुकी है। यह प्रगति का नहीं, घोर अगति का लक्षण है। यह सब कुछ व्यक्तिगत महत्वाकाक्षा के आधार पर हुआ है, न कि सामूहिक महत्वाकाक्षा इस स्थिति के लिए जिम्मेदार है।**

***जोशी*** *स्वतत्रता पूर्व की महत्वाकाक्षा और बाद की महत्वाकाक्षा मे गुणात्मक अतर है। आज देश की सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया मे प्रत्येक वर्ग अपना प्रतिनिधित्व चाहता है। महत्वाकाक्षा का यह नया आयाम है। क्या आप ऐसा नही मानते?*

**विष्णु प्रभाकर** . आपने यह सही कहा है। इसीलिए बिखराव आना स्वाभाविक है। लेकिन यह इतना व्यक्तिवादी हो गया है कि इससे किसी का हित होनेवाला नहीं है। यह घोर सकीर्णतावादी और जातिवादी हो गया है। इसकी प्रतिच्छाया बिहार मे ही नहीं, सब जगह दिखाई दे रही है। भरतपुर की कुम्हेर त्रासदी इस प्रक्रिया की एक छाया मात्र है।

***जोशी*** . *क्या ऐसी त्रासदियो से बचा नहीं जा सकता था? क्या इसके लिए जवाहरलाल नेहरू जैसे राजनेता जिम्मेदार नही है जिन्होने देश के आधुनिकीकरण एव औद्योगिकीकरण की कोशिश तो की लेकिन सामाजिक रिश्तो मे बुनियादी परिवर्तन को अछूता रहने दिया?*

**विष्णु प्रभाकर** एसी त्रासदियो से निश्चित ही बचा जा सकता था। आजादी के बाद हमारे महापुरुषो ने सत्ता हथियाने की कोशिश तो की लेकिन समाज सुधार की दिशा मे कोई कदम नही उठाया। मुझे जवाहरलाल से सबसे बडी शिकायत यही है कि वे समाज सुधार के क्षेत्र मे काफी कुछ कर सकते थे देश की जनता के वे नायक थे लेकिन उन्होने भारत की जनता के प्यार का नाजायज लाभ उठाया। मेरे लिए तो नेहरू के बाद इंदिरा और फिर राजीव- यह सिलसिला ही पतन का लक्षण हे।

***जोशी*** *अच्छा साहित्य पर इन तमाम प्रवृत्तियो का क्या असर पड रहा है?*

**विष्णु प्रभाकर** देखिए साहित्य तुरत किसी चीज पर रिएक्ट नहीं किया करता। किसी भी चीज को साहित्य समग्रता मे समझता है। उदाहरण के लिए मन के तीन रूप होते हैं। जब कोई साप्रदायिक दगा होता है तो एक सामान्य व्यक्ति यही कहता

है कि हिन्दू-मुसलमान लड पडे। मन का यह एक स्थूल रूप है। दूसरा रूप होता है सूक्ष्म। पत्रकारो मे यह अधिक होता है। वे साप्रदायिक दगो का विश्लेषण करते हैं, उनकी गहराई मे जाने की कोशिश करते है। लेकिन एक तीसरा मन और है यह है सघन मन। साहित्यकार जब दगे के बारे म सोचता है तो हिन्दू-मुसलमान की द ष्टि से नहीं वह कहता है कि आदमी आदमी से क्यो लड रहा है? आप खुद ही देख सकते है कि आज हिन्दू-मुसलमान ही नही लड रहे है हिन्दू हिन्दू से लड रहा है, पाकिस्तान अफगानिस्तान और अरब देशो मे मुसलमान मुसलमान से लड रहा है। तो अब इस ओर क्यो नही ध्यान देते कि मनुष्य की मूल प्रव त्ति लडने की क्यो है? इन सब लडाइयो के पीछे आर्थिक व सामाजिक कारण है। एक वर्ग दूसरे वर्ग को दबाता है। अछूत समस्या भी यही है। मै कह सकता हूँ कि सवर्ण वर्ग डॉ अम्बेडकर को कभी भी अपना नेता नही मानेगा भले ही वह भारतीय सविधान का मनु रहे। जो दर्जा गॉधी जवाहर को मिला हुआ है वह अम्बेडकर को सवर्ण नही देगे। यह सवर्णो के अतरमन की बात है। इसकी एक वजह यह भी है कि दलित वर्गो के नेताओ ने भी सवर्णो की नकल करने की कोशिश की अपनी एक स्वतत्र पहचान गढने की चेष्टा नही की। बौद्ध धर्म स्वीकार करने से समस्या का हल नहीं हो जाता।

सवर्ण भी कम पाखडी नहीं है। राम-जन्मभूमि के बारे मे यह पाखड बार-बार उजागर हो रहा है। कौन-से राम की बात करते है? राम क्या अयोध्या मे पैदा हुआ था? सिर्फ तुलसी रामायण की बात क्यो की जाती है? राम के बारे म बाल्मीकि क्या कहते है? दक्षिण पूर्व एशिया की रामायण क्या कहती है? जैन रामायण क्या कह रही है? बौद्ध रामायण अनन्त रामायण क्या कह रही है थाईलैडवासी कहते है कि असली रामकथा तो एक यहाँ है भारतवासियो ने तो उसकी नकल की है। राम ऐतिहासिक पुरुष नही है पौराणिक पुरुष है। तब इतना विवाद क्यो? अत आवश्यकता इस बात की है कि सामाजिक आर्थिक विसगतियो को छोडा जाए।

***जोशी*** *क्या आप कह सकते है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य ने विशेष रूप से आजादी के बाद के समाज के दलित मैले कुचले वर्ग के बहुआयामी उत्पीडन और उनके आतरिक व बाह्य सघर्ष का वास्तविक रूप से प्रतिबिम्बित किया है?*

**विष्णु प्रभाकर** नही किया। इसकी एक वजह यह है कि अधिकाश लेखक सवर्ण वर्ग के है। यद्यपि इन लेखको की सहानुभूति दलित वर्गो के साथ है लेकिन वे अनुभवजन्य यथार्थ से लैस नहीं है। सवर्ण लेखक दलितो की पीडाओ से अपरिचित है। वैसे सीमित स्तर पर दलितो की बात कहने के प्रयास जरूर हुए है। मेरी हर रचना मे दलित पात्र है।

मेरा यह मानना भी है कि दलित वर्गो के सबध मे दलित ही लिख सकते हैं।

महाराष्ट्र के दलित लेखक दया पॅवार, नामदेव धसाल आदि इसकी मिसाल हैं, लेकिन हिन्दी क्षेत्र इससे रीता रहा है। वैसे तो पूरे भारत में सामंती प्रव त्तियाँ हैं। पर उत्तर भारत में ये प्रव त्तियॉ अधिक उग्र हैं। इसीलिए यहॉ शिक्षा का विस्तार कम रहा। जाहिर है, दलित अशिक्षा की चपेट में अधिक रहे हैं। वैसे अब दलितों को कोई नया नाम दिया जाना चाहिए। यह काफी कुछ घिस-पिट गया है।

जाति के साथ-माथ अन्य क्षेत्रों में भी बराबरी की आवश्यकता है। इसके लिए सबसे पहले धर्म और राजनीति के घालमेल को दूर करने की जरूरत है। दूसरी बात यह कि एकसमान आचार सहिता होनी चाहिए। सभी समुदायों के निजी कानून--विधान है। एक तरफ हिन्दू कोड बिल है, तो दूसरी तरफ शरीयत। सच पूछा जाए तो शाहबानू केस ने मुसलमानो को कई सौ साल पीछे फेक दिया है, स्त्री-पुरुष में गैर-बराबरी की खाई को और चौडा कर दिया है। मैं तो यह मानता हूँ कि पुरुष चार शादियॉ कर सकता है तो औरत भी कर सकती है। इस बराबरी के आधार पर ही सामाजिक विसंगतियो को दूर किया जा सकता है। अत समुदायो के निजी कानूनों के रहते हुए देश सही मायनो मे सैक्यूलर हो ही नहीं सकता। सरकारी समारोहो मे धार्मिक अनुष्ठान कराए जाते है। किसी भी धर्मनिरपेक्ष सरकार को नारियल फोडना, पूजा-अर्चना करना शोभा नहीं देता। इन सब विसगतियो को समाप्त करना ही क्रांति है। इसके विरुद्ध लडाई की आवश्यकता है।

*__जोशी__ : अभी आपने क्रांति की बात कही। इसी सदी मे कम्युनिस्ट क्रांति हो चुकी है, जिसमे एक नया इंसान गढने की पहल की गई। लेकिन, पूर्वी यूरोप के ताजा अनुभवो से यह यात्रा कुछ आधी-अधूरी दिखाई दे रही है। एक रचनाकार के नाते, इन घटनाओ से आपके दिलो-दिमाग पर क्या बीती?*

**विष्णु प्रभाकर** : कम्युनिस्ट क्राति निश्चित ही उपयोगी रही है। इससे काफी हद तक मनुष्य जाति का कल्याण हुआ है, समाज की तलछट की गरिमा स्थापित हुई है। मै यह नहीं मानता कि सोवियत सघ के पतन से कम्युनिस्ट दर्शन मर चुका है। जब तक धरा पर मजदूर, किसान, निर्धन, उत्पीडित रहेगे, यह दर्शन जीवित रहेगा। लेकिन, इसमे कुछ खामियॉ रही हैं। इसने मनुष्य की निजता या स्व को समाप्त कर दिया था, इसलिए इसके विरुद्ध आवाज उठी। मैं कई बार रूस तथा पूर्वी यूरोपीय देशो की यात्रा कर चुका हूँ। मैंने परिवर्तनों को धीरे-धीरे आते हुए देखा है। मनुष्य के मेरा' को सुरक्षित रखना होगा। साम्यवाद के दर्शन में इस संशोधन की आवश्यकता है।

*__जोशी__ आपका कर्म-काल काफी विस्तृत है। आपने पीढियों को उदित और विलुप्त होते देखा है; अपने समकालीनों के साथ संबधों में बदलाव आता भी देखा है।*

**इन बदलावों को आप किस रूप में रेखांकित करना चाहेंगे?**

**विष्णु प्रभाकर** : मैं अपने समकालीनो को दो काल-खण्डो मे विभाजित करता हूँ। एक स्वतंत्रता-पूर्व के समकालीन थे, और दूसरे आजादी के बाद के। 1947 से पहले के दौर में मेरे समकालीनो मे एक मिशन था, त्याग, बलिदान, स्वतत्रता-प्राप्ति और सामूहिकता उनके जीवन-मत्र थे। लेकिन 1947 के बाद, एक उल्टी धारा बह निकली। हिन्दी साहित्य मे 1947 से 57 तक का काल गत्यवरोध का काल है। अँगरेजों के विरुद्ध सघर्ष के दौरान एक स्वर्ग की कल्पना की गई थी। लेकिन, आजादी के बाद वह नही मिला। सारे जीवन-मूल्य बिखर गए। साहित्य पर इसका प्रभाव पडा। समकालीनो के साथ सबध प्रभावित हुए। हमने पुराने मूल्यों से मुक्ति तो ले ली, लेकिन नयो को जन्म नहीं दे सके, सबंधो मे एक शून्यता, भटकाव पैदा हो गया। कोई ऐसा समकालीन साहित्यकार नहीं रहा जिसमे समाज की प्रेरक शक्ति बनने की क्षमता हो। एक अजीब विडम्बना है। राजनीति से मोहभग भी हुआ, और साहित्यकार इसके पीछे दौडते भी रहे। मैथिलीशरण गुप्त राज्यसभा के सदस्य बन गए। गुप्तजी मे राजनीतिज्ञो को प्रभावित करने की शक्ति नहीं थी। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जरूर अपवाद रहे, उन्होने साहित्य और राजनीति दोनो को समान रूप से प्रभावित किया। मै किसी की निन्दा नही करता। लेकिन, साहित्यकार का सबसे बडा दुश्मन साहित्यकार है। आज तक हम लेखको की कोई सहकारी समिति नही बना सके। राजकुमार सैनी, असगर वजाहत आदि ने बहुत कोशिश की। व्यक्तिवाद बहुत हावी हो चुका है। पहले भी था। हम हिन्दी लेखक परस्पर निन्दा मे उलझे रहते है। दिनकर, गुप्तजी की निन्दा किया करते थे। मैथिलीशरणजी, जयशकर प्रसादजी को पसंद नहीं करते थे। पत और निराला मे हमेशा खटकी। महादेवीजी लेखको की सोसायटी बनाना चाहती थी, नैनीताल मे लेखको के लिए कॉटेज बनाना चाहती थी। लेकिन उनके प्रयास धरे के धरे रह गए। सच्चाई यह है कि एक लेखक दूसरे लेखक को सहन ही नहीं कर सकता। इतना जरूर है कि नए लेखको मे पुरानो से ज्यादा सकीर्णता गुटबाजी और अहम् है। कॉफी-हाउस मे अक्सर इसका अनुभव होता रहता है।

देखिए, मै कोई बहुत बडा राइटर नही हूँ। मै अपनी हैसियत जानता हूँ। लेकिन क्या आप किसी लेखक का यह कहना पसद करेंगे कि जिस सकलन मे विष्णु प्रभाकर का लेख है, उसमे वह अपना योगदान नहीं देगा? एक महान कवि ने अपनी रचना देने से इसलिए इंकार कर दिया क्योकि मेरी रचना भी उस पुस्तक मे छप रही थी। साहित्यकारो का आरोप है कि मेरे साहित्य मे द्वद्व नही है, सब कुछ सीधा-सपाट है, इसलिए मै बडा साहित्यकार नही हो सकता। यानी विष्णु

*प्रभाकर को महान नहीं कहा जा सकता। अब इसके लिए मैं क्या करूँ? यह चीज मुझे बहुत दु:ख देती है।*

***जोशी** : जीवन के इस पहर को किस ढंग से जीना चाहेंगे?*

**विष्णु प्रभाकर** : निरतर लिखते हुए। मैंने कुछ लेखन की योजना बनाई है। नारी-प्रधान थीमें हैं। कुन्ती को नायिका बनाकर लिखने की सोच रहा हूँ। गोवा की एक सच्ची घटना पर आधारित एक लघु उपन्यास लिखने की योजना भी है। *अर्धनारीश्वर* प्रेस में है। स्व पत्नी की स्म ति में भी कुछ लिखना चाहता हूँ। संस्कृत के नाटक *म च्छकटिकम्* को आधार बनाकर एक नाटक लिखना चाहता हूँ। लेकिन कैनवास बहुत बडा है। काफी समय चाहिए। जीवित रहा तो निश्चित ही लिखूँगा।

***जोशी** : पिछले कुछ महीनों से राजेन्द्र यादव की लीडरशिप में हंस ने हिन्दू-उर्दू लेखकों के आत्म-तर्पण का अभियान चलाया हुआ है। उम्र के इस मोड पर आप इसमें किस तरह से शामिल होना चाहेंगे?*

**विष्णु प्रभाकर** : देखिए, मै आत्म-तर्पण जैसी चीज पहले लिख चुका हूँ। *सारिका* में एक स्तम्भ शुरू हुआ था, तब मैंने लिखा था– 'प्रभाकर अपनी नजर में'। तब मैंने लिखा था कि कॉफी-हाउस मे बैठे लोग प्रभाकर की चर्चा कर रहे हैं। एक भला आदमी था, मर गया। अच्छा हुआ मर गया, भले आदमी का साहित्य में क्या काम? साहित्य में तो द्वंद्व वाले जीवित रहने चाहिए। इस तरह की बातें लिखीं। आत्म-तर्पण लिखने के लिए मुझसे कहा गया था। मैं सोचता रहा कि क्या लिखूँ? आत्म-तर्पण एक तरह की आत्मश्लाघा ही है। आत्मनिन्दा का दूसरा अर्थ आत्मश्लाघा है। तो मैं सोच रहा हूँ कि कैसे लिखूँ इसको? कोई आदमी अपने बारे में सच नहीं बोलता। यहाँ तक कि दूसरो के संस्मरण भी हम ईमानदारी से नहीं लिख सकते। यदि लिखते है तो मित्र नाराज हो जाते हैं। मेरा यह अनुभव है।

***जोशी** : तब इसका यह अर्थ लिया जाए कि आत्म-तर्पण एक तरह का आत्म-पाखण्ड है?*

**विष्णु प्रभाकर** : आपने सही शब्द का प्रयोग किया है, आत्म-तर्पण का दूसरा नाम है आत्म-पाखंड।

**28 जून, 1992**

# देखी जमाने की यारी

ससद का गलियारा। एक आकृति अपने मे डूबी, अपने मे सिमटी, चली जा रही है। गलियारो की दीवारो मे शोभायमान तैलचित्र उसका ध्यान भग नहीं करते। वह अध्यक्ष, प्रधानमंत्री के कक्षो के सामने से गुजरती है। पुस्तकालय के गलियारे मे मुडती है। इधर-उधर नजर उठाती है। फिर केंद्रीय कक्ष (सेंट्रल हॉल) की ओर मुडती है। किसी एक कोने मे सिमटकर बैठ जाती है। नए-पुराने नेता आते-जाते रहते है। कोई उसकी उपस्थिति का नोटिस लेता है, कोई बेखबर गुजर जाता है। कभी उसके चेहरे पर उत्साह चमकता है, कभी वह बुझेपन मे समा जाता है। यह आकृति कोई और नहीं, श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा हैं।

एक झटके से फ्लैशबैक दौड़ता है। कोई 1962-63 का किस्सा होगा। तब तारकेश्वरीजी अशोक रोड के आसपास रहती थी। एक शाम उनके निवास पर काव्य-सध्या का आयोजन किया गया। महादेवी वर्मा सहित हिन्दी के शिखर-कवि काव्य-सध्या मे उपस्थित थे। प्रधानमत्री प जवाहरलाल नेहरू भी पहुँचे हुए थे। तारकेश्वरीजी अस्वस्थ थीं। शायद उन्हे किसी दुर्घटना मे चोट लग गई थी, इसलिए वे पलग से उतर नही सकीं। पडितजी ने पहले उन्हे देखा, इसके बाद वे कवियो के बीच पहुँच गए। कवियो ने उनसे बहुत आग्रह किया कि वे कुछ बोले। पडितजी ने सिर्फ एक वाक्य बोला—तारकेश्वरीजी को देखने आया था। आप लोगो से भी मुलाकात हो गई। आज मेरी छोटी बहन (महादेवीजी) का दिन है। वे जोरो पर है। इसलिए क्या बोलूँ! बस इतना कहकर चुप हो गए। तारकेश्वरीजी उस समय नेहरू सरकार की एक सदस्या थीं। क्या वक्त था उनका! चारो तरफ उनके चर्चे ही चर्चे थे। नेहरू मत्रिमडल का उन्हे आकर्षण-बिन्दु माना जाता था। मानो बिहार का सम्पूर्ण नूर नेहरू सरकार

पर उतर आया हो।

तारकेश्वरीजी के क्या जलवे थे! प्रधानमत्री इंदिरा गाधी से भिड पडीं तो भिड पडीं। कांग्रेस-विभाजन के समय उन्होने बगरप्पा का साथ दिया, सत्तापक्ष को दुत्कार दिया। हर जगह वे छाई रहीं। शेरो-शायरी मे लिपटी उनकी भाषण शैली, उनकी तीखी-तर्रार, लेकिन मादक आवाज सुनने के लिए ससद के अन्दर व बाहर लोग उमड पडते थे। पर आह! आज फ्लैश बैक टूटता है सत्ता के इस विशाल गोलाकार केद्रीय कक्ष मे तारकेश्वरीजी एक खोई हुई आकृति, एक अपरिचिता-सी दिखाई दे रही हैं। केद्रीय कक्ष की बैंचों मे धँसे नई फसल के सासद क्या जाने, यह भव्य गुम्बद, ये मदाध गलियारे कभी इस अपरिचिता से बावस्ता रह चुके है। यह कहानी अकेली तारकेश्वरीजी की ही नही है, इस केद्रीय कक्ष मे यह कहानी अनेको की है। इसने कइयो को बुलदी पर छलाँग लगाते देखा है और पलक झपकते लुढकते भी देखा है। बैचो पर कई ऐसे चेहरे मिल जाएँगे जो अकेले, गुमसुम और यादो मे डूबे दिखाई देगे। कल उनके इर्द-गिर्द पूरा ससार झिलमिलाता था। ससद के दरवाजे पर सैल्यूट बजाया जाता था। सूर्योदय व सूर्यास्त को इच-टेप से नापने मे माहिर इचटेपी पत्रकार उन्हे घेरे रहते थे "सर! आज आपका क्या रिएक्शन है, आपने बहुत दिनो से कुछ बोला नहीं, आज कोई कॉपी मिलनी चाहिए आपसे सदन मे कैसी खिचाई की थी आपने, बस! मजा आ गया आपने बहुत दिनो से कोई प्रेस कान्फ्रेस नही की, आज हो जाए, इस बहाने कुछ गपशप हो जाएगी " और न जाने ऐसे कितने सवाल उनके कानो को गुदगुदाते रहते थे। आज किसी एक कोने मे दुबके ऐसे चेहरे अकेले चुपके-चुपके चाय की चुस्कियो और यादो की हिचकियो के साथ इस इतजार मे दिन गुजार देते है- कि कोई पास आकर उनकी प्रतिक्रिया पूछे सर! उदारीकरण के सबध मे आपका क्या कहना है? देश मे बढती साप्रदायिकता व जातिवाद के सबध मे आपकी क्या प्रतिक्रिया है? क्या भारत की वर्तमान विदेश नीति आत्मघाती नहीं है? क्या भारत-पाक जग सभव है? आज देश मे किसकी हुकूमत चल रही है–शेषन की या राव की? पर कोई सवाल उन तक नहीं पहुँचता। ऐसे चेहरे खरामा-खरामा सेन्ट्रल हॉल और गलियारो से गुजरते हुए ससद से बाहर निकल जाते है। ससद के बाहर अब वाहनो के धुएँ मे ये चेहरे खोने लगते हैं तब एक गीत कानो पर दस्तक देने लगता है–

*देखी जमाने की यारी, बिछडे सभी बारी-बारी।*

राजनीति की दुनिया भी, फिल्मी दुनिया से कम नही है। फिल्मी सितारो की तरह राजनीति के भी सितारे होते है। एक परदे पर चमकता है, दूसरा जनता के बीच। दोनो की जिन्दगी तकरीबन समान है। कल जो 'हीरो' होता है, आज

वह जीरो हो जाता है। कल जो नेता या नायक कहलाता था, आज उसे चरित्र अभिनेता या सहायक नेता का भी रोल नहीं मिलता। कभी तो ऐसा भी होता है कि एक ही रात मे वह नायक से खलनायक बनकर रह जाता है। जनता उसे रद्दी की टोकरी के हवाले कर देती है। फिल्म की तरह जब बॉक्स ऑफिस पर राजनीति हिट नहीं होती है तो नेता पष्ठभूमि मे गुम हो जाता है। वह इस उम्मीद मे जीने लगता है कि एक बार फिर उसकी राजनीतिक फिल्म जुबली, सिल्वर जुबली गोल्डन जुबली मनाएगी, वह मुख्यमत्री, कैबिनेट मत्री और प्रधानमत्री बनेगा। वैसे फिल्मी कलाकारो की तुलना मे राजनीतिक प्राणियो की जिजीविषा बला की होती है। राख की ढेरी मे दबा नेता कब शिखर पर दिखाई दे, यह ईश्वर ही जानता है। इस सिलसिले मे एक घटना याद आ रही है। 1992 के मध्य का किस्सा होगा। माखनलाल फोतेदार तब राव मत्रिमडल मे स्वास्थ्य मत्री हुआ करते थे। अपने दफ्तर मे एक दोपहर मुलाकात मे इस लेखक से कहने लगे– जोशी! भाग्य बडी चीज है। किसी ने सच ही कहा है कि देवता भी इसे नहीं पढ सकते।" 'फोतेदारजी कुछ खुलासा कहिए। कुछ समझ मे नहीं आ रहा है।" मैने पूछा। तब वे धीरे-धीरे खुलने लगे। उन्होने कहा कि मैं भारत की ताजा राजनीति मे तीन नेताओ को भाग्यशाली मानता हूँ। ये तीन व्यक्ति है–वी पी सिंह, चन्द्रशेखर और नरसिहराव। किसी ने कल्पना भी नहीं की थी कि इनमे से कोई प्रधानमत्री बन जाएगा। राजनीति के इतिहास मे चन्द्रशेखर तो बिल्कुल चमत्कार है केवल 50-55 सासदो के बल पर प्रधानमत्री बन बैठे। राव साहब को राज्यसभा का टिकट नहीं मिला था। वे अपना बोरिया-बिस्तर बॉधकर हैदराबाद लौटने की तैयारी कर रहे थे। भाग्य देखिए देश के मालिक बन बैठे। तीनो ही लगभग नेपथ्य मे चले गए थे। लेकिन रातो-रात मच के नायक बन बैठे। इसे कहते है भाग्य। मै तो इसके बाद से भाग्य मे विश्वास करने लगा हूँ। यह कहकर उन्होने बडी महीन मुस्कान चमका दी।

मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमत्री श्यामाचरण शुक्ल पर भी भाग्य की कृपा-वर्षा खूब हो चुकी है। दस वर्ष तक वे प्रदेश की राजनीति मे हाशिए पर रहे। इदिरा गॉधी और राजीव गॉधी की कृपादष्टि उन पर कभी होगी इसी आशा से वे दिल्ली-रायपुर के बीच झूलते रहे। दिल्ली की राजनयिक बस्ती चाणक्यपुरी स्थित अपने मालछा मार्ग निवास से वे कूटनीति करते रहे। लेकिन प्रधानमत्री निवास की कृपा उन पर कभी नहीं हुई। वे मुख्यमत्री तभी बने जब राजीव गॉधी चुनाव हार गए और उन्हे प्रधानमत्री निवास छोडकर 10-जनपथ जाना पडा। करीब डेढ दशक के बाद जब श्यामाचरणजी मुख्यमत्री बने तब इस घटना को किसी चमत्कार से कम नहीं माना गया था। कोई कल्पना भी नही कर सकता था कि वे तिबारा मुख्यमत्री बनेगे, प्रदेश के मेटनी हीरो के रूप मे दर्ज शुक्लजी एक बार पुन

राजनीति पर चमकेगे। पर परिस्थितियो ने यह चमत्कार कर दिखाया। यह बात अलग है कि दुर्भाग्य ने उन्हे फिर दबोच लिया। उनका पिछला कार्यकाल चन्द महीनो का रहा। इस दफे भी वे मुख्यमत्री नहीं बन सके। लेकिन उनकी आस अभी टूटी नहीं है। वे जीवन के इस पडाव पर एक बार फिर सूबे की कमान थामने की उम्मीद मे दिल्ली-भोपाल-रायपुर के बीच झूलते रहते है। चद्रशेखर के करीबी लोगो का कहना है कि पूर्व प्रधानमत्री का राजयोग भी अधूरा रहा है। वे एक बार फिर से राष्ट्र की राजनीति के नायक बनेगे और साउथ ब्लॉक (प्रधानमत्री सचिवालय) पहुँचेगे।

दिल्ली मे सियासत की फिल्म इसी तरह चढती-उतरती रहती है। दिल्ली को कोई नेता अपना परमानेट डेरा नहीं बना पाता है जब तक उसकी फिल्म चलती है वह अपना पडाव डाले रखता है। दिल्ली के मिजाज पर काबीना मत्री अर्जुनसिह की टिप्पणी सटीक है। वे कहते है "दिल्ली कब किसकी हुई है? यह तो सिर्फ पडाव है। जिसने इससे लौ लगाई, समझो उसने मुसीबत मोल ली।' परदे से वह कब उतर जाए इसकी खबर किसी को नहीं। जब फिल्म उतर जाती है या उतार दी जाती है तो दिल्ली से उसका बोरिया-बिस्तर बॅधना शुरू हो जाता है। ऐसे कितने ही नेता है जो दिल्ली के कोनो मे पडे जी रहे है या अपने-अपने ग ह-राज्यो मे गुमनाम जिन्दगी जी रहे है। इसकी एक लम्बी फेहरिस्त है।

छठे-सातवे दशक के युवा तुर्क नेताओ मे चद्रशेखर ही एक बचे है जिनकी फिल्म पिटती पिटती अभी तक चल रही है। दर्शको मे उनकी मॉग अभी तक बनी हुई है। दिलीप कुमार देवानद जैसे अभिनेताओ के चाहनेवालो की कमी कहॉ हुई है? दीदार गगा-जमुना मुगले-आजम टैक्सी ड्राइवर गाइड के दीवाने कम नहीं है। जब भी देश मे सकट दिखाई देता है लोगो की निगाहे चद्रशेखर पर बरबस लग जाती है। यह बात अलग है कि कभी वे भारतीय राजनीति के लगभग केद्र बिन्दु हुआ करते थे। लेकिन उनके दूसरे सहपात्र मोहन धारिया चद्रकात की भूमिकाएँ समाप्त हो चुकी है। चद्रकात आध्रप्रदेश के राजभवन तक सीमित हो चुके है और धारिया महाराष्ट्र मे खो चुके है। इदिरा युग के देवकात बरुआ नदिनी सत्पथी बसीलाल भगवत झा आजाद शशिभूषण निजलिगप्पा बी पी मौर्य होमी दाजी सुभद्रा जोशी जैसे नेता राजनीतिक फलक से तकरीबन गायब हो चुके है। इदिरा युग मे इन नेताओ का अपना-अपना पभामडल हुआ करता था। इनमे से अनेक इदिरा गॉधी के उपग्रह थे। कई स्वतत्र ग्रह भी थे लेकिन उनका अस्तित्व इंदिरा-विरोध पर टिका हुआ था। इंदिराजी के निधन के बाद ऐसे नेताओ की स्वत राजनीतिक मौत भी हो गई।

इदिरा गॉधी के कट्टर समर्थको मे देवकात बरुआ को कौन भुला सकता है। ये

वही नेता हैं, जिन्होंने आपातकाल के दौरान दिल्ली के बोट क्लब मैदान में आयोजित एक सार्वजनिक सभा में 'इंडिया इज इंदिरा, इंदिरा इज इंडिया' जैसे नारे का आविष्कार किया था। इसके लिए उन्हें इंदिरा दरबार का विदूषक भी कहा गया। इंदिरा कांग्रेस के अध्यक्ष पद को सुशोभित करनेवाले इस विद्वान नेता का कोई नामलेवा नहीं बचा। कांग्रेस के अध्यक्षों की सूची में इनका नाम जरूर शामिल है। लेकिन किसी भी महत्वपूर्ण अवसर पर इनकी उपस्थिति दर्ज नहीं होती। नंदिनी सत्पथी का सितारा भी डूब चुका है। उड़ीसा की यह नेता कभी इदिराजी की आँख की पुतली हुआ करती थी। इंदिरा-मंत्रिमंडल में प्रधानमंत्री के बाद इन्हें सबसे ज्यादा शक्तिशाली मंत्री माना जाता था। काबीना मंत्री से भी इनकी हैसियत ज्यादा थी जबकि थीं केवल राज्यमंत्री। 1971 के भारत-पाक युद्ध के दौरान इनकी तूती बजती थी। इंदिराजी के साथ साये की तरह लगी रहतीं। इन्हें वामपंथी रुझान की नेता कहा जाता था। उड़ीसा की मुख्यमंत्री भी बनी। पूरे उडीसा पर छाई रहीं। विवादास्पद भी रहीं। लेकिन, पिछले एक दशक से गुमनाम जिन्दगी जी रही हैं। शायद आत्मकथा लिख रही हों। पर वे दिल्ली के लिए बेगानी हो चुकी हैं। दिल्लीवाले उन्हें भूल चुके हैं। यही दशा डॉ.सरोजिनी महिषी, डॉ. राजेन्द्रकुमारी वाजपेयी जैसी नेताओ की है। अलबत्ता, ये दोनों दिल्ली मे जुगनू की तरह दिखाई दे जाती हैं। कमेटियों-वमेटियों में इन्होंने अपनी घुसपैठ बना रखी है, पर सत्ता-मंडल से दूर हो चुकी हैं। अब सौभाग्य का कोई झोंका ही इन्हें सत्ता-ग्रहों के पास पहुँचा सकता है। सुभद्राजी की भूमिका भी समाप्त हो चुकी है। इंदिरा गाँधी की प्रथम पारी में ये चमकीं तो खूब चमकीं। तत्कालीन जनसंघ के खिलाफ इनकी मोर्चाबंदी देशविख्यात है। इंदिराजी ने भी इन्हें जमकर आसमान पर चढ़ाया। अटलबिहारी वाजपेयी जैसे रुस्तम को इन्होंने बलरामपुर सीट से हराया। लेकिन आपातकाल में इनकी संजय गाँधी से नहीं पटी, सो इंदिरा गाँधी की नजर से उतर गई। अंत तक दोनों में मतभेद बने रहे। आज सुभद्रा जोशी दिल्ली के एक कोने में खामोश जिन्दगी जी रही हैं, कभी-कभी सांप्रदायिकता के खिलाफ आवाज जरूर बुलंद कर देती हैं।

सुभद्राजी की समकालीन श्रीमती अरुणा आसफ अली भी अस्ताचल की ओर हैं। दिल्ली के वी.आई.पी क्षेत्र में स्थित विट्ठलभाई पटेल भवन में वे जीवन-क्षितिज के उस पार जाने की प्रतीक्षा में जीवित है। कभी वे दिल्ली की 'शान' हुआ करती थीं। वह जमाना था जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आजाद जैसे महारथियों का। वे दिल्ली की मेयर रहीं। उन्होंने *पेट्रियट*, *लिंक* जैसे प्रकाशन निकाले। इंदिराजी के प्रथम काल तक सत्ता प्रतिष्ठान में उनकी तूती बजती थी। प्रधानमंत्री से लेकर मुख्यमंत्री तथा विपक्ष के नेता तक उनके साथ परामर्श किया करते थे। उनके द्वारा स्थापित 'लिंक हाउस' का क्या जमाना था! वामपंथी

बुद्धिजीवियों व पत्रकारों का यह मक्का-मदीना माना जाता था। जनता पार्टी के शासनकाल में भी इनका दबदबा रहा। अनेक पुरस्कारों से इन्हें सम्मानित किया जा चुका है। एक प्रकार से अरुणाजी को पुरस्कार प्रदान कर सरकार और संस्थाएँ स्वयं को पुरस्कृत अनुभव करती रही हैं। आज वे अतीत-स्मृतियों में समाती जा रही हैं। नेताओ की भीड उनके इर्द-गिर्द नहीं रहती। वे भी पसंद नहीं करतीं। उनके *लिंक* के साथी उनसे बिछुड चुके है। कुछ ने उन्हें दगा दिया, कुछ ने उनका साथ छोड दिया, और कुछ ने दूसरी राह पकड ली। पर आज भी अरुणाजी को एक 'जीवित लीजेण्ड' कहा जाता है।

प्रकाशचंद्र सेठी, बंसीलाल, निजलिगप्पा जैसे नेताओ को दिल्ली ने भुला दिया है। क्या जमाना हुआ करता था इन नेताओ का ! निजलिंगप्पा बनाम इंदिरा द्वद्व आज भी दिल्लीवालों को याद है। 1969 मे सगठन कांग्रेस और नई कांग्रेस की जग से दिल्ली का सत्ता-प्रतिष्ठान हिल उठा था। निजलिगप्पा, अतुल्य घोष, एस के पाटिल, चह्वाण, संजीव रेड्डी, मोरारजी देसाई, कामराज, तारकेश्वरी सिन्हा जैसे नाम अखबारी सुर्खियों मे छाए रहते थे। एक तरफ निजलिंगप्पा थे, दूसरी तरफ इंदिरा गाँधी। यह अलग बात है कि जीत इदिराजी की हुई। इसके साथ ही निजलिगप्पा के पतन की प्रक्रिया भी शुरू हो गई। अब वे कर्नाटक के किसी कोने में चैन की साँसे ले रहे है। उनके समकालीन एक-एक करके ब्रह्म मे विलीन होते जा रहे है। उनके ही एक सहयात्री योद्धा मोरारजी देसाई भी दिल्ली की स्मृतियों मे समा चुके हैं। कौन भुला सकता है मोरारजी भाई की हठधर्मिता को। एक बार ठान ली तो वे इदिराजी के सामने कभी नहीं झुके। उनका नेतृत्व स्वीकार किया तो तहेदिल से किया, लेकिन सिद्धात की बात उठी तो प्रधानमत्री का निर्णायक विरोध भी किया। बैंको के राष्ट्रीयकरण की बात उन्होंने कभी स्वीकार नहीं की। किसी वक्त में राष्ट्र की राजनीति की धुरी रहनेवाले पूर्व-प्रधानमत्री मोरारजी भाई आज बंबई के किसी फ्लैट में बिस्तर पर पडे हुए हैं। पूर्व-प्रधानमत्री चंद्रशेखर उन्हें याद करना कभी नहीं भूलते।

इंदिरा शासन के नक्षत्र बसीलाल और प्रकाशचद्र सेठी भी अब इतिहास बन चुके हैं। बसीलाल दिल्ली के एक कोने में बरबस राजनीतिक वैराग्य का जीवन काट रहे हैं, और प्रकाशचंद सेठी उज्जैन व इंदौर के बीच झूलते रहते हैं। दोनों का कोई नोटिस नहीं लेता। दिल्ली के बडे-बडे नेता इन शहरों की यात्रा करते हैं, लेकिन कई बार सेठीजी से मिलना जरूरी नहीं समझते। एक यात्रा मे यह लेखक प्रणव मुखर्जी के साथ उज्जैन गया हुआ था। उन्हें बताया भी गया कि सेठीजी नगर में ही हैं और अस्वस्थ हैं। लेकिन उन्होंने उनसे मिलने की चिन्ता नहीं दिखाई। प्रणवजी के लिए सेठीजी एक ऐसे हीरो लग रहे थे, जिसकी फिल्म हमेशा के लिए डिब्बे में बंद हो चुकी है।

कोई डिस्ट्रीब्यूटर उसे दुबारा परदे पर लाने के लिए तैयार नहीं है। पिछले वर्ष सेठीजी ने दिल्ली आकर प्रधानमंत्री राव से मुलाकात भी की थी। उन्होंने राव साहब से यह भी कहा था कि "मैं स्वस्थ हूँ। मैं आपको चल-फिरकर दिखा सकता हूँ। मेरे बारे में अस्वस्थता की अफवाहें फैलाई जा रही हैं।" उनकी यह स्वैच्छिक सफाई भी किसी काम नहीं आई।

दिल्ली की नजर से वे उतर चुके हैं। वही हाल बंसीलाल का है। दोनों ही नेता समकालीन हैं। बंसीलालजी भी दिल्ली-हरियाणा के बीच अपना वक्त नापते रहते हैं। इनकी हरियाणा विकास पार्टी पिट चुकी है। मुख्यमंत्री भजनलाल ने इसके विधायको को फोड लिया है। बंसीलालजी के हाथों से कबूतर उड़ चुके हैं। ये दोनों ही नेता इंदिराजी के लाडले रह चुके हैं।

बंसीलाल को आधुनिक हरियाणा का सूत्रधार कहा जाता है। क्या दबदबा था जब वे मुख्यमंत्री थे। देखते ही देखते इन्होंने हरियाणा को देश के अग्रणी सूबों के नक्शे मे खडा कर दिया था। कृत्रिम पर्यटन स्थलों का राज्यभर में जाल बिछवा दिया था। प्रधानमत्री इस जाट नेता के करिश्माई नेतृत्व पर लट्टू थीं, जिसने गुडगॉव के पास मारुति उद्योग के लिए पुत्र सजय गाँधी को जमीन देकर मॉ-प्रधानमत्री- इंदिरा गॉधी को अपनी मुट्ठी में बंद कर लिया था। आपातकाल में बंसीलाल ने रक्षामंत्री के रूप में जमकर जलवे दिखाए। फौजियों को अनाप-शनाप हुक्म देते रहे। विवादों से भी घिरे रहे। इंदिरा गॉधी के दूसरे काल में रेलमंत्री रहे। बस! इसके साथ ही उनके पतन का सिलसिला भी शुरू हो गया। राजीव काल में वे सत्ता-मंडल से बहुत दूर जा चुके थे। इसकी वजह एक ही रही कि उनमें जाट-मेरुदंड साबुत था। राजीवजी के दरबार में वे कभी हाजिर नहीं हुए। तभी से वे एक छिटके तारे में बदल गए। अब उनके दिन फिरेंगे, इसकी दूर-दूर तक संभावना नहीं है।

सेठीजी की नियति भी इससे भिन्न हो सकती है, ऐसा नहीं लगता। सेठीजी का पीछा सत्ता छोड सकती है, यादें नहीं। वे यह कैसे भूल सकते हैं कि कभी उनका निवास प्रधानमत्री के बगल में हुआ करता था। 1980 में जब इंदिरा गॉधी दूसरी बार प्रधानमंत्री बनी थीं, तब उनका पहला रात्रिभोज सेठीजी के घर पर आयोजित किया गया था। तब वे फूले नहीं समा रहे थे। कई मंत्रालयों को उन्होंने सुशोभित किया। इंदिराजी का अटूट विश्वास उन्होंने प्राप्त किया। लेकिन राजीव-शासन की शुरूआत के साथ ही उनका सत्ता-वनवासकाल शुरू हो गया। अब इसका अंत होने की कोई सभावना नहीं है।

राजनीति का बाजार संवेदनहीन होता है। यह सत्तापक्ष एवं विपक्ष का भेदभाव नहीं करता। बलराज मधोक को देखिए। जनसंघ के शीर्षस्थ नेता हुआ करते

थे। आज जो स्थिति लालकिशनचॉद अडवाणी की है, किसी जमाने मे प्रो मधोक की हुआ करती थी। मधोक को सुनने और देखने के लिए भीड उमड पडती थी, इनके बारे मे कालम के कालम रँगे हुए होते थे। इन्होने भारतीयकरण का नारा उछालकर राष्ट्र को चौका दिया था। पर आज इन्हे ससद के गलियारो में अपने मे डूबे हुए जाते देखा जा सकता है। कोई इनकी तरफ नही देखता। इन्होने तत्कालीन जनसघ को जीवित रखने की कितनी कोशिश की पर यह 'नॉन स्टार्टर' निकली। वैसे इनके समकालीन अटलबिहारी आज भी राजनीति के आकाश मे चमक रहे है। मधोक की अगली पीढ़ी के नेता मदनलाल खुराना, विजयकुमार मल्होत्रा आदि दिल्ली मे छाए हुए है।

विपक्षी नेताओ मे मधु दडवते, सुरेन्द्र मोहन यशवत सिन्हा, अरुण नेहरू मोहम्मद आरिफ खॉ, देवीलाल, ओमप्रकाश चोटाला, रामधन, चिमनभाई मेहता, सतपाल मलिक जैसे नेता भी सत्ता के आकाश मे लुप्त दिखाई दे रहे है। इनके निवासो के लॉनो मे सूनापन बिखरा रहता है। अरुण नेहरू और आरिफ खॉ तो बिल्कुल ही खामोशी मे खो गए हैं।

यशवत सिन्हा को उम्मीद थी कि भाजपा मे शामिल होने क बाद वे चमकने लगेगे। लेकिन किस्मत ने दगा दे दिया है। भाजपा ने उन्हे राज्यसभा का टिकट भी नही दिया। अब वे सदन के अदर जा भी नही सकते। यदि यही हाल रहा तो वे भी अतीत बन सकते है। इस मामले मे जयपाल रेड्डी प्रासगिक बने हुए है। जब-तब वे सटीक टिप्पणियॉ करते रहते है। मधु दडवते भी ससद के गलियारे मे अपने विश्लेषणो से चमकते रहते है। लेकिन प्रेस के लिए दडवतेजी अब कोई 'कॉपी' (गरमागरम खबर) देने लायक नही रहे।

व्यावहारिक राजनीतिक दृष्टि से मधु लिमये और सुरेन्द्र मोहन की हैसियत जरूर लुप्त हो गई है। वैसे ये दोनो कभी सत्ता-कक्ष मे रहे भी नही। एक प्रकार से दोनो को सत्ता से हमेशा 'एलर्जी' रही है। लेकिन सत्ता प्रतिष्ठान इनके इर्द-गिर्द घूमता रहा है। जमाना इदिरा गॉधी का रहा हो या देसाई का या चरणसिह का मधुजी चर्चा मे हमेशा रहे है। लोकसभा मे तो मधुजी सत्तापक्ष को छकाते रहे हैं। सुरेन्द्र मोहनजी की सादगी हमेशा आकर्षण का केद्र रही है। दोनो प्रेस चितेरे रहे हैं। आज भी जब मधुजी ससद के गलियारे और केद्रीय कक्ष मे पहुँच जाते हैं तो नेता एव पत्रकार दोनो इन्हे घेर लेते है। एक त्वरित समीक्षा की मॉग होने लगती है। यही स्थिति सुरेन्द्रजी की है। मधुजी कुछ रिजर्व रहते हैं, जबकि सुरेन्द्रजी दोनो हाथ फैला देते है। ऐसे नेताओ को अपवाद कहा जा सकता है, जिन्हे वक्त हाशिये पर फेकने मे अभी तक विफल रहा है। लेकिन पत्र-पत्रिकाओ के सफो पर इनकी उपस्थिति अब ज्यादा दर्ज होती है। दोनो ही व्यक्तियो मे

बला का जीवट है। एक नई दिल्ली के निवासी हैं और दूसरे जमुना पार जा बसे है। ससद के पुस्तकालय मे दोनो को अध्ययनरत देखा जा सकता है। सुरेन्द्रजी फिल्मी मोह से बँधे नहीं है। हिन्दुस्तान के कब किस कोने मे वे जा धमकेगे, फुटपाथो पर बहस करते कितने घटे गुजार देगे, यह कहना मुश्किल है। मधुजी की सेहत इजाजत नहीं देती है इसलिए वे दिल्ली मे ही ज्यादा वक्त बिताते हैं।

जमीन की भीड मे खो जानेवाले नक्षत्रो की कमी नहीं है। जिसे राजीव-काल याद है वह अरुणसिह को नहीं भूल सकता। साउथ ब्लॉक (प्रधानमत्री सचिवालय व रक्षा मत्रालय) इनके इशारो पर नाचा करता था। त्रिमूर्ति (राजीव गॉधी, अरुणसिह और अरुण नेहरू) हिन्दुस्तान को हॉका करती थी। लेकिन बारी-बारी से ये दोनो राजीव गॉधी से बिछडते हुए चले गए। अरुणसिह को तो राजनीति से वैराग्य ही हो गया वे कुमाऊँ की पहाडियो मे जा बसे। सुनते हैं, अब उनका मन वादियो से भी उचट गया है। अलबत्ता उनके समकालीन सतीश शर्मा और मणिशकर अय्यर राजनीति मे पूरे जोश के साथ जमे हुए है। कहते है अरुणसिह के लिए सियासत मे आना एक दुर्घटना थी, जिसका दर्द वे ज्यादा समय तक बर्दाश्त नही कर सके। वे गुमनाम जिन्दगी की नियति से बच नहीं सकते थे। इसी दौर के एक पात्र और थ, ये छोटे-मोटे नायक भी रहे और बडे खलनायक भी। दोहरी भूमिका निभाने के लिए चर्चित ये पात्र है- सजयसिह सजय गॉधी के बाऍं हाथ। 1980 मे सजयसिह ने उत्तरप्रदेश के मुख्यमत्री पद पर अपना दावा ठोककर देश को चौका दिया था। मोदी हत्याकाड और अमिता प्रेमप्रसग मे इनका नाम खूब उछला। चुनाव मे गोली से घायल भी हुए। लदन मे इलाज कराया। वी पी सिह की सरकार मे मत्री बने। अब खामोशी के साथ चैन की जिन्दगी गुजार रहे है।

ऐसे ही एक अन्य पात्र है अकबर अहमद उर्फ डम्पी। इन साहब ने भी उत्तरप्रदेश की सियासत मे तूफान मचा रखा था। सजय-सस्कृति के धाकड प्रतिनिधि के रूप मे इन्हे देखा जाता था। सजय गॉधी की अकालमृत्यु के बाद ये सजय मच मे सक्रिय हो गए इदिरा गॉधी से टक्कर लेने लगे। राजीव गॉधी न इन्हे कभी मुँह नहीं लगाया। मेनका गॉधी का झडा जरूर थामे रखा इन्होने पर वह भी इन्हे कहीं पहुँचा नही सका। उत्तरप्रदेश की सियासत बदल चुकी है। नए समीकरण उभर चुके है। मेनका गॉधी कहीं है नहीं। सोनिया गॉधी इन्हे तरजीह नहीं देतीं। लिहाजा डम्पी उखडे-उखडे घूम रहे है।

मेनका गॉधी की दुनिया भी इससे बेहतर नही है। जब मेनका गाँधी उठी थी, ऑंधी बनकर उठी थी अपनी सास प्रधानमत्री इदिरा गॉधी से बगावत की, लखनऊ मे सजय मच की घोषणा की। मेनका ने इदिराजी से जमकर टक्कर

ली। उन्हें आधी रात में अपने स्व. पति का घर यानी प्रधानमंत्री निवास छोड़ना पड़ा। राजीव गाँधी के खिलाफ अमेठी से चुनाव लड़ीं और हारीं। लेकिन मेनका ने हिम्मत नहीं हारी। जनता दल सरकार में उन्होंने पर्यावरण मंत्री बनकर दिखा दिया। विडम्बना देखिए, संसद में राजीव गाँधी विपक्ष में थे और मेनका सत्तापक्ष में। 1991 के चुनाव ने मेनका गाँधी को एक झटके के साथ हाशिए पर फेंक दिया। इस स्थिति से उभरने के लिए वे छटपटा रही हैं। सुर्खियों में बने रहने के लिए वे यदा-कदा पर्यावरण से जुडे कार्यक्रम करती रहती हैं और प्रदूषण के खिलाफ भाषण देती रहती हैं। जहाँ तक उनकी राजनीतिक हैसियत का सवाल है, उस पर एक सवालिया निशान लग चुका है। लोगो का कहना है कि राजीव गाँधी की हत्या के साथ ही मेनका के राजनीतिक जीवन की भी अकाल मृत्यु हो चुकी है। कोई चमत्कार ही उन्हे राजनीति के कक्ष में लाकर खडा कर सकता है।

हरिदेव जोशी, नारायणदत्त तिवारी, रामकृष्ण हेगडे जैसे नेता अपने-अपने राज्यो के नायक रह चुके हैं। पर आज इन्हें चरित्र-अभिनेता का भी रोल नहीं मिल पा रहा है। स्थिति के मिजाज को समझकर जोशीजी तो स्वयं ही पृष्ठभूमि में चले गए हैं। यह उनके जीवन का सबसे अच्छा फैसला है, क्योकि राजस्थान की राजनीति मे उनकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी है। नारायणदत्त तिवारी की भावी भूमिका पर प्रश्नचिह्न लग चुका है। उत्तरप्रदेश मे कांग्रेस की हालत बद से बदतर हो गई है। केंद्र मे आने के लिए लालायित तिवारीजी को राव साहब मौका नहीं दे रहे है। प्रधानमंत्री को लगता है कि यदि तिवारीजी को दिल्ली लाया गया तो वे उनके लिए खतरा बन जाएँगे। लेकिन सच्चाई यह है कि तिवारीजी के हाथो से उत्तरप्रदेश की कमान ही फिसल चुकी है। यद्यपि उनमे आज भी भीड जुटाने की क्षमता है, लेकिन उनकी नायक बनने की शक्ति चुक गई है। अब यही स्थिति अब्दुल गफूर, नाथूराम मिर्धा, माधवसिंह सोलकी, घनश्यामदास ओझा, रतुभाई आडाणी, भानुशकर ज्ञानिक, वीरेन्द्र पाटिल, ए के सेन, प्रियरंजन दासमुशी, सुरजीतसिंह बरनाला, गोविंदनारायण सिंह, श्रीमती शीला दीक्षित जैसे सूबाई नेताओं की हो चुकी है। ये नेता अपनी-अपनी भूमिका निभा चुके हैं। अब ये 'दी एंड' से मुखातिब हैं। कर्नाटक के रामकृष्ण हेगडे राष्ट्रीय स्तर के नेता बनते-बनते रह गए। कभी उन्हें राजीव गाँधी के उत्तराधिकारी के रूप में देखा जाने लगा था। लेकिन जनता पार्टी के तत्कालीन अध्यक्ष चन्द्रशेखर और उनके बीच ठन गई। अध्यक्षजी यह कैसे सहन कर सकते थे कि उनके होते हुए किसी को भावी प्रधानमंत्री के रूप में देखा जाने लगे। कर्नाटक में ही असंतुष्टों द्वारा हेगडे की टाँग खींची जाने लगी। कांड पर कांड बेपर्द होने लगे। भूमिकाड और टेलीफोन टेपिंग काड ने हेगडे को हिलाकर रख दिया। उनकी

साख सूखे पत्तों की तरह झरने लगी। राष्ट्रीय फलक से गिरकर अब वे सूबाई फलक में सिमटकर रह गए हैं। आगामी चुनावों में एक बार फिर उन्हें मुख्यमंत्री की कुर्सी मिल जाए, यह उनका ख्वाब रह गया है। देखिए, तकदीर क्या फैसला देती है।

अतीत के इन झिलमिलाते पात्रो की यादों पर विराम भी एक खूबसूरत चेहरे के साथ किया जाए। 4 फरवरी का किस्सा है। जयपुर में एक स्वर्ण जयंती समारोह का अवसर था। मुख्य अतिथि राष्ट्रपति डॉ शंकरदयाल शर्मा के साथ श्रीमती गायत्री देवी उपस्थित थी। मुख्यमंत्री भैरोंसिंह शेखावत ने अपने भाषण में रूप-पारखी की अदा से कह डाला, "महाराणी साहिबा, आपकी सुंदरता की तो विश्व भर मे चर्चा रही है " इतना कहना था कि समारोह स्थल में तालियाँ पिट गई। राष्ट्रपतिजी ने जोर का ठहाका लगाया। गायत्री देवी मुख्यमंत्री की ओर रह-रहकर हाथ जोडती रही मानों कह रही हो, 'बस करिए भैरोसिंहजी, बस करिए। वह जमाना और था।'

जब उनको मैने इस मुद्रा मे देखा तो यादो का रेला उमड आया। एक बार फिर फ्लैश बैक। 1962 के चुनाव। गायत्री देवी जयपुर लोकसभा सीट से खडी हुई। उनके मुकाबले मे अविभाजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रत्याशी सुश्री शारदा देवी है। गायत्री देवी जिधर से गुजरती है, सैकडो-हजारो हाथ हिलते है। कोई उनके चरण स्पर्श करता है, कोई भूमि पर लेट जाता है, कोई उनके स्वागत में ऑसू बहाता है, कोई पुष्पो की वर्षा करता है। गुलाबी नगरी की औरते तो जैसे निहाल हो गई हैं। साक्षात 'महाराणी' उनके द्वार पर खडी है। कोई उन्हें अन्नदाता कह रहा है, कोई उन्हे महाराणी साहिबा। जिधर से वे गुजर रही हैं, राजसी महक से वह स्थान धन्य हो रहा है। गायत्री देवी के प्रचार मे तैनात हैं गोलकुडा, चगेज खॉ, बरसात जैरगी फिल्मो के चर्चित सितारे प्रेमनाथ। जब चुनाव पेटी ने अपना फैसला दिया तो गायत्री देवी को देशभर में सबसे अधिक मत पडे। उफ! पूरा जयपुर उमड पडा है। पग रखने के लिए ठौर नहीं है।

गायत्री देवी का यह दौर 1971 तक चलता रहा। लेकिन फिर उनकी लोकप्रियता में निरंतर ग्रहण लगता रहा। आपातकाल में श्रीमती इंदिरा गॉधी ने उन्हे तिहाड जेल के हवाले कर दिया। जेल मे ही उन्होंने राजनीति से तौबा कर ली। 1977 के चुनाव में वे खडी नही हुई। इसके बाद वे राजनीति की दृष्टि से निरंतर गुमनामी में खोती चली गंई। अलबत्ता सुंदरता के ससार मे वे लगातार चर्चा का केंद्र रहीं। अमेरिका से उनकी एक आत्मकथा भी निकली। लेकिन तिहाड़ से मुक्ति के बाद उन्होंने एक क्षण के लिए भी राजनीति की ओर मुडकर नहीं देखा है।

बहत्तर वर्षीया गायत्री देवी अब रियासती व औपनिवेशिक जीवन शैली में मगन रहकर जी रही हैं। वैसे मुख्यमंत्री शेखावत का मानना है कि आज भी इन 'महाराणीजी में चुनाव जीतने की क्षमता है।' खैर ! यह तो भविष्य बतलाएगा। इसी रियासती गुलाबी नगरी में उनके सौतेले बेटे कर्नल भवानी सिंह को 1989 के चुनावों में पराजय का सामना करना पड़ा था। इसके साथ ही जयपुर के लोकतांत्रिक विवेक ने जयपुर घराने की राजनीतिक भूमिका का पटाक्षेप कर दिया था।

सत्ता की मायानगरी दिल्ली में चेहरों का उभरना और खोटे सिक्के में बदलकर डूब जाना वाकई बहुत पीड़ाजनक होता है। जब कोई उभरता है, यह मायानगरी सौ-सौ हाथों से उसे ऊपर उठा लेती है। औपनिवेशिक राष्ट्रपति भवन, प्रधानमंत्री भवन और भव्य कोठियों के विशाल लॉनों, पॉच सितारा होटलों में यह चेहरा उपभोग की वस्तु बन जाता है। पाँच सितारा सम्पादक और पत्रकार इस चेहरे पर फिदा रहते हैं। बडे-बडे फोटोग्राफर इस चेहरे का पारिवारिक एलबम तैयार करते हैं। यह चेहरा एक व्यक्ति न रहकर इस मायानगरी का एक 'शोपीस' बन जाता है। जैसे ही वह पिटने लगता है, उसे उतारकर फेंक दिया जाता है। दिल्ली में कई ऐसी सरकारी शरणस्थलियाँ हैं, जहॉ ऐसे चेहरों को 'डम्प' कर रखा जाता है। (इनमें मध्यप्रदेश के चेहरे भी शामिल हैं)। अब ये चेहरे 'एक्स्ट्रा का रोल' निभाते हैं, किसी बडे नेता की सभाओं की शोभा बढ़ाते है . स्वतंत्रता दिवस एवं गणतंत्र दिवस पर इन चेहरों को याद कर लिया जाता है। इन दिवसों पर राष्ट्रपति के मुगल गार्डन में आयोजित चायपार्टी में इन्हें देखा जा सकता है। उनकी आँखों में उस भीड को देखा जा सकता है जो कभी उनके इर्द-गिर्द चक्कर लगाती रही होगी, अंगरक्षकों से वह घिरा रहा होगा, प्रत्येक सैल्यूट उसे गुदगुदाता रहा होगा। आज वह अकेले. ..भीड़ में सिर्फ अकेले चाय की चुस्कियाँ ले रहा है। गाड़ी-घोड़ा, फ्लैशबल्बों की चुँधियाती रोशनी, हाथ में नोटबुक लिए निजी सहायकों की टुकड़ी, बेशुमार अर्जियाँ थामे दर्शकों की अंतहीन कतार, संवाददाताओं के सवाल, ठकाठक सलाम... .सब कुछ तो पीछे छूट गए हैं। आज वह अकेला खरामा-खरामा मुगल गार्डन से बाहर निकल रहा है। 26 जनवरी को यह दृश्य देखकर एक पुराना गाना गुनगुनाने का जी चाहता है : देखी जमाने की यारी बिछड़े सभी बारी-बारी।

**13 फरवरी, 1994**

# जयचंदों और मीरजाफरों की सियासत में एक पारदर्शी आदमी

इसी सर्दी का किस्सा है, रात के करीब आठ बजे होगे। मैं दफ्तर से घर जा रहा था। इडिया गेट के एक क्रॉसिग पर मै रुक जाता हूँ। रेड लाइट है। मेरी कार के ठीक पीछे एक सफेद मारुति कार खडी है। लेकिन कुछ ही क्षणो मे वह कार मेरे बराबर दाई लेन मे आकर खडी हो जाती है। मैं मध्य लेन मे हूँ। मै देखता हूँ कि मारुति कार मे राजीव गाँधी सवार है, और स्वय उसके चालक बने हुए है। ड्राइवर को पीछेवाली सीट पर नही, बल्कि बराबर मे बैठा रखा है। कुछ शरारत भरी मुस्कान से वे मेरी ओर देखते हैं और हैलो करते है। इससे पहले कि मै उतर कर उन्हे हैलो का उत्तर दूँ, हरी लाइट हो जाती है और वे अपनी कार को सीधे उड़ा ले जाते है। उनके पीछे सुरक्षा कार दौडती है। एक तरह से उन्होंने यातायात नियम का उल्लघन किया था। उन्हे सीधा जाना था। पर वे मध्य लेन को तोडकर दाईं वाली लेन मे पहुँच गए थे। हैलो करते समय उनकी शरारत भरी मुस्कान की यही वजह थी।

उस समय मुझे लगा कि यह शख्स किसी भी दिन त्रासदी का शिकार हो सकता है। वर्तमान हिसक राजनीतिक वातावरण मे कोई भी गलत तत्व उनकी इस किशोर चचलता का खौफनाक फायदा उठा सकता है। चूँकि उन्हे हमेशा तेज रफ्तार पसद थी, इसलिए उनके शत्रु उनके वाहन के सामने किसी को भी खडा कर सकते हैं, उनसे अपना प्रतिशोध ले सकते है। अपनी इन आशंकाओ से मैने सयुक्त सचिव श्री जनार्दन द्विवेदी को भी अवगत कराया। उन्होंने बताया कि राजीवजी को इन खतरो से कई दफे आगाह किया जा चुका है, पर वे सुनते कहाँ हैं। उन्हे खतरो की चिंता कहाँ है।

पिछली सर्दियों मे गुजरात यात्रा के दौरान मै उनके साथ था। अहमदाबाद हवाई अड्डे पर उतरते ही वे एक आजाद पछी की तरह उडने लगे। अपनी तीन दिन की गुजरात यात्रा के दौरान वे कभी जीप पर सवार होते, कभी कार मे और कभी ट्रेन मे। डिब्बे से बाहर निकल और उचक-उचक जनता का अभिवादन स्वीकार करते। एक पुराने मित्र की तरह गर्मजोशी के साथ हाथ मिलाते। उनके साथ चल रहे इका महासचिव श्री एच के एल भगत से किसी पत्रकार ने पूछा भी राजीवजी ने सुरक्षा के सारे बधन तोड डाले है, क्या आपको डर नही लगता? मुझे याद है श्री भगत का जवाब था हमने हमारें नेता को जनता के हवाले कर दिया है। जनता और ईश्वर ही उनकी हिफाजत करेगा।

"क्या बताऊँ बेचारा प्रतापभानु शर्मा मारा गया"। स्व राजीव गॉधी का यह सक्षिप्त वाक्य किसी अन्य के लिए नही था, अपनी ही पार्टी के लोकसभा प्रत्याशी प्रतापभानु शर्मा के सबध मे कहा गया था। मैने उनसे पूछा था "राजीवजी अटलजी लखनऊ के साथ-साथ विदिशा भी पहुॅच गए है। अब क्या होगा? ' वे कुछ क्षणो के लिए रुके, फिर उनके पौढ चेहरे पर किशोर मुस्कान मे लिपटी चिता की लकीरे उभरीं। क्षण भर मे उन्होने अपने मन की बात कह डाली, बिना किसी लाग-लपेट व परिणाम की चिता के। चुनाव की पूर्व-सध्या पर किसी पत्रकार से अपने ही दल के उम्मीदवार के प्रति इस तरह की बात करना जोखिमभरा होता है पर काग्रेस अध्यक्ष स्व राजीव गॉधी की चारित्रिक स्वाभाविकता एव सहजता ने इस जोखिम को स्वीकार नही किया। फिर कुछ सोचकर अपने वाक्य मे वे जोडने लगे "ठीक है जो हो गया सो हो गया वाजपेयीजी को देखेगे।"

यह वाकया मतदान के प्रथम दौर से कुछ दिन पहले का है। दिल्ली के अशोक मार्ग स्थित राज्यसभा सदस्या श्रीमती मार्गरेट अल्वा के निवास पर राजधानी के करीब दस-पद्रह वरिष्ठ पत्रकार निमत्रित थे। प्रणव मुखर्जी बलराम जाखड शिवशकर जैसे चद वरिष्ठ इका नेता भी आमत्रितो मे शामिल थे। करीब आधे घटे देरी से पूर्व प्रधानमत्री राजीव गॉधी भी पहुॅचे। बिल्कुल सफेदझक कुर्ता-पायजामा मे। पैरो मे फीते कसे जूते। चेहरे पर खिली उन्मुक्त मुस्कान और जिस्म पर छाई असीम फुर्ती। सयोग से श्रीमती अल्वा के निवास मे प्रवेश लेने के साथ ही मेरी मुठभेड उनसे हो जाती है। देखते ही हैलो करते है, हाथ मिलाते है और हमेशा की तरह पूछ बैठते है "हाऊ आर यू?" मै कहता हूॅ "बिल्कुल ठीक हूॅ।" और इसके साथ ही विदिशा से भाजपा नेता अटल बिहारी वाजपेयी की उम्मीदवारी को लेकर उन पर सवाल दाग देता हूॅ। चूॅकि माहौल बेहद अनौपचारिक था, इसलिए वे भी उसी रौ मे बहते हुए चले जाते है।

जब शर्मा बनाम वाजपेयी जग से ध्यान हटा तो मैंने उन्हे राज्यसभा के वर्तमान

सदस्यो को लोकसभा का टिकट देने के विवाद मे उलझाना चाहा। राजीव गाँधी पर दूसरा सवाल दागा। सवाल-जवाब का सिलसिला कुछ इस तरह से है :

**जोशी** . *आपने राज्यसभा मे सदस्यो को टिकट देने के मामले मे अपवाद क्यों किया? आपने नीति बनाई थी कि किसी भी वर्तमान सदस्य को चुनाव में नहीं उतारा जाएगा। पर आप उस पर कायम नही रहे। ऐसा क्यूँ?*

**राजीव** : अरे भाई हमने कुछ चीटिग की है। (*फिर वे जोर से हँसते हैं। मुझे उनके इस जवाब पर अचरज होता है।*)

**जोशी** : *चीटिग (धोखेबाजी) ? क्या मतलब?*

**राजीव** : देखिए, अगर हम ऐसा नही करते तो राज्यसभा के सदस्यो का टिकट के लिए फ्लड-गेट खुल जाता। इस बार हर कोई टिकट माँग रहा था। इसलिए हमने यह पॉलिसी बनाई थी।

**जोशी** . *फिर आपने इसे तोडा क्यो? कुछेक को लोकसभा का टिकट दिया गया है।*

**राजीव** (*खुलकर हँसते हुए*) जिन्हे टिकट देना था उनके नाम तो पहले से ही हमारे दिमाग में थे। अब यह थोडी बहुत चीटिग हमे करने दीजिए।

कुछ ही फासले पर खडी श्रीमती अल्वा को इस जवाब से जरूर ठेस लगी होगी, क्योकि वे भी चुनाव लडना चाहती थी। मध्यप्रदेश से अजीत जोगी और सुरेंद्र सिह ठाकुर भी टिकट माँग रहे थे लेकिन वे भी इस नीति की चपेट मे आ गए। खूबी देखिए कि स्व गॉधी ने यह गोपनीय बात बिना किसी नाटकीयता के साथ कह डाली। उन्होंने यह चिंता नही की कि उनके 'चीटिग' शब्द का मेजबान अल्वा पर क्या असर होगा? उनके सबध मे वरिष्ठ पत्रकार क्या सोचेंगे? यदि यह अनौपचारिक वार्तालाप प्रकाशित हो गया तो इफाजन उन पर धोखाधडी का आरोप लगा सकते हैं, टिकट माँगनेवाले राज्यसभा सदस्य असहयोग का रुख अपना सकते है। इन खतरो की ओर उन्होने ध्यान नही दिया। वे एक बाल-प्रवृत्ति से प्रेरित ये अगारे हाथो मे उछालने लगे। पत्रकार भी मूड में आ चुके थे। एक पत्रकार ने नई दिल्ली से राजेश खन्ना को भाजपा नेता लालकृष्ण अडवाणी के खिलाफ इंका उम्मीदवार बनाने के सबध मे सवाल कर डाला। देखा-देखी अन्य पत्रकारो ने भी सवाल दागे। सभी सवालो का मूल स्वर यह था कि राजनेता अडवाणी के खिलाफ अभिनेता राजेश ख़न्ना को खडा करने मे कौन-सी तुक

है? पहले उन्होंने सभी के सवाल सुने। फिर जमकर अपनी हँसी लुटाई और अंत में सवालों पर विराम लगाते हुए उन्होंने कहा "अरे बस ... यूँ ही मजा लेने के लिए खडा कर दिया। कुछ अडवाणीजी से मजा लेने दीजिए।" उनके इस जवाब से हम सभी आश्चर्यचकित थे। हम लोग हँस भी रहे थे और यह भी सोच रहे थे कि एक गंभीर सवाल को इंकाध्यक्ष कितने हल्के ढंग से ले रहे हैं? वे किसका मजाक उडाना चाहते हैं – अपना या अडवाणीजी का ? राजीव गॉधी राजनीति को संजीदगी के साथ क्यों नहीं लेते हैं? फुसफुसाहट के जरिए इस तरह की टिप्पणियॉ चलती रहीं। करीब एक-डेढ़ घंटे तक हम लोगों के बीच सवाद चला। वे अराजनीतिक और सामान्य नागरिक की तरह इसमें शरीक होते रहे। कभी वे अपनी खामियों को स्वीकार करते और कभी पत्रकारों से सुझाव लेते। डिनर समाप्ति के बाद उन्होंने प्रत्येक से हाथ मिलाया और अविस्मरणीय मुस्कान लुटाते हुए चले गए। उनके जाने के बाद कुछ पत्रकारों की टिप्पणी थी . क्या ऐसे पारदर्शी इंसान को राजनीति में होना चाहिए? क्या कोई सोच सकता है कि ऐसा व्यक्ति प्रधानमंत्री भी रहा है? राजीव गॉधी को राजनीति में नहीं होना चाहिए। वे इसके लिए नहीं बने है। उन्हे इससे अलविदा कर लेनी चाहिए।

उनकी इस किशोर निश्छलता को देखकर कई स्म तियॉ उभरने लगती हैं। प्रधानमंत्री स्व गॉधी के साथ कई दफे देश-विदेश की यात्रा करने का अवसर मिला। जब श्रीलका की राजधानी कोलंबो मे विदाई समारोह के अवसर पर उन पर घातक हमला किया गया, तब भी उन्होंने इसे बडी सहजता से लिया। वह दिन मुझे अच्छी तरह से याद है। हम सभी भारतीय पत्रकार विमान में बैठ चुके थे, तभी किसी ने सूचना दी कि प्रधानमंत्री राजीव गॉधी पर श्रीलका के किसी सैनिक ने हमला कर दिया है, वे बाल-बाल बच गए हैं। उनसे मिलने के लिए सभी संवाददाता व्यग्र थे। विमान उडने के करीब बीस-पच्चीस मिनट बाद वे हमारे बीच आए, बिल्कुल अनौपचारिक पोशाक में। शायद जीन पहन रखी थी। चेहरे पर प्रहार की शिकन तक नहीं थी। जैसे कि कुछ घटा ही न हो, वे इस तरह का व्यवहार कर रहे थे। प्रहार से ज्यादा वे भारत-श्रीलंका समझौते पर प्रकाश डालने के लिए उत्सुक थे। बार-बार आग्रह करने के बाद उन्होंने प्रहार के संबंध मे जानकारी दी।

सुरक्षा घेरों को तोडने में वे किशोर आनद का अनुभव करते थे। जब वे प्रधानमंत्री थे तब भी उन्होंने कई बार इन घेरो को तोडा। ऐसी ही एक घटना याद है। तीन बरस पहले का किस्सा है, वे कडकडाती सर्दी में अमेठी यात्रा पर थे। दिल्ली से उनके साथ गई प्रेस-टीम का मैं भी एक सदस्य था। प्रधानमंत्री का काफिला अमेठी से सुल्तानपुर जा रहा था। रात का समय था। राजीव गॉधी

ने जानबूझकर कच्चा रास्ता चुना। अचानक काफिला रुक गया। रात के 11 बजे होंगे। चारो तरफ सुनसान था। कारों के अचानक रुकने से हमें चिंता होने लगी। कई तरह की आशंकाएँ उठने लगीं। कहीं प्रधानमंत्री का कोई अनिष्ट न हो गया हो? इतना हम सोच ही रहे थे कि अँधेरे को चीरती हुई टार्च की रोशनी हमारे चेहरों पर पडी। ऑखें चुंधिया गई। कुछ सँभलने के बाद कार के बाहर देखा तो प्रधानमंत्री स्वयं टार्च लिए खडे हैं। हम लोग हक्के-बक्के रह गए। साहस बटोरकर मैंने पूछा, "राजीवजी क्या बात है?" वे बिगडते हुए बोले, "बात क्या है देख नहीं रहे हो इतनी कारें हम लोगो के पीछे आ रही हैं। तमाशा बना रखा है। मैं आज सभी कारों को चैक करता हूँ। इसके बाद ही मोटरकेड आगे बढेगा।" इतना कहकर वे तपाक से आगे बढ गए। उनके साथ अंगरक्षक भी। हम लोग सोचने लगे कि क्या प्रधानमंत्री को कार-चैकिंग का काम करना चाहिए? यह काम तो किसी पुलिस अधिकारी को भी सौपा जा सकता था। इस कडकडाती सर्द अंधेरी रात में राजीव गाँधी नाहक खतरा मोल रहे हैं। जब तक प्रधानमंत्री काफिले के अंतिम छोर तक नहीं पहुँच गए उन्हे चैन नहीं मिला।

पन्द्रह मिनट के बाद लौटते हुए उन्होंने हम लोगों से कहा, "मैंने सभी कारें रुकवा दी है। कई बेकार के लोग साथ चल रहे थे। अब आपकी मीडिया कार के बाद कोई कार साथ नही चलेगी," इतना कहकर वे अपनी कार में सवार हो गए। कारवॉ चला तब हम लोगो ने राहत की सॉस ली।

जब वे प्रधानमंत्री थे तब उनकी दक्षिण-भारत की यात्राएँ मैंने कवर की हैं। दक्षिण भारत में जरूरत से ज्यादा ही उनका स्वागत हुआ करता था। वे भरपूर इसका आनंद लिया करते थे। जब वे वहाँ की जनता के बीच होते तब वे किसी महासागर मे गोता लगाते हुए दिखाई देते। एक यात्रा में तमिलनाडु-केरल सीमा पर उनकी जीप खराब हो गई। उसे वे स्वयं चला रहे थे। देखा, प्रधानमंत्री का कारवॉ दस-पंद्रह मिनट से हिल नही रहा है। हमने कार से बाहर निकलकर देखा कि प्रधानमत्री स्वयं जीप के कल-पुर्जों की जॉच कर रहे हैं। इसी बीच गॉव के लोग जमा हो गए। अंगरक्षको के घेरे को तोड़कर वे उनके बीच जाकर बतियाने लगे। श्री मणिशंकर के माध्यम से वे उनके साथ घरेलू बातें करने लगे। गॉववालों को यह अहसास नहीं होने दिया कि उनके साथ देश का प्रधानमंत्री बात कर रहा है। जनता के सांथ ही नहीं, वे अपने गैर-राजनीतिक दोस्तों पर भी उतना ही प्यार उँडेल दिया करते थे। गुजरात यात्रा पर जाते समय दिल्ली-अहमदाबाद उड़ान के दौरान राजीव गॉधी रास्तेभर कॉकपिट में बैठे रहे। परिचारिका से पूछने पर पता चला कि उडान के कप्तान पूर्व प्रधानमंत्री के पुराने

दोस्त हैं। कभी दोनों एक साथ विमान उडाया करते थे और जब सवा-डेढ घंटे के बाद कॉकपिट से बाहर निकले तो वे जनता में समा गए।

राजीव गाँधी में सीखने की ललक हमेशा रहती थी। इसलिए उन्होंने यह दावा नहीं किया कि वे बुद्धिजीवी या विचारक हैं या समाज की बनावट को अच्छी तरह से समझते है। इसीलिए वे यात्राओं के दौरान जनता से छोटी-छोटी बातें पूछा करते थे, लोगों से जानना चाहते थे कि क्या उन्हें समय पर राशन मिलता है ? पेय जल मिलता है ? उनके यहॉ शिक्षा की क्या व्यवस्था है? गॉव में बिजली कहॉं से आती है? पटवारी क्या करता है? तहसीलदार या कलेक्टर अपनी जिम्मेदारी निभाते हैं या नहीं? कभी-कभी वे मौके पर ही अधिकारियों को झिड़क दिया करते थे। तमिलनाडु की यात्रा के दौरान एक कलेक्टर को उन्होंने बुरी तरह डॉट दिया। वे घबराकर हमारी कार में आकर बैठ गए। कहने लगे, "आज मेरी नौकरी गई।" बडी मुश्किल से समझाया कि ऐसा नहीं होगा। अगले पडाव पर राजीव गॉधी ने उन्हे तलब कर लिया। इसके बाद में वे प्रसन्न दिखाई दिए। स्थिति सामान्य हो गई।

1985 मे मास्को से दिल्ली लौटते समय मैंने उनसे विमान में अनुरोध किया कि वे मुझे तत्काल इन्टरव्यू दें। पहले वे तैयार नहीं हुए क्योकि अन्य पत्रकारों के इस तरह के अनुरोध को अस्वीकार कर चुके थे। पर मैंने हार नहीं मानी। जिद के अंदाज से मैंने दो-तीन दफे कहा। अंत में उन्होंने अपनी घडी की ओर देखते हुए शरारती मुद्रा में कहा तो फिर मैं सात मिनट से ज्यादा नहीं दूँगा। इसमें काम चलाना होगा। मैंने तुरंत हॉ कर दी। उन्होने तपाक से कहा तो चले आओ मेरे केबिन में। और यह सात मिनट की बातचीत तीस मिनट में बदल गई। मैंने उनसे जानबूझकर कुछ वैचारिक सवाल कर डाले। मसलन मैंने पूछा . "राजीवजी, भारत में आप उदार या विकसित पूँजीवाद लाना चाहते हैं, लेकिन देश के सामाजिक-आर्थिक संबंध आज भी सामंती हैं; विशेष रूप से कृषि संबंध पूरी तरह से सामंती हैं। कैसे बदलेंगे?" वे मेरे सवालों को पूरी तरह से समझ नहीं पाए। उनके लिए इस तरह की वैचारिक शब्दावली शायद नई थी। इसीलिए उन्होंने अपनी सीमाओं को सामने रखते हुए कहा, "देखिए, अभी बहुत कुछ मुझे सीखना-जानना है। मोटे तौर पर मैं यह समझता हूँ कि हम उद्योग लगाएँगे, उससे बदलाव आएगा।" उस समय उन पर आध्यात्मिकता भी हावी थी। इसीलिए वे कहने लगे, "हम पूँजीवाद नहीं लाना चाहते। हमें आध्यात्मिक बनना है, भारत के आत्म-चिंतन को जगाना है।" मैंने दलील दी, "राजीवजी, आपके एप्रोच में काफी अन्तर्विरोध है। पूँजीवाद और आध्यात्मिकता के सग-संग रहने से समाज में कोई बुनियादी परिवर्तन आएगा, यह संभव नहीं लगता।" उन्होंने कहा, "हो सकता है। लेकिन प्रयोग करने में क्या हर्ज है।

नहीं जमा तो कुछ और रास्ता अपनाएँगे। मैंने अपने को खुला रखा है।" खुलापन या भोलापन राजीव गाँधी में इस कदर था कि वे यह समझ नहीं पाते थे कि गोपनीयता की सीमा कहाँ शुरू होती है और कहाँ समाप्त होती है? कौन-सी एवं कितनी बात सार्वजनिक रूप से कहनी चाहिए ? राजीवजी ने शायद जानबूझकर इस बोध को अस्वीकार किया या इसकी जरूरत नहीं समझी। गुजरात यात्रा के दौरान वे प्रदेश इंका विधायक दल की बैठक को संबोधित कर रहे थे। संयोग से मुझे भी अंदर बैठने की इजाजत मिल गई। वैसे प्रेस के लिए मनाही थी। मुझे देखकर राजीव गाँधी कहने लगे, "देखिए, बैठक की बातचीत सब ऑफ दि रिकॉर्ड हैं। *नई दुनिया* में छपनी नहीं चाहिए। आप लोग (विधायकगण) भी इसे बाहर न कहें।" इसके बाद उन्होंने पंजाब-कश्मीर के संबंध में सिलसिलेवार (घटनाओं पर) प्रकाश डाला। पूर्व राज्यपाल जगमोहन के संबध में कुछ संवेदनशील जानकारी भी दी। श्री गाँधी के इस खुलेपन से इंका विधायक गदगद हो गए। बैठक समाप्ति पर फिर उन्होंने सभी को आगाह किया कि इन बातों की चर्चा बाहर न की जाए। लेकिन, अगले पडाव पर मैं क्या देखता हूँ कि इंका अध्यक्ष ने सार्वजनिक सभाओं में कश्मीर से संबंधित बातें बतलानी शुरू कर दीं। अगले दिन अहमदाबाद में उन्होंने सभी तथाकथित गोपनीय बातें सार्वजनिक कर दीं। उन्होंने स्वयं अपनी ही चेतावनी को भुला दिया। ऐसा उन्होंने जानबूझकर नहीं किया। चूँकि प्रौढ़ राजीव गाँधी के भीतर एक शिशु और किशोर राजीव गांधी निरतर किलकारियाँ मारता रहता था, दुस्साहसिकता के लिए तत्पर रहता था, इसलिए बंद या खुली राजनीति की सीमाओं से वे अपरिचित दिखाई दिए। उनकी इसी सादगी का भरपूर ढंग से अनुचित लाभ भी उठाया गया। इंकाजनों में स्व. गाँधी को लेकर एक तकियाकलाम मशहूर था। चतुर इंकाई कहा करते थे—अगर मि. क्लीन से कुछ काम करवाना है तो उनसे तब मिलो जब वे सोने जा रहे हों वरना तुम्हारा बना-बनाया काम बिगड़ जाएगा। यहाँ तक कि गत अप्रैल में टिकट वितरण के दौरान कुछ लोगों ने यही फार्मूला अपनाया। इंकाजन कहा करते थे कि राजीव के फैसलों को बदलवाना बहुत आसान काम है। गुटीय लड़ाइयों में उनके इस भोलेपन का जमकर दुरुपयोग किया गया। प्रदेश सरकारें अस्थिर करवाई गई। मुख्यमंत्री बदलवाए गए। मध्यप्रदेश सहित हिंदी राज्यों में यह खेल जमकर खेला गया। उनकी इस मासूमियत को देखकर गाँधी को मि. क्लीन से 'मिस्टर सिम्पल्टन' कहा जाने लगा। इस पर भी उन्होंने अपनी पारदर्शिता त्यागी नहीं। भले ही वे इसके परवान चढ़ गए। जयचंदों, मीरजाफरों, ब्रूटसों से भरी सियासत में इतना पारदर्शी होना कितना त्रासदीपूर्ण होता है।

**मई, 1991**

# राजनीतिक पक्षाघात से जूझते चरणसिंह

लोगबाग कहते हैं कि बुढ़ापे में किसी को लकवा मार जाए, तब उसकी हमेशा के लिए छुट्टी समझो; वह कभी पूरी तरह भला-चंगा नहीं हो सकता। बिलकुल गलत। मेरे एक पडौसी हैं। नब्बे के पार होंगे। पिछले साल लकवे ने हमला कर दिया था। सैनिक अस्पताल में पूरे 6 महीने रहे। डॉक्टर तो हिम्मत हार चुके थे, मगर वृद्ध ने लकवे को मात दे दी। आजकल रोज-सुबह उठते हैं, बागवानी करते हैं, खूब खाते-पीते हैं, चहलकदमी करते हैं; घरवालों समेत सभी पड़ौसी हैरान हैं।

लकवे की एक दूसरी किस्म भी है। यह लकवा व्यक्ति को शारीरिक रूप से धराशायी नहीं करता, बाकी सब कुछ कर डालता है। खूबी इसकी यह है कि इसका इलाज किसी शफाखाने में नहीं हो सकता, और न ही डॉक्टर कुछ कर सकता है। रोगी एक ही फारमूला अपनाता है : "आस मत छोड़ो, देखो, इंतजार करो और फिर लपको।" यह है राजनीतिक लकवा। लोकसभा चुनावों के बाद से ही भारत के पूर्व प्रधानमंत्री चौ. चरणसिंह इस राजनीतिक पक्षाघात के शिकार हो गए थे। न कहीं उठना, न कहीं बैठना; सब पराए हो गए थे। उनका बंगला भी पक्षाघात का शिकार लगता था। वीरान-सुनसान।

खैर साहब ! पड़ौसी की तरह अस्सी के पार चौधरी साहब ने भी लकवे के सामने अपने घुटने नहीं टेके। दो-ढाई महीने राजनीतिक पक्षाघात की खाट पर पड़े-पड़े अपना पैट फारमूला अपनाते रहे। विधानसभा के चुनाव परिणामों के बाद से वे पडौसी की तरह चहकने लगे हैं। उनके इर्द-गिर्द लोगों का जमघट रहता है। बंगले में चहल-पहल लौट आई है। रोज सुबह-शाम लोधी गार्डन में पूर्व प्रधानमंत्री सैर के लिए जाते हैं। साथ में 10-15 लोगों का जुलूस रहता है।

चौधरी साहब अपनी छड़ी थामे तेज-तर्रारी के साथ चक्कर काटते रहते हैं। चुनावों के पहले उनके साथ उनका अंगरक्षक भी रहता था।

वैसे, चौधरी साहब को राजनीतिक पक्षाघात के दौरे कई बार आए हैं। 1980 मे इंदिरा-शासन की वापसी के बाद उन्हे लबे दौरों का सामना करना पडा था। परतु, अब चौधरी साहब और उनके साथियो की आशाएँ फिर से बसंत में झूमने लगी है। विधानसभा के चुनाव परिणामो ने उनके हिए में नए-नए फूल खिलाए है। उनके शिविर में चौधरी साहब को राजगद्दी सौंपने की तैयारियाँ शुरू हो गई हैं। विधानसभा चुनावों में उत्तरप्रदेश, राजस्थान, बिहार जैसे प्रांतों मे दलित मजदूर किसान पार्टी को मिली अप्रत्याशित उपलब्धियों ने चौधरीजी को पिछड़े वर्ग एव किसानों के 'मसीहा' के रूप में फिर से जिला दिया है। उनके शिविर में सुझावों की मथनी खूब चल रही है– क्यों नहीं चौधरी साहब के विदेश-पलट पुत्र को राजगद्दी सौंप दी जाए? इसमे हर्ज ही क्या है? जब शासक दल, इंदिरा काग्रेस, इस परिपाटी को बनाए हुए है, तब दमकिपा भला पीछे किसलिए रहे? अगर, अमेरिका-पलट पुत्र पिता की गद्दी पर बैठते हैं तो पिछड़ों के वोट-बैंकों पर कोई डकैती नहीं डाल सकता। वरना, देर-सबेर चौधरी साहब की गैरमौजूदगी मे इंका इस बैंक पर डाका डालने से चूकेगी नहीं। इसलिए पुत्र को तुरंत गद्दी सौंप देने में ही भलाई है।

यह था किस्सा पक्षाघात-विजेता दो बुढऊ वीरों का। इसी से कुछ मिलता-जुलता किस्सा मध्यप्रदेश के एक आयातित सांसद का है। देश में मध्यप्रदेश प्राकृतिक एवं वन संपदा के निर्यातक के रूप में विख्यात है, परंतु दिल्ली के संसदीय क्षेत्र मे प्रदेश ने सांसदों का आयात करने में भी काफी नाम कमाया है। ऐसे ही एक सांसद हैं श्री जे.के.जैन। दिल्ली के निवासी हैं, परतु मध्यप्रदेश से राज्यसभा के सदस्य बने हुए हैं।

पिछले दिनों उनके भी राजनीतिक लकवा के शिकार होने की आशंका यहाँ के क्षेत्रों में फैली हुई थी। परंतु, कई आशंकाओं के घटाटोप के बीच एक बार फिर इंका संसदीय बोर्ड के सचिव निर्वाचित होकर श्री जैन ने सभी को हैरत में डाल दिया है। इसी जीत की खुशी में उन्होंने 28 मार्च को अपने बंगले पर पुरानी दिल्ली के ठेठ अंदाज में बड़े ठाठ-बाट के साथ दोपहर की दावत दे डाली। चाँदनी चौक के पकवान, चाट, गोल-गप्पे, ठंडाई का आनद लेने के लिए जब प्रधानमंत्री राजीव गाँधी पहुँच सकते हैं, तब भला लोकसभा अध्यक्ष बलराम जाखड़ और राज्यसभा की उपाध्यक्षा श्रीमती नजमा हेपतुल्ला के सदन-साथियों की फौज कैसे पीछे रह सकती थी ! चूँकि राजनेताओं के साथ चोली-दामन का संबंध है, इसलिए पत्रकार गैरहाजिर क्यूँ रहें !

पहले श्री जैन के किस्से का जायका ले लें, फिर दावत का। हुआ यह कि कुछ दिन पहले श्री गाँधी ने संसदीय दल के नेता के नाते इंका सांसदों को संबोधित किया; पंजाब पर कुछ टीका-टिप्पणी की। बाद में सचिव के नाते श्री जैन ने पत्रकारों को 'ब्रीफ' करते हुए कह दिया कि प्रधानमंत्री ने पंजाब के संदर्भ में कहा है कि यदि अमन-चैन रहता है तो सेना को बैरकों के हवाले कर दिया जाएगा, लोकप्रिय सरकार की बहाली होगी। जाने क्या हुआ, उसी दिन एक-दो घंटे बाद श्री जैन दौड़े-दौडे सेंट्रल हॉल पहुँचे। प्रेस-दफ्तरों में फोन खटखटाए। पंजाब को लेकर जो ब्रीफ किया था, उसमें संशोधन का आग्रह किया। हम लोगों ने मान लिया। बात आई-गई हो गई। परंतु, मामले नै फिर तूल पकड़ा। उसी शाम कांग्रेस आला कमान के महासचिव श्री श्रीकांत वर्मा ने श्री जैन की पंजाब पर ब्रीफिंग और बाद में संशोधन दोनों का ही खंडन कर दिया। श्री वर्मा ने इतना तक कह डाला कि श्री गाँधी ने अपने भाषण में सेना की वापसी का कोई उल्लेख नहीं किया था।

तब से ही लग रहा था कि श्री जैन की पतंग कटनेवाली है। अब वे श्री गाँधी के लाडले नहीं रहेंगे। सचिव के पद से उन्हें कभी भी हटाया जा सकता है। उनके विरोधी सक्रिय हो गए और पद पर नजरें गड़ा दीं। इस प्रकरण का पटाक्षेप यहीं नहीं हुआ। एक-दो दिन बाद ही श्री गाँधी के भाषण का अधिकृत रूप जारी किया गया, जिसमें श्री जैन की ब्रीफिंग सही निकली और श्री वर्मा का खंडन गलत। शासक दल की इस हास्यास्पद स्थिति का अगला शिकार कौन होनेवाला है, यह कहना मुश्किल है, केवल अटकलों के पाल डाले जा सकते हैं। हाँ, तो वापस लौटें कस्तूरबा गाँधी मार्ग स्थित श्री जैन के विशाल बंगले पर। बंगले पर संसद के बाहर एक छोटी-मोटी संसद लगी थी। ऐसे मौकों पर, जब ठंडाई-चाट की बहार हो, राजनेताओं की आपसी चुहलबाजियाँ भी कम जायकेदार नहीं रहतीं। ठीक बीच में लंबे-तडंगे श्री जाखड को श्रीमती हेपतुल्ला और केंद्रीय राज्यमंत्री श्रीमती मार्गरिट अल्वा घेरे हुए थीं। और भी थे कई सांसद तथा पत्रकार, आसपास। अपने चेहरे के उतार-चढाव के लिए चर्चित श्रीमती अल्वा शिकायत भरे अंदाज में कहने लगीं—"जाखड साहब, दुनिया भर में अकेले-अकेले घूम आते हैं, कभी साथ नहीं ले जाते!" "अल्वाजी, मैंने कब मना किया है? आज भी कह रहा हूँ।" जाखडजी ने तपाक से कहा। श्रीमती अल्वा भी हाजिरजवाबी में पीछे रहनेवाली नहीं मानी जातीं : "जी नहीं, पिछले कई सालों से आप इसी तरह झाँसा देते आ रहे हैं। बोलिए, कब-किस डेलीगेशन में शामिल करनेवाले हैं?" "देखिए मैडम! पहले जो कहा है, अब भी वही कह रहा हूँ। अगर विदेश घुमा दिया तो आपको ऐसी शिकायत का मौका कब मिलेगा? कम से कम इसका तो ख्याल करें।" अध्यक्ष का यह कहना था कि चारों तरफ जोरों का ठहाका लगा। श्रीमती अल्वा

त्यौरियॉ चढाते हुए लजा गई।

राज्यसभा की उपसभापति श्रीमती हेपतुल्ला ने डी एम के के एक सदस्य श्री वी गोपालस्वामी के 'दिल जलने' का किस्सा छेड दिया। सदन मे श्री स्वामी बहुत तेज बोलते है। आवाज इतनी बुलद कि सदन कॉप उठता है और वे स्वय पतग की तरह थरथराने लगते है। है भी लबे व पतले-दुबले। उनकी गोली की तरह तेज महीन व तीखी आवाज लोगो को चीर डालती है। उपसभापति ने इसकी शिकायत की। बताने लगी कि उन्होने कई दफे कहा है कि मि स्वामी ! इतना तेज न बोला करे ! मेरी मौजूदगी का ध्यान रखे। शाति के साथ बात करे।

*(इसी बीच श्री जाखड ने श्रीमती हेपतुल्ला को पूरे गौर से देखा। मुस्कुराए। उनके नयन-अवलोकन का आशय हो सकता है– अच्छा इतनी विशाल रूप-राशि के सामने स्वामी इतना चीख कैसे पाते है? कुछ तो ख्याल रखे।')*

"परतु जाखड साहब मि स्वामी अपनी आदत से बाज नही आते। एक दिन वो गलियारे मे टकरा गए। मैने उन्हे फिर समझाया। वो चीखकर कहने लगे– 'मैडम माई हॉर्ट इज बर्निंग'।" श्रीमती अल्वा, जो अब तक चुपचाप सुनती जा रही थी तपाक से बोलीं 'मैने मि स्वामी को कह दिया है– आपका ब्लड प्रेशर हाई हो जाता है किसी दिन हॉर्ट फेल हो जाएगा। अगर अब तेज बोले तो आपको जबर्दस्ती हॉस्पिटल ले जाऊँगी।"

जाखड साहब ने चुटकी लेते हुए कहा–"देखिए, आप लोगो के ऐसा कहने पर मि स्वामी कही यह न कह बैठे– 'माई हॉर्ट इज बिकमिग गार्डन-गार्डन।' (मेरा दिल बाग-बाग हो रहा है।)' और जोर का एक ठहाका लगा। इसी बीच श्री गॉधी के पहुँचने की खबर फैल गई। बस, रग मे भग। चारों तरफ खामोशी। श्री गॉधी की चुटकी भर दृष्टि चुराने के लिए लोगो मे हलचल मच गई। ऐसे मौके पर श्री गॉधी आबेहयात दिखाई दे रहे थे, इस सदी की तर्ज मे कहे तो एक 'रेयर कमोडिटी'।

जब दुकान पूरी तरह उठ गई, तब खरामा-खरामा पहुँचे मध्यप्रदेश इका ससदीय समिति के सयोजक श्री दिलीपसिह भूरिया। श्री जैन ने खोमचे मे बचा-खुचा जो रहा श्री भूरिया को परोस दिया। वैसे श्री भूरिया आजकल पूरे जोरो पर है। उनकी पाग मे एक कलॅगी और लग गई है नाउम्मीदी के बावजूद इका ससदीय बोर्ड की कार्यकारिणी के सदस्य चुन लिए गए है। प्रदेश से अकेले है। श्री गॉधी के आसपास उठने-बैठने का मौका मिल गया है। प्रदेश की चिताएँ फिर से उठने लगी है। इसीलिए उनके नेतृत्व मे प्रदेश सासदो ने प्रधानमत्री को ज्ञापन भी दिया, और सूखाग्रस्त जिलो को पेयजल की राहत पहुँचाने की अपील

की। अब देखिए, प्रधानमंत्री क्या करते हैं।

पिछले सप्ताह प्रदेश के इका क्षेत्रों में एक और घटना हुई। अर्जुनसिंह के खेमे के खास सेनापति श्री दिग्विजयसिह प्रदेश अध्यक्ष मनोनीत कर दिए गए। कुछ खेमो को यह घटना रुची नही, क्योंकि वहाँ दूसरी उम्मीदे फैली हुई थी, पूर्व मुख्यमंत्री का जादू कैसे तोडा जाए इसकी पैतरेबाजियाँ चल रही थीं। फिलहाल तो, सब्र ही धर्म है।

**2 अप्रैल, 1985**

# राजीव को गप्पियों के कृपांक

पत्रकार बडे अटपटे जीव है, किसी से कुछ भी ऊलजलूल सवाल-जवाब कर बैठते है। हुआ भी यही। इसी माह के पहले इतवार प्रधानमत्री की विज्ञान भवन में प्रेस कॉन्फ्रेस थी। प्रधानमत्री बनने के बाद अपने छह-सात महीने के छोटे से इतिहास मे श्री गॉधी का पहली बार औपचारिक तौर पर देस-परदेस के पत्रकारों से पाला पडा था। भारी तैयारियॉ की गई थी। इंदिराजी के जमाने मे पत्रकार वार्ता विज्ञान भवन के सम्मेलन कक्ष मे हुआ करती थी। परन्तु, यह इतवारी वार्ता विशाल सभागार में हुई। पहली मुठभेड मे ही एक पत्रकार ने ऊटपटाँग सवाल कर डाला, "मि राजीव, आप प्रधानमत्री के रूप में राजीव को किस प्रकार परिभाषित करेंगे?" सभी हॅसे। श्री गाँधी का जवाब था, "आपको तीन सवाल करने की अनुमति देकर मैंने गलती की। ऐसा सवाल? तौबा!" सभागार में ठहाका।

यह सवाल हास्यास्पद लग सकता है, पर था मार्के का। आज दिल्ली के मठाधीश और छोटे-मोटे सपादक तथा कॉलम-लेखको मे राजीव गॉधी के व्यक्तित्व को किसी न किसी सॉचे मे फिट करने की होड लगी हुई है, मगर कोई माकूल फ्रेम सामने आया ही नहीं है। देखिए, भारत की सनातन संस्कृति में नायकों के लिए सात-आठ फ्रेम हैं धीरोदात्त, धीरललित, धीर प्रशान्त, धीरोद्धत, अनुकूल नायक, दक्षिण नायक, शठ नायक और धृष्ट नायक। इन नायकों की श्री राम, युधिष्ठिर, दुष्यंत, भीमसेन, मेघनाद आदि से तुलना की जा सकती है; कुछ की चलताऊ और फिल्मी जबान में संजीव, बच्चन, सी रामचन्द्रन, उत्तमकुमार, राजेश खन्ना जैसे आधुनिक नायको से की जा सकती है। दो शब्दो में, वह वीर, विनयशील, त्यागी से लेकर पूँजीपति, कपटी, लम्पट और दिलफेंक तक हो सकता है।

यहाँ सवाल है राजीव भैया का। उनका छोटा-सा काल और छोटा इतिहास।

पत्रकार वार्ता में ऐसा ही एक सवाल और उछाला गया था, मगर पूछनेवाले का तर्जे-बयाँ दूसरा था। सवाल था, "मि गाँधी, आपकी नीतियों को वामपंथी कहें, या दक्षिणपंथी, या मध्यपंथी, केन्द्रीय दक्षिणपंथी या केंद्रीय वामपंथी।" ऐसा ही कुछ था। प्रधानमंत्री ने फटाफट पिटा-पिटाया जवाब दे दिया, "हम कोई भी पंथी नहीं हैं। जो देश के हित मे है, वही करते हैं।" परिभाषा पर विराम।

राजधानी के बौद्धिक गप्पियों के बीच राजीव के किरदार की पैमाइश के समय उनके दो जवाबो का खास जिक्र किया जाता है। प्रधानमंत्री ने आपातकाल और रूस के साथ दोस्ती के संबध में जैसे जवाब दिए हैं, उन्हें लेकर तूफान मचा है। गप्पबाजों की एक मंडली उन्हें 1975 की इंदिरा गाँधी का अवतार घोषित कर रही है, जबकि दूसरी मडली एक 'प्रशिक्षणार्थी प्रधानमत्री' के रूप में परिभाषित करती है। गप्पियों की राय है कि एक मँजा हुआ प्रधानमत्री बड़ी होशियारी से ऐसे सवालों से पिड छुडा सकता था। इंदिरा गाँधी होती तो वे कहती—आपातकाल एक काल्पनिक सवाल है। या जब जैसे हालात पैदा होगे, तब देखा जाएगा। या आपातकाल लगाने जैसी सूरत नजर नहीं आती या आपातकाल के सबंध में हम अपनी स्थिति पहले ही साफ कर चुके है। हमारा घोषणापत्र पढ़ लीजिए। और रूस तथा अमेरिका के साथ दोस्ती के संबंध में कहतीं—देखिए, देश का हित पहले है। हम गुटनिरपेक्ष हैं, हम सबसे दोस्ती चाहते है। इत्यादि। मगर, युवा प्रधानमत्री ने दोनों ही सवालों पर दोटूक जवाब दिए, "जरूरत पड़ी तो इमरजेंसी लागू की जाएगी। सख्त कदम उठाए जाएँगे। रूस के साथ हमारी दोस्ती पुरानी, भरोसेमद और टिकाऊ है। फ्रांस और अमेरिका के साथ भी दोस्ती चाहते है।" मजेदार बात यह है कि उन्होंने दोस्ती के मामले में अमेरिका का नाम सबसे आखिर मे लिया।

बस, फिर क्या था! तूफान आ गया। अमेरिकी लॉबी नाखुश और रूसी लॉबी आश्चर्यचकित। मन की बात यह कि कूटनीतिक दृष्टि से दोनों ही लॉबियाँ इस तरह 'सरेआम' नहीं होना चाहती थीं। कूटनीति की दुनिया मे होता यह है कि 'आप कहें कुछ, करे कुछ। आपके हर शब्द के दोहरे-तिहरे अर्थ रहे और मुकरने की गुंजाइश हमेशा बनी रहे।' इस दृष्टि से राजीव गाँधी 'मँजे खिलाडी' साबित नहीं हुए। मगर नापने की कई स्केलें हैं। श्री गाँधी की शैली नपे-तुले शब्दों में अपनी बात बगैर किसी लाग-लपेट के कहने की भी हो सकती है। हो सकता है, वे इसे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर निर्यात करने पर तुले हुए हों, क्योंकि रूस और अमेरिकी यात्राओं के दौरान उन्होने परंपरागत कूटनीतिक शैली का परिचय नहीं दिया था। पर, चूकता कौन है कहने से। गपोड कहने लगे है, 'राजीव गाँधी को सत्तर करोड लोगों के हितों की कीमत पर ट्रेनिंग दी जा रही है। भारत से अच्छा अनोखा स्कूल दुनिया मे कहाँ मिलेगा!' कुल जमा सार

यह कि प्रधानमंत्री वाशिंगटन की नेशनल प्रेस क्लब जैसी छाप और धाक विज्ञान भवन में पैदा नहीं कर सके। फिर भी, लोग-बाग उन्हें 'ग्रेस-मार्क' देने के लिए तैयार हैं, ताकि आनेवाली परीक्षाओं में अपने को पुख्ता ढंग से 'इम्प्रूव' कर सकें और अव्वल नंबरों से पास हो जाएँ। वैसे गंभीरता से सोचें, तो राजीव गाँधी के नायकत्व की इतनी जल्दी परिभाषा करना ठीक भी नहीं रहेगा। सच्चाई यह है कि उन्होंने वर्तमान पद सामान्य परिस्थितियों में या संघर्ष के साथ प्राप्त नहीं किया है; यह तो राजपाटवादी मूल्य-व्यवस्था के इतिहास में होनेवाली दुर्घटनाओं या असाधारण परिस्थितियों का एक 'संयोग प्रतीक' है। अब उन्हें सच्चे नायक बनने में 'टेम' तो लगेगा ही। अभी न वे संस्कृत नाटकों के सुखान्त नायक, ग्रीक ट्रेजडी के भाग्यवादी दुखान्त नायक, शेक्सपीयर के कर्मवादी दुखान्त नायक या दिलफेंक व साहसी नायक और न ही आधुनिक अस्तित्ववादी या मोहन राकेश के *आधे अधूरे* नायकों मे से कोई एक लगते है।

फिलहाल, उनकी परिभाषा 'आगे बढो, निर्णय करो, गलती हो तो, ठीक करो, और फिर सावधानी से आगे बढो' के रूप में की जा सकती है। सच है, वह एक नई राजनीतिक शैली की रचना करना चाहते हैं। हाँ, उसकी अपनी पहचान होनी शेष है। मगर उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि जहां राजगद्दी मिली है, वहीं विरासत में कुछ 'धूरे' भी मिले हैं, जो कि सिंहासन के इर्दगिर्द जमा हैं। इनके बीच वे अपनी पहचान कैसे बनाते हैं, यह देखना है अब।

अब देखिए, केन्द्रीय मंत्रिमंडल और संगठन में फेरबदल के मामले में इंदिराजी की तरह राजीव भैया भी खबरनवीसों को गच्चा देकर मध्यप्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों को उड गए। उधर, राष्ट्रपति भी दक्षिण भारत कूच कर गए। चर्चाएँ गर्म थीं कि मंत्रिमंडल में भारी परिवर्तन किया जाएगा, कई दिग्गजों की छुट्टी कर दी जाएगी, कांग्रेस आलाकमान का नाक-नक्शा बदला जाएगा। लेकिन हुआ कुछ भी नहीं। राहत कुछ को मिली है, परन्तु सिंहासन बहुतों के डोल रहे हैं। कांग्रेस मुख्यालय में जो निठल्ले पदाधिकारियों के रूप में कुख्यात थे, अब वे सक्रिय हो गए हैं वरना हफ्तों उनकी जगह उनकी कुर्सी के दीदार हुआ करते थे। प्रधानमंत्री कहीं हों, राष्ट्रपति जहां भी हों, अटकलों के कम्प्यूटर थमे नहीं है। कहा जा रहा है कि संसद सत्र के ऐन मौके पर परिवर्तन किया जा सकता है या फिर सत्र समाप्त होते ही भारी परिवर्तन होगा। यह बात पक्की है कि राजीव गाँधी प्रधानमत्री के साथ-साथ कांग्रेस अध्यक्ष भी बने रहेंगे। कांग्रेस शताब्दि वर्ष जो है। विज्ञान भवन की प्रेस वार्ता में उन्होने कहा भी था कि उन्हें दोनो पद काट नहीं रहे हैं 'मैं दोनों जगह आराम से हूँ।'

स्थापित वामपंथी क्षेत्रों में भी होड लगी हुई है। प्रधानमंत्री के अधिक करीब कौन

रहे—सी पी आई या सी पी एम , इस बात पर होड है। पिछले दिनो युवक समारोह के अवसर पर दोनों पार्टियो के मुखिया नम्बूदरीपाद और राजेश्वर राव प्रधानमत्री के दाएँ तथा बाएँ बैठे। बीच मे थे राजीव गाँधी। कम्युनिस्ट पार्टी के मुख्यालय अजय भवन से रिसनेवाली जानकारियॉ है कि का राजेश्वर राव खुद राजीव गाँधी के प्रति नरम रुख अपनाने की पैरवी कर रहे है। इसका सबूत यह कि उन्होने राजीव की जमकर तारीफ की। कुछ ने तो यहाँ तक फब्ती कसी कि राव नही, प्रदेश का कोई काग्रेसी नेता बोल रहा है व पार्टी मे काग्रेस समर्थक तत्वो का फिर से बोलबाला होता जा रहा है। मार्क्सवादी नेता नम्बूदरीपाद भी 'ब्लो हाट-ब्लो-कोल्ड' यानी कभी नरम-कभी गरम जैसा रवैया अपनाने के पक्ष में है। वैसे कलकत्ता नगर निगम मे कांग्रेस को शिकस्त देकर मार्क्सवादियो ने यह जरूर जतला दिया है कि राजीव गाँधी उन्हे 'यूँ ही' न समझे। गुवाहाटी के कछार और सुदरवन मे जो लाल सत्ता है, वह कम्प्यूटरी प्यानोबाजी से यूँ ही नही हटाई जा सकती। कुछ भी सही, दोनो पार्टियाँ राजीव और उनकी पार्टी के साथ कोई 'निर्णायक रार' लेने के पक्ष मे नही है, अलबत्ता सत्र के दौरान घरेलू मामलो मे काग्रेस की खिचाई से चूकगी भी नही।

लगता है, दोनो पार्टियो मे एकता का सपना परीकथाएँ ही रहेगा। एक अरसे से दोनो पार्टियो के नेता बैठके कर रहे हैं और बैठक के तुरत बाद दोनों पार्टियो के नेता एक-दूसरे के खिलाफ लिखना और बोलना शुरू कर देते है। इसका दिलचस्प पहलू यह कि इस सबको 'राजनीतिक शास्त्रार्थ' की सज्ञा दी जाती है। पिछले दिनो इस सवाददाता के साथ बातचीत मे वयोवृद्ध मार्क्सवादी नेता और पॉलिट ब्यूरो के सदस्य बी टी रणदिवे कहने लगे 'अरे वो कम्युनिस्ट ही क्या, जो चाय की चुस्की न ले और पॉलिटिक्स न करे। दोनो पार्टियो की बैठक मे चाय चलेगी और बाहर पॉलिटिक्स भी।' देखिए यह चाय और राजनीति खडन-मडन का ही कमाल है कि चुनाव मे भी दोनो पार्टियाँ एक दूसरे के उम्मीदवार को हराने से पीछे नही रहतीं। फिर भी 'दुनिया के मजदूरो एक हो' का नारा। नमन् ऐसी चाय और शास्त्रार्थ को।

**16 जुलाई, 1985**

# बाँह पर ताबीज बाँधे कम्प्यूटरवाले गए विदेश

आजकल राजधानी मे 'झाडी फ्ल्यू' का प्रकोप है। नागरिक आम हो या खास, सभी इसकी लपेट मे है। रोग बहुत ताजा है और किसी अफ्रीकी या किसी और लाल-काले-पीले देश से नही आया है यह, 2 अक्टूबर की सुबह राजघाट से इसका जन्म और फैलाव हुआ है।

क्या कहे! नाश हो इन आतकवादियो का! दिल्ली मे झाडियो की शामत आई हुई है। जब से राजघाट पर झाडियो मे दुबककर कथित आतंकवादी ने प्रधानमंत्री राजीव गॉधी पर हत्या का असफल वार किया है तब से ही हर झाडी दुर्ग दिखाई देने लगी है। जिधर से राष्ट्रपति, प्रधानमत्री और कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति गुजरते है, समझ लीजिए उस रास्ते की सारी झाडियॉ चबल का बीहड दिखाई देने लगती है। रात-बिरात-आनन-फानन मे झाडियो की ऐसी-तैसी।

परसो का किस्सा ही लीजिए, *नई दुनिया* परिवार के वरिष्ठ पत्रकार अभय छजलानी को विदाई देने के लिए हवाई अड्डे जाना पडा। वे प्रधानमंत्री के साथ चार देशों की यात्रा पर जा रहे थे। वक्त रहा होगा रात के ग्यारह। विशेष बस मे साथ में कुछ और पत्रकार भी थे। 15-20 कि मी लबा रास्ता था। प्रधानमंत्री और दूसरे तमगाधारी खास नागरिको को भी इसी रास्ते से गुजरना था। बस से दोनो ने देखा कि हर झाडी की तलाशी ली जा रही है। वर्दीधारी लोग झाडियों को जोर-जोर से हिलाकर देखते। उनमे टॉर्च मारते। रास्ते-भर लगे पेडो पर कई-कई टॉर्चो की रोशनी मारी जा रही थी। तभी कोई बंदूकधारी झाडियों पर सगीन घोंपता दिखाई दिया। अभयजी ने यह माजरा देखकर चुटकी ली . 'कल कोई ब्यूरोक्रेट पट्टी पढा दे कि इनसे बचने के लिए इन पर तारों का जाल बिछा

दिया जाए तो देख लेना वैसा ही हो जाएगा। हर झाडी को काँटेदार तारो की ओढनी ओढा दी जाएगी और हर पेड के जिस्म पर कॉच रोप दिए जाएँगे, ताकि कोई पट्ठा आतंकवादी ऊपर चढ ही न सके।' कुछ पलो के लिए हँसी की जुगलबदी। विचार ने दस्तक दी, इतिहास कुछ सिरफिरे ही तो बनाते है, बाकी सब उसे ढोते रहते है लकीर के फकीर बनकर। सच तो यह है कि लकीर का फकीर बने, इसके लिए भी हमेशा कैसी भी घटना की जरूरत रहती है। 2 अक्टूबर 86 की सुबह से पहले झाडियॉ चैन की बसी बजाया करती थी, दरख्तो पर सावन का वास था, अब सुरक्षा गार्डो की तनी सगीने है। सगरूर दे पुत्तर करमजीत सिंह, यह क्या कर डाला तूने?

इसी उधेडबुन मे हवाई अड्डा आ चुका था। प्रधानमत्री तथा अन्य विदेशी अतिथियो के आगमन और बिदाई के लिए अलग हवाई अड्डा है। इसे बोलते है टेक्नीकल एरिया। वायुसेना की निगरानी मे आठो पहर रहता है। पास के बिना परिन्दा भी पर न मारे। चारो तरफ झाडी फोबिया था ही। कडी सुरक्षा। जब पिछले वर्ष यह लेखक बहामा गया था उसकी तुलना मे सुरक्षा के इतजाम अधिक थे। आतकवादियो की मेहरबानियॉ भी बढ गई है। इस दफे एक अच्छी बात रही। व्यवस्था सहज और स्वाभाविक लगी। पहले की तरह हडबडिया नही। लगता है अनुभवो का मामला है।

चलिए झाडी फोबिया से फिलहाल मुक्ति ले। खास मौको पर ही जगमगानेवाले इस हवाई अड्डे की दुनिया मे भी झॉक ले। कम दिलचस्प नही है यह।

हवाई अड्डे का दृश्य वैसा ही था। स्व इदिरा गाधी और राजीव गॉधी ने कई दफे कहा कि मुख्यमत्री और दूसरे नेतागण हवाई अड्डे पर फिजूल मे न आया करे, अपने प्रदेशो मे रहकर ही जनता के दुख-दर्द को अतिम बिदाई दिया करे। बात भी सही है। प्रधानमत्री के लिए विदेश आना-जाना एक रुटीन मामला है। फिर भी साहब कौन सुनता है। कहने को प्रधानमत्री बॉस है। पर इस मामले मे काग्रेसी एक नही सुनेगे चाहे कुछ भी हो जाए। देख लीजिए हवाई अड्डे पर आध्रप्रदेश की राज्यपाल कुमुद बेन जोशी मौजूद हैं। पूछा 'आप कैसे?" *नई दुनिया* मे अपनापा जताते हुए बोलीं 'श्रीनगर से लौट रही थी। सोचा प्रधानमत्रीजी को विदाई दे दूँ।" "आध्रप्रदेश मे सब खैरियत तो हैं ना?" उन्हे कुछ उकसाने की कोशिश की मैने। "देखिए क्या कहूँ। वैसे ठीक-ठीक ही है।" बस फिर एक दिन की इदौर यात्रा की स्मृतियो मे डूब गई। इसके आगे क्या सवाल करता? उन्होने बचने की तरकीब निकाल ली थी।

आगे बढा तो राजस्थान के मुख्यमत्री हरिदेव जोशी लपकते हुए मिले। नजर पडते ही बोले, "राजीवजी को विदा देने आए है।" फटाक से अभिवादन और विदाई

के लिए कतारबद्ध श्वेत चेलों में शामिल हो गए। उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री भी आ धमके। केंद्रीय नेताओं को तो होना ही था। ऐसे मौके पर प्रदेश के और भी ढेर सारे नेता मौजूद थे। अलबत्ता मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री मोतीलाल वोरा की गैरमौजूदगी साफ थी। पहले वे आनेवाले थे। अंतिम क्षणो में क्या हुआ, श्यामला हिल वाले जाने। और भी कई नामी-गिरामी नेताओं का जमघट लग चुक था। यह साफ था, पहले की तुलना में सासदों की भीड कम थी।

बॉस को विदाई देनेवालों की दो श्रेणियाँ है, 'ज्यादा खास' और 'कम खास'। ज्यादा खास वाले वायुयान के बिलकुल करीब पंक्तिबद्ध 'अटेंशन मुद्रा' में खड़े रहते है। इनमे केंद्रीय मंत्री, मुख्यमंत्री, राज्यपाल, उपराज्यपाल, महापौर, तीनो सेनाओं के अध्यक्ष आदि रहते है। विमान से दूर लाइन में सांसद, अधिकारी, पत्रकार और सत्ता-गलियारों मे घुसने के लिए जुगाड करनेवाले लोग रहते हैं। भाई लोग, पास मार लाते हैं। भीड की शोभा बढाते हैं। अब चूँकि प्रधानमंत्री के आने में वक्त है, नेताओं की बातचीत का जायजा ले लिया जाए। कोने में खडे हैं, काबीना मंत्री बसंत साठे। लबे-तडाक और विवादास्पद। इन्हें साल में दो दफे विचारो की जुगाली का दौरा पडता है। इसलिए अखबारी सर्खियों में बने रहते है। पिछले दिनों हैदराबाद से ट्रेनिंग लेकर लौटे हैं। जानते ह, अधिकारियो के साथ साथ मंत्रियों को भी ट्रेनिंग लेनी पडेगी। कैसा जमाना आ गया है!

"हॉं तो साठेजी, आपकी ट्रेनिंग कैसी रही?" इस संवाददाता से रहा नहीं गया। "बहुत बढिया। मजा आया।" साठेजी बोले।

"इस उम्र मे और इस पद पर रहते हुए कुछ अजीब नहीं नौकरशाही के साथ पढते हुए? आप लोग तो पालीटिकल एक्जीक्यूटिव हैं।" मैंने उन्हें उकसाने की कोशिश की।

"नहीं-नहीं, ऐसी बात नहीं। काफी फायदा हुआ है। देखिए, जानते तो हम सब थे, पर इतनी बारीकी से नहीं। सेक्रेट्री लोग जैसा बतलाते, हम मान लिया करते थे। अब ऐसा नहीं हो सकेगा। ट्रेनिंग से सबसे बडा फायदा यह हुआ है कि अमुक परियोजना में क्या कमी है, वह क्यो नहीं लागू हो पा रही है, कुल मिलाकर हम पूरे प्रबंध का मूल्यांकन कर सकते हैं। आप जानते ही हैं, सरकार की कार्यशैली बदल रही है। कम्प्यूटर आ रहा है। हमें भी नए ढंग से अपने को ढालना होगा।"

इसी बीच आंतरिक सुरक्षामंत्री चिदम्बरम आ धमके। "लो ये आ गए। इनकी ही मेहरबानी से ट्रेनिंग लेनी पड़ रही है," साठेजी बोले। "चिदम्बरम, तुम्हारा दूसरा कैम्प कैसा रहा?" कुछ सकुचाते हुए लुंगीधारी राज्यमंत्री बोले, "बहुत अच्छा सर! अगला कैम्प फिर हैदराबाद में कर रहे हैं।"

इसी बीच एक दूसरे गृहराज्यमत्री अरुण नेहरू टपक पडे। लोग कुछ चौकन्ने हुए परतु उनके पीछे दौडे नहीं। कभी वक्त था, अरुण नेहरू जिधर से गुजरते, इकाइयों मे कँपकँपी फैल जाती थी, नेताओ की भीड चीरते हुए चले जाते थे, लोग करबद्ध उनके पीछे हो लेते थे। मजाल है, कोई उनके चेहरे पर नजर गडा लेता! और आज ? कहाँ गया वो जलाल? सब कुछ बेनूर। अरुण नेहरू चुपचाप मत्रियो की कतार मे खडे हो जाते है। एक बुद्धिजीवी इकाई कहने लगे "जोशीजी, पानी उतर गया है, काफी। समझ लीजिए, अरुण नेहरू बिल्कुल डाउन है, वैसे आउट नही है।" कैसी विडम्बना है! उ प्र के मुख्यमत्री वीरबहादुर सिह भी उनके पीछे नही लपके। नजरे चुराते रहे और कहा यह जाता है कि उ प्र की सनद सिह को नेहरू की बदौलत मिली है।

एक कोने मे खडे पूर्व विदेश सचिव भडारी दिखाई दे गए। आजकल इका मे विदेश-मामलो के सयोजक है। सोचा, मौका क्यूँ चूका जाए! पूछ लिया, "क्या भारत का पूर्व से मोह भग हो गया है? आजकल उत्तर से लौ खूब लगाई जा रही है?" तीर ठीक निशाने पर बैठा। रोमेश भडारी बोल पडे, "अरे भाई, इतनी जल्दी निष्कर्ष मत निकालो। अमेरिका के साथ मामूली सैनिक सबध सुधारे जा रहे है। भारत की नीतियो मे कोई बुनियादी अतर नही आया है। सच तो यह है कि यह सभव भी नही है।" पास ही मे प्रधानमत्री सचिवालय के एक परिचित वरिष्ठ अधिकारी खडे थे, कहने लगे "यह बिल्कुल सभव नही है कि हम बरसो पुराना नाता तोड दे। रूस के पति जो नीति है उसमे कोई बुनियादी अतर नही आया है। कुछ सैनिक हथियार खरीदे जा सकते है। बस।'

एक परिचित बुद्धिजीवी दिखाई दे गए। ऊचे पाए के है। प्रधानमत्री के मित्रो के बीच उठना-बैठना है। उनका निष्कर्ष था "राष्ट्रपति रेगन के रहते हुए तो अमेरिका के साथ सबध सुधर ही नही सकते। आगे जाकर भले ही कुछ दिखाई दे। फिलहाल सबधो का दिखावा जरूर रहेगा।" एक दिन पहले इका के एक वरिष्ठ नेता का मत था कि "अमेरिका और भारत के बीच एक खुले क्षितिज पर कुछ सबध बनेगे।"

ध्यान लौटा भडारीजी पर "कैसी लग रही है नई भूमिका – राजनयिक से राजनेता?"

"बिल्कुल ठीक। मै तो पहले भी ऐसे ही रहता था। आप बहामा, अमेरिका मे देख ही चुके है।"

"तब राज्यसभा की तैयारी जोरो पर होगी? 1988 दूर नही।" मैने चुटकी ली।

"अरे भाई माफ करो," वे जैसे जान छुडाते हुए भागे।

इसी बीच प्रधानमंत्री पहुँच चुके थे। भागदौड़ शुरू हो गई। पत्रकार भी फटाफट जम गए। सबका अभिवादन स्वीकार करते हुए पत्रकारों तक पहुँचे। हल्के-फुल्के सवाल हुए। वे फूलों से लदे हुए थे। मेरे पास खडे किसी नेता ने एक बड़ा चौड़ा ताबीज उनकी बॉह पर बॉधा। गले मे कोई झाड-फूँकवाली माला पहनाई। नेता अपने में कुछ बुदबुदाया। राजीव मुस्कराए। सोनिया गॉधी ने दिलचस्पी से देखा। 'आई बला को टाल तू' नेता ने कहा होगा। टोना-टोटका, कम्प्यूटर का मायाजाल और 21वीं सदी की गूँज, है ना विडबनाओं व चमत्कारो से भरा भारत का आसमान!

**14 अक्टूबर, 1986**

# कोई हारा, कोई जीता,
# दिल्ली के दिल पर यह बीता

सामने एक बडा-सा ब्लैक-बोर्ड लगा हुआ है—बिल्कुल सपाट खामोश और तटस्थ जैसे उसे इर्द-गिर्द खडी भीड से फिलहाल कोई मतलब ही न हो। मै जहाँ हूँ वह कनाट प्लेस है राजधानी का खूबसूरत टुकडा हिप्पियो की सैरगाह चायघरो और कॉफी-हाउसो से भरपूर सरकारी क्लर्को के लिए चुटकी भर तसल्ली और किसी ग्रामीण के लिए अजूबा।

देखते-देखते भीड बढती जा रही है। फुटपाथो पर शोर उगना शुरू हो गया है। ब्लैक-बोर्ड पर हरकत हुई और सफेद चॉक ने चन्द अक टीपे। ठहरे हुए हुजूम मे हलचल मच गई और कुछ जोरदार आवाजे उभरी— 'इन्दिरा गॉधी जिन्दाबाद इन्दिरा गॉधी जिन्दाबाद।' चुनाव-परिणाम बोर्ड ने दिल्ली की चार सीटो पर और देश के अन्य भागो मे सत्तारूढ काग्रेस की सफलता की घोषणा की। दर्शको की प्रतिक्रियाओ का सिलसिला तेजी से चल पडा

एक ने कहा—"मिस्टर हमने तो तुमसे पहले ही कहा था कि काग्रेस की गुड्डी चढ जाएगी।"

दूसरे ने टोका—"अजी साहब अभी तो ढेर सारे परिणाम बाकी है। देखिए तो सही ऊँट किस करवट बैठता है। मुझे तो पूरी उम्मीद है, इन्दिरा सरकार को बहुमत नहीं मिलेगा।"

तभी बीच मे एक टैक्सी ड्राइवर कूद पडे। मूँछो को बल देते हुए तुनककर कहने लगे—"ओ बादशाहो, साड्डी गल्ल सुनो। तुसी देख लेना सातो सीटे काग्रेस को मिलेगी। टैक्सीवाला दॉ सारा वोट इन्दिराजी नूँ गया है।"

दैनिक पत्रो के दफ्तरो के सामने हुजूम बढता जा रहा था। *हिन्दुस्तान टाइम्स* और *स्टेट्समैन* के दफ्तरो के सामने लोगो की गहमागहमी, उनकी बेताबी, चिल्लाहटे, रास्ता देने के लिए कार-टैक्सी, बसवालो के अनुरोध और ट्रैफिक पुलिस की सीटियॉ–खीझ और उत्साह के मिले-जुले वातावरण की रचना कर रहे थे। एक सवाददाता झुँझलाकर बुदबुदाया–"आखिर ये लोग इतने बेचैन क्यो है ? सवेरे अखबार नही पढ सकते क्या?" एक महिला सवाददाता मुखरित हुई- प्लीज अडरस्टैड दी ऐग्जाइटी आफ दी पीपुल। दे आर विद दी मैडम (इन्दिरा गॉधी)।" सूचनापट पर नई काग्रेस की विजय के कुछ अक उभर आते है। कुछ लोग जोश मे आ जाते है। ढोल-मजीरा तबला गिटार वायलन सभी जैसे एक साथ एक स्वर हो झकृत हो जाते है। कही भॅगडा चालू हो जाता है, कही ट्विस्ट। जीपो, स्कूटरो और लॉगो का जमघट हो जाता है। कनाट प्लेस को घेर लिया गया है। वृत्ताकार कनाट प्लेस मे एक और वृत बन गया है। कॉफी-हाउसो मे प्यालो की टकराहटे और भी तेज होती जा रही है। लोग कह रहे है–"एक नए दौर की शुरूआत हो रही है। फिरकापरस्त हारेगे। वक्त के खिलाफ जानेवालो के खिलाफ वक्त चला जाएगा।" एक टी-टोटलर कहता है--"इसी बात पर एक कप चाय और हो जाए।" उसका साथी कहता है– "अबे नहीं, आज तो मौसम नशीला है। बोतल खुल जाए। जीत की खुशी जरा झूम के मने।" वे दोनो उठकर एक 'वाइन-शॉप' की तरफ चल देते है। नई काग्रेस के कुछ समर्थक धीरे-धीरे एक काफिले मे बदल जाते है और काफिला प्रधानमत्री के निवास-स्थान की ओर बढ जाता है। मैं कनाट प्लेस से ऊबकर बहादुरशाह जफर मार्ग की ओर बढ रहा हूँ।

इस मार्ग पर समाचारपत्रो के कार्यालय है। सभी ने परिणाम-पट्ट लगा रखे हैं। भीड एकाएक झूम उठी। एक ने टैक्सी पर चढकर कागज के लाउडस्पीकर से आवाज लगाई--"बोल इन्दिरा गॉधी की जय। समाजवाद जिन्दाबाद। जनसंघ, स्वतत्र, गप्पा काग्रेस हाय-हाय-हाय।" दूसरी तरफ कुछ कम्पोजीटर और ठेलेवाले मिठाइयॉ बॉट रहे है। भीड मे खडे मेरे एक लेखक-मित्र ने फरमाया "यह अच्छा नहीं हुआ। सफल लोकतत्र के लिए सशक्त विरोधी दल निहायत आवश्यक है। आज लगता है ससद बेजान हो गई है। मतदाता एक बार और विवेकहीन हो गए हैं या उन्हे ठग लिया गया है।" एक पत्रकार तपाक से बोले "मगर इस बेजानपन के लिए कौन उत्तरदायी है? यदि विरोधी नेता वास्तव मे एक समर्पित विरोधी भूमिका निभाते तो सम्भवत आज ऐसा नही होता। वे सही माने में जनता मे बिश्वास जगाने मे असफल रहे है। एक सतही वातावरण मे रहे। 'नेगेटिव अप्रोच' रखी। इन्दिरा गॉधी बुनियादी परिवर्तन ला सकेगी, इसमे शक है। फिर भी यथा स्थिति को कहॉ तक ढोया जा सकता था।"

दरियागज के चौमंजिले मकानो पर लगे टी वी एरियलो पर रात उतर आई है। टेलिविजन मे एक पुरानी फिल्म दिखाई जा रही है। कई दर्शक फिल्म से बोर हो रहे है मगर सेट से ऑखे हटाएँ भी तो कैसे, बीच-बीच मे चुनाव-परिणाम जो दिए जा रहे है। साथ ही विभिन्न राज्यो से आई चुनाव फिल्मे भी। राजस्थान की चुनाव फिल्म मे जयपुर की राजमाता श्रीमती गायत्री देवी का चेहरा उभर आता है। उनसे पूछा गया है कि आपने मतदाताओ को क्या आश्वासन दिए थे और उन्हे पूरा करने के लिए क्या करेगी? वह कह देती है कि मैने आश्वासन दिए ही नही। आसपास बैठे लोगो के चेहरो पर एक हल्की-सी मुसकान तैर जाती है। इस उत्तर से शायद वह अनाश्वस्त ही रह गए है। सेट पर विजय कुमार मल्होत्रा का चेहरा कुछ थका-सा, कुछ चिन्तित-सा लग रहा है। वह कहते हैं कि चुनाव के परिणाम अप्रत्याशित है। इन्दिरा गॉधी ने अमीरी-गरीबी का सवाल उठाकर लोगो को अपनी ओर कर लिया है, लेकिन यह स्थिति चलनेवाली नही है। अधिकतर बुद्धिजीवियो ने जनसघ को ही मत दिए है।

मुकुल बनर्जी का चेहरा अपनी ही विजय से कुछ विस्मित-सा लग रहा है। उन्हे जैसे अपनी जीत का विश्वास नही हो पा रहा है। सुखद आश्चर्य से धीरे-धीरे उनका चेहरा खिलता जा रहा है। रात के बारह बज चुके है। टेलिफ़ोन घरघरा उठा है। टेलिफोन जयपुर से है और एक दबग छात्र नेता कह रहे है—"यार देश की इस गुलाबी नगरी मे इतनी रात गए भी मस्तियो का सिलसिला चल रहा है। मिर्जा इस्माइल रोड और रामनिवास बाग मे लोगो की बेशुमार भीड है। हर क्रासिग चुनाव-चर्चा से गर्म है। मतदाता का कहना है उसने एक हद तक सामन्ती जुआ उतार फेका है। मगर मेरा कहना है अभी हम पूरी तरह से जुए से मुक्त नही हुए है। यह जुआ उतर सकता है बशर्ते कि इन्दिरा गॉधी ठोस कदम उठाएँ। मै कहे देता हूँ—सामाजिक परिवर्तन के लिए जनता ने यह अन्तिम अहिसात्मक हथियार राजनीतिक नेताओ को दिया है।"

टेलिफोन बन्द हो गया है। मै भी थक गया हूँ। चुनाव-परिणाम का पहला दिन (मार्च 10 1971) बीत गया है।

सुबह जैसे ही उठा हूँ, मेरा पडोसी कृष्ण मुद्गल खिडकी मे से झॉककर कह रहा है बच्चे जोर-जोर से चिल्लाने लगे है "इन्दिरा गॉधी जीत गई। इन्दिरा गॉधी जीत गई।" उनके हाथो मे पुस्तके है। परीक्षाएँ शुरू हो चुकी है। फिर भी शोर है—जीत और हार का। मकान-मालिक पडितजी फूले नहीं समा रहे है।

पुरानी दिल्ली मे विशेष रूप से खामोशी छाई हुई है। चॉदनी चौक— जनसघ का गढ— बेगाना हो चुका है। चॉदनी चौक स्थित नगर निगम के घडियाल का

स्वर इक्के, ताँगे, ठेले और झल्लीवालों की कान चीरती आवाजों में डूब गया है। झल्लीवाला कह रहा है "हमारी झुग्गियाँ हटाने का मजा देख लिया न।" पहाडी धीरज के निवासी शर्माजी बोल उठे "दिल्ली की जनता भद्दे पोस्टरों और नारो से ऊब चुकी थी।" दिल्ली निवासियो के गिलो-शिकायतों का दफ्तर खुल चुका है। जितने मुँह उतनी हिकायते, उतनी ही शिकायते। दिल की निकालने मे कोई किफायत नहीं कर रहा है। खुशी मे झूमती हुई जनता प्रधानमत्री के निवास की ओर बढी जा रही है।

प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी दर्शन देती है। उन्हे फूलमालाओ से लाद दिया जाता है। इसी बीच किसी की दृष्टि उनके गले मे हमेशा पडी रहनेवाली रुद्राक्ष की माला पर पड जाती है। वह अपने साथी से कह रहा है "इस माला मे अवश्य ही कोई न कोई जादू है।"

एक पत्रकार बधाई देने के साथ लड्डुओ की माँग कर बैठा है। लड्डुओ का दौर भी चल रहा है और सवालो की झडी भी जारी है। इन्दिराजी मुस्करा रही है और कह रही है कि मै तो हमेशा मुस्कराती हूँ, परिस्थिति चाहे जैसी भी हो। बातो ही बातो मे बधाई देनेवालो की यह सभा पत्रकार-सम्मेलन मे बदल जाती है। सम्पत्ति अधिकार सर्वोच्च न्यायालय, प्रिवीपर्स, सविधान मे सशोधन और नए नेता के चुनाव पर प्रश्न पूछे जा रहे है। वह कह रही है "पहले मै नेता तो चुनी जाऊँ।"

एक सवाददाता कह उठता है 'क्या इसमें आपको शक है' वह उत्तर देती हैं कि प्रश्न शक का नही प्रणाली का है।

होली। आठ बजे से रग खेलना शुरू हो गया है। दोपहर हो चुकी है। चाँदनी चौक मे घोडो के स्थान पर 'गधा दौड' हो रही है। दौड में सत्तारूढ काग्रेस को प्रथम, डी एम के को द्वितीय और जनसघ को तीसरा स्थान मिला है। काका हाथरसी घोषणा कर रहे है "सभी पराजित उम्मीदवारो ने मूर्ख-दल मे शामिल होने का फैसला कर लिया है। हम पहली अप्रैल को जबरन लोकसभा हथिया लेगे क्योकि अब बुद्धिमानो के दिन समाप्त हो चुके है।"

होली-मेला समाप्त हो चुका है। एक मन्त्री के घर पर कुछ व्यक्ति जमा है। मन्त्री महोदय बता रहे है कि मध्यावधि चुनाव की घोषणा के बाद बडे-बडे दिग्गज भी अनुमानो के चक्रव्यूह मे घिरे हुए थे, सत्ता काग्रेस के उत्साही नेता भी 180 से अधिक सीटो की उम्मीद नही कर रहे थे। अब इतनी सीटे आ गई है तो घबराए हुए है कि कही भीड मे खो न जाएँ। जो सत्ता काग्रेस का टिकट पाकर भी हार गए उनके तो रग ही उडे हुए है।

मैं अब फिर उसी ब्लैक-बोर्ड के सामने आ गया हूँ। वहाँ अब कोई नहीं है। केवल एक बल्ब जल रहा है। बोर्ड के पास एक व्यक्ति बैठा है और उसके हाथ मे चाक है। अब किसी की निगाह उस बोर्ड पर नहीं जाती। 10 मार्च की भीड की वह खुशी अब शायद शिथिल हो गई है। लोगो की पहलेवाली उत्सुकता ढलती जा रही है। 'हमे क्या' वाला भाव चेहरो पर फिर उभरने लगा है।

**28 मार्च, 1971**

# ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती का 757वाँ वार्षिक उर्स

सदा दोहरायी जानेवाली मुरादे न खत्म होनेवाली फरियादे मनचाही मन्नते दुआओ की चीखती मॉगे—सभी कुछ भीड मे था। फटी बिवाइयॉ फटे कपडे, लगडे-लूले, जमीन से घिसटते, कावडो मे लदे, समय से पिटे, समय पर सवार, बुर्को से ढके दल, बॉब-कट हेयर, सफेद चमडी के दल तिलक-धोतीधारी, काली शेरवानी, लबी दाढी, पान चबाते लोग, नगे बदन उनके रहनुमा सफेद टोपीधारी और पुलिस सरक्षक भीख के लिए पसरते हाथ, खुशबू से तर बेशकीमती चढावे, ये सब भीड के साथी थे। यह भीड 'सकून' की तलाश मे थी। रेलो, बसो, कारो, ट्रको और ऊँट-गाडियो से और कुछ पैदल भी आयी थी। इसी तरह बादशाह अकबर भी सकून की खोज मे आगरा से अजमेर के लिए पैदल आया था। हजरत ख्वाजा ने अकबर की पुत्रेच्छा पूरी की थी। इसी पुत्र जहॉगीर ने हजरत ख्वाजा की मजार के अदर सुनहरा कटहरा बनवाया और कृतज्ञ पिता अकबर ने मजार के दरवाजो मे किवाडो की जोडी लगवायी। मजार के गुबद पर सुनहरी कलश और कोनो पर सुनहरी कलियॉ लगवायीं। मध्य एशिया के सीस्तान कस्बे मे 1143 मे जन्मे, जिदगी से छुटकारा पाने के लिए, सत हजरत सत्य और ज्ञान की खोज मे घर से निकल पडे थे। बुखारा, इराक, तबरेज और शाम होते हुए मक्का चले गये। हज करने के बाद मदीने मे तत्कालीन विख्यात सत हजरत शेख उस्मानी हारूनी से भेट की और उनके शिष्य बने और एक रोज गुरु की आज्ञा पा हजरत ख्वाजा भारतवर्ष की ओर चल पडे। भारतवर्ष मे अजमेर को अपना निवासस्थान बनाया। सदा यही दुआ मॉगने लगे—"हे अल्लाह! मुझे दर्द दे दे।" और फिर लोगो ने अपने बेशुमार दर्दो से ख्वाजा साहब की झोली भर दी। फिर मजार के चारो और मुरादो, फरियादो और ख्वाहिशो, चढावो का घेरा बन गया।

उर्स शुरू हुआ। पसीने से लथपथ हजारो की संख्या मे लोग दरगाह शरीफ मे दाखिल हुए। 85 फुट ऊँचे बुलद मुख्य दरवाजे से गुजरकर धूल मे सने पैर सगमरमर के फर्श की ओर मुड गये। फकीर की डफली तेजी से बजने लगी। उधर महफिलखाने से कव्वाली की आवाजे आने लगी। छोटी और बडी देगो मे भक्तो ने किशमिश, बादाम पिस्ता, काजू, नारियल, सौ-सौ दस-दस एक-एक के नोट, सोने के आभूषण और अनाज फेकना शुरू किया। पास ही 'अल्लाह मुराद पूरी करे एक पैसा दिला दे, कल से भूखा हूँ, बाबा रोटी खिला दे, तेरी जोडी बनी रहे फकीर को कपडा दिला दे, खुदा तेरी खैर करे--पेट का सवाल है'। देग भरने लगे। भिखारी बढने लगे। ये वही देगे है जो बादशाह अकबर और बादशाह जहाँगीर ने बनवायी थीं। अकबर द्वारा बनवायी गयी देग मे 100 मन चावल और जहाँगीर की देग मे 80 मन चावल पकता है। ख्वाजा साहब की मन्नत माननेवाले एक-एक अमीर भक्तजन ये देग चढवाते है। बहुसख्यक गरीब जन एक-एक मुट्ठी चावल या पैसा डालकर ही सतोष प्राप्त करते है। सोचते है ख्वाजा साहब ने बहुसख्यक भक्तजन का एक मुट्ठी भर चावल 'कबूल' कर लिया है। सुदामा भी तो मुट्ठी-भर चावल लेकर कृष्ण के पास गया था। ईसा ने भी गडरियो के साथ भोजन किया था। तटस्थ मूक दर्शक के विचारो का सिलसिला टूटा जब किसी ने पीपो मे भरा शुद्ध घी देग मे गिरवाया।

मन्नती बेशकीमती मोतियो और नोटो से लदी मखमली चादरे मजार पर चढाने के लिए लाने लगे। आगे आगे गाजेबाजे वाले और पीछे चादर चढानेवाला और उसका परिवार चादर चढानेवालो की लबी कतार सी लगी हुई थी। दूसरी ओर बहुसख्यक भक्तजनो की लॅगडे लूले नगे अधनगे मैले कुचैलो की कतार थी। यह कतार मन्नतियो से तन ढॅकने और पेट भरने की भीख माँग रही थी, उन्ही मन्नतियो से जो कि बाबा की मजार पर बहुमूल्य चादर चढाने के लिए ले जा रहे थे। शायद चादर चढानेवाले जानते हो--यही सूफी सत हजरत ख्वाजा फटे कपडो पर पैबद लगाकर इसान मे दरिया की सी सखावत (दानशीलता) आफताब की-सी शफक्कत (दयालुता) और जमीन की सी तवाजो (खातिरदारी) का उपदेश जिदगी भर देता रहा।

दालान मे नमाज पढी जाने लगी। दरगाह-बाजार व चप्पे चप्पे पर सिजदे के लिए हजारो नमाजी सिर दिखाई देने लगे--कुल 60 हजार से अधिक। वेसे उर्स मे डेढ लाख से अधिक तीर्थ-यात्रियो ने भाग लिया जिनमे 137 पाकिस्तानी तीर्थ-यात्री भी थे।

इधर मन्नत माननेवालो की तैयारियाँ तुला-दान . की शुरुआत-- बच्चो का कीमती वस्त्रो और मेवा से तोल होने लगा। एक समय था बेऔलादवाले औलाद

होने पर हीरे-जवाहरात, सोने-चाँदी आदि से तुला-दान किया करते थे, अब चीनी एव गुड का भी दान जायज हो गया है। दूसरी ओर बच्चो से घिरे, परेशान माता-पिता तुला-दान को देख रहे थे। एक बच्चा गोदी मे चीख रहा था तीसरा कपडे चबा रहा था और शेष आपस मे झगड रहे थे। एक बच्चा अपनी माँ को पैफलेट दिखा रहा था जिसे उसने दरगाह-बाजार की सडक पर से उठाया था। अम्मी द्वारा ध्यान न दिये जाने पर बच्चा अब्बाजान को पैफ्लेट दिखाता है। उत्सुकता से अब्बा पढते है–हुना लका दआ जक्रिया रब्बहू कअला रब्बे हब ली जुरियतन, तैय्यितन इन्नका समीउददुआऐ। (पैगबर हजरत जकरिया रब से दुआ करते है–'ऐ मेरे खुदा! मुझे एक अच्छी सतान दे। निस्सदेह तू प्रार्थनाओ को सुननेवाला है।') अब्बा की नजर बारी-बारी से अपने सात दुबले-पतले बच्चो पर गड जाती है और फिर तराजू म तुल रहे बच्चे पर आ टिकती है। परचे पर लिखा था–परिवार नियोजन कुरान और हदीस की रौशनी मे। इस्लामिक रिसर्च सोसाइटी द्वारा तैयार कराया गया यह पर्चा राजस्थान परिवार नियोजन विभाग द्वारा वितरित कराया जा रहा था। दरगाह से थोडी दूर पर राज्य सरकार द्वारा पहली बार एक प्रदर्शनी आयोजित की गई थी जिसमे 'भारत दर्शन राजस्थान दर्शन परिवार-नियोजन 'सहकारिता' 'अल्प बचत' जीवन बीमा' 'विकासशील अजमेर आदि के मडप थे। राजस्थान जनसपर्क निदेशालय द्वारा शहर भर मे साप्रदायिक एकता का प्रतीक 'ख्वाजा साहब का उर्स एकता का सगम' के पोस्टर लगाये गये। इसके साथ साथ जीवन बीमा एव परिवार नियोजन के पोस्टर भी बँटे।

आधी रात होने तक दरगाह शरीफ के बेगमी दालान शाहजहाँ की मस्जिद, अकबरी मस्जिद नगरखाना। नक्कारखाना भीड से खचाखच भर गये।

सुबह शुरू हुई देग पकने और फिर उसके लुटने के साथ। मोमजामाधारी लोग गर्म देग मे देखते देखते कूद पडे और बाल्टियाँ भर भरकर प्रसाद बाहर लाने लगे। प्रसाद के लिए भीड उमड पडी। होड शुरू हुई। प्रसाद बँटने लगा।

यह सिलसिला छह दिन तक चला। सातवे दिन गुलाबजल का छिडकाव हुआ जिसे 'कुल के छीटे' कहते है। प्रात ग्यारह बजे 'महफिलखाने मे साजो की मस्त धुन मे कव्वालियाँ शुरू हुई। ये कव्वालियाँ जहाँ ख्वाजा साहब की स्मृति को ताजा करती है वही मिलीजुली प्रार्थनाओ का रूप भी प्रस्तुत करती हैं। दरगाह के सबसे बडे धर्म-गुरु सज्जादानशीन जो कि ख्वाजा साहब के वशज है सदारत करते है। सज्जादानशीन पूरे सम्मान और सजधज के साथ आये मगर उनकी सजधज, भव्यता मे कितना स्थायित्व है यह बहुत कम लोग जानते हैं। कहने को सज्जादानशीन दरगाह के मालिक है, परतु असलियत कुछ और है। कुछ

वर्ष पूर्व तक 50 रुपये माहवारी मे उन्हे जीवन-यापन करना पडता था। पिछले दो सालो में बढकर यह राशि दो सौ रुपये हो गयी। इस बार काफी जोर देने पर 500 रुपये प्रतिमास, यानी 6 हजार रुपये प्रतिवर्ष कर दी गयी। चढावो से लाखो-करोडो की आय होती है लेकिन सज्जादानशीन का जीवन-स्तर धनाढ्य होने का भ्रम पैदा नहीं कर सकता।

अपरान्ह तीन बजे मजार का जन्नती दरवाजा बद हुआ। ख्वाजा साहब ने भी अपनी कुटिया के दरवाजे इसी प्रकार 6 रजब, 625 हिजरी (21 मई, 1238) को रात्रि की नमाज के बाद अतिम बार बद किये थे। दिन निकलने के साथ-साथ शिष्यो ने मजार की स्थापना के लिए दौड-धूप शुरू कर दी थी।

उस महान सत की मृत्यु हुए शताब्दियाँ बीत गयी, परतु उनकी आध्यात्मिक महानता एव इसानियत के सदेश आज भी जनसमूह की जबान पर है।

**27 सितंबर, 1990**

# रेत और हरियाली

राजस्थान के कुछ पश्चिमी जिलो मे 5-6 वर्ष के बाद हुई पहली वर्षा से इतना कोहराम मचा कि जैसलमेर, बाडमेर तथा अन्य अकाल-ग्रस्त भागो मे अकाल-राहत कार्य 15 अगस्त से बद करना पडा। वर्षा के बाद कुछ लोगो ने यहाँ तक दावा किया कि पिछले एक सौ वर्षो मे ऐसी वर्षा कभी नही हुई। फिर क्या था, एक तरफ अकाल-राहत-कार्य बद कर दिये गये और दूसरी तरफ खेतो म ऊँट बैलो के साथ-साथ पुरषो महिलाओ और बच्चो ने हल चलाये।

पहली फसल की नन्ही कोपलो ने सिर उठाना शुरू ही किया था कि भयकर आँधी ने आ दबोचा। बाडमेर और जेसलमेर जिलो के खेतो की क्यारियो मे रेत ही रेत दिखाई देने लगी। पौधे टूटने लगे। अकाल से पिटा किसान फिर आँधी से पिटा। जैसे ही अकाल-राहत कार्य बद हुए, किसान की रही-सही आशा भी सो गयी। पौधो को पोसने के लिए मजबूरन उसे महाजन का सहारा लेना पडा, परतु उसने भी देने से इकार कर दिया। कारण स्पष्ट था -वह वसूली के प्रति आश्वस्त नहीं था। कुछ दयालु महाजनो ने कर्जा दिया भी और आज की जवान फसलो का वह महज एक सस्ती-सी सहायता पर एकमात्र दावेदार भी बन बैठा। अक्टूबर के मध्य मे फसल कटने पर भी किसान भूख और कर्ज से ही दबा हुआ है।

**रामदेव का मेला** · जैसलमेर और जोधपुर के मध्य मे स्थित रूणेचा मे जहाँ बाबा रामदेव का मेला लगता है, आज भी अकाल के अवशेष है। लोगो के चेहरे भयभीत और झुलसे हुए हैं, पर प्रकृति का कोपभाजन बनने के बावजूद वे मेले मे शामिल होते है। राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र से सात वर्ष के निरतर अकाल की धीरे-धीरे सिमटती अनचाही छाया मे गत चार सितबर को रूणेचा ग्राम में

मुसलमानो के पीर और हिंदुओ के देवता बाबा रामदेव का मेला लगा।

सात वर्ष के बाद पश्चिमी क्षेत्र मे हुई पहली वर्षा के पश्चात लगा यह मेला जहाँ हजारो की सख्या मे ग्रामीणो को आकर्षित कर सका, वहीं दूर-दूर के शहरी लोगो ने भी इसमे भाग लिया। पिछले वर्षो मे पानी के अभाव के कारण मेला फीका-फीका रहने लगा था, परतु इस वर्ष डेढ लाख से अधिक तीर्थ-यात्रियो ने बाबा रामसा पीर के दर्शन किये और सहसा महिलाओ के मुख से निकल पडा

*गेहरी गेहरी वर्षा भाईडा,*
*पीछा की कर आया,*
*साँची साची बात बता दो म्हाने*
*कवर अजमलरा।*

परतु न तो वहां इतनी गहरी वर्षा ही थी और न ही पर्याप्त पानी। हॉ डूबते को तिनके का सहारा अवश्य मिला था। अकालक्षेत्र के वासियो को गत जुलाई की वर्षा ने इसी 'तिनके' का सहारा दिया था। फिर क्या था—ऊट बैल घोडागाडियो के साथ हजारो कदम मेले की ओर चल पडे। शहरो से बसे कारे जीपे, साइकिले और ट्रक आने लगे।

यह एक उल्लेखनीय बात है कि इसी समय अजमेर म ख्वाजा निजामुद्दीन चिश्ती का भी उर्स चल रहा था। दोनो स्थानो पर हिंदू-मुसलमान श्रद्धा के फूल चढा रहे थे। दोनो की मजारे चढावे मे दबी हुई थीं। यह दिलचस्प बात है कि बाबा रामदेव की समाधि न होकर मजारें है। जागीरदार अजमलजी के यहॉ 1461 के आसपास जन्मे बाबा रामदेव के हिंदू और मुसलमान समान रूप से भक्त है। किवदती है कि मक्का से पॉच पीर रामदेव के दर्शन करने आये। उस समय रूणेचा के जगलो मे रामदेव घोडा चरा रहे थे। यह देखकर एक पीर ने व्यग्य करते हुए कहा- 'क्या पशु चरानेवाला भी एक बाबा हो सकता है?' इस पर रामदेवजी ने कहा— क्या ईसा भेड नही चराया करते थे? हजरत मोहम्मद भी ऊँटो को चारा दिया करते थे। इस उत्तर ने पीरो को बहुत प्रभावित किया। हिंदू और मुसलमान दोनो ही बाबा रामदेव के शिष्य बनने लगे। सभी जातियो के लोग रामदेवजी के भक्त बन गये। एक शात सुबह को रामदेवजी ने जीवित समाधि ले ली। तभी उस स्थान पर एक कब्र बना दी गयी। यह कब्र आज भी मौजूद है जिसके पुजारी हिंदू है। मुसलमानो ने रामदेव को पीर और हिंदुओ ने बाबा कहना प्रारभ किया जो कि आज तक कहा जा रहा है

बाबा रामदेव के सबध मे अनेक चमत्कार से भरी गाथाएँ प्रसिद्ध है जिन्हे सभी जातियो के लोग बडे उत्साह से याद करते है। परतु मेले की विशेषता चमत्कारो

से न होकर उसमे आनेवाले लोगो से है। यद्यपि पूर्व वर्षो की अपेक्षा मेले की ताजगी मे कमी आती जा रही है, लेकिन आज भी महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश बिहार मैसूर और राजस्थान के विभिन्न भागो से दर्शनार्थी यहाँ आते हैं। काफी लोग दरगाह उर्स मे शामिल होकर अजमेर से सीधे यहाँ चले आते है।

मेले मे आनेवालो मे 65 प्रतिशत व्यक्ति हरिजन 30 प्रतिशत उच्च जाति के और 5 प्रतिशत मुसलमान है। इसके विपरीत अजमेर शरीफ के उर्स मे 15 प्रतिशत हिंदू, 75 प्रतिशत मुसलमान और 10 प्रतिशत हरिजन होते है। बाबा रामदेव के मेले मे ग्रामीणो और निर्धनो की सख्या अधिक देखी गयी, जबकि ख्वाजा साहब के उर्स मे शहरी एव मध्यम श्रेणी के व्यक्ति अधिक आये। दोनो स्थानो पर साप्रदायिक एकता और मिले-जुले रस्म रिवाज एव व्यवहार का वातावरण था। अजमेर मे सरकारी व्यवस्था की छाप स्पष्ट थी, जबकि दोनो स्थानो पर बाहर से आनेवाले व्यक्तियो की सख्या लगभग बराबर ही थी। एक और भी अतर है—रूणचा एक पचायत है और अजमेर जिले का मुख्यालय।

बाबा रामदेव के अनुयायी उन्हे कलियुग मे एक अवतार के रूप मे मानते है। अपने युग मे उन्होने कुल 24 चमत्कार बताये। सबसे प्रसिद्ध चमत्कार भैरव राक्षस' का वध माना जाता है। रामदेवजी ने लोककल्याण की दृष्टि से इस क्षेत्र के भैरव राक्षस को मारा था। बाबा रामदेव का जन्म भी विचित्र अलौकिक परिस्थितियो मे हुआ था। इनके पिता अजमलजी ने द्वारकाधीश के मदिर मे ईश्वर से एक पुत्र पाप्ति का वरदान प्राप्त किया था।

रामदेवजी के वश के लगभग सौ परिवार वतेमान समय मे रूणचा एव पोकरण क्षेत्र मे बसे है। रामदेवजी के मदिर की साल-भर की आय को परिवार के सदस्यो मे समान रूप से वितरित कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त इसी आय से लॅगडो-लूलो का एक अनाथालय भी चलाया जा रहा है। इसी वश के एक सदस्य रूणेचा पचायत के सरपच है, जो कि मेले की व्यवस्था करते है। मेले के आयोजन मे पचायत समिति का सदैव से प्रमुख हाथ रहा है। ग्रामीण महिलाओ का एक रेला ऊँचे स्वरो मे गाता हुआ मदिर की ओर बढ रहा था।

चारो ओर मॅजीरे, ढोलक, सारगी, नगाडे और एकतारे के स्वर गूँज रहे थे—उसी तरह जिस प्रकार दरगाह शरीफ मे कव्वालियो एव मुशायरो की आवाजे।

खुले आकाश की चॉदनी मे रात-भर कीर्तन, नौटकी, चलचित्र के प्रदर्शनो ने जंगल को सात दिन के लिए एक सगीत मे डूबी खूबसूरत बस्ती मे परिणत कर दिया था। दूसरी ओर मेले मे लगी दुकानो की एक अलग ही कहानी थी।

छोटी-छोटी दुकानो मे कॉच की चूडियॉ, बिंदियॉ, गुलाल सिदूर, घटिया क्रीम-पाउडर, मणियो की मालाएँ हाथी-दॉत के कगन बिक रहे थे। दूसरी ओर बीमारियो को निमत्रण देती हुई मिठाइयो एव शरबतो की दुकानो पर ग्रामीणो का जमघट था। शायद अकाल के बाद पहली बार पकवान एव रग-बिरगे शरबतो का मजा आया होगा।

दूसरी तरफ रामदेवजी के मदिर के पिछवाडे मे स्थित रामतालाब पर लगी भीड कह रही थी—"कई सालॉ बाद ई तालाब मे नहाबा को मन भररो मोको मिलो है।" (कुछ देर के लिए ही सही।) पिछले कई वर्षों से यह रामतालाब सूखा पडा था। इस बार 15 फुट पानी भर जाने के कारण तालाब मेले मे प्रमुख आकर्षण-केद्र बना रहा। इतना ही नहीं, अनेक ग्रामीण बच्चे जिन्होने कभी वर्षा नही देखी थी और न ही कोई सागर रामतालाब को हैरत से देख रहे थे, यहॉ तक कि पानी के पास जाने मे उन्हे डर लग रहा था। एक महिला ने जबरन अपने बच्चे को घाट पर ले जाकर पानी मे उतार दिया और तैरना सिखाने लगी। वास्तव मे इतना पानी एक ही स्थान पर देखकर चार-पॉच वर्ष के बच्चे तालाब को एक विचित्र दृश्य समझ बैठे थे। उन्होने तो केवल एक ही दृश्य देखा था—भूख से तडपते मनुष्य, प्यास से पीडित पशु और फिर उनकी मृत्यु। चारो ओर प्यास और फिर इतना सारा पानी! बच्चो को विश्वास न हुआ डरकर मॉ से चिपट गये। मेले की समाप्ति के साथ-साथ महिलाओ ने बाबा रामदेव से प्रार्थना की।

'रतना राई रा बीरा बेगो बेगो जावजो बाई सुगना नो लावणी जियो।"
(रतना का भाई जल्दी-जल्दी जाओ और बहन को शीघ्र ही ससुराल से लिवा लाओ।)

जैसलमेर, बाडमेर और जोधपुर के अकाल-ग्रस्त क्षेत्रो मे जाते हुए जैसलमेर से कुछ पहले औरतो को 'लाव' (बैलो द्वारा खींचे जानेवाला रस्सा) ढोते देखा। आठ स्त्रियॉ तीन सौ फुट गहरे कुएँ से पानी लाव द्वारा निकाल रही थी। बैलो के अभाव मे इन महिलाओ को ही जुतना पडा। महिलाओ ने बताया कि उन्हे चार-पॉच मील पानी सर पर रखकर ले जाना पडता है। कुएँ से ढाणियॉ (बस्तियॉ) बहुत दूर-दूर थी। दिन मे कम से कम दो बार इसी प्रकार पानी ले जाना पडता है। कुएँ के पास एक ट्यूबवेल भी था, परतु सरकारी लालफीताशाही के कारण पिछले काफी समय से खराब पडा हुआ था। गॉववालो ने अकाल की मार के बावजूद 15 सौ रु एकत्र किये और सरकार से उस ट्यूबवेल को बनाने की प्रार्थना की। ट्यूबवेल बना, कुछ दिन चला, फिर खराब हो गया। ढाक के वही तीन पात। गॉव था— 'लाठी'।

**बुलद हौसले** इन महिलाओ के हौसले बुलद थे। अकाल इनके चेहरे की मुस्कराहटे नोच नहीं सका था। किसी भी चुनौती का मुकाबला करने की न खत्म होनेवाली स्पष्ट चाह उनके चेहरे पर झलक रही थी। याद आया भूमि-सघर्ष के दौरान पूर्णिया जिले (बिहार) का दौरा किया तो वहॉ की महिलाओ मे इसका अभाव था। वहॉ की किसान महिलाएँ पस्तहिम्मत और जीवन के प्रति बेरुखी की शिकार मिली जबकि जैसलमेर और बाडमेर जैसा अकाल वहॉ नहीं था, पानी 40 50 हाथ पर ही उपलब्ध हो जाता था। अगस्त मे चारो तरफ वहॉ हरियाली थी परतु एक न टूटनेवाली उदासी भी।

"जमिन काम सूॅ पेट कोन भरीज। मवेशी पॅणरे धधेस गुजारो हूवे है" जैसलमेर का दौरा करते वक्त अमर सागर के कालू माली ने कहा। जैसलमेर के इस गाव मे आधे से भी अधिक पशु अकाल मे मर गये। कालू ने बताया कि 120 बकरियो मे से 20 बकरी बची है और दस गाय मर गयी। दस हजार का कर्जा हो गया जिसमे तीन हजार सरकार का। कालू का कहना था कि खरीफ की फसल पकने तक अकाल-सहायता जारी रखी जानी चाहिए थी। इस क्षेत्र के ससद-सदस्य श्री अमृत नाहटा ने भी सरकार से माग की है कि बाडमेर एव जैसलमेर के किसानो मे पॉच करोड रुपया ऋण बतौर बॉटा जाये जिससे कि पशु खरीदे जा सके। इसी क्षेत्र क एक नखतू किसान की भी यही मॉग है। उसकी 900 गायो मे से 800 गाये मर गयी और 125 बकरिया मे से 25 बकरियॉ बची है। रामगढ के नजरुल खॉ ने कहा कि वर्षा से कोई लाभ नही हुआ, जो कुछ हुआ उसे बाद की ऑधी ने समाप्त कर दिया। जिलाधीश ने पोकरण मे बताया गया कि ऑधी से 50 प्रतिशत फसल का नुकसान हुआ है। उनका कहना है कि जिले मे जल-समस्या नही है। परतु ढबला ग्राम के बूला महाराज ने बताया कि इसके अभाव मे उनकी तीन सौ बीघा की फसल नष्ट हो गयी। वास्तविकता तो यह है कि जिले मे ट्यूबवेल का भारी अभाव है, जो है उनमे से अधिकाश खराब पडे है। इस बात से सहमति जिलाधीश ने भी व्यक्त की। जिले मे ढाई सौ से अधिक ट्यूबवेलो की आवश्यकता है उपलब्ध केवल 40 है लेकिन किसान इनका भी उपयोग नही कर सकते। उनके पास इतना पैसा नही कि वे बिजली एव पानी का बिल चुका सके। सरकार पानी देना चाहती नही—वर्षा जो हो गयी, अकाल राहत-कार्य जो बद हो गये। जिले के 512 गॉवो की लगभग 1 लाख 30 हजार जनसख्या और लगभग 18 लाख पशु अकाल से प्रभावित है। सबसे अधिक क्षति पशुधन को पहुॅची है। सीमां-क्षेत्र की सम तहसील के 85 प्रतिशत पशु समाप्त हो गये।

पशुधन के अभाव मे वर्षा हुई, तो इसका पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया जा सका। चारो तरफ चारा ही चारा है, परतु इस बार कोई चरनेवाला नहीं। दूर-दूर

तक पशु देखने को नहीं मिलते। भूमि भी काफी थी, पानी भी, परंतु जोतने के साधन नहीं थे। सरकार ने कुछ ट्रैक्टर उपलब्ध भी कराये, लेकिन किराया बीस रुपया प्रतिघटा होने के कारण गरीब किसान इससे वंचित रहे। निजी ट्रैक्टर की दर 25 रु प्रतिघटा थी। इसके साथ ही जिन किसानों ने अकाल के दौरान पशु-शिविर मे अपने पशु जमा कराये थे वे उन्हे वापिस नहीं मिले। रूपसी ग्राम के नागूराम और खुशालराम ने अपने लिखित बयानो में कहा है कि उनकी गाये मॉगने पर भी नही लौटायी गयी। इस प्रकार की शिकायते जिले भर मे काफी सुनने को मिली।

जैसलमेर जिले की अपेक्षा बाडमेर अधिक समृद्ध और विकासशील दिखायी दिया, हालॉकि वर्षा दोनो जिलो मे लगभग समान ही हुई। बाडमेर जिलाधिकारी की सूझबूझ के कारण वर्षा का अधिकतम लाभ किसानो को पहुँचा। बाडमेर मे ज्ञात हुआ कि उस समय जिले के किसानो को बकाया अकाल सहायता प्रतिव्यक्ति साढे बारह रु दी जा रही थी, साथ ही मक्का देने की भी व्यवस्था थी। बाडमेर जिले की यात्रा चौहटन्न तहसील से प्रारभ की। इस तहसील मे बालू के टीले, कॅटीली झाडियॉ, पानी की गहराई और झरनो की अपनी विशेषताएँ है। इस तहसील मे वर्षा की अधिक कृपा रही, चारो तरफ हरियाली ही हरियाली थी। ठीक इसके विपरीत जिले के गडरा रोड और शिव तहसील मे पानी की भारी कमी थी। बूठीया, गागारिया, पॉदी का पार, रामसर, सेतराऊ, चाढी, सियाणी, देरासर और गडरा रोड मे एक वर्षा की और आवश्यकता थी, जबकि शिवाणा और चौहटन्न तहसीलो मे इतना बाजरा होने की अपेक्षा है कि अगले तीन वर्ष के लिए पर्याप्त होगा। वैसे जिले की चौहटन्न, धोरीमन्ना, सिणधरी, पचभद्रा और शिवाणा तहसीलो मे अच्छी फसल होने की आशा है। इसके विपरीत पचायत समिति बाडमेर, शिव और बायतू मे देर से बुवाई के कारण अच्छी फसल होने मे सदेह है।

इन तहसीलो का दौरा करने पर ज्ञात हुआ कि जैसलमेर जैसी स्थिति यहॉ के किसानो की नही थी। वर्षा कम होने पर भी अधिकाश किसान सतुष्ट थे और उत्साही भी। अकाल के दिनो मे बिहार के पूर्णिया एव सहरसा जिलो मे ठीक ऐसी ही स्थिति मे किसानो मे भय, आतक और निराशा पायी गयी, किनु यहॉ जीवन के प्रति एक स्पष्ट उत्साह झलकता था। अधिकारी से नजर मिलाने और न्याय मॉगने की उनमे हिम्मत थी। आज से 15 वर्ष पूर्व जागीरदारी व्यवस्था मे इसी जिले के ये ही किसान अत्याचार के विरुद्ध 'उफ' तक नहीं कर सकते थे। हमेशा छोटे-मोटे लगभग 70 करो से दबे रहते थे। खटिया-कर एव बेकार-कर तक अदा करना होता था। इस परिवर्तन के सबध मे युवक जिलाधीश चद्रप्रकाश का मत था कि अधिकारी वर्ग जब तक ग्रामीण जनता को एक मित्र के रूप मे नहीं देखते तब तक किसान-वर्ग से सहयोग की अपेक्षा करना व्यर्थ

है। इस जिले मे पशु हडप करने या अकाल-सहायता की अमानत मे खयानत करने की शिकायते जैसलमेर जिले की तुलना मे नही के बराबर थीं।

**पहले इद्र, फिर इंद्रा** अकालग्रस्त क्षेत्रो मे श्रीमती इदिरा गॉधी के अतिरिक्त मुश्किल से ही कोई नेता जाना जाता है। ग्रामीण महिलाऍ श्रीमती गॉधी को बड़े प्यार व दुलार से याद करती है। प्रधानमत्री को विभिन्न नामो से सबोधित किया जाता है। कोई उन्हे प नेहरू की लडकी कहता है तो कोई किसान की रक्षक। गेहूँ गॉव के भील मोडो ने कहा 'इद्राजी आपणी रक्षा करा हे। कदई पाणी कोनीहो जीको गॉव-गॉव पानी कर दियो।' गॉवो मे कहा जाता है कि पहले इद्र देवता बरसा, फिर इद्रा देवी, यानी वर्षा हुई और फिर अकाल-सहायता मिली। किसान इस सहायता को एक सरकारी अहसान मानते है न कि सरकारी कर्तव्य। अधिकार के प्रति लादी गयी नादानी आज भी किसानो मे है। राज्य सरकार अकाल पर अब तक 90 करोड रुपयो से अधिक व्यय कर चुकी है जबकि केंद्रीय सरकार इतनी राशि स्वीकार करने को तैयार नही। 20 22 करोड रुपये का झगडा अभी चल रहा है।

इन जिलो मे प्रमुख धधा पशुपालन है और खेती बाडी एक प्रकार से 'पार्ट टाइम जॉब'। फिर भी इस क्षेत्र के किसानो को लगभग 6 महीने बैठे रहना पडता है क्योकि देश के अन्य भागो की भॉति इन जिलो मे दो फसले नही होती, केवल खरीफ की ही फसल होती है। यदि किसानो को राज्य सरकार लघु कुटीर-उद्योग उपलब्ध करा दे तो काफी लाभ हो सकता है। अपने निर्वाचन-क्षेत्र का दौरा करते समय गडरा रोड पर मिले युवा तुर्क नेता और ससद-सदस्य श्री अमृत नाहटा ने कहा कि इस क्षेत्र मे एक विशाल दूध की डेरी स्थापित की जाये। इस डेरी पर कुल 80 लाख रुपया व्यय होगा और प्रतिदिन 12 हजार गैलन दूध का उत्पादन हो सकेगा। 1966 की जनगणना के अनुसार जिले मे 6 लाख 36 हजार 992 गो-वश के पशु एव गाये 27 हजार 887 भैसे एव पाडे-पाडियॉ 7 लाख 92 हजार 150 भेडे और 10 लाख 47 हजार 156 बकरे-बकरियॉ थी। अकाल से पूर्व पशु-दर प्रतिव्यक्ति 6 थी परतु अकाल के बाद प्रतिव्यक्ति दो रह गयी है।

खयाल आया मौके का फायदा उठाकर क्यो न भारत-पाक सीमा-क्षेत्र का भी दौरा कर लिया जाये। पश्चिमी पाकिस्तान से बाडमेर जिले की 180 मील की अतरराष्ट्रीय सीमा का लगाव है। सीमा के सुरक्षा-क्षेत्र का जनजीवन बहुत ही शात परतु सजग और किसी भी खतरे का सामना करने के लिए मुस्तैद मिला। सीमा-क्षेत्र की यात्रा चौहटन्न तहसीलं मे स्थित बाकासर गॉव से शुरू हुई।

बाकासर भारत-पाक सीमा से चार मील दूर सुरक्षा क्षेत्र में स्थित है। यहाँ से कुछ दूर पर ब्राह्मणों की ढाणी (बस्ती) की सीमा चौकी दिखायी देती है। इस सीमा पर राजस्थान, गुजरात और पाकिस्तान की सरहदें टकराती हैं। सीमा चौकी पर पहुँचते समय साँझ घिर आयी थी। चौकी पर सीमा सुरक्षा दल के जवान तैनात थे। कलेक्टर के साथ होने से कोई विशेष परेशानी नहीं हुई। वहाँ हमें बारी-बारी से सभी जवानों से मिलाया गया और फिर मुख्य सीमास्थल स्तभ नं 921 पर ले जाया गया। यहाँ से कच्छ का रण्ण साफ-साफ दिखायी दे रहा था। दूसरी ओर दूर-दूर तक फैला पाक-जंगल और ठहरा हुआ शांत पानी। आशंका हुई, न जाने कब इन जंगलो में आग लग जाये—कच्छ के रण्ण में तूफान आ जाये। पास मे खडे जवान की ओर देखा—उसकी पैनी निगाहें घने जंगलों को चीर रही थीं।

**कृत्रिम विभाजन** : दूसरे दिन गडरा रोड की सीमा चौकी पर पहुँचे। दोपहर का समय होने के कारण दूर ऊँचे टीले पर स्थित पाक चौकी स्पष्ट दिखायी दी, गडरा शहर की ओर जानेवाला रास्ता भी, जिसे 1965 के युद्ध के पश्चात बंद कर दिया गया था। सुनने में आया कि चोरी-छिपे आवागमन अब भी जारी है। सीमा के दोनों ओर हिंदू-मुसलमान मिलजुल कर रहते हैं। दोनों में आत्मीयता आज भी है। जैसलमेर के सीमावर्ती गाँव बाहला और मियाजलाल मे कुछ ऐसे राजपूत है जिनका चोरी-छिपे बेटी-व्यवहार पाक सीमा मे बसी बराबर की राजपूत जाति से आज भी होता है।

गडरा रोड की सीमा-चौकी के जवान हमें स्तंभ नं 843 के पास ले गये और एक झंडी पाक चौकी को दिखायी। तत्काल ही पाक चौकी से भी संकेत हुआ। कुछ देर बाद अब्दुल गनी नामक एक पाकिस्तानी रेंजर चौकी से उतरकर आया। हाथ मिलाया। अब्दुल ग़नी लाहौर का रहनेवाला था। कुछ देर के लिए तो ऐसा लगा कि विभाजन की यह रेखा कितनी कृत्रिम और घिनौनी है। यही बात अब्दुल गनी ने भी अनुभव की। सीमा-उल्लंघन के अपराध के भय से और सियासी नेताओं की स्वार्थ-बुद्धि द्वारा फैलाये गये जहर से बचने के लिए हमे पाक रेंजर का जल-पान का निमंत्रण अस्वीकार करते हुए सीमा से लौटना पड़ा। विभाजन के बारे में जैसलमेर के सीमावर्ती ग्राम रामगढ के ढीगाणे ख़ाँ के शब्द याद आ गये। उसने कहा था, "पाकिस्तान कोन्य हुयो, कब्रिस्तान हुयो, जिकमें आदमीरी कोई कद्र कोन्ही।" (पाकिस्तान नहीं, कब्रिस्तान बना है, जिसमें मनुष्य का कोई सम्मान नहीं)। बाडमेर तहसील के गॉव भूकड के श्री सुभान ख़ाँ ने भी पाकिस्तानी पुलिस के अत्याचार की गाथा दोहरायी और भारतीय सीमा पुलिस के व्यवहार से पूरा संतोष व्यक्त किया।

सीमावर्ती क्षेत्रो का दौरा करने पर ज्ञात हुआ कि वहॉ साप्रदायिकता उतनी गहरी नहीं है जितनी हम देश के सभ्य शहरो मे पाते है। कुछ क्षेत्रो मे तो सभी जातियॉ इतनी घुल-मिल गयी है कि उनमे अतर करना मुश्किल हो जाता है। सीमा-क्षेत्र के मुसलमान याह्या खॉ के स्थान पर अपने पीर-पगार को अधिक मानते और समझते है, वैसे ही जैसे हिदुओ का अपने कुलदेवता के मुकाबले देश के प्रधानमत्री से सरोकार नहीं। उनके लिए भारत एव पाकिस्तान दोनो ही पीर-पगार और देवताओ के सामने छोटे है। ऐसी दशा मे किसी एक धर्म को माननेवालो पर सदेह रखना अनुचित ही कहा जायेगा। दोनो मे ही राजनीतिक चेतना का भारी अभाव है। पाकिस्तान से हिदुओ का निष्कासन अभी जारी है। कुछ समय पहले सोढा और चारण जाति के 28 परिवार सीमा पार करके आये, जिन्हे चौहटन्न के गॉवो मे बसाया गया।

सुरक्षा की दृष्टि से भी कुछ पग उठाने आवश्यक है। अवैध रूप से सीमा का उल्लघन करनेवालो को जमानत पर रिहा न किया जाये, पासपोर्ट के नियमो मे सख्ती बरती जाये सुरक्षा-क्षेत्र को और भी कडा किया जाये, बीस मील के क्षेत्र मे कडाई के साथ परिचयपत्र जारी किये जाये और सीमा से सटे कुछ क्षेत्रो की आबादी खाली कर दी जाये। पाकिस्तान से लौटने पर लोग प्राय कह देते है कि वे गुजरात चले गये थे। ऐसी स्थिति मे नये कानून बनाना आवश्यक है। इसके साथ ही सीमावर्ती पचायतो के कुछ ऐसे पदाधिकारी है जिन्हे भारत-पाक युद्ध के दौरान सदेहावस्था मे गिरफ्तार किया गया था। उनके प्रति सतर्कता बरतने की आवश्यकता है।

**मदिरो की नगरी** . यात्रा का अतिम चरण किराट कूप के भग्नावशेषो के अवलोकन से आरभ हुआ। किराट कूप को मदिरो की नगरी कहा जाता है। यह जिले का ऐतिहासिक स्थान है और बाडमेर एव गडरा रोड के बीच मे स्थित है। खॅडहरो की इस नगरी मे जब पहुॅचे तो देखा कि आज भी इसके उत्थान-पतन की कहानियॉ, खडित मूर्तियॉ मौन रूप से दोहरा रही थीं। वर्तमान का किराडू 12वी शताब्दी मे किरात कूप या किराट कूप के नाम से प्रसिद्ध रहा। प्रमुख सोमेश्वर मदिर की दीवारो पर तीन शिलालेख आज भी खडित दशा मे विद्यमान है। शिलालेखो मे पहला शिलालेख वि स 1209 का, दूसरा 1218 और तीसरा 1239 का बताया जाता है। कुछ इतिहासकारो के अनुसार इस नगरी के मदिरो का निर्माण 12वीं शताब्दी के आसपास हुआ।

काले और गहरे भूरे रग की पहाडियो और रेतीले विशाल टीलो के अचल मे बसे किराट कूप मे देव-मदिरो की कुल सख्या 24 बतलायी जाती है, परतु आज 7 देव-स्थान ही कुछ सीमा तक सुरक्षित रह सके है, शेष मदिरो के मात्र खॅडहर

रह गये हैं, जो समय की शिला पर किसी प्रकार अपना अस्तित्व आज भी बनाये हुए हैं।

प्रमुख देवालय सोमेश्वर की शिल्प-कला एवं कला-कृतियों को देखने पर सहसा खजुराहो और कोणार्क के मंदिरों की स्मृति करवट लेने लगती है। धार्मिक स्थानों पर पाषाणों में इतिहास की गौरव-गाथा, देवताओं की स्तुति और बसंतोत्सव के साथ-साथ वात्स्यायन के कामशास्त्र की स्पष्ट झलक दिखायी दी। एक ओर पितामह भीष्म की बाण-शय्या है, तो उसी के पास यौन-व्यापार के विभिन्न आसन चित्रित हैं। भोग, अनासक्ति और त्याग का एक जीवित संगम। एक ओर खंडित मूर्तियों को देखकर यूनान की 'वीनस' सामने उभरने लगती है, तो दूसरी ओर पाषाण-मूर्तियों से जैसे बाँसुरी, ढोलक, मँजीरे और मृदंग के स्वर फूट पडते हैं। मूर्तियों के रोम-रोम में संगीत स्पंदित हो रहा था। कीट्स के शब्द याद आये : "सुना हुआ संगीत तो मधुर है ही, परंतु, जिसे नहीं सुना, केवल अनुभव किया है, वह मधुरतम है।"

सोमेश्वर मंदिर के पास एक छोटा-सा शिवालय है, जिस पर रामायण के दृश्य अंकित हैं। इसी मंदिर से कुछ दूर शिव और ब्रह्मा के मंदिर हैं। यहीं से वैष्णव मंदिर भी दिखायी देता है, जिसके स्तंभों पर केवल तोरण शेष रहने से इसे 'तोरणिया का मंदिर' भी कहा जाता है। शेष चारों ओर खँडहर ही खँडहर है, कोई भी उनकी देखभाल करनेवाला नहीं। सरकार की ओर से 50 रुपये महीने पर एक व्यक्ति अवश्य नियुक्त किया गया है, लेकिन मुश्किल से ही किसी को उसके दर्शन हो पाते हैं। सरकारी उपेक्षा एवं उदासीनता के जाल में फँसे ये खँडहर धीरे-धीरे गायब होते जा रहे हैं, कोई रोकनेवाला नहीं। एक गड़रिये ने बताया कि अनेक सुंदर प्राचीन मूर्तियाँ राहत-कार्य के दौरान गायब हो गयीं। अकाल-राहत-कार्य से संबद्ध अधिकारियों ने उनकी सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की। किराट कूप की यह भव्य कला आज निर्जन मरुस्थल में धीरे-धीरे पतनोन्मुख हो रही है।

**1 नवंबर व 8 नवंबर, 1970**

उत्तर-त्रासदी परिदृश्य एक

# पंजाब यात्रा : सिखों का आत्ममंथन

मान लीजिए चारो शकराचार्य मिलकर घोषणा कर दे कि जो उन्हे स्वीकार नही करता हिंदू नही माना जाएगा। या राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ आदेश जारी कर दे कि जो हिंदू उनकी शाखा मे नही आएगा हिंदू समाज मे बहिष्कृत कर दिया जाएगा। इसी तरह मुस्लिम लीग फतवा दे दें कि दूसरी पार्टियो को समर्थन देनेवाले मुसलमान 'काफिर' कहलाएँगे। यदि ऐसी स्थिति पैदा कर दी जाती है तो उसका जवाब देश के पास क्या होगा? रास्ते दो ही हो सकते है एक—सकीर्ण और कट्टरपथी शक्तियो की प्रभुसत्ता स्वीकार कर साप्रदायिकता की तग-गहरी गुफाओ मे अपने अस्तित्व को समेट लेना। दो—या फिर इन शक्तियो से जूझते हुए खुले उन्मुक्त वातावरण मे जीना देश की धर्मनिरपेक्ष और प्रगतिशील शक्तियो को मजबूत बनाना।

कुछ ऐसी ही परिस्थितियो के बीच ग्यारह अगस्त को अमृतसर मे सरबत खालसा का आयोजन किया गया। इस आयोजन के सबध मे चद बाते बिलकुल साफ है। सरबत खालसा का आयोजन निश्चय ही शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबधक कमेटी और अकाली दल के खिलाफ एक खुली बगावत मानी जाएगी। इसमे भी कोई शक नही कि पजाब के सवर्ण सिखो जाटो एव खत्रियो— का बहुमत लोगोवाल और टोहरा के साथ आज भी है। बाबा सतासिह सिखो के निर्विवाद नेता बन गए हो ऐसा कहना सच्चाई को नकारना होगा। यह भी सच है कि अमृतसर नगर के अधिकाश व्यापारी मध्यमवर्गीय और नौकरीपेशा सिख सरबत खालसा मे शामिल नही हुए। यह आलोचना भी सही है कि सरबत खालसा का आयोजन

सरकारी सरक्षण मे हुआ। देश के सत्ताधारी दल इदिरा काग्रेस का सक्रिय समर्थन इसे प्राप्त था। केंद्रीय मत्री बूटासिह से लेकर अनेक छोटे-मोटे इकाई नेताओ के चेहरे सम्मेलन मे दमक रहे थे। यह चुनावी गणित भी सही उतरता है कि इसका फायदा काग्रेस को चुनावो मे होगा। यह निष्कर्ष निकालना भी गलत होगा कि सम्मेलन सिखो की समस्याओ के समाधान के मामले मे एक अमोघ अस्त्र सिद्ध होगा। इन आशकाओ को निराधार नहीं कहा जा सकता कि इस सरबत खालसा से सिख-हिदुओ के बीच की खाई पटने के स्थान पर और चौडी हो जाएगी। यह सोचना भी गलत रहेगा कि इस आयोजन के पश्चात सिख लोगोवाल एव टोहरा की सगत त्याग कर काग्रेस एव बाबा सतासिह की जमात मे शामिल हो जाएँगे। ये सारे सवाल आयोजन से पहले और आयोजन के समय उठाए गए, आयोजन के बाद भी उठाए जा रहे है। आयोजन की पूर्व सध्या पर स्वय इस लेखक ने अमृतसर शहर मे घूम-घूमकर देखा कि वहॉ के सिख निवासियो मे सरबत खालसा को लेकर कोई खास दिलचस्पी या उत्साह नहीं था बल्कि एक बेचैनी थी, घुटा-घुटा सहमा-सहमा गुस्सा था उनमे। हिन्दू भयग्रस्त थे। आशका थी कि अगले दिन सुबह दगे हो सकते है, गोलियॉ चल सकती है कर्फ्यू लग सकता है और मौते हो सकती हैं। ग्यारह अगस्त की सुबह तक अमृतसर का कोई भी सिख या हिन्दू विश्वास के साथ नही कह सकता था कि सरबत खालसा होगा ही भारी सख्या मे लोग शामिल होगे ही। चारो तरफ भय और आशका का वातावरण था। मगर सच्चाई यह है कि सरबत खालसा का आयोजन पूरे धूम-धडाके के साथ हुआ। पजाब के कोने-कोने से ट्रको लारियो ट्रेक्टरो और कारो मे दिन-भर सिख आते रहे, यहॉ तक कि देर रात तक सिखो का आना जारी रहा। इसलिए यह कहना मुश्किल है कि उनकी तादाद क्या रही होगी। फिर भी एक मोटे अनुमान के अनुसार डेढ लाख से कम सिख नही होगे, अधिक भी हो सकते है। हर समय पडाल मे पच्चीस से तीस हजार के बीच सिख मौजूद रहे इससे कही अधिक पडाल के बाहर सडको और मैदानो मे बैठे हुए थे। अगले दिन बारह अगस्त की सुबह भी हजारो सिख पुरुष-स्त्रियॉ पडाल मे जमे हुए थे। अधिकाश सिख बाबा सतासिह के लिए नहीं बल्कि काग्रेस पार्टी के बुलावे पर आए थे। अधिकाश सिखो को यह भी मालूम नही था कि सरबत खालसा के उद्देश्य क्या है? इसका आयोजन किसलिए किया जा रहा है? पूछने पर अनेक सिखो ने कहा कि वे अपने नेताओ के आदेश पर अमृतसर आए है। इच्छा यह भी रही है कि इस बहाने स्वर्ण मदिर के दर्शन कर लेगे। ग्यारह अगस्त को चार-पॉच घटो के लिए सभी के लिए स्वर्ण मदिर के दरवाजे खोल दिए गए थे। सरबत खालसा मे शामिल होनेवाले लगभग सभी व्यक्तियो ने उस दिन हरिमदिर साहब के दर्शन किए।

लेकिन, क्या सरबत खालसा को इस आधार पर खारिज कर दिया जाए कि इसका आयोजन काग्रेस की शह पर और सैनिक सरक्षण मे हुआ? क्या इसके महत्व को इसलिए नकार दिया जाए कि इसमे शामिल होनेवाले हजारो सिखो की स्वय की समझदारी कुछ नही थी? क्या इस आयोजन को इसलिए चुनौती दी जाए कि इसमे आनेवाले अधिकतर काग्रेस समर्थक और मजहबी सिख थे? सिखो की सामाजिक-आर्थिक बनावट मे मजहबी सिख सबसे निचले स्तर पर है। इन्हे हरिजन भी कहा जा सकता है। बाबा सतासिह और जत्थेदार मानसिह के पश्चात आयोजन-स्थल पर चर्चा के केन्द्रबिदु श्री बूटासिह स्वय अनुसूचित जाति के मजहबी सिख वर्ग से थे। शायद इसीलिए ज्यादातर मजहबी तथा अन्य पिछडे वर्गो के सिख वहॉ दिखाई दिए।

पजाब सूबे के विभिन्न जिलो से आनेवाले अनेक सिखो के साथ बातचीत करने पर कुछ और भी अनुभव होते है, जिन्हे आयोजन मच पर लगी मोटी मसनदो के सहारे नही समझा जा सकता, जैसा कि पजाब के मामलो के कुछ घोषित विशेषज्ञ पत्रकारो ने किया है। बाबा सतासिह और काग्रेसी नेताओ के बीच गद्दो पर बैठकर सरबत खालसा को एक एकागी दृष्टिकोण से समझने की कोशिश हुई है। या यह भी कहा जा सकता है कि सम्मेलन मे मौजूद खेतिहर श्रमिक सिख भूमिहीन मजहबी सिख, सीमात किसान, मामूली आय वाले सुतार सिख जैसी जनता की विशाल उपस्थिति उनके लिए अस्तित्वहीन बन गई।

मगर, जब नीचे जाजिम और नगी जमीन पर जमी जनता के बीच बैठकर उसकी नजरो से सरबत खालसा को देखा जाता है, तब एक दूसरी ही तसवीर उभरती है। दर्जनो मजहबी सिखो ने बताया कि अकाली दल के जाट और खत्री सिख उन्हे गॉवो मे वोट नही डालने देते। गॉवो मे उन्हे आतक मे रखा जाता है। भिडरॉवाले के उग्रपथी चेलो ने उन्हे सताने की हमेशा कोशिश की। जब भी उन्होने गॉव के हिन्दुओ को बचाया, ऊँचे सिखो ने उन्हे पीटा। "हम यही सोचकर आए हैं कि सरबत खालसा मे हमारी बात सुनी जाएगी, बूटासिह नेता बनेगा, जिससे मजहबी सिखो की ऊँचे सिखो के बीच इज्जत बढेगी, गॉवो मे हमे कोई तग नही करेगा।"

कई सिखो ने जो कि किसी भी पार्टी के नहीं थे गुस्से से कहा कि उग्रपथियो ने गुरुद्वारो की पवित्रता भग कर दी थी "हम उसे बचाने के लिए आए हैं।"

अमृतसर के दिलदार सिह ने कहा कि अकालियो की गलती धर्म को राजनीति से जोडने की रही है अब काग्रेस भी वही कर रही है। लोकदल के बख्शीश सिह का मत था कि बाबा सतासिह सही काम कर रहे हैं "सरबत खालसा का अच्छा असर पडेगा, अकालियो की करतूतो का पर्दाफाश होगा।" अधिकाश लोगों

की प्रतिक्रिया थी कि सरबत खालसा के आयोजन का सबसे बडा लाभ यह होगा कि लोगों के दिलो से भय दूर होगा, सिख जनता खुलकर उग्रपथियो और भिडरॉवाले की भूमिका के सबध मे बातचीत कर सकेगी ठडे दिमाग से सोचना शुरू होगा। लोग यह भी सोचेगे कि धर्म और राजनीति को गड्डमड्ड न किया जाए। अकाली दल और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबधक कमेटी ही सिखो की प्रतिनिधि सस्थाएँ नहीं है, जो जहाँ और जब चाहे सिखो को जिस किसी खूँटे से बाँध दे। सरबत खालसा मे भाग लेने से सिख अछूत नही हो जाएगा।

यह भी सोचना गलत हे कि सिख सरबत खालसा मे निस्वार्थ भाव से या किसी परोपकार की भावना से शामिल हुए। अधिकाश सिख अपने हितो के प्रति पूरी तरह सचेत थे। काश्तकार सिखो ने खुले मन से कहा 'हम तो किसान हैं। हम तो अपने स्वार्थ के लिए यहा आए है। इदिरा बीबी से बाल देना अगर जमीदार खुश रहे तो सब ठीक रहेगा। हमारी मॉगे पूरी होनी चाहिए। बिजली की दर कम होनी चाहिए। खाद पैटोल डीजल के दाम घटने चाहिए। चावल का दाम बढाया जाना चाहिए। किसान सुखी रहेगे तो फिर कोई आतक नही होगा। अकालियो की नही चलेगी। पास खडे कुछ मैले-कुचैले सिख जोरो से कहने लगे इंदिरा बीबी से यह भी कहना कि हम मजदूरा की मजदूरी भी बढाएँ। तपाक से जमीदार ने कहा हॉ हा खेतो मे काम करनेवालो की मजदूरी भी बढनी चाहिए।

सिखो से बातचीत करने पर यह सवाल भी सामने आया कि अगर सेना पूरी तरह से बैरको मे लौट जाती है तो क्या पजाब मे सिख-हिन्दू दगे नही होगे? अमृतसर के ही अनेक सिख और हिन्दुओ को डर है कि फौज के हटने के बाद दगे भडक सकते है कुछ सिरफिरे सिख फौजी कार्रवाई का बदला हिन्दुओ से ले सकते है। अकाली और भिडरॉवाले-समर्थक सिख फौज को हिन्दुओ की प्रतिनिधि के रूप मे देख रहे है।

अमृतसर शहर मे घूमने पर सहज ही यह अनुभव हो जाता है कि हिन्दुआ और सिखो के दिल-दिमाग चिरे हुए है आपसी बातचीत मे दोना एक दूसरे को शका की दृष्टि से देखते है। आश्चर्य यह है कि इतना सब कुछ होने के बावजूद मुश्किल से ही कोई सिख मिलता है जो भिडरॉवाले और उसके चेलो की आलोचना करने का साहस दिखाता है। डर से हिन्दू भी उतना ही खामोश रहता है। ऐसा लगता है उग्रपथियो के सौ खून माफ मगर सेना का एक भी नही।

स्वर्ण मदिर से कुछ दूर स्थित बाबा दीपसिह शहीदा दा गुरुद्वारे मे रोजाना नए-नए भडकानेवाले पर्चे एव भद्दे पोस्टर चिपकाए जाते हैं। पर्चो मे यहा तक कहा जाता है कि ऐसे शहीदो की जरूरत है जो ऊधमसिह और भगतसिह का अनुसरण करते

हुए, 'इंदिरा बीबी' से बदला लेते हुए सिख कौम के लिए परवान चढ जाएँ। प्रधानमंत्री को एक हत्यारिन के रूप मे प्रचारित किया जाता है। ऐसा लगता है, तर्क और विवेक दोनो ही अमृतसर से गायब हो गए है। स्वर्ण मदिर परिसर से सटी एक गली मे जब इस प्रतिनिधि ने कुछ सिख परिवारो से बातचीत की तो विचित्र अनुभव हुआ। नानक निवास के पिछवाडेवाली गली मे रहनेवाले सिख परिवार के एक सदस्य ने पहले यह बताया कि स्वर्ण मदिर मे घुसने के बाद फौजियो ने उनके जेवरात लूट लिए। कुछ देर बाद ही उस परिवार के मुखिया ने अपने पुत्र की बात काट दी। उन्होने कहा "कुछ नही लूटा। सिर्फ इसलिए तलाशी ली थी कि कही कोई उग्रपथी छिपा हुआ न हो, क्योकि अनेक उग्रपथी इस गली से फरार हो गए थे।" उसी गली के एक दूसरे परिवार के सदस्यो ने बताया कि सेना ने दो महीने तक के बच्चे को मारा है। लेकिन यह पूछने पर कि किसलिए मारा वे चुप रहे। इसी परिवार के लोगो ने कहा कि स्वर्ण मदिर मे केवल चालीस उग्रपथी छिपे हुए थे। उनके पास कोई खास हथियार या गोला बारूद नही था। सेना के करीब पाच सौ लोग मारे गए। रामदास की सराय मे सैकडो सैनिको के शव जलाए गए। कई दिनो तक बदबू आती रही। उनसे जब यह पूछा गया कि उग्रपथी सख्या मे कम थे, उनके पास शस्त्र भी कम थे, तब क्या सेना के जवानो ने सामूहिक आत्महत्याएँ कर ली? तो इसका कोई जवाब उनके पास नही था।

अमृतसर के सिखो और हिन्दुओ मे बेसिर-पैर की अफवाहे बुरी तरह से फैली है। लगता है, दोनो ही इसके साथ कुछ समय तक जीना चाहते है। दोनों के बीच सवादहीनता की स्थिति है। सामाजिक रिश्तो मे सतहीपन और दिखावटीपन है। दोनो ही समुदायो के लोग इसे स्वीकार भी करते है। इस समय सिखो मे मिलटेट सकीर्णता है। वह हिंसात्मक हो सकती है। ऐसी स्थिति मे हिन्दुओ मे भी हिसात्मक सकीर्णता प्रतिक्रियास्वरूप जन्म ले सकती है। दोनो समुदायो की हिसात्मक सकीर्णता कैसा रग दिखा सकती है इसका अदाज लगाया जा सकता है।

अमृतसर शहर की तुलना म सरबत खालसा मे मौजूद लोग अधिक खुले दिमाग के लगे। कट्टर सकीर्णतावाद के खिलाफ सरबत खालसा की शक्ल मे जो पहल सामने आ रही थी, उसके प्रति सबो मे हलचल थी, उसे समझने की उत्सुकता थी, इसके प्रभाव क्या-क्या हो सकते है, लोगो के बीच इसकी चर्चाएँ थीं। सिख जनता के बीच सूक्ष्म स्तर पर आत्ममथन की प्रक्रिया चल रही थी।

किसी भी काम मे जनता की भूमिका को इस आधार पर रद्द नही किया जा सकता कि वह क़ाग्रेस के साथ है, या अन्य किसी जमात के साथ। देखना यह होता है

कि जनता किसी घटना को किस सदर्भ मे देखती है? उसकी कैसी प्रतिक्रिया होती है? उसका नेतृत्व प्रतिगामी है या प्रगतिशील? वह उसके साथ किस तरह का व्यवहार करती है? अब तक के घटनाक्रमो से यह तो कहा ही जा सकता है कि सरबत खालसा का आयोजन कट्टरपथी सकीर्णतावाद से मुक्ति की दिशा मे एक प्रगतिशील कदम है। जब ईरान के खुमैनी की धार्मिक कट्टरता या राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के हिन्दू राष्ट्रवाद का विरोध करना प्रगतिशील माना जाता है तब अकालियो के कट्टर उप-सिख राष्ट्रवाद तथा जरनैलसिह भिडरॉवाले की हिंसात्मक धार्मिक कट्टरता का विरोध करना प्रतिगामी कदम कैसे हो सकता है? छोटे रूप मे ही सही, ऐसी पहल का स्वागत किया जाना चाहिए, उम्मीद रखने के साथ-साथ सघर्ष करना चाहिए कि धर्म का घिनौना इस्तेमाल भविष्य मे न अकाली कर सके और न ही काग्रेसी या कोई अन्य दल। नि सदेह धार्मिक कट्टरता के खिलाफ इस आयोजन के दूरगामी प्रगतिशील परिणाम निकलेगे। सिख समुदाय की लोकतात्रिक और उदारवादी शक्तियो को इससे बल मिलेगा।

**29 अगस्त, 1984**

# हम आतंकवादियों को मिटा देंगे : संतासिंह

**जोशी** *कांग्रेस और राजनीति से आपका क्या संबध है?*

**संतासिंह** दोनो के साथ कोई नही। हम धार्मिक लोग है। धर्म ही हमारा सब कुछ है। राजनीति को धर्म के मातहत रहना होगा हम ऐसा मानते है। अकाली दल और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबधक कमेटी ने राजनीति को प्रमुखता दी, धर्म को त्याग दिया, इसका परिणाम भी सिखो ने भुगत लिया। अब हम ऐसा नही होने देंगे। धर्म ही प्रधान रहेगा।

**जोशी** . *क्या यह सच है कि आपका सीधा संबध इंदिरा गाँधी से है?*

**संतासिंह** नही।

**जोशी** *अच्छा बताइए, नेहरू परिवार के संबध मे आप क्या सोचते है?*

**संतासिंह** हम निश्चय ही नेहरू परिवार को महत्वपूर्ण मानते है। इस खानदान ने कई कुर्बानियाँ आजादी के दौरान दी थी, आज भी दे रहा है। नेहरू और इंदिरा गाँधी दोनो ने ही देश को बहुत कुछ दिया है।

**जोशी** *और किन नेताओ से प्रभावित है?*

**संतासिंह** गाँधीजी से। हमने उन्हे देखा भी है उनसे प्रेरणा भी ली है।

**जोशी** . *संत भिंडराँवाले शराब के खिलाफ थे, अमृतसर से शराब के ठेके खत्म करवाना चाहते थे। सचाई यह है कि अमृतसर की शराब की दुकानो पर सरदारो की सबसे अधिक भीड लगी रहती है। क्या आप कोई हुकुमनामा जारी करेंगे?*

**संतासिंह** हम शराब को बुरी चीज नही मानते। समुद्र-मथन से मिले रत्नो मे से यह एक है। अगर सुरा बुरी होती तो देवतागण तब ही इसका परित्याग कर देते। इसलिए शराब बुरी कैसे हुई?

***जोशी*** *: पंजाब मे कई जगह गरीबी मौजूद है। क्या इसे दूर करने मे धर्म का प्रयोग करेगे?*

**संतासिंह** : हम तो धार्मिक लोग है। यह राजनीतिक काम है। हम तो धर्म का प्रचार करेगे। गरीबी और गैर-बराबरी सरकार दूर करेगी, हम नहीं।

***जोशी*** *. सिख धार्मिक पुस्तको के अलावा आपने और किन-किन पुस्तको का अध्ययन किया है?*

**संतासिह** खास तौर पर सिख धर्म की पुस्तके पढी है। रामायण भी पढी है। अब और धर्मो की किताबे पढूँगा। सियासत की कोई किताब नही पढी।

***जोशी*** *कुछ देर पहले आपने कहा था कि आप पार्टी बनाएँगे खालसा पथ को शुद्ध करेगे। क्या आप अकाली दल से हटकर कोई नई पार्टी बनाएँगे ? आनेवाले चुनावो मे आप किसे अपना समर्थन देगे?*

**सतासिह** हमारी तो धार्मिक पार्टी बूड्ढा अकाली दल पहले से ही है। नई पार्टी बनाने की जरूरत क्या है? अकाली दल सिखो की असली पार्टी नही है, वह तो नकली पार्टी है। हम उसे नही मानते।

***जोशी*** *अकाली पार्टी चुनाव लडती है। क्या आप भी लडेगे?*

**सतासिह** सियासत से हमारा कोई सरोकार नही। हम चुनाव नही लडेगे। हम तो सिर्फ धर्म का प्रचार करेगे। चुनाव लडना तो सियासत है। जहॉ तक रही चुनावो मे समर्थन की बात उससे हमारा क्या लेना देना? हमारे लिए सब बराबर। जो भी आशीर्वाद लेने आएगा उसे दे देगे। हम तो समदरसी है।

*(इसी बीच उनका विलायतपलट चेला बोलने लगा भगवान श्रीकृष्ण के यहाँ कौरव और पाण्डव दोनो ही मदद के लिए आए थे। कृष्ण भगवान ने दोनो मे से किसी को भी निराश नही किया।)*

***जोशी*** *अच्छा बाबा अब बूड्ढा अकाली दल का आफिस कहॉ रहेगा?*

**सतासिह** स्वर्ण मदिर मे ही रहेगा। स्वर्ण मदिर इतना बडा है कही भी हो जाएगा। *(बाबा का आशय स्वर्ण मंदिर परिसर से था जिसमे अकाल तख्त के अलावा नानक निवास तेजा समुद्री हॉल गुरु रामदास की सराय शामिल है। समुद्री हॉल मे शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबधक कमेटी का दफ्तर भी था। अकाली प्रधान सत लोगोवाल यही रहा करते थे। नानक निवास मे भिडरॉवाले रहते थे।)* अकाल तख्त के असली हकदार हम है, बूड्ढा अकाली दल है। इसकी सारी जिम्मेदारी हमारी है नकली प्रबधक कमेटी की नही।

**जोशी** *गुरुद्वारो के प्रबध के लिए नई कमेटी बनाई जाएगी?*

**सतासिह** एक धार्मिक सम्मेलन बुलाया जाएगा। सब काम धार्मिक रीति से होगा। उसी सम्मेलन मे कमेटी के सदस्य मनोनीत किए जाएँगे। मगर चुनाव कोई नहीं लडेगा। हॉ ना बाहर का आदमी चुनाव के लिए मदद मॉगेगा वह अगर लायक हुआ तो हम आशीर्वाद देगे।

**जोशी** *स्वर्ण मदिर के अलावा दूसरे गुरुद्वारो का क्या होगा? क्या आप अन्य प्रदेशो मे भी जाएँगे?*

**सतासिह** दूसरे गुरुद्वारो का हम ही प्रबध करेगे। यहा से फुरसत मिलेगी तो दूसरे सूबो मे जाएँगे। केरल मद्रास और महाराष्ट्र से निमत्रण मिला है। कई सनातन नेताओ ने भी बुलाया है। सिख तो हिन्दुओ की रक्षा के लिए ही पैदा हुआ है।

**जोशी** *क्या 1928 मे बने सिरा कानून मे आप परिवर्तन चाहेगे?*

**सतासिह** हम जरूर नया कानून चाहेगे क्योंकि 1928 का कानून ता अगरेजो ने बनाया था। यह गुलामी का कानून है। हम नई शिरामणि पबधक कमेटी और नया कानून बनाएँगे। सरकार भी इस कानून को पसद नही करती।

**जोशी** *इसकी क्या गारटी है कि अब पजाब मे फिर से आतकवाद सिर नही उठाएगा? कोई नया भिडरॉवाले पैदा नही होगा*

**सतामिह** पजाब की भूमि से हम आतकवादियो का मिटा देगे। सरकार का हम पूरी मदद देगे। गुरुद्वारो को अपराधियो का अखाडा नही बनने दिया जाएगा दूसरा भिडरावाले पैदा नही होने दिया जाएगा। इसलिए जल्दी ही धार्मिक सुधार का काम शुरु किया जाएगा। हिन्दू सिरो मे आज जो भय फैला हुआ है उसे हम दूर करने की कोशिश करेगे। हमारे गाग गाग गाव घर घर जा ग एकता के लिए हिन्दू-सिख दोनो से बात करगे। सब ठीक हो जाएगा।

**जोशी** *क्या सेना का वापस बैरको मे भेजा जाना ठीक रहेगा*

**सतासिह** सेना की कोई जरूरत नही है। परतु सरकार आतकवाद को समाप्त करना चाहती हे इसलिए सेना बाहर ह। आतकवादी असल मे गीदड आर कायर है, छिपकर हमला करते है खुलकर मैदान म नही आते यह धर्म के खिलाफ है।

**जोशी** *बाबा किस अधिकार के तहत आप नई गुरुद्वारा प्रबधक कमेटी बना सकते है आपने यह नही बताया?*

**सतासिह** हमारे बुड्ढा अकाली दल की ऐतिहासिक सिख परपरा है। हमारे दल ने महाराजा रणजीत सिह तक को सजा दी थी। हमारे पास आज भी वह दस्तावेज

है। सब तख्तों में हमारा तख्त सबसे ऊपर है। हमारे तख्त के पास आखिरी फरियाद की जाती है। हम सिख परंपराओं के तहत जिसे चाहे माफ करें, जिसे चाहे सजा दें। दूसरे जत्थेदारों का फैसला हम पर लागू नहीं होता। ये सब तनखइया हैं। स्वर्ण मंदिर के ग्रंथी प्रबंध कमेटी से पैसा लेकर ऐश उड़ा रहे हैं। प्रबंध कमेटी के गुलाम वही हुए, हम नहीं। सिख इतिहास बतलाता है कि महाराजा रणजीत सिंहजी के जमाने से ही अकाल तख्त हमारे दल के पास रहा है। फिर ये कौन होते हैं, हमें हुकुम देनेवाले? हमारा हुकुम चलेगा। हमारा फैसला अंतिम होगा।

**जोशी** : *तब क्या आप स्वर्ण मंदिर में हमेशा के लिए अपना डेरा डाल देंगे?*

**संतासिंह** : स्वर्ण मंदिर में नही रहेंगे। हम तो फकीर हैं। हमारे पास गाड़ियाँ हैं, घोड़े हैं। आज यहाँ, कल वहाँ। जब लोग अपनी गद्दियों से उतर जाते हैं, मुश्किल में पड जाते हैं, तब हमसे मिलते है। हम एक जगह रुकते नहीं। यहाँ का भी काम खत्म होने पर आगे निकल जाएँगे, हमें तो फकीर ही रहना है।

**29 अगस्त, 1984**

## उत्तर-त्रासदी : परिदृश्य दो

# पंजाब

"मानस की जात सभै एकई पहचानो, मानस सबई इक है अनेक को प्रभाओ है।"–*गुरु गोविन्द सिंह*

"सिख अच्छे योद्धा हैं, विजेता हैं। परंतु . कुशल शासक नहीं हो सकते।" *–चंडीगढ़ का एक सिख छात्र*

"सिख कौम वीरता की पुजारी है, उसकी दीवानी है। वह किसी योद्धा को ही अपना नायक बनाना पसंद करेगी, कायरों को नहीं। इसके लिए वह कोई भी कीमत देने के लिए हमेशा तैयार है, अंजाम कुछ भी हो।" *–अमृतसर के एक सिख प्राध्यापक*

"सिख कौम फेनेटिक है। जो कोई गर्म नारा देता है उसके पीछे भेड़ की तरह लग लेती है। इसीलिए यह ट्रेजडी हुई।" *–अमृतसर होटल का एक हिन्दू कर्मचारी*

त्रासदी उपरान्त के पंजाब में सामान्य जन की ये चंद अभिव्यक्तियाँ सिख जाति के चरित्र को रूपांकित करती हैं। इतिहास साक्षी है : वीरता की कोख में स जन और त्रासदी दोनों हैं। एक योद्धा के किरदार का क्लाइमेक्स ट्रेजडी में होता है। योद्धा चाहे कृष्ण हो या बुद्ध, सुकरात, ईसा, मंसूर, नेपोलियन बोनापार्ट, भगतसिंह, सुभाष, गाँधी, चे ग्वेवेरा, किस्ता गौड़-भूमैया (बगैर वैचारिक मतभेद के)– सभी की जीवन-यात्रा का अंत त्रासदी से होता है। इतिहास इस बात का भी साक्षी है कि तत्कालीन राजसत्ता अपने हितों के परिप्रेक्ष्य में वीरता, योद्धा

और त्रासदी को परिभाषित करती आई है।

स्वर्ण मदिर मे तीन अक्टूबर की सुबह इन आवेगो के साथ आरभ होती है। इस वर्ष मेरी यह तीसरी और विगत 18 महीनो मे चौथी यात्रा है। स्वर्ण मदिर मे खडे हुए, सवालो का रेला आता-जाता रहता है। सिख इतिहास मे स्वर्ण मदिर मे जून की घटना किस तरह दर्ज होगी? एक महान ट्रेजडी या कानून और व्यवस्था की कोरी एक घटना? भारत सरकार के विरुद्ध लडा गया एक धर्म युद्ध या मुट्ठी-भर उग्रपथियो, अलगाववादियो तस्करो आदि की माफिया करतूते? घटना के नायक सत जरनैल सिह भिडरॉवाले, सहयोगी पात्र सुभेगसिह अमरीक सिह और अन्य असख्य पात्रो को किस रूप मे परिभाषित किया जाएगा? उन्हे योद्धा घोषित किया जाएगा या सामान्य खालिस्तानी उग्रपथी?

स्वर्ण मदिर परिसर के मुख्य द्वार के ऊपर एक 'सिख अजायबघर' है। यह सग्रहालय मे अधिक सिखो के सपूर्ण 'इथोस' (लोकाचार) की यहॉ जीवत अभिव्यक्ति है। सिख-वीरता सिख-योद्धा और उनके गौरवशाली उत्सर्ग की गाथाएँ यहॉ शक्तिशाली ढग से प्रदर्शित की गई है। सग्रहालय का कण-कण शूरता की कहानी से गूँज उठता है। दर्शक के पोर-पोर मे हलचल होने लगती है। एक कायर भी कुछ क्षणो के लिए तो योद्धा मे रूपातरित हो जाता है। तत्कालीन मुगल और अगरेज शासको के खिलाफ उसका समूचा अस्तित्व क्रोध से दहकने लगता है। और यहीं त्रासदी की एक चरमोत्कर्ष अवस्था का एहसास होने लगता है।

मैने देखा स्वर्ण मदिर के मुख्य द्वार के बाहर दुकानो थडियो पर भिडरॉवाले के विभिन्न मुद्राओवाले रग-बिरगे चित्र बेचे जा रहे है। गुरु गोविद सिह के साथ उनके चित्र भी टॉगे गए है। कॉचवाले फ्रेमो मे दोनो के चित्र साथ-साथ है। सिख भक्तगण उन्हे खरीदते भी है। उन्हे श्रद्धा से निहारा भी जाता है। कोई आम सिख उन्हे उग्रपथी शरारती नहीं कहता। कोई उन्हे गोविद सिह का अवतार मानता है, कोई शहीद और कोई क्रातिकारी कोई सिखो का रक्षक। कोई उन्हे जीवित मानता है कोई मृत। कहीं यह एक नई आगाज की शुरूआत तो नहीं? चाहे जो भी हो इससे इतना सकेत अवश्य मिलता है कि सिख जाति का इतिहास उन्हे किस रूप मे स्वीकार करने के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर रहा है।

जहॉ मै खडा हूं सामने गुरु नानक निवास है। वहॉ इस समय बिलकुल सन्नाटा है ट्रेजडी मे डूबा और ट्रेजडी से उभरता हुआ। फ्लैश बैक–पिछला बरस –1983। महीना अप्रैल। भिडरॉवाले के जोशीले भाषण। छोटे और गरीब जाट सिखो का उनके इर्द-गिर्द जमघट। हथियारबद चेलो का पहरा। कमरो मे कई तरह के उग्रपथियो की भरमार। चारो तरफ मरजीवडो का मेला। एक उत्सर्ग की तैयारी।

वापस लौटता हूँ।

अकाल तख्त के सामने खडा हूँ। बिलकुल नया। कुछ क्षणों के लिए स्म तियाँ अपनी ओर खींची हैं। इसी बरस का तपता जून। तारीख अट्ठारह। एक उजाड-खँडहर बेनूर खामोश अकाल तख्त। गोलियों से जर्रा-जर्रा छलनी। फर्श पर पडी सैकडों कारतूसें। कहा नहीं जा सकता, कौन-सी वीरता का जीता-जागता अस्थिपंजर? कौन-सी परिभाषा के योद्धा का दुखद अंत? अकाल तख्त की शक्ल ठीक उस ताँगे की तरह, जिसकी टक्कर सैनिक ट्रक से हो चुकी है।

और अब।

चमक-दमक, चहल-पहल, रंग-रोगन, रग-बिरगे दर्शकों से घिरा अकाल तख्त। कुछ दूर फासले पर स्थित हरिमंदिर साहिब से उठती स्वरलहरियों से गूँजता अकाल तख्त। अब गोलियों के निशान नहीं हैं, दर्शकों के दिलों पर घाव जरूर हैं। विनाश के बाद अकाल तख्त के नए रूप को देखकर उनकी आँखों में खुशी की चमक भी है, तो एक विषाद भी उनके चेहरों पर दिखाई देता है, विरासत में मिला अजेय होने का दर्प टूटने की मर्मान्तक पीडा स्पष्ट झलकती है। उन्हें लगता है कि उनका दर्प, दर्प नहीं था, एक फेंटेसी थी, जोकि आधुनिक व्यवस्था की संगठित शक्ति के सामने भंग हो गई।

फिर भी लगता है अकाल तख्त का जीर्णोद्धार नहीं बल्कि पुनर्जन्म हुआ है।

स्वर्ण मंदिर का परिक्रमास्थल भरा हुआ है। भीड उमडी हुई है। लोग दीवारों पर गोलियों के निशान बारीकी से खोजने की कोशिश में लगे है। कभी सगमरमर के फर्श को उँगलियों से कुरेदते हैं, कभी स्वर्ण-गुबद पर आँखें गड़ाते हैं। भीड़ में से कोई प्रधानमंत्री को भद्दी गालियाँ देता है—तेरे वंश का नाश हो, तो कोई राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिह को। फुसफुसाहटें सुनाई देती हैं, एक हजार सैनिक मरे हैं, कई हजार सिख तीर्थयात्री (कोई उग्रपंथी नहीं कहता); चारों तरफ से टैंकों ने मंदिर को रौंद डाला, मरजीवडों के भी छक्के छुडा दिए, गुरु के सच्चे प्यारे निकले धीरे बोलो, चारों तरफ सी आई डी घूम रही है बोलो—सत्श्री अकाल—जो बोले सो निहाल। राज करेगा खालसा

सिखों के साथ हिंदू दर्शक भी हैं, परंतु उतनी संख्या में नहीं, जितनी संख्या में पिछले बरस देखे थे। अगस्त में बाबा संतासिंह की देखरेख में हुए सरबत खालसा के अवसर पर भी हिंदू काफी संख्या में मंदिर देखने आए थे। उस समय मजहबी सिख-दर्शकों की भी काफी भीड थी। निहंग भी बहुत थे। आज भक्त हैं, परंतु जाट और खत्री या खाते-पीते घर के भक्तगण अधिक दिखाई देते हैं। फिर भी, सिखों के साथ-साथ हिंदुओं ने भी माथा टेकना शुरू कर दिया है। वे सरोवर

के पवित्र जल का आचमन करते हैं। सरोवर की कार सेवा में हिंदू घरों की औरतें भी अपना योगदान दे रही हैं। उनका भविष्य पंजाब में सुरक्षित है, इस आशंका से ग्रस्त हैं।

दो दिन के पश्चात चंडीगढ़ मे एक सिख परिवार ने सूचना दी है कि पंजाब से बाहर के सिख पंजाब में काफी संपत्ति खरीद रहे हैं। हिंदू पंजाबी अपनी संपत्तियाँ बेचने को तैयार हैं। इसके लिए वे राज्य से बाहर के सिखों से बातचीत कर रहे हैं। कुछ को अच्छे दाम मिल रहे हैं, कुछ को कम।

अपने आलीशान बंगले में साठ साला मेहरा कह रहे हैं, "भाई! हम तो बिजनेसमेन हैं। राजनीति से हमारा कोई लेना-देना नहीं है। सिख व्यापारी भी हमारे दोस्त हैं। वैसे तो सिख-हिंदुओं में कोई तनाव नहीं है, पर उनके मन में क्या है, कहना मुश्किल है। अम तसर में 80 प्रतिशत हिंदू और 20 प्रतिशत सिख व्यापारी हैं। तगडी होड है। अर्थव्यवस्था हिंदुओं के हाथों में है, वैसे 5 जून के बाद से हालात कुछ सुधरने शुरू हुए हैं। माल क्रेडिट पर मिलने लगा है। हमारी माँग है कि पंजाब की खास स्थिति को देखते हुए सरकार यहाँ के व्यापारियों को कुछ साल के लिए रियायत दे।"

राजनीति की बात चल पडती है। मेहराजी का दोटूक जवाब है, "हिंदुओं के बीच कांग्रेस का बोलबाला है। सिख नाराज हैं। चुनाव के समय सभी हिंदू इंदिराजी को वोट देंगे। मगर, पंजाब में असली शांति तब होगी, जब अकालियों की माँग मंजूर कर ली जाएगी।"

होटल के एक हिंदू वेटर का नजरिया मेहरा साहब से बिलकुल अलग है। वापस अपने कमरे में लौटा तो वेटर सामने पड गया। गपशप शुरू हुई। बगैर किसी उलझाव और लागलपेट के वेटर ने तपाक से कहा, "पंजाब में शांति तब हो सकती है जब पाकिस्तान के साथ दो-दो हाथ हो जाएँ, सर। इससे पहले सिखों के होश ठिकाने नहीं लगेंगे और न ही सिख-हिंदू एकता लौटेगी। बस हमारा तो यही फारमूला है साहब।"

वेटर से मुक्ति मिली तो एक सिख प्राध्यापक के साथ बहस चल पडी। यह खत्री सिख हैं—संतुलित द ष्टिवाले, विवेक की रोशनी में घटनाओं की जाँच-परख के आदी। सरकार की आलोचना, तो सिखों की भी आलोचना। पासंग बराबर बराबर। कहने लगे, "देखिए साहेब, सिख एक बावली, जुनूनी कौम है; जो गरम और वीरतापूर्ण नारे लगाता है, उसके पीछे-पीछे चल पडती है।

"जो व्यक्ति जितने गरम नारे उछालेगा, वह उतना ही बडा सिखों का हीरो बन

जाएगा। सिखों की एक आदत बन चुकी है—दिल्ली के तख्त से हमेशा लड़ते रहना। चाहे लड़ाई सही हो या गलत, इसकी चिंता नहीं। जो नहीं लड़ेगा, सिख उसके पीछे कभी नहीं आएँगे। इसलिए हीरो बनने के लिए सिख नेता जान-बूझकर ऊँचे-ऊँचे नारे लगाते हैं। इसका अंजाम कुछ भी क्यों न हो।

"एक बात और। यह सोचना भी गलत है कि खालिस्तान हम सब चाहते हैं। सिखों का बहुमत खालिस्तान बिलकुल नहीं चाहता। आप खुद ही सोचिए, आज जिस तरह पाकिस्तान में सिखों के तीर्थस्थानों की यात्रा के लिए वीसा लेना पड़ता है, क्या खालिस्तान बन जाने के बाद पटना साहेब, गुरुद्वारा सीसगंज, रकाबगंज, बंगला साहेब आदि के लिए वीसा की जरूरत नहीं पड़ेगी ? हमारे आधे रिश्तेदार पंजाब से बाहर रहते हैं। हर सिख परिवार की यही कहानी है। किसी की पत्नी सिख है तो किसी का पति सिख है। एक भाई सिख है, दूसरा भाई हिंदू। कैसे तोड़ेंगे ऐसे रिश्तों को? पासपोर्ट और वीसा कहाँ तक जोड़ सकेंगे इन रिश्तों को? क्या बनेगा इन सबका? आप खुद सोचें। मुझे तो अमेरिका और पाकिस्तान की चाल लगती है—इस सबके पीछे।"

चाल किसी की भी हो, कसूर किसी का भी रहा हो, पर यह सही है कि एक औसत सिख उग्रपंथियों और उनके नायक भिंडराँवाले की खुली भर्त्सना, निन्दा करने को तैयार नहीं है; आपसी बातचीत में आलोचना अवश्य की जाती है, परंतु आम सिख-हृदय इसके लिए तैयार नहीं है। ग्रंथी, अकाली दल के नेता, गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के पदाधिकारी आदि अंतर्द्वंद्व से ग्रस्त हैं। वे न तो उग्रपंथियों को स्वीकार कर सकते हैं, और न ही अस्वीकार। एक तरफ सिख समाज के गुस्से का भय, दूसरी तरफ सरकार सहित बाकी देश की जनता से कटने का भय। एक अनिश्चितता। पिछले एक-दो सालों में स्वर्ण मंदिर में जो कुछ हुआ, उसे न रोक पाने का अपराध-बोध भी उनका पीछा करता रहता है। इस अपराध-बोध को छिपाने के लिए हर दूसरे दिन उनके वक्तव्यों में फिसलन देखने को मिलती है। इसे चालू शब्दों में दोगलापन भी कहा जा सकता है, परंतु है यह एक कशमकश। एक जाति की त्रासदी का भोगा यथार्थ।

हाँ, कुछ लोग इनसे हटकर भी हैं। रिक्शावाला, रेडीवाला, बूटपालिशवाला, मेहतर, स्कूटर-टैक्सी ड्राइवर, किसी फैक्टरी का मजदूर, खेतिहर श्रमिक—ये लोग दूसरे संसार की रचना करते हैं। इनकी प्रतिक्रियाएँ कहीं मेल नहीं खातीं। इनकी अभिव्यक्तियाँ पेचदार नहीं, सीधी-सपाट हैं। सभी में एक समानता है, "साहेब, खालिस्तान बने तो ठीक न बने तो ठीक, हमें तो यही करना है; राज तो करेंगे नहीं। रोज-रोज की मजदूरी करेंगे, तभी जिंदा रहेंगे। हमें न भिंडराँवाले से वास्ता और न सरकार से।"

हाँ, इनकी बला से ! खालिस्तान, उग्रपंथी, सरकार—सब उनके लिए बेमाने हैं। एक निर्लिप्त, एक तटस्थ स्थिति है। जून की घटना ने इन्हें कोई हिलाया नहीं। स्वर्ण मंदिर सौंपने या न सौंपने, और खालिस्तान बनने या न बनने से इनका कोई सरोकार नहीं है। यह जरूर है कि जब कर्फ्यू लगता है, तब इन पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ता है।

एक सिख टैक्सी ड्राइवर ने इस तटस्थ वर्ग की प्रतिक्रियाओं को बहुत ही ठेठ रूप में रेखांकित किया। टैक्सी गाँवों-खेतों से गुजरती हुई भारत-पाक सीमा की ओर दौड़ रही है। मध्यप्रदेश के कई शहरों में घूमा यह वृद्ध टैक्सी ड्राइवर बगैर किसी लाग-लपेट के अपने भाव व्यक्त कर रहा है। कहता है, "आप बाहर के लोग हैं। कुछ नहीं जानते। हमें मालूम है, नानक निवास में क्या-क्या होता रहा है; भिंडराँवाले के चेले क्या करते थे; किन-किन कमरों में चरस-गाँजा जमा किया जाता था; कहाँ-कहाँ के स्मगलरों ने वहाँ डेरा जमा रखा था। एंटीनेशनल लोगों को शरण मिली हुई थी। धडल्ले के साथ लोग पाकिस्तान जाते और आते। हमने सब देखा है। गुरुओं के नाम पर, सिख धर्म के नाम पर सबकुछ किया गया। जिसने विरोध किया उसे मार दिया। कई अखबारनवीस भी मारे गए। कई कम्युनिस्ट सिख युवकों ने भिंडराँवाले की पोल भी खोली, उन्हें भी मार दिया गया। *प्रीतलडी* का सुमीत सिंह और चिंगारी के सुखराज सिंह को इन्हीं दरिंदों ने मारा। दोनों अखबारनवीस सिख थे। भिंडराँवाले न हिंदू देखता था और न सिख।"

याद आती है *पंजाब केसरी* के लाला जगतनारायण और रमेशचंदर की हत्याएँ। भारत सरकार द्वारा जारी श्वेतपत्र के सफे तेजी से दिमाग पर दस्तक देते हैं। 20 मार्च 1981 से लेकर 2 जून 1984 तक तकरीबन पौने-छः सौ हिंसा की वारदातों से पंजाब गुजरता है। अनेक निरपराधों की हत्याएँ, कई बैंक डकैतियाँ, रेलवे स्टेशनों का जलाना, बसों से उतारकर लोगों को गोलियाँ मारना, नेताओं और अधिकारियों की हत्याएँ—सब कुछ धर्म के नाम पर, चंद लोगों की सनकों के लिए। श्वेतपत्र का हर सफा कहता है—सरकार हमेशा से सही थी। विरोधी दलों द्वारा जारी ब्यौरे सफों को काटते हुए दिखाई देते हैं। कौन सही, कौन गलत, बडा मुश्किल है यकायक कह पाना।

मगर ड्राइवर कहता है, "ये सब साजिश है। बाहरी देशों की। भिंडराँवाले के अकेले के बूते की बात नहीं। मैं जानता हूँ साहेब, गाँवों के लोग सरहद लाँघकर कैसे पाकिस्तान जा रहे हैं। हथियार और मोटी रकम लेकर लौटते हैं। सरकार नरम पड़ी तो समझो खालिस्तान बन गया।"

आखिर पौन घंटे के सफर के बाद वाघा बार्डर पहुँच गए। दोनों ओर भारत-पाक के सीमा-द्वार। दोनों के झंडे। तैनात सीमांत प्रहरी। मैं फोटो लेने लगता हूँ।

पाकिस्तानी रेजर चीखता है, "जनाब, किसकी इजाजत से फोटो ले रहे है? आप हमारे फ्लैग का फोटो नहीं ले सकते। अपनी सरहद मे रहकर अपने फ्लैग का ले।" रेंजर का चेहरा तना हुआ था। स्थिति न बिगडे इसलिए दूसरे कोण से फोटो लेना मुनासिब समझा।

लौटता हूँ तो कस्टम अधिकारी बतलाते है पिछले एक साल से पर्यटको की सख्या मे 50 से 60 प्रतिशत कमी आई है। पजाब के हालात को देखते हुए भू-मार्ग से विदेशियो को वीसा जारी नही किया जाता है पाकिस्तानी नागरिको को तो बिलकुल ही नहीं दिया जाता। इससे उस पार के लोग नाखुश है। एक दिन पाकिस्तानी भी हिदुस्तानियो को वीसा देना बद कर देगे। ये अधिकारी भी बतलाते है, सीमा का उल्लघन चलता रहता है। ट्रेनिग के लिए लोग आते-जाते रहते है। खबरे है सरहद के उस पार तैयारियाँ चल रही है। वैसे सीमा-द्वार पर तनाव नही है। दोनो के बीच अच्छे सबध है। जब कोई समस्या होती है दोनो तरफ बने कमरो मे भारत-पाक अधिकारी मिल बैठकर उसे सुलझा लेते है।

वापस अमृतसर की ओर। चारो तरफ हरियाली। ट्रेक्टरो की गडगडाहट। शहर की ओर जाते दूधिये। बातचीत का सिलसिला फिर चल पडता है। साठ साला ड्राइवर कहने लगता है, 'शहरो से ज्यादा गाँवो की हालत खराब है। गाँवा मे खूब तनाव है। वहाँ काफी गुस्सा है। गावो के लोग आसानी से माननेवाले नहीं। जो तो कहते है खालिस्तान की नीव उसी दिन पड चुकी थी जिस दिन सेना दरबार साहेब (स्वर्ण मदिर) मे घुसी थी। अब तो वक्त की बात है। खालिस्तान बनकर रहेगा।'

होटल लौटता हू। दिल्ली से आए एक सिख शिल्पी से लाउज मे मुलाकात हो जाती है। यह सिख-परिवार कारसेवा मे भाग लेने आया हुआ है। स्वर्ण मदिर के दर्शन करके लौटा है। शिल्पी मत जाहिर करते है "अकाल तख्त का पुराना नूर नहीं लौटा। रग जरूर चमकते है, पर वो बात नही। सब जल्दबाजी मे हुआ है। सिख कम्युनिटी इसे पसद नही करेगी।"

आतकवादियो के सवाल पर ये शिल्पी भी खामोश है। मगर इतना जरूर कहते है, भिडरॉवाले मरे नहीं है। जिन्दा है।"

"यह बात आप कह रहे है, शिक्षित होकर।" मै पूछता हूँ।

"देख लेना। अमेरिका के चुनाव खत्म होते ही अगले साल भिडरॉवाले दिखाई देगे। खुद अमेरिका उन्हे दुनिया के सामने पेश करेगा।" वे विश्वास के साथ

कहते हैं।

"अभी क्यों नहीं सामने लाया जा रहा है?"

"इसके राजनीतिक कारण हैं। भिंडरॉवाले पाँच जून को पाकिस्तान पहुँच गए थे।"

"सुभाषचंद्र बोस के सबंध मे भी इसी तरह का प्रचार कई सालों से किया जा रहा है। क्या ऐसा नहीं लगता कि चंद स्वार्थी लोग मृत संतजी को जानबूझकर जिन्दा रखने का प्रचार कर रहे हैं?"

"ऐसा नहीं है। नेताजी और संतजी की स्थितियों में फर्क है। वे आसमान मे थे, और ये जमीन पर। संतजी के जिन्दा रहने की गुंजाइश अधिक है। इस पर बहस करने से कोई फायदा नहीं। आप देख लीजिएगा, जनवरी-फरवरी में संतजी प्रगट होंगे।" इसके बाद हम दोनों चुप हो गए। विवेक और तर्क दोनों परास्त थे। घटनाओं के इस दौर में सबसे बडी त्रासदी विवेक के साथ हुई है। दो जून से पहले वीरता थी, विवेक नहीं था। आज आहत वीरता के लिए विलाप है, विवेक फिर नहीं। कोई भी आत्म-मथन के लिए तैयार नहीं। कोई भी यह जानना नहीं चाहता कि भिंडरॉवाले के प्यारे मरजीवडे कहॉ तक सही थे, कहॉ तक गलत? खालिस्तान का निर्माण कहॉ तक सिख समुदाय के व्यापक हितो मे है, और कहॉ तक उसके विरुद्ध? वर्तमान सिख नेतृत्व, अकाली दल एवं प्रबधक समिति कहॉ तक कसूरवार है, और दिल्ली सरकार कहॉ तक बेकसूर? क्या वास्तव मे हिन्दू साम्राज्यवाद इस देश में फैलता जा रहा है, जैसा कि आज पंजाब मे प्रचारित किया गया है? ये सारे प्रश्न त्रासदी-उपरात के संलाप में डूबे हुए हैं। त्रासदी की एक आवश्यक शर्त 'कैथारसिस'— एक सामूहिक कैथारसिस सिखों के चेहरो पर दिखाई देता है। क्या यह त्रासदी कभी कामदी (सुखात) में रूपान्तरित होगी?

**दीपावली, 1984**

उत्तर-त्रासदी  परिदृश्य तीन

# सदमों में डूबा पंजाब

भारत-पाक सीमा की एक चौकी हुसैनीवाला।

दोनो देशो की सीमा-चौकियो के श्वान एक-दूसरे पर जोर-जोर से भौक रहे हैं। दोनो ओर के सीमा-प्रहरी श्वानो को काबू करने की भरसक कोशिश मे हैं। मगर वे बार-बार बेकाबू हो जाते है, सीमा-रेखा को लॉघते रहते है, एक-दूसरे पर भौंकते और गुर्राते रहते हैं। सीमा-प्रहरी लाचार है, क्योकि इसानो के लिए सीमा-उल्लघन सख्त वर्जित है। इस पार और उस पार, सीमाद्वारो पर खडे सिविलियन दर्शक कुक्कुर और इसान के इस मिले जुले दृश्य मे मग्न हैं। कभी वे कुक्कुरो पर हॅसते हैं, और कभी प्रहरियो की बेबसी पर। और दूर-दूर तक फैले हैं—जगल, बडी-बडी घासे तथा खेत।

यह बहु-आयामी दृश्य केवल सीमा-चौकी का ही नहीं है बल्कि समूचे पजाब का एक अत्यत सवेदनशील परिदृश्य है। सैल्यूलाइड मोनटाज के समान इस परिदृश्य पर कभी आतक व हिंसा चमकती है, कभी हिदू-सिख एकता गूॅजती है, कहीं अतहीन त्रासदियॉ यकायक परिवेश को ढॅक लेती है। और कहीं क्षितिज को स्पर्श करते-नाचते हुए खेत-खलिहान चमक छितराते रहते है। कहीं कभी कोई चीज उठती है और कहीं कोई चीज शात दिखाई देती है।

पिछले दो-तीन सालो मे पंजाब की कई यात्राएॅ कीं। हर यात्रा ने पजाब की नई परत उठाई, एक नया ससार उद्घाटित हुआ। जब सत भिडरॉवाले जीवित थे, तब पजाब कुछ और दिखाई देता था, प्रात के पोर-पोर मे गुर्राहटे और गर्जनें

भरी हुई थीं। कभी लगता था—चारों ओर कैथारसिस फैलता जा रहा है। ट्रेजडी की आहटें सुनाई देने लगी थीं। तीन जून चौरासी के पश्चात का पंजाब पूरा त्रासदीमय लगा—एक ऐसा शांत सागर, जो ज्वालामुखी की ताजा-ताजा प्रसव पीड़ा झेल चुका हो और फिर भी जीवन की खोई ताजगी वापस प्राप्त करने के लिए बेकल हो; या फिर जीवन पाने के लिए एक और त्रासदी का वरण करने को मचल रहा हो।

दिल्ली में इकत्तीस अक्टूबर की त्रासदी हुई। फिर त्रासदी पर त्रासदी। इसी सप्ताह एक बार फिर त्रासदी और शहादत की भूमि पजाब की यात्रा पर गया। पंजाब की एक परत और खुली है। वातावरण में कई नई-पुरानी सुगबुगाहटें हैं। पुराने पात्रों ने नए मुखौटे लगाए हैं। कोई नया अध्याय रचने की तैयारी में है पंजाब। अब लिखा जानेवाला अध्याय महाविनाश का होगा या महासृजन का, यह भविष्य ही बतलाएगा। और मै इन दो विरोधी छोरों के बीच 'त्रिशंकु पंजाब' की यात्रा आरंभ करता हूँ। मेरा सफर चंडीगढ़ से शुरू होता है; और जालंधर, मेहता चौक, बटाला, धारीवाल, गुरुदासपुर, डेराबाबा नानक, अमृतसर, तरनतारन, हरीकेपत्तन, हुसैनीवाला, फिरोजपुर, मोगा, लुधियाना आदि कई शहरों-कस्बों को नापता हुआ वापस चंडीगढ़ में समाप्त हो जाता है। इस चार दिन के सफर में किसान मिलते हैं, मजदूर मिलते है, कहीं राजनेताओं से बातचीत होती है तो कहीं पत्रकार-बुद्धिजीवी अपना विश्लेषण सामने रखते है। कही निहंगों की लंबी-लंबी टोलियाँ दिखाई देती है, तो कहीं सभी बडे-बडे गुरुद्वारों की परिक्रमा पर निकले सिख-परिवार। ट्रेक्टरो, ट्रकों, जीपों और कारों में सवार। गेहूँ की कटाई से पहले विश्राम के कुछ क्षणो में इस तरह की परिक्रमाएँ की जाती हैं। आजकल चंडीगढ से अमृतसर तक पंजाब केसरियामय दिखाई देता है। जिधर दृष्टि डालो, उधर हर दूसरे-तीसरे सिख के सिर पर पीली पगड़ी दिखाई देगी। शिशु हो या किशोर, युवक हो या वृद्ध—सभी की पागें बसंती रंग में रँगी हुई हैं। इन रगों में से एक प्रतिध्वनि निकलती है—मेरा रँग दे बसंती चोला, या पगडी सँभाल जट्टा पगडी सँभाल।

पीली पगडी पहननेवाले कहते हैं "हमारी यह पगडी शहादत की प्रतीक है।" एक समय था जब नीली और काली पगडियाँ दिखाई देती थीं। अकाली नेताओं का आह्वान है कि अब पीली पगडी पहनने का समय आ चुका है; सिख कोई भी बलिदान देने के लिए तैयार रहें। इसलिए पीली पागों के झुंड के झुड दिखाई देते हैं। इन्हें देखकर नई आशंकाओं की छाया में कई जरनैल सिंह भिंडराँवाले, अमरीकसिह, सुबेगसिंह, बेअंतसिंह, सतवंतसिंह आदि पलते हुए दिखाई देते हैं। स्व भिंडराँवाले की मेहता चौक स्थित टकसाल याने गुरुद्वारा इसका साक्षी है।

सात अप्रैल की शाम जब मै गुरुद्वारे के लंगर मे बैठता हूँ, परिक्रमा पर निकली पीली पागधारियो की सगत से मुलाकात होती है। सगत का सयत गुस्सा उबलता है। पीली पगडीधारी कहते है, "कुछ होकर रहेगा। बदला लेकर रहेंगे।" संत लोगोवाल समझौता भी कर ले, तब भी दगो के शिकार सिख अपना अपमान कैसे भूल सकते है? इसीलिए कहते हैं कुछ होकर रहेगा।

इसी तरह की भावना खुली-दबी, कम-अधिक सभी शहरी और ग्रामीण क्षेत्रो मे दिखाई दी। चाहे शहरी हो या ग्रामीण गरीब हो या अमीर–औसत सिख के दिल मे यह टीस है कि उसकी गरिमा को आघात लगा है। उसका पहले जैसा रुतबा, बोलबाला अब नही रहा। वह इसकी गहराई मे जाने के लिए तैयार नही है कि उसका रुतबा और बोलबाला कितना सही था और कितना गलत। वह इसकी जॉच करने को भी तैयार नही है कि तीन जून एव इकत्तीस अक्टूबर से पहले उसका कद कितना स्वाभाविक था और कितना अस्वाभाविक। पजाब मे हर कोई कहता है, "पहले सरदारो को सरदारजी, सरदार साहब, कहा जाता था। हर कोई उनसे डरता था। हजारो की भीड और गिनती के सरदार दोनो बराबर रहते थे। आज हमसे कोई नही डरता। कोई हमारा सम्मान नही करता। दिल्ली के दगो ने हमारी गरिमा को ठेस पहुँचाई है। हम यह कैसे सहन कर सकते हैं?"

इन सवालो के जवाब मे जालधर अमृतसर और दूसरी जगह के हिंदू सवाल करते है, "जब यू पी का भैया पजाब की सडको पर रिक्शा चलाता है तो हम उसे चीखते हुए बुलाते हैं–अबे ओ रिक्शावाले इधर आ। जब कोई सिख रहता है तब बुलाते है–सरदारजी, सरदार साहब उधर चलोगे? उसकी मर्जी होती है तो बैठाता है नहीं तो भगा देता है। दगा के बाद इस सबोधन मे अतर आया है। और क्यो न आए? क्यो दोनो मे फर्क किया जाए? किसी का कद बडा क्यो समझे?" जालधर के एक प्रसिद्ध हिंदी दैनिक के बडे व्यक्ति ने बडी बारीकी से कदो का विश्लेषण करते हुए कहा 'भाई जोशीजी किसी भी दगे और खून-खराबे से हमे घृणा है। चाहे दिल्ली के दगे हो या पजाब के इसान ही मरता है। परतु दिल्ली के दगो से जहाँ हम दुखी है वहाँ थोडी-बहुत राहत भी। अगर दिल्ली मे दगे नहीं हुए होते, तो आज हमे आप यहाँ जिदा नहीं देखते। पुलिस और सेना नहीं होती, तो हमारा नामो-निशान मिट जाता। जब बसो मे घरो मे हिंदुओ को चुन-चुनकर मारा जा रहा था, उस समय सिखो को मलाल क्यो नहीं हुआ?" इसी तरह के आपसी शिकवे-शिकायत हर जगह सुनने को मिलते है। परतु आश्चर्यजनक यह है कि प्रधानमत्री इदिरा गॉधी की हत्या भी एक अपेक्षित पश्चात्ताप एव प्रायश्चित की लकीरे पजाब के सिख समाज मे बनाने मे विफल रही है। तीन जून के पश्चात इदिराजी की यह नियति अपरिहार्य बन चुकी थी ऐसा सबका निष्कर्ष है। इसका यह अर्थ भी नही कि हत्या की भर्त्सना करनेवाल

सिखों की कमी है। अनेक सिख मिले, जिन्होंने हत्या की जमकर भर्त्सना की; यहाँ तक कहा कि, "यह किस सिख धर्म या इतिहास में लिखा है कि एक निहत्थी स्त्री-अबला पर गोली चलाई जाए? सिख गुरुओं ने ऐसा कभी नहीं सिखाया।" कई सिखों ने पंच-ग्रंथियों की भी जमकर आलोचना की; सवाल किया, "इन सिख ग्रंथियों को इसका क्या हक है कि सिख समाज को जहाँ कहीं भी ले जाएँ?" इन ग्रंथियों को मालूम होना चाहिए कि आज का सिख समाज बीसवीं शताब्दी मे जी रहा है, अट्ठारहवीं शताब्दी में नही। इदिरा गाँधी की हत्या के समय अगर ये ग्रंथी उलटा-सुलटा बयान नही देते, खामोश रहते, तो दिल्ली के दंगे टल सकते थे। परंतु उकसानेवाले बयान दे देकर ग्रथी सिख पंथ को तबाह करने पर तुले हुए थे।"

लेकिन हर जगह सुनने को यह भी मिला कि इस दगे के पीछे इदिरा कांग्रेस की सुनियोजित योजना थी। सिखो में यह धारणा काफी गहरी उतरी हुई है कि एक नवबर को प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने खुद मुख्यमंत्रियों को दगा भडकाने के लिए वापस प्रदेशों को भेजा, दंगों की जाँच कराने और दोषी को दंड देने से सिखों का नब्बे प्रतिशत गुस्सा ठडा हो जाएगा, वे बदला लेने का ख्याल छोड देंगे। सिख अपनी कमजोरियाँ भी सामने रख देते हैं; वे कहते हैं, "हम हिपोक्रेट नहीं हैं। प्यार-दुलार से हमारी गर्दन काट लो, परतु अकडने से काम नही चलेगा। सरकार को चाहिए कि सिखो की इस मानसिक बुनावट को समझे।"

इसका यह अर्थ भी नहीं निकाला जाना चाहिए कि बदले की भावना सिख-हिंदू रिश्तो को हमेशा के लिए तोड देगी। पजाब से बाहर प्रचार है कि सिख-हिंदू एकता खत्म हो चुकी है, दोनो के सदियों पुराने रिश्ते टूट चुके हैं; कि पंजाब सांप्रदायिकता के ज्वालामुखी पर बैठा हुआ है, कि पंजाब मे हिंदुओं को मारा जा रहा है, हिंदू वहाँ घुट-घुटकर जी रहे है, कि गाँवो को छोड हिंदू शहरों में आ गए हैं, अपनी सम्पत्तियाँ बेच रहे हैं—यह सब कुत्सित और झूठा प्रचार है।

पंजाब में कहीं भी हिंदू-सिख साम्प्रदायिकता का दावानल दिखाई नहीं दिया। शहर हों या कस्बे, दोनों समुदायों के बीच परस्पर सबंध आज भी विश्वास पर टिके हैं। खासतौर पर गाँवों मे प्रगाढ प्रेम देखने को मिला। भिंडराँवाले के ठिकाने मेहता चौक में अनेक हिंदुओ ने नि.संकोच कहा, "हमे कोई खतरा नहीं है। हिंदू-सिखों में पहले जैसा प्यार है। जब भिडराँवाले जिंदा थे तब भी किसी हिंदू को कोई नुकसान नहीं पहुँचा। संतजी को दोनों ही समुदाय मानते हैं। आज भी संतजी के गुरुद्वारे में दर्शन के लिए हिंदू भी जाते हैं।"

यह बात स्वयं इस लेखक ने भी देखी। स्वर्ण मंदिर सहित अन्य कई गुरुद्वारों में भी हिंदू भक्त मिले। अमृतसर से कुछ दूर तरनतारन गुरुद्वारे में चल रही

कार-सेवा मे हिंदू उसी श्रद्धा से सक्रिय थे, जिस तरह सिख। गुरुद्वारो की परिक्रमा मे सिख और हिंदू दोनो ही शामिल थे। गॉवो मे भी सिखो की तरह हिंदू जमींदार भी खेती मे व्यस्त थे। बल्कि, जो थोडे-बहुत हिंदू पजाब से जाना चाहते थे, उन्हे उनके पडौसी सिखो ने ही रोका, सुरक्षा का आश्वासन दिया। फिरोजपुर मे इस तरह की मिसाले मिलीं। फिरोजपुर मे एक गॉव वजीरपुर है। गॉव मे तमाम हिंदू जमींदार है, पडित हैं। दिल्ली की घटनाओ के बाद ये हिंदू गॉव छोडकर जा रहे थे, परतु पडौसी गॉव भागसिह की बस्ती के सिख जमींदारो ने उन्हे जाने नहीं दिया। इन सिख जमींदारो ने हिंदुओ से कहा "मरेगे साथ-साथ, जिएँगे साथ-साथ। गॉव से नही जाने देगे।" आज इन हिंदुओ की गेहूँ की खेती लहलहा रही है।

वैसे, कुछ हिदुओ ने पजाब छोडा भी है। परतु अमीर हिंदुओ ने। गुरुदासपुर जिले मे कुछ हिंदू मिले। वे कहने लगे "जो मालदार हिंदू हैं, वे ही डरकर भाग गए। हम मेहनती लोग है। हमे किसी से कोई डर नहीं। पजाब मे ही रहना है, और यही मरना है।" ये चद शब्द इस बात के सूचक हैं कि पजाब मे भय किस वर्ग को है। सेठ वर्ग ने अपनी रक्षा के लिए भव्य मकानो पर गोरखे तैनात कर रखे है। परतु, आम हिदू मे असुरक्षा की भावना नही है।

सिख और हिंदू कहते भी हैं, "आप ही बतलाइए कि हिंदू-सिख लड कैसे सकते हैं? किसी का पिता हिदू है तो किसी की माता सिख? किसी का भाई हिंदू है, तो किसी की बहन सिख परिवार मे है। एक ही घर मे बडा भाई सिख बन चुका है, तो छोटा हिंदू ही है।"

हिंदू-सिखो के इतने पेचीदा, नाजुक और अजीबोगरीब रिश्ते इतनी आसानी से टूट जाएँगे, इसका विश्वास सहजता से हीं होता। अलबत्ता हिंदू-सिख के बीच सदेह की लकीरे सतह पर उभर चुकी है। आत्मीयता के तले कुछ-कुछ सकोच आशका और भय मिले हैं। बस 'कुछ भी हो सकता है' जैसी बाते होती रहती हैं। इसके जवाब मे यह भी कहा जाता है 'जो भी होगा देखा जाएगा।' चाहे जैसा भी वातावरण सही, यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि जहर सतह पर ही है। भय की जडे गहरी नही है, और न ही फैली हुई हैं। इसलिए सतह की इन लकीरो को आसानी से मिटाया जा सकता है।

गुस्सा, बदले की भावना, आहत अहम, घायल गरिमा, तिडका विश्वास, उलझी दिशा और अनिश्चित भविष्य इन सबके चक्रव्यूह मे फॅसा है पजाब। सिख-पथ को इस चक्रव्यूह से निकलने के लिए किसी मसीहा, किसी शहीद की प्रतीक्षा है। सत भिडरॉवाले को मानसिक रूप से जिदा रखने मे वह अपनी मुक्ति का विकल्प देखता है। प्रचार किया जा रहा है कि सतजी जिदा हैं। तीन जून को सेना के

स्वर्ण मंदिर में घुसने से पहले ही संतजी पाकिस्तान भाग गए थे। परतु, इसका जवाब किसी के पास नहीं है कि वे पाकिस्तान या अमेरिका मे प्रकट क्यो नहीं होते? प्रेस कान्फ्रेंस क्यो नहीं करते? इसका जवाब किसी के पास नहीं है। बल्कि, कुछ समझदार सिख कहते हैं, "सतजी को जिदा रखकर एक नई दुकानदारी खडी की जा रही है। नेताजी सुभाषचद्र बोस के मामले मे भी ऐसा ही हुआ है।"

आहत अहम की कुठा से मुक्ति के लिए सिख पथ को चाहिए कोई बसती चोला। इसलिए स्व भिडरॉवाले को जीवित रखना उसकी एक त्रासदीपूर्ण ऐतिहासिक आवश्यकता है। कभी खालिस्तान के सबध मे बहकी-बहकी बातो मे वह इस कुठा से मुक्ति खोजता है। सिख कहते है, "हमारा अब इस देश मे मन नही लगता। यहॉ हमारी गरिमा सुरक्षित नहीं है। हमारा अलग राष्ट्र होना चाहिए जहॉ हमारी प्रतिष्ठा सुरक्षित रहे।"

इस तरह की बाते कहनेवालो की सख्या अधिक नहीं है। पजाब के बाहर आम खयाल है कि औसत सिख खालिस्तान चाहता है। परतु, यह बिलकुल गलत है। औसत सिख खालिस्तान नहीं चाहता। भूमिहीन सीमात किसान और दूसरे गरीब तबके खालिस्तान के सबध मे बिलकुल बात नहीं करते। वे कहते है, "हमे काम करना है, रोजी कमाना है और रोटी कमाना है। खालिस्तान से हमारा कोई लेना-देना नहीं है।" सम द्ध तबके मे कुछ लोग जरूर बढ-चढकर खालिस्तान की बाते करते हैं। लेकिन उनकी शैली से ऐसा लगता है कि वे दबाव-धौस से सरकार को झुकाना चाहते है, ताकि उनके हित पूरे होते रहे। खालिस्तान की बात करनेवाले सम द्ध किसान कहते है हमे अनाज के उचित दाम नहीं मिलते। समय पर बिजली और खाद नही मिलती। हर जगह रिश्वतखोरी है। आढतिया लूटता है। सरकार हमारी रक्षा नही कर सकती।"

बावजूद इन छोटी-बडी शिकायतो के आम सिख भारत के साथ रहना चाहता है। जहॉ भी मैं गया अधिकाश सिखो ने यही कहा, "भारत छोडकर कहॉ जाएँ। इसकी आजादी के लिए हमारे पुरखो ने खून बहाया है। हमारे रिश्तेदार पजाब से बाहर हैं।" रौब के साथ यह भी जोड देते है "देश की ट्रासपोर्ट इकोनोमी हमारे हाथो मे है। पजाब से बाहर सिख बडे-बडे ठेकेदार उद्योगपति होटल-मालिक और किसान है। इन सबको हम कैसे छोड सकते है? यह सब कुछ हमे पाकिस्तान थोडे ही दे सकता है? बस हमे शाति और सम्मान चाहिए।"

सिख पथ को शाति, सम्मान और पूर्ण गरिमा चाहिए। देश का कौन नागरिक इस आधारभूत आवश्यकता से असहमति रख सकता है? हिंदू-सिख दोनो को ही यह गरिमा चाहिए। चडीगढ के प्रेस क्लब मे इन मुद्दो पर सिख-हिंदू पत्रकार जमकर बहस करते हैं। दोनो ही समुदायो के पत्रकार बीयर का पैग चढाते हुए

अपने-अपने समुदाय के पोंगापंथियों की जमकर खिल्लियाँ उड़ाते हैं। ठहाकों के बीच कहते हैं, "पडित और ग्रंथी दोनो ही सोशल पेरासाइट हैं।" और बीयर के दौर।

हुसैनीवाला चौकी से लौटता हूँ तो दाईं तरफ कुछ फासले पर शहीद-त्रिमूर्ति भगतसिह, राजगुरु और सुखदेव— की समाधियाँ हैं। कोई इनके पास खडा होकर अपनी आत्मा को टटोले और पूछे— "बताओ हे शहीदो, कौन है तुममे सिख, कौन हिदू, कौन मुसलमान? और कौन है भारतवासी और कौन है खालिस्तानी?" कोई होगा बिरला माई का लाल, ऐसे सवाल करते समय जिसकी ऑखे शर्म से झुकेंगी नहीं।

**14 अप्रैल, 1985**

## संत लोंगोवाल ने कहा था–

# 'अपने ही खेल खेल गए'

एक घटना सात समंदर पार की। घटी कोई आठ सौ साल पहले। 29 दिसंबर, 1170 को इगलैंड के एक कैथेड्रिल पूजाघर में महाधर्माध्यक्ष (आर्चबिशप) थॉमस बैकेट की हत्या उसके अपनो ने ही कर दी। साक्षी था सलीब पर लटका ईसा। बैकेट का अपराध था – परमात्मा और न्याय के पथ पर चलते रहना। परंतु उसके ही मित्र शासक किंग हेनरी को यह स्वीकार नहीं था। वह नहीं चाहता था कि उसका मित्र बैकेट जनता में अपने न्याय के लिए लोकप्रिय होता रहे। हेनरी चाहता था कि उसका आर्चबिशप मित्र उसके स्वेच्छाचारी और आतंकवादी शासन पर धार्मिक वैधता की मोहर लगा दे। परतु, बैकेट को यह स्वीकार नहीं था। परिणाम, हेनरी ने चार हत्यारे भेजे। हत्यारों ने महाधर्माध्यक्ष को पहले 'विश्वासघाती गद्दार' घोषित किया, और अंत मे सूली पर लटके परमात्मा के सामने उसकी नृशस हत्या कर दी।

ठीक वैसा ही दृश्य 20 अगस्त, 1989 को भारत में दोहराया जाता है। संत हरचंद सिंह लोंगोवाल की हत्या उनके ही पंथ के व्यक्ति पूजाघर-गुरुद्वारे में परमात्मा-रूप गुरु ग्रंथ साहिब के सामने कर देते हैं। अंतर केवल यह था कि बैकेट की हत्या तलवार से की जाती है और लोंगोवाल की गोलियों से। पर दोनों का प्राणोत्सर्ग अन्याय के विरुद्ध था। संगरूर और लोंगोवाल पहुँचने पर मुझे महाधर्माध्यक्ष बैकेट तथा संत लोंगोवाल एक-दूसरे में रूपांतरित होते प्रतीत हुए। पंजाब-समझौते के पश्चात संतजी को भी उग्रवादियों ने उसी प्रकार पंथ का गद्दार घोषित कर दिया था, जिस प्रकार हेनरी ने बैकेट को राष्ट्रद्रोही घोषित किया था। बैकेट की तरह लोंगोवाल का अपराध था – परमात्मा के

मार्ग पर चलते हुए अन्याय और आतंक के विरुद्ध लड़ना, हिंदू-सिख एकता बनाए रखना। आतकवाद के प्रमुख को यह स्वीकार कैसे हो सकता है कि पंजाब में शांति लौटे, सतजी एकता के मसीहा बने रहें, पंजाब मे आतंक और हिसा के नवजात कालदूतों के समानान्तर एकता, अहिंसा और अमन-चैन की सत्ता कायम करे। संतजी के इस स्वप्न को वे लोग तोडना ही चाहते थे। गुरुद्वारे मे परमात्मा की अरदास करते हुए सतजी का प्राणान्त करना, इससे अच्छे और कौन से क्षण हो सकते थे! हेनरी ने जो षड्यत्र बैकेट के लिए रचा था, संतजी के लिए उनके अपनो ने भी उसकी पुनरावृत्ति की।

घनी रात्रि मे, लोंगोवाल गॉव के बाहर बने गुरुद्वारे मे सतजी की समाधि पर टिमटिमाती दीप-शिखा के पास खडे शहीद सत के एक खास सेवक ने अपनी शकाएँ इस प्रतिनिधि से व्यक्त की। यह सेवक सतजी के साथ अंतिम क्षणो तक था। सेवक की आशकाएँ ही नहीं थी बल्कि दृढ विश्वाम था कि सतजी के असली हत्यारे दूसरे ही है, जिन्हे पकडा गया है वे केवल निमित्त मात्र हैं, भाड़े के टट्टू है। इस व्यक्ति का सकेत आतकवादियो की ओर नही था, ऐसे व्यक्तियों की ओर था जो अकाली दल के महत्वपूर्ण सदस्य है। पजाब समझौते के बाद से उन्हें सतजी की लोकप्रियता से चिढ हो गई थी। ये तत्व नहीं चाहते थे कि लोंगोवाल पंजाब के एकछत्र नेता बने। ऐसे तत्वो ने आतकवादियो को अपने खेल का मोहरा बनाया और सतजी को रास्ते से साफ कर दिया। गुरुद्वारे मे चर्चा यह भी थी कि सतजी ने सगरूर अस्पताल पहुँचने से पहले कार मे अपने एक-दो खास सहयोगियो से ऐसे कथित तत्वो की ओर इशारा भी किया। कहते हैं अस्पताल मे दम तोडने से पहले कार में सतजी ने कहा था, "अपने ही खेल खेल गए।" गुरुद्वारे में ऐसे तत्वो के नाम दबे-दबे अस्पष्ट स्वर में लिए गए। चर्चा यह भी सुनने को मिली कि संतजी की मृत्यु और उनके दाह-संस्कार के समय अकाली दल के कतिपय तत्वों ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। हर काम में तटस्थता दिखाई। लोगोवाल गुरुद्वारे में सतजी की हत्या को रहस्यमयी माना जाता है।

रहस्य का यह पर्दा लोंगोवाल गॉव में ही नहीं था, पूरे पंजाब में था। पंजाब-हरियाणा की संयुक्त राजधानी चंडीगढ इस रहस्य का गढ था। सिख-हिन्दू दोनों ही संतजी की हत्या के लिए उग्रवादियों से अधिक उनके कतिपय साथियो के नाम लेते हुए मिले। यहॉ तक सुनने को मिला कि ये साथी अपनी खाल बचाने के लिए अब चुनाव में सक्रिय हो गए हैं, अकाली दल के कार्यवाहक अध्यक्ष बरनाला को सहयोग दे रहे हैं। चंडीगढ से बाहर पटियाला, संगरूर, लुधियाना, अमृतसर, गुरदासपुर, जालंधर, रोपड, आनदपुर आदि क्षेत्रों मे संतजी की हत्या को एक गहरे षड्यंत्र के रूप में देखा जा रहा है। घटना-स्थल पर पकडे जानेवाले कथित हत्यारे ज्ञानसिंह और मलविंदर सिंह तो अफीमची मोहरे थे, असली कातिल नहीं। कुल

मिलाकर लोगबाग इसे दल की आंतरिक कलह का परिणाम मानते हैं। पंजाब के कोने-कोने में सतजी की हत्या को पंजाब की ऐतिहासिक त्रासदी के रूप मे देखा गया है। पंजाब अपराधबोध से ग्रस्त है। पश्चात्ताप और प्रायश्चित की लकीरे पंजाब के चेहरे पर देखी जा सकती हैं। शहरी और ग्रामीण दोनो ही पजाब चाहते हैं कि ऐसी नृशस त्रासदी की पुनरावृत्ति न हो।

इसीलिए राजीव-लोगोवाल समझौते का स्वागत हुआ है। पजाब के सभी वर्गो ने इसे एक नए युग की शुरूआत के रूप मे देखा है। ग्रामीणो पर इसका प्रभाव अच्छा मिला है। पढे-लिखे लोगो ने भी इसका स्वागत किया। वैसे एक सच्चाई यह भी है कि सतजी की हत्या से पहले समझौते को अधिक महत्व नही दिया गया था। सतजी ने अपने उत्सर्ग से इसे अमर बना दिया है। आम हिंदू-सिख कहता है कि सतजी की हत्या से पजाब कॉप उठा है। अब वह चाहता है कि समझोता उसकी कायाकल्प कर दे।

दूसरी सच्चाई यह भी देखने को मिली है कि खालिस्तान का बुखार उतार पर है। छुटपुट हिसात्मक घटनाओ को छोड दे तो खालिस्तान का अब नाम नही लिया जाता। यहॉ तक कि अमृतसर और गुरदासपुर जैसे जिलो मे, जहॉ भिडरॉवाले का बोलबाला रहा है, खालिस्तान के सबध मे कोई चर्चा करना पसद नही करता। पिछले अप्रैल मे स्थिति दूसरी थी। हर कोई कहता था कि खालिस्तान एक सच्चाई है। अब इसे स्वीकार नहीं किया जाता। कुछ लोग तो यहॉ तक कहते है कि सतजी की हत्या ने खालिस्तान को और भी असभव बना दिया है। आम सिखो का कहना है कि सतजी की हत्या के कारण उग्रवादी खालिस्तानी जनता मे अलग थलग पडते जा रहे है। गॉवो मे उनके आधार टूटते जा रहे है। उनके लिए गॉवो मे शरण लेना मुश्किल हो गया है। इसलिए वे शहरो मे शरण लेने के नए-नए रास्ते तलाश रहे है। भिडरॉवाले के ठिकाने मेहता चौक मे उग्रवादियो को अच्छी दृष्टि से नही देखा जाता। अप्रैल मे स्थिति इससे भिन्न थी। सत लोगोवाल की हत्या ने मेहता चौक को भी दहला दिया है।

स्वर्ण मदिर परिसर मे जिस बडी मात्रा मे धडल्ले से भिडरॉवाले की तस्वीर बिकती थी अब वैसा नही है। अब तस्वीर बेचनेवालो को भय रहता है। अब यह अफवाह भी ठडी पडने लगी है कि भिडरॉवाले जिदा है। पिछली जून से लेकर अप्रैल 85 तक आम सिख यह मानता था कि जरनैल सिह भिडरॉवाले जिन्दा हैं, बहुत जल्दी प्रकट होनेवाले है। लेकिन अब सिख-मानस बदला है। बाबा जोगिन्दर सिह के सयुक्त दल के समर्थको को छोडकर कोई यह नहीं कहता कि भिडरॉवाले जिदा है। सीमात जिले गुरदासपुर और मेहता चौक तक मे यह अफवाह सुनने को नही मिली।

लोग यह महसूस करने लगे हैं कि भिंडराँवाले मर चुके हैं। निहित स्वार्थी तत्व ही उन्हें जिंदा रखने की साजिश रचते रहते हैं। लोग कहते हैं कि सुभाषचंद्र बोस के साथ भी यही दुर्भाग्य रहा।

अप्रैल-यात्रा में चारों तरफ पीली पाग का चलता-फिरता मेला दिखाई देता था, लेकिन अब वह लुप्त होने लगा है। अकालियों की नीली पाग और उसके बाद कांग्रेसियों की सफेद पाग अधिक दिखाई देती है। इसके बाद सामान्य रंगों वाली पगड़ियाँ हैं। युवक वर्ग खास तौर पर केसरिया पागधारी है। चंडीगढ़ से लेकर पटियाला, अमृतसर और आनंदपुर तक कोई सिख भी भूल से यह नहीं कहता कि पंजाब में सिख-हिंदू एकता टूट चुकी है। उसके मुखडे पर क्षणिक खरोंचें तो हो सकती हैं, परंतु गहरे घाव नहीं हैं। संतजी की हत्या से यह एकता और मजबूत हुई है, ऐसा आम हिन्दू-सिख का कहना था। समझौते से दोनों और करीब आए हैं। गॉव में रहनेवाले हिंदू कतई भयभीत नहीं हैं। शहरी क्षेत्रों के सिख भी उतने ही भयरहित हैं।

समझौते के लिए सिख संतजी के संबंध में कहते हैं : "उन्होंने पंजाब को जलने से बचा लिया।" और यही शब्द राजीव गॉधी तथा राज्यपाल अर्जुनसिंह के लिए कहते हैं। समझौता होने से राजीव गॉधी की लोकप्रियता निश्चित तौर पर सिखों के बीच बढ़ी है। गॉव के सिखों म उनकी छवि अच्छी हुई है। इंदिरा गाँधी से अधिक उन्हें सिखों का हमदर्द माना जाता है। श्री अर्जुनसिंह भी कम लोकप्रिय नहीं हैं। ऐसे हिंदू-सिख भी मिल गए जो यह कहने लगे कि यदि श्री सिंह पंजाब से चुनाव लडें तो उनकी जीत निश्चित रूप से होगी। अब तक के इस विवरण का अर्थ यह बिलकुल नहीं कि पंजाब मे सब कुछ अच्छा ही अच्छा है और पूरा अमन-चैन है। जहॉ भी यह संवाददाता गया, हर जगह चुनावों में हिंसा फूटने की आशंका व्यक्त की गई। कोई भी यह मानने को तैयार नहीं था कि चुनाव बगैर खून-खराबे के संपन्न होंगे। असम के खूनी चुनावों का उल्लेख सभी ने किया। हिंसा की यादों के बीच इंसान ने हिम्मत नहीं हारी है। हिदू-सिख किसी ने भी चुनावों को गैर-जरूरी नहीं बताया बल्कि लोगों ने साहस के साथ कहा कि हिंसा होती है, तो सामना करेंगे, परंतु चुनावो से भागेंगे नहीं। अनेक लोगों ने यह राय अवश्य व्यक्त की कि चुनाव कुछ समय के लिए टल जाते तो ठीक रहता। संत लोंगोवाल भी यही चाहते थे। कुछ पढ़े-लिखे सिख ऐसे भी मिले जिनका मत यह था कि उतावले मन से चुनाव झटपट में कराए जा रहे हैं। फिर भी किसी को कोई कड़वी शिकायत श्री सिंह से नहीं मिली। लोगों का कहना था कि चुनाव जब भी कराए जाते, हिंसा से बचा नहीं जा सकता था। उग्रवादियों को चुनाव बिलकुल मंजूर नहीं हैं; वे हर कीमत पर चुनावों को रोकने की कोशिश

करते। अत· ऐसा लगता है कि समूचे पंजाब ने हिंसा को अपनी नियति मान लिया है। हर जिम्मेदार व्यक्ति कहता है कि हिंसा से बचा नहीं जा सकता। कई गॉवो और शहरो मे सिखो ने कहा कि सतजी के बाद भी शहादतें होगी। पजाब तैयार है, परतु उग्रपथियो के सामने घुटने नहीं टेकेगा।

पजाब मे सरकार बनाने के सवाल पर लोगो की मिश्रित प्रतिक्रिया थी। फिर भी यह मानना पडेगा कि अधिकाश लोग इस मत के थे कि अकालियो की सरकार बनने से राज्य मे टिकाऊ शाति स्थापित हो सकती है। अकाली सरकार आतकवादियो का सफया कडाई के साथ कर सकती है। काग्रेसी सरकार बनने पर आतकवाद बढेगा। अकालियो का असहयोग बढेगा। अधिकाश हिंदू-सिखो का मत था कि दूरगामी रणनीति के तहत काग्रेस को चाहिए कि अकालियो की सरकार बनवाए। धीरे-धीरे उसे 'एक्सपोज' होने दे।

इसके विपरीत गॉवो मे ऐसे भी सिख मिले जिन्होने डके की चोट कहा कि सरकार काग्रेस की ही बनेगी, अकालियो की नहीं। काग्रेस की सरकार ही पजाब को स्थायी शाति दे सकती है। काग्रेस और अकाली दोनो मिलकर पजाब का विकास तथा आतकवाद का सफाया कर सकते है। मानना पडेगा कि पजाब मे मतदाताओ का धर्म के आधार पर एक तरह से ध्रुवीकरण हो चुका है। हिंदू काग्रेस को वोट देगे और सिख अकाली दल को। परतु मजहबी सिख काग्रेस के साथ रहेगे। देखा जाए तो अकाली दल घाटे मे रहेगा। यदि काग्रेस अपने पर उतर आती है तो अकाली दल का जीतना असभव है। अकाली दल जीतेगा तो काग्रेस के कमजोर उम्मीदवारो के कारण। याने काग्रेस चुनाव हारने के लिए लडेगी, तभी अकाली दल की सरकार बनना सभव है।

इस चुनाव मे सबसे ज्यादा घाटे मे रहनेवाला दल है- भारतीय जनता पार्टी। पजाब के हर क्षेत्र मे यही सुनने को मिला कि हिदुओ के वोट भाजपा की नही, काग्रेस की झोली मे जानेवाले है। जम्मू के चुनाव परिणाम दोहराए जा सकते हैं। वैसे भाजपा के कुछ नेताओ की छवि उजली है, जिनकी जीत की सभावना पूरी है।

कुछ स्थानो पर दूसरे दलो की स्थिति भी अच्छी है। दोनो कम्युनिस्ट पार्टियॉ मिलकर चुनाव लड रही है। कई जगह स्थिति अच्छी मिली। दोनो को पहले से अच्छी सीटे मिल सकती हैं।

लोगो मे यह आशकाऍ थी कि चुनाव के बाद भी सतलुज, रावी, व्यास मे उफान रहेगा, इतनी जल्दी थमेगा नही, लबे समय तक रहेगा—ऐसा मानस औसत पजाबी का बन चुका है। है न यह विडम्बना भरा परिदृश्य कि इस हिंसा के बीच भी

मनुष्य की ऊर्जा चुकी नहीं है। इस बार पजाब मे रिकार्ड तोड अन्न उत्पादन हुआ है। आतक और हिसा के साये मे सॉस लेते हुए पजाब के पोर-पोर मे थिरकन है। हिसा ताल मे बेताल अवश्य है, परतु भॅगडा उससे छूटता नहीं है। गाँवो मे हीर की गूॅज गूॅगी नही हो जाती हैं। पूजाघर मे फिर कोई सत लोगोवाल हुतात्मा का चोला धारण करेगा हीर तो फिर भी सतलुज की घाटियो मे गूॅजती ही रहेगी।

**10 सितबर, 1985**

# अपवित्रता और अस्वस्थता की संस्कृति

पिछले सप्ताह अमृतसर मे था। कोई नई घटना तो नही थी। कई दफे जा चुका हूँ। पर इस यात्रा मे स्वर्णमंदिर से एक डेढ किलोमीटर फासले पर दुर्गियाना मदिर गया था। पहली बार दर्शन किए थे अमृतसर के इस प्रसिद्ध हिदू मदिर के। पजाब भर मे इस मदिर की चर्चा है। पिछले बरस भी यह मदिर अखबारी सुर्खियो मे रह चुका है। कहते है किन्ही शरारती तत्वो ने इसमे गो-मास के लोथडे फेक दिए थे। मुख्यमत्री बनने के पश्चात् बरनाला मंत्रिमडल के सदस्य स्वर्णमंदिर तो गए, किंतु इस मदिर मे नही आ सके थे हालाँकि यहाँ मुख्यमत्री के स्वागत की तैयारियाँ पूरी थी। तब भी यह स्थल चर्चा का केन्द्र बन गया था। कहते है कि अमृतसर की हिदू राजनीति का यह अखाडा है। सोचा, पजाब न जाने कब आना हो, इसलिए इस बार इसे देख पुण्य सचित कर ही लिया जाए। स्वर्णमदिर के समान यहाँ भी मदिर के प्रवेशद्वार पर जूते रखे जाते हैं। जूते रखने पर टोकन दिया जाता है। उसी स्थान पर लिखा हुआ है नि शुल्क सेवा। यदि इच्छा हो तो दान दे सकते है। स्वर्णमंदिर मे जूते वाले स्थान पर ऐसा नहीं लिखा है। जूता उतारा तो चारो तरफ बेहद गदगी जमा थी। उसके इर्द-गिर्द बैठे थे सी आर पी जवान जैसेकि वे मंदिर से ज्यादा घूरे की हिफाजत के लिए तैनात हो। पूछा, सफाई क्यो नही होती, तो मदिर के कर्मचारियों ने मुँह बिचका दिया। मुख्य मदिर परिसर मे पहुँचा तो चारो तरफ सन्नाटा पाया। स्वर्णमंदिर के समान यह मंदिर भी तालाब के बीच में स्थित है। हरिमंदिर साहब के तालाब में स्नान करने को जी मचलता है, पर इस तालाब को देखकर उबकाई आती है। चारों तरफ पानी गँदला-गँदला। बदबू। लगा, शताब्दियों से इसकी सफाई नहीं हुई है।

मंदिर मे मुख्य प्रागण मे अमुक लाला, अमुक सेठ अमुक सेठानी के नामो की

सगमरमर पट्टियॉ चारो तरफ लगी हुई है। पट्टियो पर खुदा है फलॉ ने 500 रुपए दिए तो फलॉ ने पॉच हजार रुपए। आलम यह कि गदगी लक्ष्मी और सगमरमर का अनूठा सगम था। स्वर्णमदिर मे शौर्य बलिदान, त्याग तपस्या और उत्सर्ग से पोर-पोर गूँजता है हर ऑगन हर दीवार पर किसी सेनानी का नाम अकित मिलता है-सूबेदार से लेकर जनरल तक। कुछ क्षणो के लिए लगता है कि सपूर्ण सेना पजाब रेजीमेट राजपूत रेजीमेट मराठा रेजीमेट आदि आपके सामने है। 1947 1962 1965 और 1971 के युद्ध स्वर्णमदिर के सगमरमरी ऑगन की शोभा बने हुए है। पट्टिकाओ पर सैनिको और युद्ध का वर्णन मिलेगा नाम और राशि का बहीखाता नही। स्वर्णमदिर मे भुजाएँ तन उठती है और दुर्गियाना मदिर मे ऑखो मे किरकिरी चुभने लगती है। मुख्य मदिर मे जालो के जाल। ठीक मूर्ति के सामने। एकमात्र पुजारी से जो कि दुखियारी काया लग रहे थे पूछा क्यो पुजारीजी मदिर की सफाई नही होती ' 'अजी कौन कराता है। यहॉ क सब लोग तो खाने पीने मे लगे हुए है मदिर की किसको चिता। पुजारीजी बडे दुखी हृदय से बोले। स्वर्णमदिर तो बहुत स्वच्छ है।" वो सिखो का है जी। हम हिदुओ मे वैसा सेवा भाव कहॉ। सच है अमृतसर म हिदू आबादी कम नही है। स्वर्णमदिर मे नगर के औसत सिख परिवार का सदस्य कार सेवा मे भाग लेता है मदिर की सफाई मे रोज शामिल होता है और खुशी खुशी भक्तजना के जूते उठाता ह। गरीब हो या अमीर सेवा मे कोई अतर नही। सभी समान। गाव के गुरुद्वारे से लेकर अमृतसर के गुरुद्वारे तक यही धारा बहती हे लेकिन मदिरो म इसके ठीक विरुद्ध मदिर से बाहर निकला तो दोनो तरफ दुकानो मे मक्खियॉ भिनभिना रही थी। नालियो मे गदगी बह रही थी। पीछे छूट रहा था मदिर का ।चो ता सूनापन और दुखियारी काया के शब्द।

पूजास्थल की स्वच्छता देश की स्वच्छता से न्यारी नही है। गदगी का एक ही राग है चाहे मदिर हो या अस्पताल। अगले दिन दिल्ली से भोपाल लौटते हुए मुख्यमत्री श्री मोतीलाल वोरा ने सरकारी विमान मे प्रदेश के अस्पतालो की गदगी को लेकर चिता जाहिर की। इस चिता ने अच्छी-खासी चर्चा का रूप ले लिया। इसमे शरीक हुए मुख्यमत्री के साथ-साथ उनके निजी सचिव श्री बी के लोहानी और पुलिस अधिकारी श्री नटराजन। मुख्यमत्री श्री वोरा ने अपना अनुभव सबसे पहले रखा। कहने लगे "अस्पतालो मे सफाई की सबसे बडी समस्या है। कुछ अस्पतालो को छोड दीजिए बाकी हर जगह गदगी है।

**लोहानी** मेरा भी यही अनुभव है सर। इदौर के अस्पताल से पाला पडा था, न सफाई थी और न ही और कुछ। पखे एयर कडीशनर सब बद पडे थे। भोपाल के हमीदिया अस्पताल की हालत और भी खराब है।

**नटराजन** : सर, दिल्ली के अस्पतालों की भी यही हालत है। एक टाइम था जब आल इंडिया मेडिकल इंस्टीट्यूट में सफाई रहती थी। आज वहॉ भी इसकी कमी है।

**लोहानी** : अस्पताल बीमारी के घर बन रहे हैं।

**वोरा** : डॉक्टर लोग न मरीजो की ओर ध्यान देते हैं और न ही सफाई की ओर; बस प्राइवेट प्रेक्टिस में लगे रहते हैं। इंस्टीट्यूट के डॉक्टरों ने निजी क्लीनिक खोल रखे हैं। मुझे इसका अनुभव है।

**नटराजन-लोहानी** : बडा मुश्किल है प्राइवेट प्रेक्टिस को रोकना।

**वोरा** : लगता है कि सभी प्रदेशों में चल रहा है।

**लोहानी** : सर, अस्पतालो की क्लीनलीनेस के बारे में शासन को कुछ करना पडेगा। वहॉ के सफाई कर्मचारी और डॉक्टर कुछ काम ही नहीं करते।

**वोरा** : बताइए क्या किया जाए।

**लोहानी** : सर, प्रदेश के अस्पतालों में सफाई का काम ठेके पर दे दिया जाना चाहिए।

**नटराजन** : इससे काम नहीं होगा। अस्पतालों के एडमिनिस्ट्रेशन का काम किसी आईएएस अधिकारी को दे दिया जाना चाहिए, डॉक्टरों के कंट्रोल की बात नहीं। लेकिन भोपाल और इंदौर के अस्पतालों का प्रशासन किसी अधिकारी को सौंप दिया जाना चाहिए।

**लोहानी** : सरकारी अधिकारी से काम नहीं चलेगा। शुरू मे ठीक रहेगा, फिर वही पुराना ढर्रा शुरू हो जाएगा। सफाई का काम ठेके पर उठा देना चाहिए। इसे गलत मत समझें। मैं फ्री एंटरप्राइज (मुक्त व्यापार) की वकालत नहीं कर रहा हूॅ। परतु जो सच्चाई है, उसे स्वीकार किया जाना चाहिए।

**वोरा** : हॉ, इसके संबंध में सोचा जा सकता है। गंदगी तो दूर करनी ही पडेगी।

इसके बाद चर्चा का रुख भोपाल गैस त्रासदी, उससे प्रभावित लोगों और यूनियन कार्बाइड के अध्यक्ष एंडरसन की ओर मुड गया। चर्चा, दिल्ली से प्रकाशित हिंदी दैनिक *जनसत्ता* पर आ अटकी। उस दिन *जनसत्ता* में एक लेख हमीदिया अस्पताल पर प्रकाशित हुआ था।

**वोरा** : जोशीजी, आपने *जनसत्ता* का यह लेख पढ़ा ?

***जोशी** : जी हॉ, इसमें लिखा गया है कि अस्पताल की लिफ्ट दो महीनों से बीमार*

है।

**वोराजी** : आज उतरते ही अस्पताल का इस्पेक्शन कर लिया जाए, काफी दिन हो गए है। सच्चाई का भी पता चल जाएगा।

हवाई अड्डे पर मुख्यमत्री का सरकारी विमान उतरता है। पायलट से कहा जाता है, सीधे हमीदिया अस्पताल चलो। चंद मिनटो में मुख्यमंत्री का काफिला हमीदिया अस्पताल के परिसर मे होता है। मुख्य भवन के सामने बहता गदा पानी मुख्यमंत्री का स्वागत करता है।

**लोहानी** : देखिए सर, जरा-सी सावधानी से काम लेते तो इस गदगी को दूर किया जा सकता था। केवल एक नाली बनाने की जरूरत थी। निकास नहीं होने के कारण कितना गदा पानी बह रहा है।

वोराजी के साथ-साथ हम सभी अस्पताल की लिफ्ट के सामने पहुँचते हैं। डीन से मुख्यमंत्री कहते है, "चलिए, लिफ्ट से ऊपर चलें। गैस पीडित वार्ड मे चलना है।"

डीन का चेहरा फक। "लिपट खराब पडी है, सर!" बुझे चेहरे से डीन कहते हैं।

**वोराजी** : लिफ्ट कब से खराब है।

**डीन** : डेढ महीने से, सर!

**वोरा** : अच्छा!

मुख्यमंत्री वार्ड मे पहुँचते है। दूसरी मजिल पर। सफाई कर्मचारी सफाई में जुटे हुए दिखते हैं। मुख्यमंत्री सब कुछ ताड जाते है। रसोई में जाते हैं। डीन का ध्यान कालिख की ओर दिलाते हैं। इसके बाद मरीजों के पलंग के सिरहाने रखे दवाई स्टैंड की ओर उनकी दृष्टि जाती है।

**वोरा** : देखिए डीन साहब, कितनी गंदगी है! चारों तरफ जंग है। दवाई कैसे सुरक्षित रहेगी! इन स्टैंडो को बदला जाना चाहिए। डीन बुदबुदाते हैं : सर्र!

मरीजों की भीड में से एक चेहरा सामने आता है। दवाई की पर्ची दिखाते हुए वह कहता है, "साहब, अस्पताल में दवाई नहीं मिलती है। बाजार से खरीदनी पड़ती है। ये देखिए साहब पर्ची।" वोराजी पर्ची की जॉच करते हैं। डीन अपनी कैफियत देते हैं। जिरह करते हैं कि "सर, यह हो ही नहीं सकता।"

**मरीज** : नहीं साहब, दवाई बाजार से ही खरीदनी पडी। ये रही रसीद।

मुख्यमत्री फौरन कीचड पार करते हुए दवाई की खिडकी के पास पहुँचते हैं। दवाई देनेवाला कहता है "स्टोर से नही मिली, सर!" मुख्यमत्री दवाई-स्टोर पहुँचते हैं। रजिस्टर की जॉच करते है। स्टोर अधिकारी कहते है "स्टोर में दवाई है। यह रहा रजिस्टर। जैसे ही डिमाड आती है, दवा सप्लाई कर देते है। हमारी कोई गलती नही है सर!"

**वोरा** : डीन साहब इस गरीब आदमी को चालीस रुपयो की दवा क्यो खरीदनी पडी ? आप जॉच करिए और दोषी व्यक्ति को यहॉ से हटाइए। शाम तक इसकी जानकारी दीजिए।

डीन फिर बुदबुदाते है 'सर्र!" इस बार उनका स्वर और बुझा बुझा था।

मुख्यमत्री की कार मरीजो की भीड पीछे छोडती है और एक बार फिर कीचड पार करती हुई शामला हिल्स (मुख्यमत्री निवास) की ओर मुड जाती है।

यह कहानी अमृतसर ओर भोपाल की नही बल्कि पूरे देश की हे। एक स्थल का कर्म मन को पवित्र रखने के लिए है और दूसरे का कर्म तन को स्वस्थ रखने के लिए। कैसी विडबना है कि आज दोनो ही स्थल अपवित्र एव अस्वस्थ है। अब मन और तन के मरीज जाए तो कहॉ जाएँ! मुख्यमत्री किन किन अस्पतालो का चक्कर लगाएँगे! मदिर का पुजारी कब तक देखता रहेगा मकडी के जालो को और कब तक चलती रहेगी ये बुदबुदाहटे।

**10 दिसम्बर, 1985**

# आम आँखों के सवाल

सचमुच पजाब के मानस को समझना एक छलॉग मे सतलुज लॉघने जैसी कहानी है। जितनी दफे पजाब गया, एक नई सतह उगती और दूसरी सतह गुम होती दिखाई दी। एक यात्रा मे एक सवाल सुलझता दिखाई दिया दूसरी यात्रा मे वही उलझता मिला। बिलकुल बेताल पच्चीसी बना हुआ है- पजाब।

कहने का मतलब यह कि पजाब के ताने-बाने मे जितनी पैठ बनाने की कोशिश करेगे उतना ही उलझते चले जाएँगे। पिछले बरस विश्वास था कि पजाब समझौता सत लोगोवाल की शहादत और विधानसभा चुनाव सारे सवालो का जवाब बन जाएँगे। एक नई कहानी का सिलसिला शुरू होगा। पजाब ऑपरेशन ब्लू स्टार से पहले के काल मे लौट जाएगा। 1984 की सभी त्रासदियाँ इतिहास का हिस्सा बन जाएँगी। पजाब एक नया अध्याय शुरू करेगा।

पर, क्षितिज अभी धुधला दिखाई देता है। रावी सतलुज के तटो पर रुँधी-रुँधी चुप्पी भी है रुधा रुधा कोलाहल भी। बरनाला सरकार एक वर्ष की हो चुकी है। यह दावा करना उसके लिए मुश्किल है कि वह सारे सवाल जानती है और उनके जवाब भी। उपलब्धियो और विफलताओ के सबध मे पजाब की जनता का एक मिश्रित दृष्टिकोण है, बरनाला सरकार को जॉचने-परखने के सबके अपने मापदड है। सुविधा व असुविधानुसार कसौटियाँ बदलती रहती हैं। चडीगढ से लेकर मुक्तसर तक कसौटियो की विभिन्नता देखी जा सकती है।

अलबत्ता, पजाबभर मे बरनाला सरकार का एक वर्ष तक जीवित रहना ही ऐतिहासिक उपलब्धि के रूप मे देखा जा सकता है। कल्पना करना मुश्किल था कि अकाली दल के विभाजन, बादल-तोहडा के गठबधन, चडीगढ-हस्तातरण के टलजाने और निरतर हिसा के दौर के बीच सुरजीत सिह बरनाला एक वर्ष तक

मुख्यमंत्री पद पर बने रह सकेंगे। यह सभी के लिए 'अजूबा' लगता है। आज भी कम झटके नहीं हैं। मुख्यमंत्री का आधे से ज्यादा समय अपने मंत्रियों को पटरी पर बनाए रखने, उनकी बिगड़ती छवियों को उठाए रखने, उग्रवादियों से जूझने और चंडीगढ-दिल्ली के बीच शटल-कॉक बने रहने मे बीतता है। मंत्रिमंडल के अनेक सदस्य विवादास्पद बन चुके हैं। पंजाब राजनीति का यह कम करिश्मा नहीं है कि मत्री सरेआम अपनी सरकार की आलोचना करते हैं, नीतियों का उल्लंघन करते हैं, कानूनों को तोड़ते हैं, और फिर भी सरकार में बने रहते हैं। मुख्यमंत्री बरनाला धीरोदात्त मुद्रा में सभी को पुचकारते रहते हैं। पूरे पंजाब में उनके एक मत्री द्वारा पुलिस अधिकारी को पीटने की चर्चा है।

किसी को उम्मीद नहीं थी कि बादल-टोहरा के सामने बरनाला टिक पाएँगे। आमतौर पर यह माना जाता है कि सिख जनता में बादल की लोकप्रियता बेजोड है। उनके ताजा पैंतरों की वजह से उग्रपंथियों का समर्थन भी उन्हें प्राप्त है। 19 सितंबर को अमृतसर में अखिल भारतीय सिख छात्रसंघ द्वारा आयोजित समारोह में बादल की मौजूदगी इस बात का प्रमाण है। दिल्ली में बादल-टोहरा की गिरफ्तारी का झटका भी बरनाला सरकार आराम से झेल गई। पजाब का कोई दिन बगैर सांप्रदायिक-राजनीतिक हिंसक घटनाओं के नहीं बीतता है। मुक्तसर के पास हुए भयानक हत्याकांड के बावजूद बरनाला सरकार हिली नहीं है। सभी को हैरत है।

पर पंजाब का हिन्दू-सिख यह मानता है कि बरनाला सरकार का फिलहाल कोई विकल्प नहीं है। जब पूरे एक वर्ष की लाभ-हानि पर चर्चा चलती है, तब विशिष्ट व सामान्य दोनों व्यक्ति इस सच्चाई को स्वीकार करते हैं कि बरनाला सरकार उग्रपंथियों के प्रति नरम नहीं रही है। उसकी कोशिश रही है कि अपने अस्तित्व की रक्षा करने के साथ-साथ उग्रवाद का पूरी तौर पर सफाया किया जाए। शुरूआती दौर में मुख्यमत्री बरनाला से यह अपेक्षा नहीं थी कि वे ईमानदारी के साथ उग्रवाद का सफाया करने की कोशिश करेंगे।

आज हिन्दू-सिख दोनों ही मानते हैं कि मुख्यमंत्री बरनाला और पुलिस महानिदेशक रिबेरो के संयुक्त प्रयास से पंजाब में शांति लौटने लगी है। हालाँकि हिसक घटनाएँ जारी हैं, परंतु उनका उतना व्यापक प्रभाव जन-मानस पर दिखाई नहीं देता है जितना कि पंजाब से बाहर प्रचारित किया जाता है। पिछली यात्रा (जून) के पश्चात स्थिति में निश्चित ही गुणात्मक परिवर्तन नजर आने लगा है। उग्रपंथियों के खिलाफ सख्त कार्रवाई के कारण अल्पसंख्यकों में शांति व सुरक्षा की भावना पैदा होने लगी है। चंडीगढ़, अमृतसर, रोपड, तरनतारन, फिरोजपुर और मुक्तसर में सिख व हिन्दू दोनों ने यह बताया कि भय की वजह से जो हिन्दू चले गए

थे, वे धीरे-धीरे लौटने लगे हैं। यहॉ तक कि सीमांत क्षेत्रों के गॉवों से भागे अल्पसख्यक भी वापस आ रहे हैं। तरनतारन क्षेत्र से गए अल्पसंख्यकों मे नब्बे प्रतिशत अपने घरो को लौट आए है।

एक उपलब्धि और मानी जा रही है। पिछले कुछ समय से उग्रपंथियो के प्रति सामान्य सिख-जन के दृष्टिकोण मे अतर आ रहा है। छह महीने पहले तक किसी भी उग्रवादी के खिलाफ एक शब्द भी कोई सुनने के लिए तैयार नहीं था। मुझे अच्छी तरह याद है, पिछली यात्राओं मे उग्रवादियो का विरोध किसी को सहन नही था। लोग यहॉ तक कहते थे कि पजाब मे कोई उग्रवादी नही है, सब केद्र सरकार और बरनाला सरकार का षड्यत्र है। भिंडरॉवाले जिन्दा थे, तब कहा जाता था कि केद्र की खुफिया एजेसियॉ ही हत्याएँ करा रही हैं। पिछले वर्ष ऐसा भी दौर आया जब उग्रवादियो के सबध मे बात करना किसी को पसंद नही था। एक दौर यह भी चला कि उग्रवादी नजबर का बदला लेकर छोडेगे, खालिस्तान बनाकर रहेगे। यह भी कहा जाता था कि सब कुछ विदेशी ताकतें कर रही है, सिख युवको को बेकार मे बदनाम किया जा रहा है। इस यात्रा में, इस दृष्टिकोण मे परिवर्तन की रेखाएँ उभरती हुई दिखाई दी है। औसत व्यक्ति बरनाला/सरकार के सख्त कदमो की प्रशसा करने के साथ-साथ यह महसूस करने लगा कि है "बहुत हो चुका। अब यह खेल खत्म हो जाना चाहिए।" जहॉ भी गया, उग्रपथियो के मुखर हिमायती नही दिखाई दिए।

लोग यह भी कहने लगे है कि उग्रपथी जो कुछ कर रहे है, सिख कौम के हितों के खिलाफ कर रहे है। अमृतसर तथा दूसरे स्थानों पर यह भी सुनने को मिला है कि वे उग्रवादियो की गतिविधियों को जायज नहीं मानते। स्वर्ण मदिर में पीली पागधारी ऐसे युवक भी मिले, जिन्होने खुलकर कहा कि वे उग्रवादियो को संरक्षण देने के खिलाफ है, यदि गॉवो मे कोई अवांछित तत्व दिखाई दे तो इसकी जानकारी सरकार को दी जानी चाहिए, जरूरत पडने पर दी भी जाएगी। व्यक्तियो मे इस तरह के बदलाव और साहस का अनुभव पहँली बार हुआ है।

उनके रुख मे परिवर्तन तात्कालिक या अस्वाभाविक नहीं था। कहा जा सकता है कि इस लेखक को खुश करने के लिए उन्होने ऐसा कहा होगा। यह धारणा गलत है। सहयात्री और इदौर के युवा सामाजिक कार्यकर्ता सरदार गुरमीतसिंह ने अपने समुदाय के लोगो से कुरेद-कुरेदकर इस मुद्दे पर सवाल किए; उनके मन में झॉकने की कोशिश की। सिख होने के नाते गुरमीतसिंह ने विश्वास में लेकर उनसे जिरह की। एक मजहबी रिक्शेवाले ने तो 1984 की सैनिक कार्रवाई को वाजिब करार दे दिया। उसने कहा, "कहीं तो सफर रुकना चाहिए। आखिर कोई तो हद होती है। उग्रवादी कहीं रुकते ही नहीं थे। बीबी इंदिरा ने ठीक

किया था।" पिछले दो-ढाई साल मे ऐसे शब्द पहली दफे सुनाई पडे।

उभरते परिवर्तन की इन महीन रेखाओ को खारिज नही किया जा सकता। ऐसा करना पूर्वाग्रहो से पीडित होना माना जाएगा। यदि इन रेखाओ का विस्तार होता है तो इसके परिणाम चौकानेवाले हो सकते है। एक समय ऐसा भी आ सकता है जब समूचे पजाब के मानस मे उथल-पुथल मच सकती है। राज्य के दोनो बडे समुदाय इकट्ठे होकर किसी भी समय उग्रवाद के खिलाफ सामने आ सकते है।

हिंसा रुकी नहीं है, किसी को इससे इकार नही। सबसे बडा सवाल यह है कि क्या बरनाला सरकार के एक वर्ष के काल मे दोनो समुदायो का पुश्तैनी ताना-बाना छिन्न हो गया है? आर एस एस के कार्यकर्ताओ की हत्या मुक्तसर की बस-ट्रेजडी जैसी घटनाओ ने कितना झकझोरा है—दोनो समुदायो को। इसमे भी कई उतार-चढाव आए है। जून'84 की त्रासदी के पश्चात मनो का फटना शुरू हुआ। नवबर के दगो ने सिख-हिन्दू रिश्तो को प्रभावित किया। सतह पर भय आशका का वातावरण उठा। फिर भी दोनो के मन पूरी तरह टूट नहीं। हिन्दुओ का पलायन नही हुआ। पजाब-समझौते और चुनाव के पश्चात भय आशका पर विश्वास की परत जमी। पर निरतर व सुनियोजित हिंसा के विस्फोट मे परत हठात् तिडक गई। हिन्दुओ का पलायन शुरू हुआ। चार महीने का परिदृश्य बिलकुल निराशाजनक था। सीमात क्षेत्रो से हिन्दुओ के पलायन का सिलसिला शुरू हुआ। उस समय औसत अल्पसख्यक भयभीत और सहमा-सहमा था। यहाँ तक कि हिन्दू बुद्धिजीवी भी दुविधाग्रस्त था। अमृतसर जालधर लुधियाना बटाला तरनतारन आदि स्थानो के हिन्दू व्यापारी उखडने लगे थे। एक तरह से वे पजाब को अलविदा' करने के लिए तैयार हो चुके थे।

उस स्थिति मे आज अतर देखने को मिला है। हालाँकि आशका-प्रति-आशका का भूत पजाब पर छाया हुआ है पर बरनाला सरकार की इसे आशिक उपलब्धि माना जा सकता है कि अल्पसख्यको का पलायन लगभग रुक गया है। इसकी पुष्टि सरकारी क्षेत्रो से ही नही होती हिन्दू व सिख भी करते है। आज औसत हिन्दू उतना डरा हुआ नहीं है, जितना कि तीन-चार महीने पहले था। चडीगढ से मुक्तसर तक यात्रा मे देखा कि उनमे एक नया विश्वास जगा है। अनेक हिन्दुओ ने बताया कि सिखो के साथ उनके बहुत अच्छे सबध है। गाँवो मे भी स्थिति बहुत खराब नहीं है। तरनतारन मे हिन्दू दुकानदारो ने पडौसी सिख दुकानदारो की प्रशसा की। यह भी बताया कि जब मई मे उग्रवादियो ने हिन्दुओ को मारा था तब सिखो ने ही घायलो को अस्पताल पहुँचाया था। गाँवो मे ऐसे भी सिख सरपच तथा अन्य असरदार परिवार है जिन्होने उग्रवादियो को ललकारते हुए

कहा कि "हिन्दू भाइयो को मारने से पहले हमारी हत्या करनी पडेगी।"

अल्पसंख्यको का कहना था कि उन पर हमले पडौसियो ने नहीं किए हैं; हमलावर बाहर से आते है। यह स्थिति दिल्ली के नवबर के दगों से मिलती-जुलती है। यह सही है कि समृद्ध हिन्दू परिवारों ने पजाब के बाहर ठिकाने बनाए रखने का मन बना लिया है। समृद्ध परिवारो ने बताया कि जोखिम उठाना उचित नही है। इसलिए दिल्ली तथा दूसरे प्रदेशो मे नए ठौर-ठिकाने बनाए जा रहे है। गरीब और मध्यमवर्गीय परिवारो का दृष्टिकोण दूसरा है। उनका विश्वास अधिक मजबूत है। लौटे भी वही अधिक है जो गरीब है, क्योंकि नए ठिकाने लाभदायक नही निकले। जब से उग्रवादियो के खिलाफ कार्रवाई हुई है, अल्पसख्यको मे विश्वास तेजी से उभरा है। "चाहे जो हो जाए, अब हमे यहीं मरना-जीना है। कई जगह ऐसा सुनने को मिला। चार महीने पहले यह स्थिति कतई नही थी। उस समय पंजाब से पलायन की धुन सवार थी। जून-यात्रा के समय हिन्दुओ का एक ही मानस था "अब पजाब से अन्न-जल उठ चुका है।" इस दफे बदलाव स्पष्ट था।

पंजाब के बहुसख्यको के इस दृष्टिकोण को व्यावहारिक कहा जा सकता है कि हिन्दू मित्र के रिश्ते रक्त के अलावा भी कुछ है। गॉवो के सिखों का कहना था कि उनका आर्थिक अस्तित्व काफी कुछ हिन्दू व्यापारियो पर आश्रित है। "लालाओं से हमे जरूरत के समय उधार मिलता है। अनाज मिलता है। बीज मिलता है। उनके बिना हमारा काम कैसे चल सकता है? फरीदकोट के एक ग्रामीण सिख ने सच्ची स्थिति हमारे सामने रखी। तरनतारन और फिरोजपुर मे भी ऐसे ही उद्‌गार व्यक्त किए गए।

यह सही है कि हिन्दू सी आर पी और बी एस एफ की चौकसी चाहता है, सिख को यह पसद नही, वह इसे हटाने के पक्ष मे है। सीमात एव दगा आशंकित क्षेत्रो मे इन दोनो बलो को तैनात किया हुआ है। बहुसख्यक इसे तनाव की जड मानते है जबकि अल्पसख्यको के लिए यह एक कवच है। अल्पसख्यको का यह कोरा भ्रम भी निकल सकता है कि इन सुरक्षा बलो के हटते ही असुरक्षा फैल जाएगी और नवबर का प्रतिशोध भडक सकता है। एक तर्क दिया जा सकता है कि बहुसख्यक प्रतिशोध लेने पर आमादा हो जाएँ तो कितने अल्पसख्यकों को बचाया जा सकता है? सामूहिक प्रतिशोध और गुटीय प्रतिशोध मे अंतर है। नवबंर के दंगे के लिए समूचे हिन्दू समुदाय को जिम्मेदार नही ठहराया जा सकता। इसी तरह मुक्तसर हत्याकाड से पूरे सिख समुदाय को कलकित नही किया जा सकता। कहा जा सकता है कि दोनों ही समुदायों ने लम्पट और हिंसक तत्वों की सामूहिक तौर पर घेराबदी करने की कोशिश नहीं की और न ही उन्हें पुलिस

के सुपुर्द किया। यदि भीड़ के कानून की नजर से देखें तो दोनों समुदायों ने कोई अपराध नहीं किया है, पर नैतिकता व सभ्य समाज के कानून की दृष्टि से दोनों ही अपराधी हैं। शायद दोनों ही समुदाय इस अपराधबोध से ग्रस्त हैं।

असहमति हो सकती है, पर बरनाला-सरकार की यह उपलब्धि मानी जाएगी कि दोनों समुदायों के विश्वास एक दूसरे के प्रति टूटे नहीं हैं। तनाव में कमी आई है। दिल्ली के तिलकनगर की घटनाओं का कोई अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है। यह कम उपलब्धि नहीं है कि पंजाब में विस्फोट की सामग्री जितनी सहजता के साथ उपलब्ध है, उसकी तुलना में दोनों समुदायों के सामाजिक और व्यावसायिक रिश्ते आश्चर्यजनक रूप से सहज व मधुर हो रहे हैं। पिछले वर्ष स्वर्ण मंदिर में हिन्दुओं का आना-जाना बन्द था; मुश्किल से इक्के-दुक्के हिन्दू दिखाई देते थे। इस दफे स्वर्ण मंदिर की परिक्रमा करते हुए अनेक हिन्दू देखे गए। अमृतसर और तरनतारन, दोनों ही जगह हिन्दुओं और सिखों की दुकानों पर दोनो समुदायों के खरीददारों की भीड़ थी। कुछ समय पहले तक यह प्रचार था कि एक दूसरे का आर्थिक बहिष्कार किया जाए। वह दोनों में से किसी भी समुदाय ने स्वीकार नहीं किया । क्या यह कम उपलब्धि है? यह सही है कि खालिस्तान का हौआ अभी खत्म नहीं हुआ है। उग्रपंथियों में आज भी जरनैलसिंह भिंडरॉवाले हैं। दिल्ली व चण्डीगढ के शासकों की अदूरदर्शिता की वजह से कभी खालिस्तान बँना तो स्वर्गीय भिंडरॉवाले उसके संस्थापक माने जाएँगे। अमृतसर और स्वर्ण मंदिर में लगे पोस्टरों से यह बात स्पष्ट है। पोस्टर की भाषा काफी भड़कानेवाली है। लेकिन, एक अंतर इस यात्रा में दिखाई दिया। पिछली यात्राओ के दौरान सामान्य व्यक्ति की दिलचस्पी भिंडरॉवाले में काफी थी। हर जगह संतजी की चर्चा थी। आए दिन उनके जीवित होने के पोस्टर चिपकाए जाते थे। पंजाब के औसत बहुसंख्यक व्यक्ति की सहानुभूति भिंडारॉवाले के साथ थी। यहॉ तक कि कोई उन्हें मृत मानने के लिए तैयार नहीं था। अमृतसर में उनके जीवित या मृत होने पर बहस चलती रहती थी।

इस बार ऐसा कुछ नहीं देखा गया; यहॉ तक कि स्वर्ण मंदिर परिसर में चिपके पोस्टरों के प्रति भी कोई विशेष रुचि नहीं देखी गई। पहले की तरह भीड़ जमा नहीं थी। इस पर विवाद कम सुनने को मिला कि वे शहीद हो गए। स्वर्ण मंदिर में लगे पोस्टर के पास जमा व्यक्तियों से संतजी के संबंध में पूछने पर एक अनमना भाव उनके चेहरों पर था। पता नहीं वे जीवित हैं या मृत? पिछले वर्ष इस तरह का सवाल करना मुश्किल था। बहुसंख्यक समुदाय के कई व्यक्ति ऐसे भी मिले जिन्होंने भिंडरॉवाले के तौर-तरीकों को पसंद नहीं किया। ऐसा लगा कि सामान्य जन मे भिंडरॉवाले की भूमिका को लेकर हलका-हलका आत्म-मंथन चल रहा है।

यह सही है कि खालिस्तान पर चर्चा मरी नही है। लेकिन उसकी सार्थकता के सबध मे सामान्य बहुसख्यक ने सोचना जरूर शुरू किया है। हाल ही मे एक प्रवासी परिवार ने चडीगढ मे विश्वास के साथ कहा कि यदि खालिस्तान के मुद्दे को लेकर पजाब मे चुनाव कराए जाए तो उसके समर्थक बुरी तरह हार जाएँगे। चडीगढ विश्वविद्यालय के राजनीतिशास्त्र के प्राध्यापक का मत था कि अगर सयुक्त राष्ट्रसघ की देखरेख मे पजाब मे खालिस्तान पर जनमत सग्रह कराया जाता है तो यह मॉग बुरी तरह पिट जाएगी। इस सबध मे दोनो का अपना दृष्टिकोण था। चर्चा यह उठी है कि सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से खालिस्तान कैसा रहेगा? चूँकि हिन्दुओ और सिखो के बीच रक्त के सबध है रिश्तेदारियाँ है इसलिए सामाजिक दृष्टि से इसकी सार्थकता की पडताल आवश्यक मानी जा रही है। दूसरा इसलिए भी कि पजाब की अर्थव्यवस्था का ताना-बाना शेष भारत से जुडा हुआ है। खालिस्तान बनने पर क्या वे सभी सुविधाए उपलब्ध होगी जो आज प्राप्त है ? एक शका यह भी है कि अगर बाहर के सभी सिख पजाब मे बस जाते है तो क्या असतुलन पैदा नही हो जाएगा ? क्योकि आबादी की अदला-बदली की स्थिति म पजाब से जानेवाले हिन्दुओ की सख्या बाहर से आनेवाले सिखो की तुलना मे कम होगी। ऐसी स्थिति मे पजाब के मूल और प्रवासी सिखो के बीच तनाव व अतर्विरोध की सभावना से इकार नही किया जा सकता। उस समय एक नई सामाजिक आर्थिक राजनीतिक दौड शुरू होगी जिससे पजाब का आधारभूत ताना-बाना प्रभावित हुए बिना नही रहेगा। अपने अपने ढग से इन सवालो पर मथन दिखाई देता है यद्यपि अभी वह मुखर नही है। पहले ये सवाल उठे नही थे। खालिस्तान के नारे के प्रति एक जुनून सवार था। उसके तार्किक आधार ने जन-मानस को झकझोरा नही था। लगता है बदलाव आया है। जुनून का स्थान तर्क ले रहा है। गॉवो और कस्बो मे इसके समर्थन मे कोई खास चर्चा नही है। आज भी इसे चद लोगो का 'रोला' माना जाता है। प्राध्यापक के इस तर्क मे दम है कि "यदि पूरी सिख कौम का समर्थन रहता तो अब तक खालिस्तान को बनने से कोई नही रोक सकता था। तरनतारन के पीली-पागधारी मनजीतसिह के मत मे खालिस्तान कभी भी बहुमत की मॉग नही रही। और यह गलत है कि सिख बहुमत खालिस्तान की मॉग करेगा। यदि दिल्लीवाले समझदारी से काम लेते है तो यह मॉग बिल्कुल ठडी पड सकती है।'

एक मुद्दे पर कोई विशेष परिवर्तन नही आया है। पजाब के बहुसख्यक समुदाय का केन्द्र के प्रति असतोष कम नहीं हुआ है। जितनी मर्तबा पजाब गया, नाराजगी कम-ज्यादा मिली, बिल्कुल समाप्त नही। पहले भी केन्द्र को 'सिखो के दुश्मन' के रूप मे देखा जाता था और आज भी कमोबेश वही स्थिति बनी हुई है, यह बात अलग है कि कहीं अधिक है और कहीं कम। इस दफे उल्लेखनीय बात यह

मिली कि दोनों समुदायों के निचले तबकों में केंद्र के प्रति रवैया काफी बदला मिला। मानना पडेगा कि गरीब तबकों में राजीव सरकार की छवि अच्छी है। सभव हैं लोगों को यह अविश्वसनीय लगे, पर यह सच्चाई है कि अमृतसर व फिरोजपुर के गरीब तबकों में राजीव गॉधी की वही छवि अंकित होने लगी है जो कभी स्व श्रीमती इदिरा गॉधी की थी। दोनों समुदायों के रिक्शावाले कहते है कि "दिल्ली की सरकार हम गरीबो की मदद कर रही है। पर पैसा बीच में ही रुक जाता है।"

बहुसख्यक समुदाय के बीच बरनाला सरकार की छवि बहुत अच्छी नहीं है, लेकिन खास खराब भी नही है। जब बहुसंख्यक समाज अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है तब लगता है कि वह सपूर्ण परिप्रेक्ष्य मे बरनाला सरकार की उपलब्धियो और विफलताओ का मूल्यांकन नही कर पा रहा है। वह विभिन्न पूर्वाग्रहों से ग्रस्त लगता है। तब भी यह मानना पडेगा कि दोनों समुदायो के सामान्य जन मे बरनाला सरकार के प्रति कोई तीव्र असंतोष हो, ऐसा महसूस नही हुआ। पजाब की जनता राज्य-सरकार को और मौका देने व परखने के पक्ष मे दिखाई दी। एक सच्चाई यह भी है कि बादल-टोहरा का बरनाला-सरकार-विरोधी अभियान जन -आदोलन का आकार नही ले पाया है। कई जगह यह सुनने को मिला कि 'बादल-टोहरा का विरोध निजी स्वार्थो से प्रेरित है पब्लिक के हितो से नही।" बादल-टोहरा इस आलोचना का कोई विश्वसनीय उत्तर नही दे पाए है कि उनका विरोध मुख्यमत्री पद और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबधक कमेटी के अध्यक्ष पद के लिए है। जनता मे यह सवाल घुमड रहा है कि "क्या बादल मुख्यमंत्री बरनाला का विकल्प बन सकते हैं?" क्योंकि पूर्व मुख्यमत्री बादल आज जिस स्थिति पर पहुँच चुके है, वहॉ से वापस लौटना उनके लिए मुश्किल लगता है। यदि लौटते है तो उन्हे बरनाला बनना पडेगा। तब यह सवाल उठेगा कि वे किस नाते बेहतर है कि उन्हे श्री बरनाला के उपयुक्त विकल्प के रूप में स्वीकार किया जा सके? यदि दोनो ही नेता समान धरातल पर खडे है तब नेतृत्व मे परिवर्तन किसलिए? पजाब-बेताल पच्चीसी को आगे बढाने के लिए शिवालिक की तलहटियो में ये ताजे सवाल उठ रहे है और सबकी नजर केंद्र पर टिकी हुई है।

**28 दिसंबर, 1986**

# त्रासदियों का पटाक्षेप आगाज एक नई सुबह की

1994 की तेरह अप्रैल। बैसाखी का पर्व। आकाश बिल्कुल साफ है। दूर-दूर तक काले बादल नही है। इडियन एयरलाइस का चार्टर्ड विमान अमृतसर की ओर उडा जा रहा है। पूरा विमान विशिष्ट यात्रियो से भरा हुआ है। कोई केबिनेट मत्री है तो कोई राज्यपाल और कितने ही मुख्यमत्री व सासद है। इस काफिले मे साहित्यकार और सम्पादक भी शामिल है।

कुछ मिनट गुजर चुके है। जलपान हो चुका है। अब बारी है विशेष घोषणा की। एयर होस्टेस घोषणा करती है कि केद्रीय मानव ससाधन विकासमत्री श्री अर्जुनसिह आप लोगो मे मुखातिब होना चाहते है। अर्जुनसिह माइक पर आते है। विशिष्ट अतिथियो का स्वागत करते है अमृतसर के कार्यक्रम के सबध मे जानकारी देते है। कुछ परिवर्तन की घोषणा भी करते है। वे यह भी बतला रहे है कि प्रतिपक्ष के नेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी अस्वस्थ हो गए हैं। उन्होने कहलवाया है कि उनका प्रतिनिधित्व दिल्ली के मुख्यमत्री श्री मदनलाल खुराना करेगे। लोकसभा-अध्यक्ष श्री शिवराज पाटिल भी बगलौर से समय पर पहुँच नही सके इसलिए वे साथ मे नहीं आ सके। कप्तान का रोल अदा करके अर्जुनसिह पुन अपनी सीट पर लौट जाते है।

दरअमल, इस पूरे 'शो' के सूत्रधार अर्जुनसिह है। उनके निमत्रण पर काग्रेस और विपक्ष के मुख्यमत्रियो, काबीना मत्रियो लोकसभाध्यक्ष, अन्य नेताओ, सम्पादको और वरिष्ठ पत्रकारो को अमृतसर ले जाया जा रहा है। विमान मे सवार है—मध्यप्रदेश के मुख्यमत्री दिग्विजय सिह, बिहार के मुख्यमत्री लालू यादव, राजस्थान के मुख्यमत्री भैरोसिह शेखावत, हिमाचल के मुख्यमत्री वीरभद्र सिह,

दिल्ली के मुख्यमत्री मदनलाल खुराना गोवा के मुख्यमत्री विल्फ्रेड डिसूजा, अरुणाचल के मुख्यमत्री गेगाग अपाग, नागालैड के मुख्यमत्री एस सी जमीर, पाडिचेरी के मुख्यमत्री वैद्यलिगम् सिक्किम के मुख्यमत्री नरबहादुर भडारी जम्मू-काश्मीर के पूर्व-मुख्यमत्री फारुक अब्दुला त्रिपुरा के राज्यपाल रोमेश भडारी, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नेता सोमनाथ चटर्जी फारवर्ड ब्लॉक के नेता चित्त बसु भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेता गयासिह, केद्रीय राज्यमत्री रामेश्वर ठाकुर, उपमत्री कु शैलजा पश्चिम बगाल के मुख्यमत्री ज्योति बसु के प्रतिनिधि व वरिष्ठ मत्री प्रो सत्यसाधन मुखर्जी केद्रीय सचार राज्यमत्री प सुखराम त्रिपुरा के मुख्यमत्री के प्रतिनिधि केशव मजूमदार, सासद सुनील दत्त सजय डालमिया, लेखक-पत्रकार कमलेश्वर जैसी हस्तियॉ।

विशिष्ट अतिथियो के बीच चुहलबाजी शुरू होती है। दो विपरीत ध्रुव यानी खुराना और अब्दुल्ला साथ-साथ बैठे है। अब्दुल्ला चुटकी लेते है "कहिए खुरानाजी ! पावर मे आने का मजा देखा? कितना सहना पडता है? हम तो देख चुके है।' यह चुटकी दिल्ली विधानसभा मे हुए हगामे के सदर्भ मे ली गई है। खुरानाजी कुछ मुस्कुराने की कोशिश करते है लेकिन उनके चेहरे पर पीडा भी झलक उठती है। वे कहते है "हॉ, देख रहे है। बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है। क्या जमाना आ गया है अब विधानमडल के झगडा को थानो मे निपटाना पड रहा है। इससे तो राजनीतिज्ञो की साख ही घटेगी। पिछले दिनो विधानसभा मे जो भी हुआ बहुत बुरा हुआ। मैने लाख समझाया कि थाने मे रपट मत लिखवाओ, आपस मे बैठकर मामला तय कर लेते है पर किसी ने मेरी नहीं सुनी और सबधित विधायक थाने मे पहुँच गए।' पाठको को याद होगा, दिल्ली विधानसभा के अतिम दिन कुछ भाजपा विधायको और इका विधायको के बीच मारपीट हो गई थी। यह घटना विधानसभा अध्यक्ष के सामने हुई। इसके बाद काग्रेसी विधायको ने थाने मे रपट दर्ज करवा दी। "तभी तो हम कहते है, पावर से बचो," फारुक चहकते है। फिर बात कश्मीर की ओर मुडती है। मै पूछता हूँ "डॉ साहब घाटी का क्या हाल है? क्या शाति की कोई उम्मीद है?" वे पूरे विश्वास के साथ कहते है मुझे तो पूरी उम्मीद है कि कश्मीर मे जल्दी ही शाति कायम होगी। इशा अल्लाह।"

मै देखता हूँ, ऐसी ही गप्पो के साथ हमारा विमान अमृतसर विमानतल पर उतरता है। विमान के बाहर स्वागत के लिए खडे है पजाब के मुख्यमत्री सरदार बेअतसिह और केद्रीय विदेश राज्यमत्री श्री आर एल भाटिया। दोनो मत्रिगण विशिष्ट अतिथियो का स्वागत करते हुए वीआईपी लाउज मे ले जाते है। पहले हम लोगो से कहा जाता है कि दस-पन्द्रह मिनट मे सभी लोग सभास्थल की

ओर रवाना हो जाएँगे। पर ऐसा होता नहीं है। समय बढ़ता रहता है। कभी यह पता चलता है कि सभास्थल पर भीड बेहद कम है, बमुश्किल 4-5 हजार लोग पहुँच पाए हैं। कभी कोई यह कहता है कि विद्याचरण शुक्ल और शिवराज पाटिल के पहुँचने की प्रतीक्षा की जा रही है। करीब सवा घंटे के बाद संसदीय कार्यमंत्री विद्याचरण शुक्ल विमानतल पर अवतरित होते हैं। वे पजाब सरकार के विशेष विमान से दिल्ली से अमृतसर पहुँचे है। पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार उन्हें चार्टर्ड विमान से ही सबके साथ अमृतसर पहुँचना था। लेकिन ऐन मौके पर वे अपना कार्यक्रम बदल डालते हैं। पंजाब सरकार का विमान दिल्ली बुलवाते हैं और अमृतसर पहुँचते हैं। कितना अजीब लगता है! नेता अपने--अपने अहं के परों पर सवार होकर शहीदों की चिताओं पर फूल बरसाना चाहते हैं। आंध्रप्रदेश के मुख्यमंत्री विजय भास्कर रेड्डी, कर्नाटक के मुख्यमंत्री वीरप्पा मोइली और महाराष्ट्र के मुख्यमत्री शरद पवार को भी सभी के साथ पहुँचना था। लेकिन, पवार अकेले ही अपने विशेष विमान से सीधे अमृतसर पहुँचे। रेड्डी और मोइली ने असमर्थता व्यक्त कर दी। उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री मुलायमसिंह भी गच्चा दे गए। कोई अहं-जीवी नेता यह कैसे सहन कर सकता है कि अर्जुनसिंह के नेतृत्व में अमृतसर पहुँचा जाए; भले ही अवसर जलियाँवाला बाग-शहादत की हीरक जयंती का हो।

करीब सवा-डेढ घंटे प्रतीक्षा करने के बाद हमारा काफिला शहर की ओर रवाना हो रहा है। पॉच वातानुकूलित बसों में विशिष्ट अतिथियों को बैठाया जाता है। सुरक्षा का बंदोबस्त देखने लायक है। चप्पे-चप्पे पर पुलिस का पहरा है। पर यह बंदोबस्त किसी को चुभ रहा हो, ऐसा महसूस नहीं हो रहा है। पंजाब पुलिस के महानिदेशक एवं आतंकवाद विरोधी अभियान के नायक के.पी.एस गिल काफिले के साथ हैं। सुरक्षा की कमान उनके हाथों में है। उनकी पैनी निगाहें हर दीवार, हर पेड़, हर पत्ते, हर खेत को चीर रही हैं। विमानतल से सभास्थल तक का रास्ता लोगों से भरा है। खेत मुस्कुराते हुए दिखाई दे रहे हैं और साथ में लोग भी। लगता है दोनों की एक लय, एक ताल है। दुकानों पर खरीददारों की भीड़ जुटी हुई है। थड़ियों पर चाय की चुस्कियॉ चल रही हैं। बच्चे किलकारियॉ मार रहे हैं। चारों तरफ बैसाखी की छटा छितराई हुई है। लगता है हम लोग किसी अजनबी अमृतसर में दाखिल हो रहे हैं।

काफिला शहर में पहुँच चुका है। जीवन बिल्कुल सामान्य है। छुट्टी का आलम है, पर वाहनों से भरे बाजार हैं। जगह-जगह स्वागतद्वार खड़े हैं। इमारतें सजी हुई हैं। पार्क, बच्चों और माता-पिताओं से भरे हुए हैं। लीजिए, सभास्थल आ चुका है।

विशाल सभास्थल है, दर्शकों-श्रोताओ के लिए इतजाम भी भव्य है, लेकिन भीड की उपस्थिति का कद छोटा दिखाई दे रहा है। विशाल मच पर अतिथि पहुँच चुके हैं। मच का सचालन कर रहे है प्रसिद्ध कमेन्टेटर श्री जसदेवसिह। जब भीड को अनुशासित करना होता है तब वे पजाबी मे बोलते है। वैसे सचालन हिन्दी मे किया जा रहा है।

मच क्या है, एक पूरा भारत मौजूद है। देश के कोने-कोने के नेता पहुँच रहे हैं। कार्यक्रम की शुरूआत अर्जुनसिह करते है। वे प्रारभ मे राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमत्री और सोनिया गॉधी के शुभ सदेश पढकर सुनाते है। फिर उनका अति सक्षिप्त भाषण होता है। इसके बाद बेअतसिह, शेखावत, शरद पवार सोमनाथ चटर्जी, लालू प्रसाद यादव, रोमेश भडारी वी सी शुक्ल, नरबहादुर भडारी, जमीर, दिग्विजयसिह, वैद्यलिगम, खुराना, डॉ अब्दुल्ला रामेश्वर ठाकुर डिसूजा गयासिह, सुखराम, अपाग शैलजा, बलवतसिह रामूवालिया, चित्त बसु वीरभद्रसिह, ई अहमद, सुनील दत्त, केशव मजूमदार, आर एल भाटिया आदि वक्ता बारी-बारी से जलियॉवाला बाग त्रासदी के शहीदो को श्रद्धाजलि देकर चले जाते है।

डॉ अब्दुल्ला, लालू यादव, सुनील दत्त शेखावत, पवार के भाषण श्रोताओ के दिलो को छू लेते है। डॉ अब्दुल्ला तो बडे नाटकीय अदाज मे अपना भाषण शुरू करते है। वे अपने भाषण की शुरूआत करते है, "वाहे गुरुजी का खालसा वाहे गुरुजी की फतह, बोले सो निहाल, सतश्री अकाल", वे भीड से तीन दफे कहते हैं कि इस जयघोष को इतना जोर से बोलो कि 'पाकिस्तान हिल जाए।' वे अपने तूफानी भाषण मे पाकिस्तान और अमेरिका की खूब खबर लेते है। वे कह रहे हैं कि ये देश सोच रहे है कि पजाब और कश्मीर भारत से अलग हो जाएँगे, लडाकू विमान एफ-16 की धौस भारत पर जमाना चाहते है। मजहब के नाम पर बरगलाया जा रहा है। हमे मजहब से बॉधा जा रहा है। वे नेताओ की ओर मुखातिब होकर कह रहे है "आप लोगो से निवेदन है कि अपने-अपने स्वार्थो को भूल जाओ। देश को याद रखो। हिन्दुस्तान नहीं टूटेगा।"

अधिकाश वक्ताओ की थीम राष्ट्रीय एकता, अखडता और धर्मनिरपेक्षता की होती है। उत्तर-पूर्वी राज्यो के मुख्यमत्रियो के उद्‌गार काफी हृदयस्पर्शी है। इनके भाषण राष्ट्र की मुख्यधारा से जुडे हुए प्रतीत होते है। सोमनाथ चटर्जी दिग्विजयसिह, चित्त बसु, गयासिह जैसे वक्ता साप्रदायिकता, साम्राज्यवाद, प्रतिक्रियावाद पर कडा प्रहार करते है, धर्मनिरपेक्षता को मजबूत करने का आह्वान करते है। जाहिर है, इन नेताओ का निशाना भारतीय जनता पार्टी और जमाते-इस्लामी रही होगी। शेखावत व खुराना के निशाना बनते है—पाकिस्तान और राष्ट्रविरोधी तत्व। पजाब की सुखद स्थिति पर शेखावत की टिप्पणी सटीक

रही। उन्होने कहा कि, "अब काली रात गई, अब काले दिन गए।" मुस्लिम लीग के सासद अहमद भी पीछे रहनेवाले नहीं थे। उन्होने भी पाकिस्तान को नहीं छोडा, और अत मे कह दिया "*मुसलमानो की लाश पर भारत पर हमला होगा।'*

यह दुखद सयोग है कि ठीक इसी वक्त भीड पर लाठीचार्ज शुरू हो गया। तीन चार घटे से भूखे-प्यासे लोग उकता चुके है। औरतो व बच्चो ने धीरे-धीरे खिसकना शुरू कर दिया है। उन्हे जबरन रोकने की कोशिश की जा रही है। सभा का पिछला हिस्सा तो लगभग उखड ही चुका है। ज्यादातर पडाल खाली हो चुका है। मच से जसदेवसिह पजाबी मे बार-बार कह रहे है कि श्रोतागण धीरज रखे बस चन्द मिनटो मे ही सभा समाप्त होनेवाली है। पर भाषणो से पेट कब तक भरा जा सकता है? और जब जनता यह भी देख रही हो कि मच पर विराजमान नेताओ को चाय शीतल पेय फल मिठाइया आदि बाटे जा रहे है भीड के साथ कुर्सियो पर जमे अधिकारियो एव पत्रकारो को भी यह सब परोसा जा रहा हो तब सब्र की अपीले 'छलावा' ही लगेगी। सो जनता ने उखडना शुरू कर दिया। शो बिगडता देखकर बेअतसिह के सामने ही पुलिस ने लाठिया बरसाना भी शुरू कर दिया। 13 अप्रैल 1919 को डायर ने स्वतत्रता सेनानियो पर गोलियाँ बरसाई थीं आज उन्हे श्रद्धाजलि देनेवालो पर स्वतत्र भारत की पुलिस लाठियाँ बरसा रही है। कुछ ऐसा ही लगा।

खैर! करीब सवा तीन बजे सभा विसर्जित हुई। लोग जलियाँवाला बाग की ओर चल पडते है। शहीदो के स्मारक-स्थल पर अध्यक्ष शिवराज पाटिल अर्जुनसिह सहित सभी नेता अपने श्रद्धासुमन अर्पित करते है। सभा समाप्ति से पहले पाटिल बगलौर से सभास्थल पर पहुँच गए थे। लेकिन शरद पवार सभास्थल से सीधे हवाई अड्डे की ओर चले गए थे। इसलिए वे जलियाँवाला बाग नहीं पहुँच सके। इसके बाद हम लोग भी स्मारक स्थल पर पुष्प चढाते है। स्मारक स्थल को देखकर नेहरूजी के शब्द कानो मे गूँज उठते है। 1956 मे इस स्मारक-स्थल का उद्घाटन करते हुए उन्होने कहा था देश मे हमारे बहुत सारे यादगार बनाए गए है। लेकिन शायद यह सही हो कहना कि यह जलियाँवाला बाग का स्मारक वो सबसे ज्यादा अहमियत रखता है। यादगार किसकी है? हमारी है आपकी है हम सब हिन्दुस्तान के रहनेवालो की है। असल मे यह यादगार हिन्दुस्तान के कुछ बाहर भी जाती है और यहाँ जलियाँवाला बाग मे जो गोली चली जो उसने यह नही देखा किसपे चलती है किस मजहब वाले पर— हिन्दू, सिख मुसलमान वगैरह जो जो थे सब प चली। और उसके बाद जो तहरीक आदोलन शुरू हुआ जोरो का वो सारे मुल्क मे हुआ उस हिस्से मे भी जो कि

आज पाकिस्तान कहलाता है, इसलिए यह एक यादगार हमारी तो है ही, लेकिन हमें मंजूर है कि पाकिस्तान के हमारे भाई-बहन एक यादगार इसको समझें और याद करें उस दिन को जब हम लोगो ने मिलकर सारे मुल्क की आजादी के लिए खून बहाया था।"

स्मारक-स्थल के बाद सभी नेता एक शामियाने के तले ठीक 4 बजे जलियॉवाला बाग के शहीदों को मौन श्रद्धाजलि अर्पित करते है। इसके बाद कौमी तराने और भजन गाए जाते हैं। इन पुनीत क्षणों मे भी राजनीति अपना रंग दिखाए बिना नहीं रहती है। अर्जुनसिंह को पीछे धकेलते हुए मुख्यमंत्री बेअंतसिह अग्रिम पंक्ति में आ बैठते हैं। जाजम पर बैठे तमाम लोग इस दृश्य को देखकर हॅस पडते हैं। अर्जुनसिंह को भी बरबस हॅसना पडता है।

इस कार्यक्रम के बाद नेताओ का काफिला स्वर्ण मंदिर की ओर मुडता है। स्वर्ण मंदिर का परिसर बिल्कुल बदल चुका है। चूँकि 1983 से इस स्थान को देखता आ रहा हूँ, और अब चार-पॉच साल के बाद यहॉ आया हूँ, एक बिल्कुल नए परिसर के सामने स्वयं को खडा पा रहा हूँ। परिसर मे नेताओ के साथ-साथ श्रद्धालुओ की भीड उमडी हुई है। एक मुक्त, निर्भय, निर्मल, एक लय-एक स्वर से ओत-प्रोत परिवेश की अनुभूति होती है। त्रासदी की कोख से किलकारी मारता हुआ पजाब जन्म ले रहा है।

और, कुछ घटो के पडाव के बाद वापस हम सुरक्षित विमान में दिल्ली के लिए सवार हो जाते है। इस यात्रा मे एक चेहरा शुरू से अत तक याद रहेगा, और वह है पुलिस महानिदेशक के पी एस गिल का। एक सामान्य सिपाही की तरह यात्रा के अत तक तैनात रहे। शायद यही वजह रही कि पजाब की शाति के लिए राजनीतिक शासक बेअंतसिह के साथ नागरिक प्रशासक गिल को भी श्रेय देना सभा मे नहीं भूले थे। यह यात्रा एक यात्रा नहीं थी, देश के विभिन्न क्षेत्रो के निर्वाचित जनप्रतिनिधियो के रूप मे गरजते भारत की तीर्थयात्रा थी और तीर्थस्थली थी जलियॉवाला बाग। सलाम! अनाम शहीदो!!

**16 अप्रैल, 1994**

# असम आन्दोलन : ताम्बूल के वनों में मौत की फसल

असम-यात्रा पर रवाना होने से पहले दिल्ली मे लगातार समाचार मिलते जा रहे थे—असम मे मौत का ताण्डव नृत्य चल रहा है, असम लोकतंत्र का कब्रिस्तान बन चुका है, असम ज्वालामुखी की चपेट मे है, स्थिति बेकाबू हो चुकी है, असम की राजधानी गुआहाटी का नियत्रण सेना को सौप दिया गया है, कुछ भी सुरक्षित नही है, सिवाय मृत्यु के। एक एडवेचर, उत्सुकता और दहशत को अपने मे समेटे मै जहाज पर सवार था।

दिल्ली मे गुआहाटी के लिए जा रहे हवाई जहाज मे चन्द सासद पत्रकार, सैनिक अधिकारियो के अलावा, बहुतायत मारवाडी व्यापारी यात्रियो की थी। उनके पहनावे से यह अदाज लगाना मुश्किल था कि वे कब्रिस्तानवाले प्रदेश मे जा रहे है। उनकी स्त्रियाँ कीमती वस्त्रो और स्वर्ण आभूषणों से सुसज्जित थी। कुछ तो लहँगा-लुडी बॉबकट हेयर मे अजीबो-गरीब 'नुमाइश' लग रही थीं।

नाश्ते का समय। परिचारिका ने नाश्ता परोसना शुरू किया। शाकाहारी नाश्ता कम पड गया। बगल मे बैठे एक नामी-गिरामी पत्रकार ने शाकाहारी नाश्ते की कमी को लेकर नागरिक उड्डयन मत्री खुरशीद आलम खॉ को अच्छी-खासी लानत-मलामत भेजी उनकी गैर-हाजिरी में। अगली सीट पर बैठी एक संसद सदस्या ने हँसते हुए कहा ये लीजिए मेरा शाकाहारी नाश्ता। मुझे तो सदन में कुछ बोलने के लिए अच्छा-खासा मसाला मिल गया है। मंत्रीजी की पूरी खिंचाई होगी। एक दूसरी सीट पर बैठे एक भद्रजन बडे इत्मीनान के साथ एक पुस्तिका के सफे उलटते-पलटते जा रहे थे। पुस्तिका पर भूख से बिलखते और दंगों में घायल इसानों के चित्र छपे थे और ऊपर अंकित था— 'आज का असम—लोकतंत्र

का कब्रिस्तान'। संसद सदस्या और पत्रकार पटना मे उतर गए। डेढ घंटे की उडान के पश्चात मैं भी गुआहाटी हवाई अड्डे पर पहुँच चुका था।

हवाई अड्डे की दीर्घाएँ आने-जानेवाले मारवाडी परिवारो से भरी हुई थी। इसके बाद पुलिस का अतिरिक्त पहरा साफ-साफ दिखाई दे रहा था। फिर भी स्थिति सामान्य थी।

नगर के लिए टैक्सी मे रवाना हुआ। यातायात अप्रत्याशित रूप से सामान्य मिला। कार स्कूटर, ट्रक, साइकिले—सभी कुछ आम रफ्तार से चल रहा था। दुकाने खुली हुई थी, खरीददारो की भीड थी। दीवारो पर नारे थे—पोस्टर थे, पर उतने नही, जितने कलकत्ता की दीवारो पर हर हालत मे बरस भर देखे जाते है। एकबारगी लगा, गुआहाटी असम आदोलन के प्रभाव से रीता है, सिर्फ अखबारी शोशा' है।

पहुँचने के कुछ देर बाद ही मै असम आदोलन के कार्यकर्त्ताओ के बीच था। आदोलन का सारा काम नगर के मध्य स्थित मुख्य अस्पताल के अहाते मे बने दो कमरो मे सचालित किया जा रहा है। कमरो के बाहर बोर्ड लगा है- मेडिकल डॉक्टर एसोसिएशन। कमरो के सामने ही इमरजेंसी वार्ड है। साथ ही लगे ब्लड बैक के कमरो मे भी आदोलन का काम चलता है। अस्पताल के भवन के ऐन सामने प्रदेश पुलिस का मुख्यालय है। चौबीसो घटे पुलिस की लारियॉ, सी आर पी की जीपे और सेना की ट्रके खडी रहती है। दूसरी तरफ आदोलनकारी अपना काम करते रहते है। यहां तक कि एसोसिएशन के कमरो मे दगापीडितो के लिए राहत सामग्री एकत्रित की जाती है और वही से टैक्सियो मे लादकर भेजी जाती है। अस्पताल के गेट पर सशस्त्र जवानो का पहरा भी बदस्तूर रहता है।

कार्यालय मे पहुँचा तो देखा बैठक चल रही है चन्दा व रसद सामग्री जमा की जा रही है। मौजूद सभी कार्यकर्ता तीस बरस के नीचे लगे। अधिकाश मेडिकल के छात्र थे। उनके चेहरो पर मासूमियत थी परवान चढने की दीवानगी थी। परन्तु कही भी थकान, तनाव निराशा, पराजय उन्हे छू तक नही गई थी। सभी इतनी सहजता से मिले, मानो असम मे कही कुछ हो ही नहीं रहा है सब ठीक से चल रहा है। लगता था छात्र-कार्यकर्ता और असम आदोलन एक दूसरे मे समा गए है—अद्वैत की अवस्था मे जहाँ अतर करना मुमकिन नही है।

कुछ क्षणा के पश्चात एक कार्यकर्ता शमा परवेज मुझे एक अलग कमरे मे ले गई और आदोलन के सबध मे बातचीत करने लगी। थोडी देर बाद उनकी छोटी बहन और अखिल असम छात्रसघ (आसू) की सक्रिय स्वयसेविका नसीम अख्तर परवेज भी वहाँ पहुंच गई। दोनो बहनो का परिवार मूलत बिहारी है और करीब

तीन-चार पीढी पहले असम आया था। तब से परिवार यही का होकर रह गया है। दोनों बहनें टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी जानती है, उर्दू कतई लिख-बोल नहीं सकती। परवेज-परिवार की मातृभाषा असमी बन चुकी है। दोनो ने बताया कि आदोलन के अनेक कार्यकर्ता मुसलमान है, जिनकी मातृभाषा असमी है। इस सिलसिले मे उन्होने तीन नाम गिनाए—नूरुल हुसैन (उपाध्यक्ष, आसू), नेकीबुर जमान (अध्यक्ष, आसू की कामरूप जिला शाखा) और गुलाम मुर्तजा अहमद (आसू के पूर्णकालिक स्वयसेवक और प्रमुख वामपथी सलाहकार)।

दोनो बहनो ने, जो कि पेशे से अध्यापिकाएँ है, असम आदोलन को धर्मनिरपेक्ष सिद्ध करते हुए सी आर पी द्वारा किए जा रहे अत्याचारो की कहानी सुनानी शुरू की। नसीम परवेज कातर और आक्रोशभरे स्वर मे कहने लगीं, "क्या हम भारतीय नही है? आपकी पुलिस (सी आर पी ) हम असमिया लोगो पर रोज अत्याचार कर रही है। गॉवो मे स्त्रियो के साथ बलात्कार किया जाता है। सुनिए, मै बतलाती हूँ सी आर पी का असली चेहरा। नौगॉव जिले के ठेकरागॉव म 13 मार्च को तीन औरतो के साथ सी आर पी के लोगो ने बलात्कार किया। इससे पहले 6 मार्च को घूरेश्वर मे बलात्कार का काण्ड हुआ। पॉच हिन्दू औरते जवानो की वहशी पिपासा की शिकार हुई। इससे पहले भी इस तरह की घटनाएँ होती रही है। आप इन्हे जरूर छापे, दूसरे प्रात के हिन्दुस्तानी भाइयो को बताएँ कि असम के हिन्दुस्तानियो के साथ कैसा सलूक किया जा रहा है। क्या हम हिन्दुस्तानी नही है? बोलिए?"

नसीम को बीच मे रोकते हुए शमा कहने लगी "अब आप ही इसाफ करें। जब अतिथि ही घर का मालिक बनने का षड्यत्र रचे, तो कौन आतिथेय इसे सहन करेगा। पूर्वी बगाल से आए विदेशी मुसलमान और हिन्दू हम असमियो के विरुद्ध षड्यत्र रच रहे है। वे असम के मालिक बनना चाहते है। असम की उपजाऊ भूमि पर विदेशी मुसलमानो का कब्जा है, सरकारी नौकरियो पर बगाली हिन्दुओ का अधिकार है। असम का व्यापार भी गैर-असमी (मारवाडी का नाम नहीं लिया, परतु सकेत स्पष्ट था) लोगो के हाथो मे है। हम असम के लोग किधर जाएँ? गॉव-गॉव मे झूठा प्रचार कराया जा रहा है कि आसू मुसलमानो के विरुद्ध है। यह सरासर गलत है। हम सिर्फ इतना ही चाहते है कि 1951 से विदेशियो का पता लगाया जाए और 1961 के बाद आनेवाले गैरनागरिको को यहॉ से खदेडा जाए। एक मेहमान को जिन्दगी-भर अपने घर मे कैसे रखा जा सकता है?"

दो युवक कमरे मे दाखिल होते है। नसीम परिचय कराती है—कार्तिक मेधी (मेडिकल छात्र) और मुर्तजा अहमद। सामान्य औपचारिकता के बाद कार्तिक मेधी, कहने लगे, "देखिए, आप दिल्लीवाले हमारे आदोलन के बारे मे सही ढग से नही

लिख रहे हैं। असम घूमने से पहले यह जान लीजिए कि आंदोलन गैर-साम्प्रदायिक है। आर.एस.एस. के लोग इसे हिन्दू-मुसलमान का रंग दे रहे हैं। बाहर के हजारों स्वयंसेवक गुआहाटी तथा दूसरे नगरों में बुला लिए गए हैं। गडबडी फैलती जा रही है। मारवाड़ियों का इन्हें समर्थन प्राप्त है।"

करीब एक-डेढ घंटे की बातचीत के बाद मैने आसू के लोगों मे विदाई ली और फैंसी बाजार की ओर चल पडा। साथ में एक स्थानीय पत्रकार भी थे। पान बाजार का क्षेत्र पार करते ही फैंसी बाजार में पहुँचा, तो एक नया अनुभव मेरे सामने था। पान बाजार और फैंसी बाजार दो भिन्न गुआहाटी, दो भिन्न असम का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। दोनों बाजारों की सीमाओं पर थे पुलिस मुख्यालय और चर्च। पान बाजार असम की संस्कृति का प्रतीक था, वहाँ एक शालीनता, गरिमा, भद्र-संस्कृति की छाप स्पष्ट झलक रही थी। असम के पारम्परिक वस्त्र और हस्तशिल्प इस बाजार के विशेष आकर्षण थे। इसके विपरीत फैसी बाजार पश्चिमी वस्तुओं से पटा हुआ था। चारों तरफ मारवाडी ही मारवाडी दिखाई दे रहे थे—पश्चिम की उपभोगवादी संस्कृति के अधकचरे प्रतीक। असमिया परिधान में इक्की-दुक्की असमिया स्त्रियाँ भी दिखाई दे जाती थीं। फैंसी बाजार का क्षेत्र अपने में एक लघु राजस्थान समेटे हुए था।

स्थानीय पत्रकार गुआहाटी के एक प्रसिद्ध व्यापारी धानुका से मिलवाते हैं। आंदोलन और रक्तपात के संबंध में बातचीत छिडने पर धानुकाजी बडे अनमने भाव से तुनककर कहते हैं . "हमें किसी के संबध में कुछ नहीं कहना। जमाना खराब है। विदेशियो की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं की गई है। हम किसी के लड़ाई-झगडे में नहीं पडते। सब चोर है—इंका से लेकर सी पी एम तक। सबको काला धन चाहिए। हमें असम में बिजनिस करना है और सभी दलों की चाकरी भी करनी है। कोई भी राजा बने, हमें कोई अंतर नहीं पडता। पैसा सभी को लगता है। अगर वे लोग (असमिया) हमें बिजनिस करने देंगे तो करेंगे, नहीं तो घर बैठेंगे। हम सब व्यापारी ऐसा ही सोचते हैं।" धानुका की बातचीत से लगा कि व्यापारी वर्ग अनेक आशंकाओं से ग्रस्त है। बार-बार कुरेदने पर भय की परतें दिखाई देती हैं। यह वर्ग सोचने लगा है कि विदेशियो के पश्चात कहीं आंदोलन की तोपें उनकी तरफ न मुड़ जाएँ? वैसे एक दशक पहले मारवाड़ी और असमिया लोगों के बीच हिंसात्मक दगे हो चुके हैं।

धानुकाजी के घर से चला तो शाम हो चुकी थी। साढ़े पाँच-छः बजे तक पूरा अंधेरा हो गया था। असम में सूर्य जल्दी छिपता है। फैंसी बाजार में तो चहल-पहल थी, परन्तु पान बाजार बिलकुल वीरान था। वैसे सेना और सी.आर.पी की जीपें बीच-बीच में दौडती दिखाई दे जाती थीं। जवानों की गश्त तेज हो गई थी। चारों

तरफ लौह-टोप और सगीने दिखाई दे रही थी। पत्रकार दास ने बताया कि नगर के बडे-बडे भवन, यहाँ तक कि स्कूल-कॉलेजो के भवन भी सी आर पी के बैरक बन गए है। यह सच भी है। कई भवनो के सामने खंदक और पिल-बॉक्स (कवच कोठरी) बने दिखाई दिए, मानो गुआहाटी नगर न होकर कोई युद्ध-स्थल हो। होटल आ चुका था। उतरते-उतरते रिक्शाचालक को कुरेदने की इच्छा हुई। रिक्शाचालक बिहार के मोतीहारी जिले का है। नाम है मोहन। बीस-पच्चीस रुपए रोज कमा लेता है। असम मे पिछले बीस बरस से है। वह कहता है-- 'साब ! मै गरीब आदमी हूँ। नही जानता यह (आदोलन) खराब है या अच्छा। जब हड़ताल होती है तब नुकसान होता है। पहले पहल जबरन चन्दा वसूला जाता था। अब नही लेते। आदोलन और दूसरे लोगो (विदेशियो) से हमारा कोई मतलब नही। बडे लोग जाने।'

धानुका की तटस्थता और मोहन की तटस्थता कहाँ एक-दूसरे से मिलती है और कहाँ एक-दूसरे को चीरती हुई अलग हो जाती है, यह सोचते हुए सीढियो पर चढता हूँ। कमरे मे पहुँचकर आदोलन-समर्थक होटल मैनेजर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है 'मै नही जानता, आदोलन का क्या अत होगा, विदेशी नागरिक कैसे भगाए जाएँगे और कहाँ भेजे जाएँगे? हम असम की सरकार को नही मानते। वह धोखा है। परिणाम कैसा भी निकले आदोलन चलता रहेगा।

गौहाटी (गुआहाटी) की पहली दोपहर के बाद पहली सुबह रेलवे स्टेशन की सीढियो पर चढते हुए शुरू होती है। सीढी पर अर्द्ध मृत दशा मे एक पूर्ण नग्न नरककाल रेलिग से चिपका हु  है। वह अपनी ही गदगी मे सना हुआ है। व्योम मे शाकाहारी नाश्ते के लिए कोहराम, सदन मे बोलने के लिए चटपटा मसाला और यहाँ खामोशी। बेजान।

सीढियो को लाँघता हुआ आसू कार्यालय मे पहुँचा। वहीं बम्बई के प्रसिद्ध मुस्लिम विचारक और बोहरा समाज के सुधारक असगर अली इजीनियर से मुलाकात हो गई। एक सुखद आश्चर्य हुआ। एक घटे तक प्रतीक्षा की, टैक्सी नही मिली। एक आसू के कार्यकर्ता कहने लगे "सरकार प्रचार कराती है कि हम दबाव से सहयोग ले रहे है। कल मे कह रखा है, मगर टैक्सीवाला अभी तक नहीं आया। एक आया भी था वह भी गच्चा देकर भाग गया। दूसरे का इतजार है। आजकल कोई भी टैक्सीवाला साथ जाने को तैयार नही होता।" अत मे, असगर अली आसू के स्वयसेवक के साथ जाते है और टैक्सी लेकर आते है। इसके बाद हम नेल्ली के लिए रवाना हो जाते है। साथ मे होते है आसू के दो कार्यकर्ता शरीफुद्दीन अहमद और जगन्नाथ पातोर (मैदानी लालूग आदिवासी)। पहला पडाव था—जागीरोद। यहाँ, सरकारी क्षेत्र मे एक काफी बडी पेपर मिल का निर्माण जारी

है। आसू के कार्यकर्ता बतलाते है यह पेपर मिल तनाव का केन्द्र बना हुआ है–बगालियो और असमियो के बीच। शरणार्थी बगाली मजदूर सस्ती मजदूरी पर काम करने को तैयार हो जाते हैं चार-पॉच रुपए रोज मजदूरी ले लेते है, जबकि असमिया मजदूर की रेट 10 रुपए रोजाना है। मजदूरी के सवाल को लेकर मजदूरो के दोनो वर्गो मे तनाव बना रहता है। मजदूरी के मामले मे पूरे असम की यही हालत है। बगाली और असमी मजदूर आपस मे लडते रहते है। किसी ने ठीक कहा है– सत्ता ओर सपत्ति पर काबिज रहने के लिए यह जरूरी है कि 'धरा के अभागे' (रेचेड आफ दी अर्थ) आपस मे लडते भिडते मरते रहे। हम दोनो बुदबुदाए। यह स्थान नेल्ली से चद किलोमीटर की दूरी पर था। दूसरा पडाव फलाहगुरी रहा। यहॉ से नेल्ली क्षेत्र चार किलोमीटर दूर रह गया था।

आसू कार्यकर्ता सडक किनारे एक झोपडी मे ले गए। निवासी दौलत अली चौधरी और उनके पुत्र नवाब चौधरी से मिलवाया गया। नेल्ली मे हुए भयानक रक्तपात की बात चली तो साठ साला दौलत अली की ऑखो मे गहरे दुख की रेखाएँ साफ-साफ उभरी हुई थी। पेशानी के तनाव सबूत थे इस सचाई के कि रक्तपात को उन्होने पसद नही किया। एक अजीब लाचारी-बेबसी महसूस कर रह थे वो कुछ कहने मे। परन्तु खामोशी तोडी तो हर खबरनवीमी गैतरेबाजी का जवाब उन्होने पूरी साफगोई के साथ दिया हम असमिया मुसलमान है। हमारा खून-खराबे से कोई सबध नही। पर एक बात जरूर है जो भी कुछ हुआ है वह मजहब के नाम पर नही हुआ चुनाव को लेकर हुआ है।" असगर अली के सवालो के उत्तर मे नवाब चोधरी ने हर बार यही कहा "पहले हम असमिया है बाद मे हिन्दू-मुसलमान। इसलिए नेल्ली के हत्याकाड को किसी एक खास समुदाय के खिलाफ नही कहा जा सकता।' वृद्ध दौलत अली दुबारा बोले 'मुसलमान होने के नाते मुसलमान के मरने पर दुख होना स्वाभाविक है। परन्तु, सच्चाई यह है कि किसी भी इसान की हत्या पर इसान को कष्ट होगा। इस नाते हमे भी है। कोई भी असमिया रक्तपात पसद नही करता।"

दोनो चौधरियो से रुखसत लेकर। चद ही मिनटो मे हम नेल्ली कत्ले-आम के क्षेत्र मे थे। घटनास्थल तक कार नही जा सकती थी। हमने पैदल चलने का आग्रह किया। परन्तु आसू के शरीफुद्दीन इसके लिए तैयार नही थे। जगन्नाथ पातोर को भी भय था कि बगलादेशी मुसलमान हमला कर देगे, बारूद की सुरग बिछी हुई है। लाख समझाने पर भी दोनो कार्यकर्ताओ ने हमारे साथ चलने और कार से नीचे उतरने से इकार कर दिया। आखिर तय किया गया कि यह प्रतिनिधि असगर अली और गौहाटी के स्थानीय पत्रकार देवेन्द्र दास तीनो पैदल ही घटनास्थल जाएँगे। तीन-चार किलोमीटर दूर शरणार्थी शिविर दिखाई दे रहे थे। हम मुख्य सडक से उतरकर पगडडी मार्ग से खेतो को पार करते हुए चल पडे।

कुछ देर पैदल चलने के बाद कच्चे रास्ते से एक जीप आती हुई दिखाई दी। रोका, लिफ्ट माँगी। जीप मजिस्ट्रेट और शरणार्थी शिविर के प्रभारी की थी। परिचय के बाद हम जीप मे सवार थे। जीप मे सी आर पी -10 टुकडी के कप्तान वी एस रावत से बातचीत चल पडी। उन्होने बताया कि 18 फरवरी को करीब 600 बगलादेशी मुसलमान मारे गए थे। अगर सी आर पी समय पर नही पहुँचती, तो सख्या इससे भी अधिक हो सकती थी। असमिया आदिवासी बगालियो को मारते गए, काटते गए और घरो को जलाते गए। मुसलमान अपने बच्चो को छोड भागते रहे कटते रहे। यह सिलसिला कई गाँवो मे एक साथ चलता रहा। परन्तु सी आर पी के जवानो ने तुरत कार्रवाई की। नदी नालो को पार करते हुए हमलावरो को खदेडा। इसकी पुष्टि बाद मे शिविर मे विस्थापितो ने भी की, उन्होने सी आर पी की भूमिका की प्रशसा की। बातचीत से यह भी पता चला कि रावत मध्यप्रदेश के निवासी है राष्ट्रीय गोलकीपर नेगी के भावी ससुर। शिविर डिमाल नदी के मुहाने पर स्थित था। यह स्थान और डिमाल नदी दो नदियो कपली और किलिग के बीच मे है। रावतजी न बताया कि किलिग नदी वास्तव मे 'किलिग नदी' ही सिद्ध हुई। बच्चो को मार काटकर इसी नदी मे फेका गया। जो बचना चाहते थे वे इस नदी को पार नही कर सके। इसके बाद किलिग नदी मे 'किलिग' शुरू हो गई।

विस्थापित शिविरो म हाहाकार मचा हुआ था। प्रत्येक परिवार म मे दो-दो दस-दस इसान बलि चढ चुके थे इसान की ही हिंसात्मक रक्तपिपासु प्रवृत्ति पर विस्थापितो का सब कुछ लुट चुका था– स्त्री बच्चे मरद, मवेशी घर और सब कुछ। अब बचे ये फक्त दो ईटो के चूल्हे टीन के टूटे पीपे घासलेट की किनारे टूटी बातले जली हुई पेटिया खुरपी हँसिया और सब कुछ सहने का पुन विनाश के गर्भ मे से नया अकुरित करने का शाश्वत साहस। विस्थापितो का कहना था कि आसपास के 13 गाँवो मे करीब ढाई हजार लोग मारे गए है। उनका सामूहिक स्वर म कहना था हमारा एक ही कसूर था–हम वोट देना चाहते थे।' परन्तु, किसी भी विस्थापित मुसलमान ने यह नही कहा कि हमलावर आदिवासी और असमिया हिन्दुओ मे बगाली हिन्दू भी शामिल थे। बगाली हिन्दुओ की बस्तियाँ थी परन्तु भय से वे तटस्थ रहे।

रावतजी ने बताया कि बडो को प्रति व्यक्ति छह सौ ग्राम और बच्चो को चार सौ ग्राम चावल के हिसाब से राशन दिया जाता था। परन्तु अब विशेष रियायत दी गई है। अब बालिग को एक किलो धान 70 ग्राम दाल 40 ग्राम सरसो तेल, पाउडर का दूध और सब्जी आदि प्रतिदिन दी जाती है। इसके अलावा वस्त्र भी वितरित किए गए है, जिनमे साडी, धोती लुगी जाघिया आदि शामिल है। पाँच हजार रुपए प्रति परिवार नकद राहत राशि भी दी गई है।

सूर्य ढलने जा रहा था। एक तरफ विस्थापितो का शिविर था, डिमाल मद-मद बह रही थी और सामने थे धान के हरे-हरे खेत जिनके बीच कपोत उड रहे थे। जीप पर सवार होते ममय रावत ने सूचना दी शिविरो मे बच्चो ने जन्म भी लिया है।

पन्द्रह-बीस किलोमीटर दूर बोरबोरी का शिविर देखने पहुँचे। रावत ने बताया कि इस क्षेत्र मे भी करीब छह सौ व्यक्ति मारे गए है। यहा के विस्थापितो ने एक स्वर से कहा कि बोरबोरी के हत्याकाड के लिए असम पुलिस जिम्मेदार है। विस्थापितो ने यह भी बताया कि आसू और गणसग्राम परिषद ने दबाव डाला कि मतदान मे हिस्सा मत लो। विस्थापित कहने लगे हमने परिषद के लोगो को कहा कि जब सरकार ने वोट देने का आदेश दिया है तो वोट देगे। तब परिषद के लोगो ने कहा कि 'वोट दोगे तो टुकडे टुकडे कर देगे।

यहॉ एक नए तथ्य का पता चला है। इस क्षेत्र की सारी उपजाऊ भूमि पर तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान से आए मुसलमानो का कब्जा एक लबे समय से हो गया था। विस्थापितो ने स्वय बताया कि उन्होने स्थानीय आदिवासियो और असमिया हिन्दुओ एव मुसलमानो की हजारो बीघा जमीन गिरवी रखी हुई है। गिरवी के अलावा पचास प्रतिशत जमीन खरीद भी भी है। एक विस्थापित परिवार के पास दस बीघा से लेकर सत्तर बीघा तक भूमि है जिसमे से आधी गिरवी की है। विस्थापितो ने यह भी बताया कि एक बीघा भूमि तीन सौ से पॉच सौ रुपए तक रखी जाती है। विस्थापित मोहम्मद रूहुल अमीन कहने लगे मेरे पास पैतीस बीघा भूमि है जिसमे से 12 बीघा 3 600 रुपए मे गिरवी रखी गइ थी। विस्थापित जब्बार के शब्दो मे मेरी 20 बीघा मे से 16 बीघा असम के आदिवासी और हिन्दुओ की है। जैनुल अबूदीर की भी कहानी यही है। उसने बीस बीघा माटी (असम मे भूमि को माटी कहते है) सात हजार रुपए मे बधक रखी है। मगर अब कुछ नही बचा। विस्थापित कहते है हमलावरो ने गिरवी और बेचने के सारे कागजात जला दिए है। लिखत-पढत के दस्तावेज किसी के पास साबुत नहीं बचे है। हम पूरी तरह से बर्बाद हो चुके है।

यहॉ का हर परिवार युद्ध विभीषिका की कहानी की तरह है। मोहम्मद अमीन कहने लगे मेरे परिवार के सैतालीस लोग मारे गए है जिनमे मॉ तीन पत्नियॉ, चार लडके चार लडकियॉ भाई पुत्रवधुऍ शामिल है।' अजीजुर्रहमान अकेले ही रह गए हैं। उनके परिवार के सब सदस्य कत्ल कर दिए गए जिनमे एक गर्भवती स्त्री भी शामिल थी। हर विस्थापित परिवार ऐसी ही कहानी दोहराता है।

परन्तु यहॉ किसी भी मुसलमान ने इसे साप्रदायिक कत्लेआम नही बताया बल्कि देवबद मे शिक्षित मौलवियो तक ने कहा 'दगो से पहले हम सब हिन्दू-मुसलमान

एक अरसे से भाई-भाई की तरह रहते आ रहे थे। एक-दूसरे से हर-तरह का व्यवहार था। धर्म मजहब का तो कभी सवाल ही नही उठा। अलबत्ता जमीन को लेकर मनमुटाव जरूर रहता था। शायद इस हत्याकाड की असली वजह जमीन ही रही हो!" मौलवियो ने यह भी बताया कि हमलावरो ने बगाली हिन्दुओ के 19 परिवारो को भी जला दिया है। अनेक उलटे-सीधे सवालो के बावजूद कोई भी विस्थापित भूल या गुस्से से 18 फरवरी के कत्ले-आम को 'फिरकाना रग' देने को तैयार नही था। देखो सूरज अस्त हो चुका है। अजान की आगाज होने लगी है सी आर पी द्वारा तैयार किए गए एक चबूतरे पर—"अल्लाह के सिजदे मे है अल्लाह के बन्दे।'

गौहाटी के लिए रवाना होते समय रावतजी ने बताया था इस भयानक हत्याकाड के तुरत पश्चात नेल्ली शिविर मे सात-सात शादियॉ हो चुकी है। है ना कितना विचित्र इसान की फितरत को समझना!" मुख्य सडक पर लौटकर भयग्रस्त अहमद और पातोर को साथ लिया। गौहाटी के लिए चल पडे। बातचीत शुरू हुई। अहमद कहने लगे "अगर वो असमी/बगाली मुसलमान/हिंदू है तो हमारे साथ होना चाहिए था। वोट नही देना चाहिए।' पातोर कहने लगे विदेशीपन परायापन वे ही दिखाते है। बगाल से आए हिन्दू, मुसलमान स्थानीय लोगो से अधिक मिलना-जुलना पसद नही करते। वे अलग गॉवो मे रहते है। जमीने उन्होने जरूर दबाई हैं इसका गुस्सा गॉवो मे है।" बातचीत समाप्त करते हुए असगरअली ने कहा—"कोई समझाए इसानो को कि असली लडाई मजहब को लेकर नही दौलत को लेकर की जाती है। काश! कोई इस आर्थिक सघर्ष के चरित्र को समझे फिर कोई माकूल इलाज तलाशे।"

मै जहॉ ठहरा हू, वह एक मारवाडी का चारतल्ला होटल है। होटल पहुॅचने के कुछ देर बाद ही विस्फोट होता है। चारो तरफ शोर। होटल से बाहर निकल आते हैं लोग। करीब सौ फुट के फासले पर चन्द मिनटो मे ही दो-तीन विस्फोट होते है। कुछ लोग जख्मी भी हो जाते है। हैरत है, विस्फोट से चद मिनट पहले ही मै और असगर अली उसी स्थल से गुजरे थे। हल्का-सा गुमान भी न था कि ऐसा हादसा होगा। घटनास्थल से लौटे तो होटल के एक ड्राइग रूम मे वीडियो-कैसेट का शो शुरू हो चुका था, जो सुबह चार बजे तक चलता रहा। पता चला, फैसी बाजार मे इस तरह के शो नियमित रूप से होते है। गुप्त रूप से ब्लू फिल्म के शो भी किए जाते है।

अगली सुबह दाराग की ओर निकल पडे। आसू के कार्यकर्ता और मेडिकल छात्र शर्मा साथ मे कर दिए गए। गौहाटी से पचास-साठ किलोमीटर दूर सडक पर भीड जमा मिली। टैक्सी रोकी। चारो तरफ असमी मुसलमान खडे थे। भीड मे से एक-दो लोग चीखते हुए कह रहे थे, "अब असम के मुसलमान इस आदोलन

का साथ नहीं देंगे।" पूछने पर पता चला कि मारोई गॉव के एक मुसलमान युवक का तीन दिन पहले सिपाझार में बस स्टैंड से अपहरण कर लिया गया था। आज उसकी लाश मिली है। अपहरण भी संग्राम परिषद के एक स्थानीय पदाधिकारी तरुण शर्मा के सामने किया गया था। भीड मे से मोहम्मद ताहिर और शाहिर अली का कथित आरोप था कि युवक मिजालू रहमान की हत्या के पीछे तरुण शर्मा तथा अन्य चार लोगो का हाथ है। चारो ही हिन्दू है—डीजन बरुआ, नलोनी बरुआ, माधव बरुआ और बसन्त बरुआ। काफी दबाव डालने पर माधव बरुआ को ही गिरफ्तार किया गया है। इन लोगो का आरोप यह भी था कि इन कथित व्यक्तियो का संबंध आर एस एस और विश्व हिन्दू परिषद से भी है। बाद मे दूसरे दिन गौहाटी में आसू के नेताओ ने इसकी पुष्टि भी की। यह भी बताया गया कि तरुण शर्मा को पद से हटा दिया गया है, जॉच बैठा दी गई है। घटना की गभीरता का अदाज इसी से लगाया जा सकता है कि मारोई गॉव के मुसलमानो की उत्तेजना को शात करने के लिए चद घटो के अन्दर गौहाटी से आसू के नेता घटनास्थल पर पहुॅचे, और स्थिति को बिगडने से रोका। यहीं यह भी पता चला कि दाराग के मगलदोई उपसंभाग मे ऐसी कई घटनाएँ हो चुकी है। आसू और परिषद इन हत्याओ को रोकने मे असफल रहे है। सभी का यह मत था कि अगर ऐसी घटनाएँ आगे भी जारी रहती है तो आदोलन अपने उद्देश्यो मे पिट जाएगा।

यहॉ से आगे बढे तो शालखुआ की ओर मुड गए। यह गॉव घने जगलो और नदी-नालो से घिरा हुआ है, इसलिए उस तक पहुॅच पाना मुश्किल था, पास के गॉव तक पहुॅचकर ही शालखुआ के बारे मे जानकारी प्राप्त करके सतुष्ट होना पडा।

रागामाटी और कुआपानी के असमिया हिन्दू और मुसलमान दोनो ने बताया कि 15 फरवरी को करीब 500 विदेशी मुसलमान मार दिए गए। परन्तु, गॉव के मुखिया असमिया मुसलमान हरमोज अली ने कहा कि पहले बगाली मुसलमानो ने असमिया हिन्दुओ पर हमला किया, इसके बाद "असमिया हिन्दू-मुसलमान दोनो ने एक साथ मिलकर शालखुआ के मुसलमानो पर हमला किया। शालखुआ मे 7-8 साल से बगाली मुसलमान रह रहे है। उनके पास जमीन काफी उपजाऊ है।" कुछ मुसलमानो ने यह भी बताया कि विदेशी मुसलमानो ने असमिया हिन्दुओ के साथ-साथ मुसलमानो के भी घर जलाए। कुछ गॉवों में असमिया मुसलमानो को जिन्दा जला दिया गया।

मगलदोई पहुॅचे तो सारा बाजार बद था। मारोई गॉव के मिजालू रहमान की हत्या के विरोध मे हिन्दू-मुसलमान दोनों दुकानदारों ने बाजार बद कर दिए थे। मगलदोई से ठेकराबाडी की ओर मुडे। रास्ते-भर सेना के स्वागत में बोर्ड लगे हुए थे, मगर सी आर पी का विरोध किया जा रहा था। असमिया

हिन्दू-मुसलमान सेना के समर्थक थे, जबकि बगाली हिन्दू-मुसलमान असम पुलिस के विरोधी और सी आर पी के प्रशसक मिले।

मुख्य मार्ग से छह किलोमीटर अदर ठेकराबाडी क्षेत्र मे अनेक असमिया हिन्दुओ की हत्याएँ फरवरी मे कर दी गई थी। ठेकराबाडी के इर्द-गिर्द बगाली हिन्दुओ और मुसलमानो की बस्तियॉ थी। मगलदोई से ठेकराबाडी तक ताबूल के वन है। इन वनो के बीच मे होती है धान की खेती। ठेकराबाडी बिल्कुल उजड चुका है। गॉव की अधिकाश जनसख्या या तो मारी जा चुकी है या भाग गई है। शेष लोग विस्थापित शिविरो मे है। अपने उजडे जले घर के बीच खडे लोकनाथ बरुआ ने बताया कि वह अपने परिवार मे अकेला बचा है। रामेश्वर बरुआ की भी यही कहानी है। सेना का एक जवान शातिरामनाथ छुट्टी पर गॉव आया था, उसे भी कत्ल कर दिया गया। शेष बचे हिन्दुओ ने आसपास की बस्तियो मे रह रहे बगाली मुसलमानो के नाम आगजनी और हत्या के सिलसिले मे लिए। यहा का प्रत्येक हिन्दू परिवार कत्ले-आम का शिकार हो चुका है। यहॉ के हिन्दुओ ने बताया कि बगाली हिन्दू तटस्थ रहे बगाली मुसलमानो के हमलो के दौरान वे चुपचाप सब देखते रहे।

मै जब नेल्ली मे था तब एक बात रह-रहकर कचोट रही थी इतने निकट के सबधी मरे—किसी का पिता, किसी की मॉ किसी का पुत्र या पुत्री, किसी का पति या किसी की पत्नी—परन्तु इतनी बडी त्रासदी के बाद जिस अथाह विषाद की मैने कल्पना की थी, वह उन लोगो के चेहरो पर नहीं थी। सब कुछ रहस्यमय लग रहा था। परन्तु, ठेकराबाडी मे हिन्दुओ की स्थिति भी वही लगी। क्या इन लोगो की सवेदनशीलता मर गई है? अपने-परायो की मृत्यु की त्रासदी का बोध भोथरा गया है? क्या ये सब लोग अब निर्जीव हो चुके हैं? इन सबका जवाब तरुणनाथ से मिलता है "साब हत्या के निशान मौजूद हैं शव नहीं। बाबा मर गया, काम करना ही होगा–ताबूल बीनने होगे धान की फसल काटनी होगी, सब कुछ नए सिरे से बनाना होगा।"

सामने मै देखता हूँ, आस-पडौस के स्त्री-बच्चे ताबूल के वृक्षो के नीचे ताबूल के गुच्छे बीन रहे हैं, खेत मे ट्रैक्टर चल रहा है हल से जुताई हो रही है, असमिया धोती मे लिपटी स्त्री नदी से पानी ला रही है, बगाली मुसलमान के बच्चे धान के पुआल सरो पर लादे जले घरो की ओर लौट रहे है। श्वेत कपोत और बगुले फिर धान की बालियो पर उडने लगे है। नेल्ली के शिविरों मे है प्रसव, विवाह और पुन मानव को अकुरित करने की जिजीविषा।

**11-12-13 अप्रैल, 1983**

# रक्त की अंतिम बूँद तक : हुसैन और महंत

असम मे पिछले चार वर्षो से आदोलन चल रहा है। असम आंदोलन के नेता और आसू के अध्यक्ष प्रफुल्ल कुमार महंत और उपाध्यक्ष नूरुल हुसैन से गौहाटी में मार्च के तीसरे हफ्ते मे हुई अलग-अलग मुलाकातों के दौरान आंदोलन के सभी पहलुओं पर खुलकर चर्चा हुई। अलग-अलग समय पर मुलाकातों के बावजूद, आंदोलन और उससे जुडे मुद्दो के संबंध में दोनों युवा नेताओं के दृष्टिकोणों में बला की समानता मिली। महत और हुसैन दोनो ने आंदोलन की सफलता एवं विफलता तथा उसके भविष्य के सवालों पर बगैर किसी पूर्वाग्रह के निश्चल व सरल भाव किंतु इरादों की दृढता से अपने विचार व्यक्त किए। दोनों की बातचीत से कहीं भी राजनीतिक या सत्ताकांक्षा का आभास नहीं मिला। शायद असम के किशोर युवाओ का परवान चढने का यह जुनून ही आज इतने लंबे समय तक आंदोलन को जीवित रखे हुए है, जबकि पिछले तीन वर्षों में उत्तरी-पश्चिमी भारत में युवाओं के कई आंदोलन हुए, और बगैर अपनी मंजिल तक पहुँचे अधबीच में चमकते ही 'फ्यूज' हो गए। वास्तव में असम के किशोर और युवा इस आंदोलन के लिए निरतर संजीवनी बने हुए हैं।

दोनों नेताओं के साथ लगभग साढ़े-तीन घंटे तक भूमिगत स्थान पर बातचीत हुई; बातचीत के दौरान दो प्रकार के 'भय-बोध' बार-बार उभरकर सामने आए। दोनों ही नेता इस भय एवं आशंका से ग्रस्त मिले कि शेष भारत में उनके आंदोलन को कहीं (एक) साम्प्रदायिक व (दो) भारत विरोधी तो नहीं समझा जा रहा है? फरवरी के हत्याकांडों को लेकर वे काफी चिंतित थे। दोनों ही नेता अंत तक यह जानने के लिए व्यग्र दिखाई दिए कि नौगॉव और दारांग के हत्याकांडों के

बाद दिल्ली और अन्य भागो की जनता असम आदोलन के सबध मे किस प्रकार की राय रखती है? क्या वह इसे हिंदू-मुसलमान के बीच सघर्ष के रूप मे देखती है या फिर इसे 'भारत से अलग होने के लिए पूर्व का आदोलन' मानती है? दोनो ही के स्वरो मे पीडा थी। मासूमियत भरी उनकी अपील थी "मेहरबानी कीजिए आदोलन के सबध मे फैलनेवाली गलतफहमियो को दूर करने मे हमारी सहायता कीजिए। हम भी भारतवासी है और अतिम सॉस तक रहेगे। हमारा आदोलन अन्याय और विदेशियो के विरुद्ध है न कि किसी धर्म या जाति के विरुद्ध।"

महत अतर्मुखी अल्पभाषी और कुछ-कुछ शर्मीले किस्म के इसान लगे। वे नेता कम कोई शोध छात्र या प्राध्यापक अधिक दिखाई देते है। इसके विपरीत हुसैन बहिर्मुखी परन्तु सिलसिलेवार ढग से मुद्दो पर अपने विचार पकट करनेवाले लगे। परतु दोनो के विचारो मे कही धुध नही थी।

आदोलन के मूल्याकन और उसके सबक के सम्बन्ध मे महत का यह स्पष्ट मत था 'हमने आदोलन से मातृभूमि के लिए त्याग करना सीखा है। हमने सीखा है—अन्याय और शोषण के विरुद्ध जनता को सगठित कैसे किया जाता है! लडाइयॉ कैसे लडी जाती है! कब और कैसे अपने पैरो पर खडा होना चाहिए!"

महत के लिए आदोलन का मूल्याकन उसकी 'निरतरता' पर आधारित है न कि उसकी सफलता और विफलता पर। उनका मत था "मै आदोलन का मूल्याकन उसकी सफलताओ और विफलताओ की दृष्टि से नही करता और न ही मूल्याकन का समय है। यह सही है कि आदोलन को अभी तक सफलता नहीं मिली है—विदेशियो का सवाल अभी तक उलझा हुआ है उनको असम से निकालने के सबध मे सरकार ने कोई फैसला नही लिया है, इतना रक्तपात भी हो चुका है, स्थिति लगातार बिगडती जा रही है मगर हमारा आदोलन भी जारी है। इसमे उतार-चढाव है आगे भी आएँगे। आदोलन और जन-समर्थन की निरतरता ही हमारी सबसे बडी उपलब्धि है।"

आदोलन की पकड और प्रभाव के सबध मे महत ने नि सकोच अपनी कमियॉ भी स्वीकार कीं। उन्होने यह माना कि यद्यपि अखिल असम छात्र सघ (आसू) का प्रभाव असम के सभी क्षेत्रो पर है, परतु बगाली-भाषी क्षेत्रों मे कम है, जिनमे सिलचर का क्षेत्र शामिल है। कुछ आदिवासी क्षेत्रो मे भी आसू कमजोर है। यह भी सही है कि आसू की सभी शाखाओ पर आसू की पकड नहीं है। कहीं-कहीं वे स्वतत्र ढग से काम कर रही हैं, जिससे कभी-कभी अडचने भी पैदा हो जाती हैं। परतु, फिर भी पकड हमारी पूरी है।

उन्होने यह भी माना कि कहीं-कहीं ढीली पकड के कारण स्थानीय स्तर पर

सांप्रदायिक शक्तियाँ कभी-कभी हावी होने लगती हैं। आर.एस.एस. और जमायते-इस्लामी असमिया जनता की एकता को तोड़ने की कोशिश करती हैं। चोरी-छिपे पर्चे बाँटे जाते हैं। दोनों को शासक दल इंदिरा कांग्रेस का भी समर्थन मिलता रहता है। तीनों की साजिश असम में सदियों पुरानी हिंदू-मुस्लिम एकता को तोड़ने और आंदोलन को तबाह करने की है। महंत ने यह भी स्वीकार किया कि हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिक ताकतें आए-दिन हिंदू-मुसलमानों को एक-दूसरे की हत्या के लिए उकसाती रहती हैं। फलस्वरूप गॉवों में एक-दो हत्याएँ रोजाना हो रही हैं। उन्होंने यह भी माना कि इन हत्याओं के निचले स्तर पर आंदोलन में हावी सांप्रदायिक तत्वों का हाथ रहता है। पता चलने पर ऐसे तत्वों के विरुद्ध कार्रवाई भी की जाती है। इसकी पुष्टि बाद मे हुसैन ने भी की।

आसू के उपाध्यक्ष और एक समय के कार्यवाहक अध्यक्ष हुसैन ने बताया कि 17-18 मार्च को दारांग जिले में एक असमिया मुसलमान युवक का अपहरण कर बाद में उसकी हत्या कर दी गई थी। इस सिलसिले में हिंदू असमियों की गिरफ्तारी कराई गई। आसू और असम गण संग्राम परिषद द्वारा सारे मामले की तुरंत छानबीन कराई गई। आंदोलन से जुडे एक हिंदू कार्यकर्ता तरुण शर्मा को आंदोलन से अलग किया गया। आरोप था कि शर्मा की मौजूदगी में उक्त मुस्लिम युवक का अपहरण हुआ था।

परन्तु हुसैन इन छुट-पुट घटनाओं को साम्प्रदायिक हत्या मानने से इंकार करते हैं। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता की कई मिसालें देकर यह साबित करने की कोशिश की कि असम आंदोलन में दोनों ही समुदायों के लोग हर स्तर पर शरीक हैं। उन्होने बताया : कामरूप जिले के समरिया गॉव में बंगलादेशी मुसलमानों ने असमिया हिन्दुओं पर जब हमला किया तो असमिया मुसलमान उन्हें बचाने के लिए दौडे। इसके विपरीत बंगाली हिन्दुओं ने बंगाली मुसलमानों का साथ दिया और जो असमिया मुसलमान रक्षा करने के लिए आ रहे थे, उनके रास्ते में बाधाएँ पैदा कीं। दारांग जिले के कई गॉवो में बंगाली मुसलमानों पर असमिया हिन्दू और मुसलमान दोनों ने मिलकर हमले किए। बोरपेटा उपसंभाग के गाँवों में बंगलादेशी मुसलमान, हिन्दू और चायबागान के मजदूरों ने असम के हिन्दुओं पर हमला किया। इसी प्रकार तेजपुर के पास गोपुर क्षेत्र में असमिया हिन्दुओं का कत्लेआम मैदानी इलाकों के वोरो आदिवासियों ने किया। कुछ जगहों की ऐसी मिसालें भी हैं कि इंका के हिन्दू नेताओं के अलावा मार्क्सवादी पार्टी के हिन्दू नेता एवं विधायक हेमेन्द्रदास ने भी बंगाली मुसलमानों को असमिया हिन्दुओं के गाँवों पर हमला करने के लिए उकसाया है। महन्त ने भी इसकी पुष्टि की। कामरूप जिले के गोरेश्वर क्षेत्र में बंगाली मुसलमानों और असमी हिन्दुओं ने

मिलकर बंगाली हिन्दुओं पर भी हमले किए। यहाँ दो सौ बगाली हिन्दू मरे। हुसैन की दृष्टि मे नेल्ली, बोरपेटा, दारांग, गोपुर आदि के कत्लेआम साम्प्रदायिक द्वेष के कारण नही, बल्कि चुनाव एव मतदान के समर्थन और विरोध को लेकर हुए हैं। हुसैन का कहना था कि जिन-जिन क्षेत्रो मे बगलादेशी मुसलमानो-हिन्दुओ ने चुनाव का बहिष्कार किया, मत नहीं डाले, वहाँ कोई दगा नहीं हुआ। बल्कि, कुछ क्षेत्रो मे बगाली मुसलमानो ने आसू को पूरा सहयोग दिया। ग्वालपाडा के कई गॉवो मे बगाली मुसलमानो ने मतदान मे हिस्सा नही लिया। इसके अलावा कई मैदानी आदिवासी ऐसे भी है, जिन्होने असमिया हिन्दू-मुसलमान का साथ दिया और एक भी वोट नही डाला। यहाँ तक कि गोपुर हत्याकाड के मुख्य अपराधी बोरो आदिवासी भी मतदान को लेकर विभाजित रहे है। बोरो-बहुल कुकराजार सुरक्षित निर्वाचन क्षेत्र मे केवल दस-बारह प्रतिशत बोरो आदिवासियो ने वोट डाले, जबकि शेष आदिवासियो ने मतदान का बहिष्कार किया। इतना ही नहीं, बोरो तथा अन्य मैदानी आदिवासियो के कई छात्र आसू की केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति के सदस्य भी है। आदोलन की "यह बनावट खुद-ब-खुद इस बात की गवाह है कि असम आदोलन साम्प्रदायिक नही है और न ही फरवरी के हत्याकाडो को साम्प्रदायिक कहा जा सकता है। जो भी दगा फसाद हुआ, चुनावो को लेकर हुआ है।"

मगर, हुसैन ने महन्त की तरह यह जरूर माना कि आदोलन मे साम्प्रदायिक तत्वो की घुसपैठ हो चुकी है। इस सबध मे उन्होंने विश्व हिन्दू परिषद, आर एस एस, भारतीय जनता पार्टी, जमायते-इस्लामी तथा जमायते-उलेमा-ए-हिन्द के नाम लिए। हुसैन के शब्दो मे "विश्व हिन्दू परिषद और आर एस एस ने पर्चे बँटवाए कि दगापीडितो मे राहत सामग्री केवल हिन्दुओ मे ही बॉटी जाए। 1981 मे हिन्दू परिषद ने असम मे नारा दिया कि कोई भी हिन्दू विदेशी नहीं है। हिन्दू साम्प्रदायिकता के जवाब मे मुस्लिम साम्प्रदायिकता को बढावा मिला है। असम के मुसलमानो ने भी राहत कमेटियॉ बना ली है और तय किया है कि राहत की रसद सिर्फ मुसलमानो मे ही बॉटी जाए। उत्तरप्रदेश और बिहार के मुसलमान नेता असम आकर हम असमिया मुसलमानो को भडकाने की कोशिश कर रहे है। सासद असद मदनी असम के गॉव-गॉव घूमकर तकरीर देते हैं कि मुसलमानो की सस्कृति हिन्दुओ से अलग है। पिछले दिनो कामरूप जिले के डामपुर गॉव मे मदनी ने मुसलमानो से कहा कि वे अपनी सस्कृति को फिर से जिंदा करे। इस गॉव मे इक्कीस मस्जिदे है। मदनी को इका की शह मिली हुई है। मैं फिर से यह कह देना चाहता हूँ कि असम मे हिन्दू-मुसलमानो के धर्म अलग-अलग हो सकते है, मगर सस्कृतियॉ नही। विदेशी-विदेशी है, चाहे

मुसलमान हो या हिन्दू। एक तरफ विदेशी हिन्दू एवं मुसलमान तथा दूसरी तरफ असमिया हिन्दू एवं मुसलमान के बीच अपने-अपने जीवन की रक्षा को लेकर युद्ध छिडा हुआ है। विदेशी और स्वदेशी दोनो वर्गो ने अपनी जिन्दगियों की बाजी लगा रखी है। हम स्वदेशी 'शेष बिन्दु नेज थका लौके' (रक्त की अंतिम बूँद तक लडेंगे)।

दोनों का यह दृढ मत था कि केंद्रीय सरकार विदेशियों का मसला हल करने में पूरी तरह सक्षम है। दोनों नेताओं का कहना था कि प्रधानमत्री अंतर्राष्ट्रीय स्तर के मुद्दों के लिए समय निकाल सकती हैं, उन्हे हल करने की कोशिश कर सकती हैं, तो फिर असम समस्या के हल के लिए कोशिश क्यो नही करतीं? दोनों ही नेताओ का यह मत था कि केंद्रीय सरकार समस्या को जितना लटकाएगी, उतनी ही यह पेचीदा होती चली जाएगी। इससे अशांति और फैलेगी। हालाँकि, हुसैन और महंत दोनों ही यह चाहते थे कि "असम आंदोलन अहिसक रहे और शांतिपूर्वक चले।" महंत का कहना था "हम कोई रक्तपात नहीं चाहते। बंगाली मुसलमान या असमी हिन्दू मारना हम पसद नहीं करते। हमने सभी कार्यकर्ताओ को आदेश भी दे दिए हैं कि आंदोलन को हिंसा से दूर रखा जाए। परंतु, सरकार की भी जिम्मेदारी है कि वह ऐसी स्थिति पैदा न होने दे।" दोनों की बातचीत से इसका आभास जरूर मिलता है कि अगर जल्दी ही कोई हल नहीं निकाला गया तो रक्तपात की पुनरावृत्ति को रोक पाना सभव नहीं होगा। बातचीत से एक बात यह भी साफ हो जाती है कि आंदोलन के नेता असम सरकार को किसी भी रूप मे मान्यता नहीं देते, अत· राज्य सरकार की कोई पहल या निर्णय आंदोलनकारियों को स्वीकार नहीं होगा। इसलिए दोनो नेता दिल्ली की पहल को महत्व देते हैं।

कुछ अन्य प्रश्नों के उत्तर में महन्त और हुसैन दोनों ने इतनी दृढता के साथ कहा कि वे वर्तमान पद पर रहते हुए कभी कोई चुनाव नही लड़ेगे, क्योंकि उनका मुख्य लक्ष्य असम से विदेशियों को खदेड देना है। लेकिन दोनो ने संकोच के साथ यह भी माना कि उनके इस निर्णय के संबंध में अंतिम फैसला जनता ही कर सकती है। हुसैन के शब्दों में : "अगर असम की जनता मॉग करती है तो हम वर्तमान पदों से त्यागपत्र देकर चुनाव में भाग लेंगे, नए राजनीतिक दल का गठन करेंगे। अंतिम फैसला जनता पर निर्भर है।" महंत का भी मत था कि जनता जैसा चाहेगी, वैसा किया जाएगा। परंतु आसू को किसी भी कीमत पर राजनीतिक दल नहीं बनने दिया जाएगा।

**14 अप्रैल, 1983**

# शांत हो रहे हैं सुलगते शिखर : मसला-ए-मिजोरम

1961 मे भारत के खिलाफ मिजो आदिवासियो ने पहली बगावत की थी। छठे दशक मे लुशाई पहाडियो मे अकाल और भूख के विस्फोट के विरुद्ध शुरू हुई लडाई सातवे दशक मे देश के खिलाफ बाकायदा सशस्त्र बगावत मे बदल गई। लालडेगा की रहनुमाई मे मिजो नेशनल फ्रट ने भारत के उत्तर-पूर्वी कोने के करीब 21 हजार वर्ग कि मी हिस्से से गोली और बारूद के पर्चे बिखेर दिए। और अब दो दशक बाद लालडेगा और केद्र सरकार के बीच हुए समझौते से मिजोरम मे शाति की उम्मीदे जाग उठी है। अब कैसी है मिजोरम की गलियॉ क्या सोचता है आम मिजो ? गोलियो की सनसनाहट मे वायलिन की मोहक धुन तक लौटने की तैयारी करते मिजोरम की अब कैसी है तस्वीर ?

"साला कही का! मर गया, हिन्दुस्तानी फौज की बदूक से?" लुशाई पहाडियो मे दफनाने से पहले, एक जिन्दा मिजो दूसरे मृत मिजो से कहता है। मुर्दे को कई गालियॉ देता है। "दूसरे जन्म मे होशियारी से काम लो। समझे?" इस चेतावनी के साथ मुर्दे को दफना दिया जाता है। यह एक कहानी नहीं, मिजो-विद्रोह का इतिहास है। यह इतिहास लुशाई पहाडियो-जगलो मे मिजो आदिवासी ससार का प्रतिनिधित्व करता है।

1961 मे मिजो आदिवासियो ने भारत के खिलाफ पहली बगावत की थी। इसकी कमान सम्हाली थी एक मामूली मिजो ने। नाम था लालडेगा। छठे दशक मे लुशाई पहाडियो मे अकाल व भूख के विस्फोट के विरुद्ध शुरू हुई लड़ाई सातवें

दशक में देश के खिलाफ बाकायदा सशस्त्र बगावत में बदल गई। 1961 में जन्मे मिजो फेमिन फ्रंट (मिजो अकाल मोर्चा) का दो वर्ष पश्चात कायाकल्प हो गया। 1963 में मिजो नेशनल फ्रंट के रूप में उसका नया जन्म हुआ। तब से मंगोल नस्ली लुसेई, हूमेर, राल्टेई, पाईहूते, पावी, मारा आदि मिजो जनजातियों का एक नया इतिहास इन पहाडियों में गूँजता है।

एक औसत ग्रामीण और शहरी मिजो आदिवासी छठे दशक की भूख और सातवें व आठवें दशक की विद्रोह गाथाएँ गर्व के साथ दोहराता है। केन्द्रशासित मिजोरम की राजधानी एजल मे पहुँचने के पहले दिन ही इस इतिहास की थापें सुनाई दीं। विगत और वर्तमान दोनों ही पीढ़ियों ने इतिहास के पृष्ठ दोहराए। लालडेंगा के नेतृत्व मे मिजो फ्रंट ने सरकारी खजाने को लूटा, असम राइफल्स के जवानो को कई मोर्चो पर शिकस्त दी, भारतीय सेना से जमकर टक्कर ली, और फिर हजारों मिजो विद्रोही अराकान की पहाडियों-जंगलों की ओर कूच कर गए, जहाँ से उनकी भूमिगत गतिविधियाँ आज तक जारी हैं।

सातवें दशक के एक प्रत्यक्षदर्शी मिजो आर डी खुमा ने बगावत के दिनों को याद करते हुए कहा : "फ्रंट के लोगों ने एजल शहर मे असम राइफल्स और भारतीय सेना से टक्कर लेने के लिए खाइयाँ खोदी थीं। 1966 मे उम्मीद थी कि तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान से फ्रंट की सहायता के लिए सेना आएगी। आकाश में जो भी सैनिक जहाज दिखाई देता, विद्रोही यही सोचते कि पाकिस्तान का जहाज हथियार लेकर आ रहा है। बर्मा, पाकिस्तान और ब्रिटेन के साथ फ्रंट के संबंध पहले ही स्थापित हो चुके थे; चुपचाप हर प्रकार की मदद मिल रही थी; कई लोग सीमा पार लगे सैनिक शिविरों में ट्रेनिग ले चुके थे। इसलिए पूरी योजना के साथ खजाना लूटा गया, सरकारी दफ्तरों में आग लगाई गई, बाजार को जलाया गया, असम राइफल्स और भारतीय सेना पर हमले किए गए। उस समय राइफल्स और सेना की गोली से मरनेवाले को खूब गालियाँ दी जाती थीं और सैनिक का सिर लानेवाले को 'हीरो' माना जाता था, उसे नायक का दर्जा दिया जाता था। आज भी इन नायको को सम्मान से देखा जाता है। इसीलिए लालडेंगा को मिजो जाति का हीरो कहा जाता है।"

सातवें और आठवें दशकों की गाथाओं के बीच नवें दशक की नौ जुलाई को प्रधानमंत्री राजीव गाँधी एजल पहुँचनेवाले थे। एजलवासियों की थाती केवल ये गाथाएँ ही नहीं हैं, छठे दशक की भूख और विद्रोह को कुचलने के लिए हुई सैनिक कार्रवाइयाँ भी उनके इतिहास का एक जरूरी हिस्सा बन चुकी हैं। भूख के दिन बूढ़ों की आँखों में ताजा हैं, तो जवानों के चेहरों पर सैनिक कार्रवाइयाँ गुस्से में ढली हुई हैं। बीच की उम्र के मिजो याद करते हैं : "फ्रंट के विद्रोहियों को

दबाने के लिए सेना ने गॉव के गॉव उजाड दिए थे। अनेक मासूमो की मौत हुई। आतक के कारण वर्षो से पिता पुत्र से और पत्नी पति से नहीं मिल सके, अनेक जगलो-पहाडियों मे भटकते खो गए, भूख-प्यास से मर गए। आज भी प्रतीक्षा है उनके घरो को वे लौटेगे कभी पहाडो से।"

सात जुलाई को एजलवासी इन तल्ख यादो और लालडेगा व सरकार के बीच शाति-समझौते की खुशी के साथ श्री गॉधी के स्वागत की तैयारी मे थे। एक दिन पहले छह जुलाई को वे अपने नायक लालडेगा का 'घर-वापसी' पर अभूतपूर्व स्वागत कर चुके थे। एक औसत एजलवासी के लिए वह दिन ऐसा था मानो कोई इतिहास लौटा हो। आम एजलवासी के अलावा, सैकडो की तादाद मे फौजी वर्दीधारी मिजो फ्रट के जवान नगर मे फैले हुए थे। बीस-पच्चीस सालो मे पहली बार वे खुले-आम सडको पर मौजूद थे, एक विश्वास उनके चेहरो पर था कि वे अब स्वतत्रता से जीवन बिता सकेगे।

सर्किट हाउस जहॉ लालडेगा डेरा डाले हुए थे, फ्रट के सैनिको से भरा हुआ था। लगभग सभी के पास हथियार थे। फ्रट के अधिकतर सैनिक बीस से तीस वर्ष के बीच थे। उनके चेहरो पर दयनीयता या आत्मसमर्पण का भाव नहीं था, बल्कि सब चेहरे एक निश्चल गर्व और उत्सर्ग के केद्र बने हुए थे—अपने हीरो लालडेगा के एक सकेत पर कुछ भी कर गुजरने के लिए तैयार। उन्हे लालडेगा के पहाडी मरजीवडे कहा जा सकता है। एजल मे लालडेगा का स्वागत 'मिजो राष्ट्र के नायक' के रूप मे किया गया। हजारो पोस्टर चिपकाए गए—हीरो या लीडर ऑफ दी मिजो नेशन। स्पष्ट शब्दो मे, मिजोरम को भारत के एक केन्द्रशासित राज्य के रूप मे नही बल्कि मिजो राष्ट्र के रूप मे देखा जाता है। शाति-समझौते से मिजो राष्ट्र के स्वप्न की रेखाएँ धुँधली जरूर हुई है, पर कब तक और कहाँ तक मिटेगी, इसका गवाह भविष्य बनेगा।

असम का कछार क्षेत्र पार करने पर एक नए पहाडी भारत—मिजोरम के दर्शन होते है। 1971 तक यह क्षेत्र असम का एक जिला था। 1971 के उत्तर-पूर्व भारत पुनर्गठन कानून के तहत 21 जनवरी, 1972 को मिजोरम की स्थापना हुई, उसे केद्रीय क्षेत्र का दर्जा मिला, तैतीस सदस्यो की विधानसभा बनी, संसद मे दो सदस्यो का प्रतिनिधित्व मिला। मिजोरम एक नया नाम है। पॉच लाख की आबादी वाला यह क्षेत्र पहले 'लुशाई हिल्स' के नाम से जाना जाता था। करीब 650 मील लबी इसकी अतर्राष्ट्रीय सीमाएँ बर्मा और बगलादेश तक फैली हुई है।

इन पहाडी बाशिदो यानी मिजो का अपना एक सम्पुष्ट ससार है। मिजोरम पहुँचते ही योरपीय जीवन शैली की रेखाएँ चारो तरफ फैली दिखाई देंगी, एक भ्रम पैदा

होगा, आप भारत में नहीं बल्कि योरप के किसी पर्वतीय क्षेत्र में पहुँच गए हैं। सौ बरस भी नहीं बीते, पूरे राज्य में ईसाइयत फैल चुकी है। 1894 से लेकर अब तक 95 प्रतिशत से अधिक मिजो अपने मूल आदिवासी धर्म और संस्कृति को त्यागकर ईसाई बन चुके हैं। छोटे से छोटे गाँव में चर्च मिलेंगे। ईसाइयत के प्रचार के कारण करीब साठ प्रतिशत मिजो शिक्षित हैं, धाराप्रवाह अँगरेजी बोलते हैं। इनकी अपनी मिजो भाषा है पर लिपि नहीं है। ईसाई मिशनरियों ने इस भाषा को रोमन लिपि में बदल दिया है। आज पूरे मिजोरम को इस लिपि पर गर्व है।

मिजोरम की राजधानी एजल और दूसरे छोटे-बड़े पहाड़ी कस्बे एक ऐसी धुन में दिखाई देंगे जो प्रथम संपर्क में आपको हैरत में डाल सकती है। मैदानी क्षेत्रों से जानेवाला व्यक्ति कल्पना नहीं कर सकता कि इस पहाडी शहर और इन कस्बों के सांस्कृतिक संबंध सीधे लंदन, न्यूयार्क, पेरिस, बैंकाक, टोकियो, सिंगापुर, हांगकांग आदि से जुडे हुए हैं। लुशाई पहाड़ियों में उपभोगवादी संस्कृति के द्वीप हर जगह उभर आए हैं।

एजल को लीजिए, पहाडी पर बसा एक छोटा शहर है, छोटी-सँकरी सड़कें हैं, मगर रंग-बिरंगी कारों, जीपों और मोटरसाइकिलों की रेलपेल दिखाई देगी। जितनी मारुति कारें और जीपें यहाँ मिलेंगी, किसी मैदानी शहर में नहीं। आयातित कारों की संख्या भी कम नहीं। हर मॉडल की मोटरसाइकिल यहाँ पहुँच चुकी है।

शहर का जीवन मस्ती भरा है। हर छोटे से छोटे रेस्तराँ मे रंगीन टीवी और वीडियो मिल जाएगा। भारतीय फिल्में नहीं, अँगरेजी फिल्में सिनेमाघरों और वीडियोघरों में दिखाई जाती हैं। हिन्दी फिल्म वैसे ही चलती हैं जैसे किसी विदेश में दिखाई जाती हैं। पश्चिम की मारधाड़ संस्कृति वाली फिल्में खूब लोकप्रिय हैं। टीवी के राष्ट्रीय प्रसारण कार्यक्रम में अँगरेजी की न्यूज-बुलेटिन के अलावा दूसरे कार्यक्रम नहीं देखे जाते। अधिकांश मिजो परिवारों में वीडियो रहने के कारण राष्ट्रीय कार्यक्रम यहाँ लोकप्रिय नहीं हो सके। पश्चिमी संगीत बेहद लाकप्रिय है। मिजो भाषा के गीतों को भी पश्चिमी तर्ज दे दी गई है। पश्चिमी संगीत में ढला और न्यूयार्क में रिकॉर्ड किया गया मिजो गीतों का एक कैसेट साठ-साठ रुपए में बिकता है। वीडियो-गेम्स की तो अपनी एक अलग दुनिया है ही।

इत्तफाक से एक रविवार एजल में बीता। मजाल है रविवार को कोई दुकान खुली रह जाए! इस दिन पूरा सन्नाटा बाजार में रहता है। शनिवार की शाम से ही पश्चिमी तर्ज पर 'छुट्टी का मूड' शुरू हो जाता है; पाँच बजते पूरा बाजार बंद हो जाता है। रविवार के दिन मिजो अपने-अपने वाहन लेकर सैर-सपाटे के लिए निकल पडते हैं। कारें, जीपें और ट्रकें 'इतवारी हुल्लड़बाजों' से भरी रहती

हैं। तेजरफ्तारी मोटरसाइकिलों पर सवार युगल सर्र से निकल जाते हैं। सुबह-सुबह नियम से सभी अपने-अपने चर्च जाते हैं। वहाँ से छूटने पर इतवारी मूड शुरू। बस रात भर यही चलता रहता है। गैर-मिजो काफी डरते हैं, शनिवार और रविवार को शाम छह बजे बाद बाहर नही आते, भय रहता है कि नशे में धुत कोई मिजो उन्हे रोककर पैसा न मॉग बैठे। छीना-झपटी और मारपीट के किस्से होते रहते है। गैर-मिजो लोगो की शिकायत रहती है कि पुलिस उनके साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार करती है। इसलिए आम दिनो मे भी एजल की सडकों पर रात्रि मे बाहरी लोग कम ही दिखाई देते हैं।

चूँकि मिजोवासियो का सांस्कृतिक ससार पहाडियो के पार का है, इसलिए छोटे से छोटे गॉव की दुकान आयातित माल से अटी पडी है। पहाडियों के बीच सड़क किनारे खडी दुकान मे जापान के इलेक्ट्रानिक सामान और सिंगापुर व हांगकांग के कपडों की भरमार है। छोटे से छोटा विदेशी सामान यहॉ उपलब्ध है, भारतीय वस्तुएँ कम दिखाई देती हैं। हालत यह है कि असम-मिजोरम प्रवेश चौकी पर जाते-आते समय कस्टमवाले प्रत्येक यात्री की सख्ती से तलाशी लेते है, जिस ढंग से तलाशी अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डो पर ली जाती है, उसी ढंग की प्रवेश चौकी पर होती है। यह सही है कि मिजोरम देश का एक हिस्सा है, फिर भी प्रत्येक भारतीय को मिजोरम सीमा मे दाखिल होने के लिए एक अनुमति-पत्र लेना होता है, बगैर इसके प्रवेश वर्जित है।

एक अलिखित विशेष दर्जा मिजोरम को प्राप्त है। कोई बाहरी व्यक्ति इस प्रदेश में व्यापार नही कर सकता। गैर-मिजो को बसने और संपत्ति अर्जित करने की अनुमति नही है। वैसे बेनामी धधा जरूर होता है, मिजो लोगो के नाम पर बाहरी लोग व्यापार करते है। बाहरी लोग मिजो-स्त्रियों से विवाह करके भी व्यापार कर रहे है। पर ऐसे किस्से कम है। जब यह क्षेत्र असम राज्य का हिस्सा था, तब से मिजो और गैर-मिजो के बीच शादियॉ होती रही हैं। परतु मिजो फ्रंट बनने, मिजोरम के गठन और एक अलग राष्ट्रीयता की पहचान की इच्छा पैदा होने के बाद ऐसी शादियॉ अपवाद बनती जा रही हैं।

इसीलिए आज का मिजो जीवन के हर क्षेत्र में शेष भारत से अपनी स्वतंत्र पहचान चाहता है। बर्मा और बगलादेश के साथ सीमा लगी रहने के कारण तस्करी खूब होती है। मिजो आदिवासियों ने इसके माध्यम से बरास्ता बर्मा और बंगलादेश बाहरी अर्थव्यवस्था के साथ सीधे संबंध जोड रखे हैं। इन्हीं संबंधों के बल पर टिकी है पश्चिमी जीवन-शैली। ऐसा नहीं है कि मिजोरम मे सभी समृद्ध हैं, निर्धन कोई नहीं। मिजो लोगों का कहना है कि मिजो समाज में विषमता की रेखाएँ तेजी से उभर रही हैं। पिछले बीस वर्षों में अभिजात मिजो वर्ग तेजी से अस्तित्व

में आया है। एजल में अनेक निर्धन मिजो परिवार देखे जा सकते हैं। शहर में अपने किस्म की पहाड़ी गंदी बस्तियाँ हैं। मोटे तौर पर एजल में मिजो समाज दो वर्गों—उच्च और निम्न में विभाजित दिखाई देता है; मैदानी समाजों के समान बहुवर्गीय समाज नहीं है। अमीर मिजो मानते हैं कि अगर विषमता की वर्तमान गति जारी रहती है तो मिजोरम में भी विषमता की कई परतें पैदा हो जाएँगी; यहाँ भी मैदानी भारत के समान बहु-श्रेणी और बहुवर्गीय समाज बन जाएगा। वह एक दुखद दिन होगा, पर आज का यथार्थ यही है कि मिजो समाज आर्थिक विघटन की ओर बढ़ रहा है, उसमें तनाव पैदा होने लगे हैं। आयातित वस्तुओं का उपभोग उच्च वर्ग में अधिक है, निम्न वर्ग मैदानी भारत से आई वस्तुओं से काम चलाता है और तन पसारने के लिए अपर्याप्त तंग पहाडी खोलियों में रहता है—एक तरह से तंग तहखानानुमा मकानों में। दूसरी तरफ समृद्ध मिजो के मकान के अंदर ही गैरेज होते हैं, जहाँ दो-दो, तीन-तीन वाहन एक साथ खड़े किए जा सकते हैं।

मिजो समाज की विषमता मिजो फ्रंट के जवानों में भी देखी जा सकती है। सर्किट हाउस में एकत्रित फ्रंट के हथियारबंद युवा सदस्यों में अधिकांश निम्न वर्ग के थे। खुरदरे चेहरे और सख्त चमडी। मिजो समाज के नव-धनिकों ने इसकी पुष्टि की। उन्होंने बताया कि फ्रंट में शामिल ज्यादातर लड़ाकू लोग गरीब घर के हैं। जिन लोगों के पास रोजगार नहीं है, वे जंगलों में चले जाते हैं; हथियार उठा लेते हैं। एजल के एक व्यापारी मिजो परिवार के युवा सदस्य के अनुसार फ्रंट के लोग जबरन अमीर परिवारों से चंदा वसूल करते हैं। चंदा नहीं देने पर परेशान किया जाता है। क्योंकि ये गरीब हैं इसलिए हथियार के बल पर अमीर मिजो लोगों से मिजो राष्ट्र के नाम पर लगातार धन ऐंठा जा रहा है। एक अन्य नव-समृद्ध मिजो ने यह भी शंका व्यक्त की कि शांति-समझौते के बावजूद फ्रंट के सभी लोग हथियार नहीं डालेंगे; लालडेंगा के चाहने पर भी युवा विद्रोही आत्मसमर्पण नहीं करेंगे। वजह बताई कि गाँवों में गरीबी काफी है; जिस अनुपात में शिक्षा है, उस अनुपात में रोजगार उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए गरीब मिजो परिवार के लोग फ्रंट में शामिल होने के साथ-साथ बर्मा और बंगलादेश सीमा पर चलनेवाली तस्करी के धंधे में लग जाते हैं। फ्रंट से उन्हें पूरा समर्थन-संरक्षण मिलता है।

इन धनी मिजो लोगों की दलील है कि पिछले बीस सालों में फ्रंट के माध्यम से निहित स्वार्थ पैदा हो गए हैं। शहर और गाँव के निर्धन मिजो परिवार कभी नहीं चाहेंगे कि मिजोरम में स्थायी शांति स्थापित हो जबकि अभिजात मिजो परिवार पूर्ण शांति चाहते हैं। खासतौर पर एजल का व्यापारी और अधिकारी वर्ग फ्रंट

की गतिविधियो को पसद नहीं करता। इस वर्ग की यह भी आशका थी कि लालडेगा के मुख्यमत्री बनने के पश्चात भी फ्रट के सदस्यो की जबरन धन वसूलने की आदत बनी रहेगी। पहले भूमिगत रहकर यह काम किया जाता था, अब सरकारी सरक्षण मे ऐसा होगा।

देखने को यह भी मिला है कि समृद्ध परिवार के ही लडके-लडकियाँ मिजोरम से बाहर उच्च शिक्षा के लिए जा पाते है। इस तरह के अनेक परिवारो के सदस्य दिल्ली बबई कलकत्ता मद्रास शिलाग, देहरादून नैनीताल और विदेशो मे पढ रहे है जबकि निर्धन मिजो परिवार अपने बच्चो को मिजोरम मे भी पूरी शिक्षा देने मे असमर्थ है। एजल मे अनेक बच्चो को काम करते हुए देखा जा सकता है खासतौर से होटलो और अमीर घरो मे। इसके अलावा सडक के किनारे अपने माता-पिता के साथ थडियाँ लगाकर सामान बेचते हुए मिजो बच्चो को देखा जा सकता है। कहा जा सकता है कि ऐसे परिवारो की जीवन-शैली मिजो माटी से जुडी हुई है।

पाँच लाख के मिजो समाज मे उठते तनाव के ये बिन्दु आदिम समानता पर आधारित समाज मे तेजी से बिखराव पैदा करेगे यह साफ है। मैदानी समाज के दोषो से यह पहाडी समाज अधिक समय तक अछूता रह सकेगा इसमे सदेह है। मिजो समाज को पश्चिमी जीवन-शैली अपनाने के लिए भी दोषी नही ठहराया जा सकता। मैदानी भारतीय समाज उत्तर-पूर्वी पहाडी समाजो के सामने एक स्वतत्र विकल्प रखने मे असफल रहा है। मैदानी समाज का नेतृत्व-वर्ग स्वय पश्चिमी जीवन शैली से प्रभावित है। मैदानी समाज के उच्च और मध्यम वर्गो मे इस परायी जीवन-शैली को अपन‌ाने के लिए आपाधापी मची हुई है। तब मिजो समाज के लिए जरूरी नही कि वह योरप अमेरिका और जापान पहुँचे, बरास्ता छपरा-छतीसगढ और दिल्ली-बबई। जब दोनो समाजो की मजिल एक बन चुकी है, तब मिजो समाज लुशाई पहाडियो से सीधी उडान भरने की कोशिश क्यो न करे? कम से कम सीधी उडान मे मैदानी समाज मे व्याप्त विभिन्न तनावो और विषमताओ की गर्म लूएँ तो पहाडी यात्री को नही छू सकेगी। ऐसा है आज के मिजो समाज का सोच-ससार।

**27 जुलाई, 1986**